प्रकाशक

उपमा प्रकाशन,

प्रा० लि०, कानपुर

प्रथम संस्करण

१ दिसम्बर, १९६१

मूल्य २ )

मुद्रक

रामनाथ गुप्त

भाषा प्रेस

८/२ ब आर्यनगर कानपुर

परम पूजनीया माता गुलरानी देवी

जिन्होंने १४ अगस्त ६२ को स्वर्गगमन से पूर्व आजन्मजीवन अपने स्तन्यपान से
अनुप्राणित कर वात्सल्य का पीयूष मुझे प्रदान किया
उन्हीं के यशोज्ज्वल पाणि-युग्म में महात्मा कवि
रज्जब की यह अमर दिव्य वाणी
सभक्ति समर्पित है।

मां! तब तक तुम अमर अमर जग में जब तक रज्जब बानी।
*तुम जब तक हो अमर अमर मैं भी तब तक हे कल्याणी!*

तुम्हारा बबुआ
ब्रजलाल

५-१२-६३

# आशीर्वचन !

श्री सच्चिदानन्द परमात्मा की असीम कृपा से जगत् के जीवों के हितार्थ जगत् में उच्चकोटि के संत प्रकट होते ही रहते हैं। ऐसे ही उच्चकोटि के संत श्री दादू जी महाराज मान जाते हैं। दादू जी महाराज के १५२ शिष्य थे उनमें १०० तो साधना में तल्लीन रहे और ५२ ने गुरुदेव के सिद्धान्त का प्रचार किया तथा प्राय वाणीकार हुये। उन्हीं बावन में संत रज्जब हैं, जो अच्छे विचारक थे। उनकी वाणी आपके कर कमलों में है। आप इसका अध्ययन करेंगे तब आपको स्वयं ही यह अनुभव होगा कि रज्जब जी बड़े अनुभवी संत थे। वि० सं २०१३ के चातुर्मास सत्संग सुन्दर बाग से जब मैं जयपुर आया तब श्री दादू महाविद्यालय मोती डोंगरी जयपुर में श्री स्वामी भगतदास जी महाराज की प्रेरणा से कानपुर के श्रीमान् व्रजलाल जी वर्मा ने श्री रज्जब वाणी समझने की इच्छा मेरे सामने प्रकट की और मेरे साथ ही जयपुर से पुष्कर के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में रिक्शा में बैठे बैठे प्रसंगवश रज्जब वाणी साखी भाग विरह के अंग की एक अरिल पर विचार चला। उसका अर्थ मेरे द्वारा समझ कर व्रजलाल जी को प्रसन्नता हुई और साथ ही विश्वास भी हो गया कि अब मेरा कार्य हो जायेगा। पुष्कर में श्रीकृष्ण कृपा कुटीर के पास ही आनन्द कुटीर में व्रजलाल जी ठहर गये। वे प्रात से सायंकाल तक भोजन का समय छोड़कर रज्जब वाणी के समझने का कार्य करते रहते थे। आधा कार्य करने के पश्चात् वे कानपुर गये और पुन फाल्गुण मास में आये तथा सम्पूर्ण रज्जब वाणी समझने के पश्चात् उन्होंने रज्जब जी पर शोध ग्रंथ लिखा। भगवत्कृपा से उसमें उत्तीर्ण होकर तथा पुन रज्जब वाणी का सपादन करके उन्होंने वाणी प्रेमियों का महान् हित किया है। शोध ग्रंथ राजस्थान सरकार द्वारा प्रकाशित हुआ है और वाणी उपमा प्रकाशन कानपुर द्वारा।

वानी के रूपक सर्वसाधारण के लिये तो कठिन पड़ते ही हैं, किन्तु बहुत से इसमें ऐसे पद्य भी हैं, जो बिना गुने शिक्षित जनों के भी समझ में नहीं आते। कारण इसमें पारसी तुर्की अरबी तथा राजस्थानी डिंगल भाषा के शब्दों के प्रयोग हुए हैं। इससे वे कठिन होगये हैं, किन्तु व्रजलाल जी ने शब्दकोश देकर वाणी प्रेमियों का महान् हित किया है। रज्जब जी के साहित्य के ठीक प्रकाशन-प्रसार का कार्य व्रजलाल जी के द्वारा आरम्भ हुआ है, यह प्रसन्नता की बात

है। संत वाणी-प्रेमियों को इससे महान् लाभ होगा तथा साहित्य प्रेमियों को भी इसमें बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। कवियों के लिये भी यह महान् आशीर्वाद रूप है। इसमें ऐसी हजारों उक्तियाँ मिलती हैं, जिनसे कवि-गण अपनी कविता को सुन्दर बना सकते हैं। उत्तम शिक्षा का तो यह भंडार है ही फिर भी यह कुछ कठिन होने से जनता को विशेष लाभ नहीं पहुंचा सकी किन्तु अब इससे प्रत्येक साधक तथा साधारण सभी कुछ न कुछ लाभ उठा सकते हैं। व्रजलाल जी अब रज्जब जी के 'सर्वंगी' ग्रंथ के भी संपादन का विचार कर रहे हैं। यह उनका परम श्लाघनीय विचार है। "सर्वंगी' भी महान् ग्रंथ है। यह संग्रह ग्रंथ है। इसमें अपनी रचना के साथ साथ अन्य उच्चकोटि के संतों तथा कवियों की रचना का श्री रज्जब जी ने संग्रह किया है। इसके संपादन प्रकाशन से भी हिन्दी भाषा और जनता की महान् सेवा होगी। जिस प्रकार व्रजलाल जी श्री रज्जब-साहित्य का मनन करके उसे सर्वसाधारण तक पहुंचाने का परिश्रम कर रहे हैं, उसी प्रकार वे आगे भी करते रहें ऐसी ही कृपा इन पर भगवान् करते रहें। आशा है वाणी प्रेमीजन उनके कार्य से लाभ उठा कर उनका परिश्रम सफल करेंगे।

श्रीकृष्ण कृपा कुटीर
पुष्कर दि॰ ४-९-६१ ई

नारायणदास स्वामी

# स्तुत्य प्रयास शुभ-कामना

हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों को यह भलीभांति ज्ञात है कि राजस्थान में संत साहित्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थान में सोलहवीं सत्रहवीं अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदियों में अनेक उच्चकोटि के संत हुये हैं। उन्होंने तथा उनके अनुयायियों ने अपने अनुभव को प्रकाशित हिन्दी भाषा में विविध रचनाओं द्वारा जनसाधारण का परम कल्याण किया है तथा हिन्दी साहित्य के नैतिक अंग का परम पोषण किया है।

विविध विश्वविद्यालयों के मनीषी अपने शोध कार्य के लिये इन संतों की रचनाओं का चुनाव करते हैं। इन्हींमें रज्जब वाणी के सम्पादक माननीय प्रोफेसर व्रजलाल जी वर्मा एम० ए०, पी-एच० डी० भी हैं। आपने अपने शोध का विषय परम संत मनोजयी महात्मा दादू जी के वरिष्ठ शिष्य रज्जब जी को बनाया था। रज्जब जी पर आपका शोध प्रबंध ससम्मान स्वीकृत हुआ तथा उसका प्रकाशन राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर द्वारा हुआ है।

आपने अपने शोध निबन्ध लिखने से पहले रज्जब जी के सम्पूर्ण साहित्य का मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय किया। रज्जब जी दादू जी के प्रमुख शिष्यों में थे। वे जाति के पठान थे तथा रहने वाले सांगनेर के थे। सांगनेर में उनका 'रज्जबद्वारा' आज भी अवस्थित है। रज्जब जी परम विचारक तथा निष्ठावान् साधक थे। उन्होंने दो ग्रंथों की रचना की। पहला ग्रंथ रज्जब वाणी है, जिसमें साखी पद भाग लघु ग्रंथ, कवित्त सवैये अरिल हैं। उनकी दूसरी रचना 'सर्वंगी' है। यह उच्चकोटि का संग्रह ग्रंथ है। इसमें विभिन्न प्रकरणों पर दादू, कबीर, नामदेव रैदास हरिदास, जगन्नाथ जगजीवण वषना आदि संतों के तथा अपने वाक्यों का संग्रह किया है। दोनों ग्रंथ पर्याप्त बड़े हैं। माननीय व्रजलाल जी ने रज्जब जी की वाणी का सम्पादन कर तथा इसके प्रकाशन की व्यवस्था कर एक बहुत बड़े अभाव का निराकरण किया है। वर्मा जी ने जिस लगन व श्रम के साथ 'रज्जब वाणी' का सम्पादन किया है, तदर्थ वे हिन्दी साहित्य जगत् के समादरणीय हैं। हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ साहित्यकार संत साहित्य की ओर बहुत कम आकर्षित हैं। संत साहित्य पर जिन महानुभावों ने ध्यान दिया है उनमें बड़थ्वाल जी माननीय हजारी प्रसाद जी द्विवेदी चतुर्वेदी परशुराम जी आदि अग्रणी हैं।

दादू जी व दादू जी के शिष्यों प्रशिष्यों तथा परवर्ती संतों की रचनाएँ बहुत विस्तृत हैं। पर उनके प्रकाशन की तो बात ही क्या है उनके अवलोकन करने वालों का ही परम अभाव है। दूसरे संत साहित्य के पाठकों का भी अभाव है, अतः संत साहित्य का प्रकाशन सामान्य प्रकाशकों के बस का काम नहीं।

संत साहित्य निर्दोष मानसिक खुराक है इससे मनुष्य में उन दैवी गुणों का उत्कर्ष होता है जिनसे समाज का महत्व बढ़ता है नैतिकता के उत्पादन व पोषण के लिये जन-समाज के हाथ में संत-साहित्य जाना चाहिये। संस्कृत भाषा में ऐसा साहित्य बहुत विशाल है पर वह जनसाधारण की समझ से बाहर है। जनसाधारण की मनोमय भावना में मानवीय उत्कृष्ट गुणों के आविर्भाव के लिये संत साहित्य परम रसायन का कार्य करता है।

वर्मा जी ने रज्जब वाणी का सम्पादन कर तथा प्रकाशित कर जनसाधारण का परम हित-साधन किया है। आशा है हिन्दी साहित्य-मनीषी इसका अवलोकन कर संतों के संतुलित विचारों का परिचय प्राप्त करेंगे तथा वर्मा जी के श्रम को सफल बनायेंगे।

आचार्य
श्री दादू महाविद्यालय जयपुर
१ ८ ६१

मंगलदास स्वामी

# महात्मा रज्जब का परिचय

रज्जब जी की जन्म-तिथि जन्मकुल एवं जन्म-स्थान विषयक जानकारी के प्रामाणिक स्रोतों के अभाव में किसी के लिये भी 'इदमित्थम्' कह सकना कठिन है। राजस्थानी साहित्य और संस्कृति के मेधावी इतिहासकार जयपुर निवासी स्व. पुरोहित हरिनारायण शर्मा बी. ए. विद्याभूषण द्वारा दादू सम्प्रदाय के सन्तों के साहित्य एवं जीवनियों पर गवेषणात्मक कार्य प्रस्तुत किया गया था। उन्होंने स्वामी दादू दयाल के विद्वान् शिष्य स्वामी सुन्दरदास जी की सम्पूर्ण रचनाओं को सुन्दर ग्रन्थावली नाम से संकलित एवं सम्पादित किया था जिसका प्रकाशन सं. १९९१ में राजस्थान रिसर्च सोसायटी कलकत्ता द्वारा हुआ था। ऐतिहासिक तथा साहित्यिक अनुसन्धान-कार्य में स्व. पुरोहित जी की कैसी अमोघ शक्ति थी इसका परिचय तो 'सुन्दर ग्रन्थावली' की १९६ पृ. की विस्तृत भूमिका और सुन्दरदास जी के जीवन-वृत्त को देखकर ही प्राप्त होसकता है। पुरोहित जी राजस्थान के विश्रुत विद्वान् थे। उन्होंने रज्जब के सम्बन्ध में सम्यक् प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के लिये सतत प्रयत्न किये परन्तु ऐसे जिज्ञासु पुरुषार्थी शोधक को भी रज्जब जी के कुल परिवार एवं जन्म-तिथि के सम्बन्ध में प्रायः अनुमानों के आश्रय में ही रहना पड़ा।

पुरोहित जी ने रज्जब जी पर एक विस्तृत लेख 'महात्मा रज्जब जी' शीर्षक से लिखा था जो कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले त्रैमासिक पत्र 'राजस्थान' के वर्ष १ के तीसरे और चौथे अंकों में प्रकाशित हुआ था। उस लेख में पुरोहित जी ने रज्जब जी की जीवन-विषयक प्रामाणिक सामग्री की खोज में असमर्थता व्यक्त करते हुये लिखा था 'रज्जब जी का जन्म संवत् कहीं लिखा नहीं मिलता है'। उसी लेख में आगे चलकर वे लिखते हैं —

"अधिक खोज और तलाश करने से रज्जब जी और उनके ग्रन्थ के सम्बन्ध में अनेक और बातें मिल जाने की पूरी सम्भावना है। हमको जो कुछ मिला है उसका खुलासा दिया गया है। अधिक ज्ञाता पाठकगण संशोधन तथा अभिवृद्धि करके इस विषय का शुद्ध और समृद्ध करें तो और भी उत्तम कार्य सम्पादन होजाय।

रज्जब जी के जीवन एवं साहित्य-सम्बन्धी जानकारी के लिये मैंने राजस्थान की कई यात्राएँ कीं। सर्वत्र रज्जब विषयक सूचना तथा सामग्री का संकलन किया उसका अध्ययन किया और लगभग ५ वर्षों के सतत प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप मैं रज्जब जी की बानी का प्रस्तुत कर रहा हूँ। विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध सम्प्रदाय के ग्रन्थों एवं सन्तों की बानियाँ देखीं।—दादू द्वारों में जा जा कर महात्माओं से मिला किन्तु रज्जब जी के माता-पिता का नाम उनकी जन्म तिथि और मृत्यु-तिथि का प्रामाणिक पता कहीं भी न लग सका। इन यात्राओं एवं विभिन्न प्रसंगों का यह लाभ अवश्य हुआ कि पुष्कर के एक महात्मा स्वामी नारायण दास जी जयपुर के श्री दादू महाविद्यालय में मिल गये। "रज्जब-बानी" की एक छपी हुई प्रति जो ज्ञान-सागर प्रेस बम्बई

संवत १९७१ में प्रकाशित हुई थी—मेरे पास थी। दो हस्तलिखित प्रतियाँ जो दादू महाविद्यालय जयपुर के संग्रह से प्राप्त हुईं जिनको आधार मान कर मैंने उक्त पुष्कर-वासी स्वामी नारायण दास जी के साहचर्य में रज्जब बानी का पाठ-शोध किया तथा उसका यत्किंचित् अर्थ भी स्वामी जी से समझा। नारायणे के दादू द्वारा के निजाम संग्रहालय में रज्जब जी की दूसरी कृति 'सर्वंगी' जो अनेक महात्माओं की बानियों का संग्रह है प्राप्त हुई। उसकी एक बृहद् प्रति भी देखी गई। इस प्रसंग में इतना और कहना है कि राजस्थान के संग्रहालयों में 'सर्वंगी' की हस्तलिखित प्रतियाँ तो उपलब्ध होती हैं परन्तु 'बानी' का प्रायः लोप-सा होता जा रहा है। पुरोहित हरिनारायण जी ने रज्जब जी के जीवन पर जो कुछ भी प्रकाश डाला है उसका आधार दादू सम्प्रदाय के सन्तों की जनश्रुतियाँ एवं कुछ सन्तों की बानियाँ मात्र हैं। कालान्तर में रज्जब जी के सम्बन्ध में इतस्ततः चर्चा होने लगी थी। हिन्दी-जगत् रज्जब जी से प्रथम बार तब परिचित हुआ जब मिश्र-बन्धुओं द्वारा लिखा गया हिन्दी साहित्य का विवरणात्मक इतिहास 'मिश्र बन्धु विनोद' नाम से सं० १९६७ में प्रकाशित हुआ। इस इतिहास में रज्जब जी का चमत्कारिक उल्लेख दो स्थानों में प्राप्त होता है।[1]

दादू सम्प्रदाय में १५२ महात्मा हुये—यद्यपि महात्माओं की इस संख्या पर विद्वानों में मतभेद रहा किन्तु श्री दादू महाविद्यालय जयपुर से प्रकाशित श्री दादू महाविद्यालय रजत जयन्ती ग्रन्थ की भूमिका में प्रस्तावित दादू सम्प्रदाय के संक्षिप्त इतिहास में सप्रमाण बताया गया है कि शिष्य प्रशिष्यों का स्वतन्त्र विवरण राघोदास जी की भक्तमाल में विशेष रूप से किया गया है। सुन्दरदास जी व जनगोपाल जी कृत दो शिष्य नामावलियाँ भी बनी हुई हैं इनसे सिद्ध होता है कि दादू जी के जितने शिष्य हुये उनमें १५२ प्रधान शिष्य थे। कथानक प्रचलित है कि उनमें से सौ तो ऐसे वीतरागी थे जिन्होंने व्यवहार सत्ता का प्रायः त्याग ही कर दिया था। वे अनवरत आत्म-चिन्तन में ही मग्न रहते थे। उक्त ग्रन्थ की भूमिका में एक स्थान पर ५२ तथा दूसरे स्थान पर १५२ शिष्यों की नामावली प्रस्तुत की गई है जिसमें क्रमशः नवम् तथा दशम् स्थान रज्जब जी का है। रज्जब जी के प्रतिभाशाली तथा साधना-गरिमा-मण्डित व्यक्तित्व की एक झलक हम पुरोहित हरिनारायण शर्मा के इन शब्दों में हम प्राप्त कर सकते हैं—'रज्जब जी का अनुभव और ज्ञान तथा संग्रह विशाल थे। उनकी ज्ञान पिपासा उनका तप उनका भजन उनका शास्त्र-ज्ञान तथा कीर्तनादि नर्तन और प्रभाव सभी ही बड़े चढ़े थे। वे जन्म-सिद्ध महात्मा थे। वे पूर्व जन्म से ऐसा संस्कार लेकर आये थे कि ............ 'धर्मात्मा'—श्रीघ्रतर वे संसारी से त्यागी होकर मानो भगवद्-कृपा का साक्षात्कार साथ ही था और गुरु के क्षणिक सत्संग से ही वे उसी प्रकार अपने सहज आत्म-स्वरूप को प्राप्त होगये जिस प्रकार लोहा पारस के स्पर्श मात्र से तुरन्त स्वर्ण हो जाता है। वे विवाह वेश में 'बनड़ा' बने हुये ही 'बाबा जी' बन गये यह बड़े ही आश्चर्य की घटना उनके जीवन में हुई वे मानी थे और अति दीर्घजीवी होकर शरीर

---

[1] सुन्दर दास रज्जब जी जन गोपाल जगन्नाथ मोहनदास खेमदास आदि इनके (दादू) शिष्य अच्छे कवि भी थे"। मिश्र बन्धु विनोद प्रथम भाग पृष्ठ १४१। कवि संख्या १२ नाम रज्जब जी ग्रन्थ—सर्वंगी रचना काल—सं० १७ विवरण साधारण श्रेणी थे महात्मा दादू के शिष्य थे। इन्होंने नाड़ी बोली मिले ...... कविता की है। मिश्र बन्धु विनोद द्वितीय भाग पृष्ठ सं० ४७२।

को आश्चर्यजनक रीति से उन्होंने छोड़ा था।[1] पुरोहित जी इसी प्रसंग में आगे लिखते हैं "उनके जीवन-काल में ही उनका मान उनके गुरु ही नहीं सर्व शिष्य-मण्डली भक्तों और सबमें होगया था। उनका वचन बहुत ही गम्भीर सारभरा अनुभव-सिद्ध और प्रायः अलौकिक तथा चमत्कारी है। उनके नुकीले उपदेश चित्त-कमल के कोमल पत्रों में चुभ जाते हैं।"

इसमें किंचित् अतिशयोक्ति नहीं कि दादू सम्प्रदाय में साधना एवं भक्ति-वैराग्य की दृष्टि से महात्मा दादू दयाल के दो ही शिष्यों का उल्लेख आता है—रज्जब जी तथा छोटे सुन्दरदास। दोनों में अन्तर यही था कि रज्जब जी का आनुभूतिक ज्ञान प्रबल था और सुन्दरदास जी का शास्त्रीय ज्ञान। रज्जब जी की प्रतिभा और महिमा से प्रभावित होकर ही अनेक सन्तों ने उनकी शिष्यता महात्मा दादू दयाल के जीवन काल में ही स्वीकार कर ली। रज्जब जी के शिष्यों की चर्चा हम अन्यत्र करेंगे किन्तु यहां पर रज्जब जी के व्यक्तित्व के प्रभाव की ओर न्यूनाधिक संकेत आवश्यक है। रज्जब जी के कतिपय शिष्यों ने तो उनकी महिमा का अतीव सुन्दर वाणी म चित्रण किया है। खेमदास रामदास क्षेमदास कल्याणदास मोहनदास प्रभृति ऐसे ही शिष्य हैं। रज्जब जी की इस ख्याति प्रभाव और कीर्ति का श्रेय उनके तपोमय व्यक्तित्व तथा उनके द्वारा प्रणीत सरस अनुभूतिमूलक दृष्टान्तों से मण्डित उनकी 'वाणी' को है। दादू सम्प्रदाय में कोई अन्य कृति ऐसी नहीं है, जो आध्यात्मिक तथा साहित्यिक किसी भी दृष्टि से रज्जब वाणी की तुलना में ठहर सके। सम्प्रदायों में रज्जब-वाणी का दादू-वानी से किसी प्रकार भी कम पारायण नहीं होता था। कहा तो यह जाता है कि गुरु-वाणी को रज्जब-वानी कहीं प्रभावहीन न कर दे इसलिये दादू जी के कुछ भक्त रज्जब-वाणी के पारायण को दादू-शिष्यों के लिये श्रेयस्कर नहीं मानते थे तथापि कुछ शिष्य रज्जब-वाणी में अगाध आस्था रखते थे। रायसेना के ऊ बरा गांव के स्वामी नारायण दास जी के शिष्य हरिदास रज्जब-वाणी के परम भक्त थे—निपुण कवि और पण्डित होने के नाते वह अपनी रचनाओं में भी रज्जब जी का भक्ति-पूर्वक स्मरण करते थे।[2] रज्जब जी की प्रतिभा की चर्चा करते हुए पण्डित परशुराम जी चतुर्वेदी ने लिखा है — इन्हें कथा-वार्ता करने का बहुत अभ्यास था और दृष्टान्तों के प्रयोग में तो ये इतने कुशल थे कि इनकी बराबरी का कोई क्वाचित ही मिलेगा।[3] पुरोहित जी ने भी इसी तथ्य के पोषण में लिखा है—'रज्जब जी दृष्टान्त के बहुत प्रेमी थे। कथा कहते तब दृष्टान्तों की भरमार कर देते और कथा उनकी सरस सुमधुर गम्भीर और दृष्टान्त और कथानकों से विभूषित होजाती थी'।[4] रज्जब जी की इस प्रतिभा पर मुग्ध होकर उनके शिष्य ने कुछ सवैये लिखे हैं जिनमें से दो हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं —

ज्यूं बलि मंत्र के साधन वीर जहां जस बीन तहां तस फूंके।
ज्यूं धर्मराज के काज करे तब दूत अनेक रहे जिम ढूंके॥
ज्यूं नप के तप तेज तें कम्पत धाम रहे पर आइ न ढूंके।
ऐसे ही भांति सबै दृष्टान्तहि आये खड़े रहें रज्जब चूके॥१॥

---

१ मंगलामी मासिक पत्र अंक १ संवत् प्रेस जयपुर में पुरोहित हरिनारायण शर्मा का महात्मा रज्जब जी शीर्षक लेख।

२ समय दो अंक १ में पुरोहित हरिनारायण शर्मा का लेख।

३ उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—पृ ४२६।

४ संतवाणी अंक १ में पुरोहित जी का लेख।

ज्ञान अनन्तर ध्यान अनन्त हो बुद्धि अनन्त दई दीनानाथै
विवेक अनन्त विचार अनन्त हो भाग्य अनन्त लिख्यौ जिन्ह माथै।
सिद्धि अनन्तर निद्धि अनन्त रिद्धि अनन्त रहै नित हाथै
सब दोस अनन्तर पाप को अंत हो सेस कहै गुरु रज्जब साथै ॥

रज्जब जी के सम्बन्ध में इसी प्रकार की उक्तियां उनके कई शिष्यों ने तथा सहसाधकों ने कही हैं। 'रज्जब बानी के भेंट के सवैये' वाले अंग में आठ सवैयों में रज्जब जी की प्रतिभा ज्ञान-साधना तप-उपासना और वैराग्य को लेकर सुन्दर चित्रण किया गया है। रज्जब जी विषयक जानकारी के आधार पर हम कह सकते हैं कि रज्जब जी को दादू सम्प्रदाय में वही महत्व है जो रामभक्ति धारा में गोस्वामी तुलसीदास का। तुलसीदास जी ने अपनी निजी वैयक्तिक साधना के साथ-साथ ऐसी विशाल मन प्रेरक काव्य-कृतियां लिखी जो सहस्राब्दियों तक राम की भक्ति को प्रतिष्ठित बनाए रहेंगी तथा काव्य पिपासु-जनों को चिरंतन तृप्ति प्रदान करती रहेंगी। रज्जब जी की मौलिक कृति 'बानी' तथा नाना सन्तों की वाणियों की सार रूप में संकलित एवं सम्पादित विशाल कृति 'सर्वंगी' ने दादू सम्प्रदाय में विशेष चेतना उत्पन्न करदी। रज्जब जी की बानी का आद्योपान्त पारायण करने से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उसकी तुलना में दादू सम्प्रदाय के किसी संत की बानी नहीं ठहरती। रज्जब जी के व्यक्तित्व की कतिपय विलक्षणताएं ऐसी है, जो उन्हें सामान्य साधक अथवा महात्मा से पृथक एक विशिष्ट विभूतिमत्ता प्रदान करती हैं। उन विलक्षणताओं की संक्षेप में हम इस प्रकार गणना कर सकते हैं—

क—रज्जब जी ने पठान-वंशीय होकर भी हिन्दुओं की निराकार निर्गुण भक्ति का प्रतिपादन किया।

ख—रज्जब जी पठान होने के नाते दादू सम्प्रदाय के सर्वाधिक बलिष्ठ पराक्रमी तथा स्वस्थ शरीर के महात्मा थे।

ग—वे अपने विवाह के लिये जब घर चले आरहे थे तो मार्ग में दादू जी के उपदेश से विरक्त होगये—आराम से नहीं गये और वहीं से महात्मा बन गये।

घ—वे अपने विरक्त साधु जीवन में इसलिये दूल्हे की पोशाक पहनते रहे, कि उसी वेश में उनको गुरु की उपलब्धि हुई थी।

च—वे १२२ तक वष जीवित रहे—इतनी दीर्घायु विरले ही महात्माओं को प्राप्त हुई।

छ—दृष्टान्तों और लोक-व्यवहार के प्रसंगों की भूमिका में अध्यात्म निरूपण का उनमें अद्वितीय कौशल था।

ज—रज्जब जी पठान होकर भी राजस्थानी हिन्दी पर अच्छा अधिकार रखते थे।

झ—रज्जब जी ने अपने गुरु द्वारा बताई गई विधि से एक जंगल में जाकर प्राण विसर्जित किये।[1] अपनी इन्हीं कतिपय विशेषताओं और विलक्षणताओं के कारण वे सब शिष्यों

---

१ दादू बानी—स्वामी मंगल दास जी द्वारा सम्पादित सुमिरण को अंग—

हरिभजि साफिल जीवना पर उपगार समाइ।
दादू मरणा तहं भला जहां पशु पंखी खाइ ॥
कबीर मरना तहं भला जहां न अपना कोय।
माटी भखे जिनावरा मुवा न रोवै कोय ॥

में अत्यन्त सम्मानित प्रिय और विश्वस्त थे। दादू जी अपने इस शिष्य का बहुत आदर करते थे और सदा ही रज्जब जी ('जी' कार से) सम्बोधन करते थे।[1]

## रज्जब जी का कृतित्व

दादू सम्प्रदाय के अन्तर्गत महात्मा रज्जब एक ऐसे साधक थे जिन्होंने अपने तप-पूत आचार और पावन 'बानी' द्वारा अमूर्त संत-साधना को मूर्त्त कर दिया है। वे साधना-व्योम के उन नक्षत्रों में हैं जो दीर्घ कालावधि-पर्यन्त अप्रकट रह कर भी घोर अविद्यान्धकार में भूले भटोहियों को दिशा दर्शन कराते हैं। रज्जब जी के जीवन का भटनात्मक साधनानन्दता विपुल मनोरम अनुभूतियाँ चिन्तन-प्रगल्भता मौलिक ऊहाएं एवं उद्भावनाएं साहित्यिक मनोज्ञता आचार वैचित्र्य तथा सन्त स्वभाव-सुलभ वैलक्षण्य—उनके व्यक्तित्व के कतिपय ऐसे अद्भुत पटल हैं, जो दृष्टि-निक्षेप मात्र में किसीके भी हृदय को सहज ही विमुग्ध कर देते हैं। दादू सम्प्रदाय में रज्जबदास और सुन्दरदास अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। रज्जब अपनी साधनात्मक एवं साहित्यिक अनुभूतियों के कारण तथा छोटे सुन्दरदास जी अपनी साधना और वेदान्त ज्ञान के कारण अपने युग के छोटे बड़े सभी संतों के आदरास्पद बन गये थे।

दादू सम्प्रदाय की संत-परम्परा के अध्ययन में मेरी प्रवृत्ति हुई—इसका श्रेय मेरे कतिपय गुरुजनों तथा संत-साहित्य के उन विद्वज्जनों को है जिनकी कृतियों से मैंने सहायता प्राप्त की। गुरु और ग्रन्थ से प्राप्त सूचना ही उनकी प्रेरणा से विस्तृत होकर ज्ञान बन जाती है। दादूपंथी संत-परम्परा में रज्जब जी का जीवन-वृत्त एवं उनका साहित्य मेरे कौतूहल का विषय बन गया। परिणामतः अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए दादू संस्कृत महाविद्यालय जयपुर, के प्रधानाचार्य एवं संत-साहित्य के मर्मज्ञ स्वामी मंगलदास जी की प्रेरणा से मैंने सम्पूर्ण राजस्थान की तीन यात्राएं कीं। जयपुर, आमेर सांगानेर नारायणा पुष्कर अजमेर, बीकानेर जोधपुर, डीडवाना कोलिया चित्तौड़ उदयपुर नाथद्वारा आदि स्थानों के पुस्तकालयों एवं विद्वानों का दर्शन करके ही मैं रज्जब जी के साहित्य की गवेषणा कर सका।

रज्जब जी का साहित्य हिन्दी जगत् के लिए कुछ नवीन-सा है तथा समालोचना और विवेचना के लिए तो और भी नवीन। रज्जब जी की 'बानी' का प्रकाशन एक बार सं १९७५ में ज्ञानसागर प्रेस मार्ईगा बम्बई से हुआ था किन्तु नितान्त अशुद्ध तथा भ्रष्ट मुद्रित होने के कारण वह न होने के समान ही रहा। उधर राजस्थान और पंजाब के दादूपंथियों के बीच यद्यपि रज्जब साहित्य का पठन-पाठन हस्तलिखित प्रतियों के माध्यम से चलता रहा किन्तु हम उसे हिन्दी साहित्य के अध्ययन की विकसित परम्परा के अन्तर्गत नहीं रख सकते। उस पठन पाठन की पृष्ठभूमि में सम्प्रदायगत धार्मिक निष्ठा ही प्रमुख थी। जयपुर के स्वर्गीय पुरोहित श्री हरनारायण जी शर्मा का 'महात्मा रज्जब' शीर्षक लेख तथा पं परशुराम जी चतुर्वेदी की पुस्तक 'उत्तरी भारत की संत-परम्परा' से आगे इधर रज्जब जी पर कोई आलोचनात्मक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। अतः मैंने यह उचित समझा कि रज्जब जी के साहित्य को शुद्ध रूप में प्रकाश में लाया जाय। राजस्थान का समग्र भ्रमण करने के उपरान्त मुझे यह लक्षित हुआ कि रज्जब जी की सङ्कलित प्रति 'सर्वंगी' की हस्तलिखित प्रतियाँ यत्र-तत्र वहाँ के पुस्तकालयों में

---

[1] संतवाणी अंक १ जयपुर—में पुरोहित जी का लेख।

सुविधा से उपलब्ध होजाती हैं, किन्तु उनकी मूल रचना 'बानी' लुप्तप्राय होरही है। 'रज्जब बानी' की दो प्रतियाँ दादू महाविद्यालय जयपुर में एक प्रति नारायणा के दादूद्वारे में एक प्रति देवसा में एक पुरातत्व मंदिर जोधपुर में (जो अब प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के नाम से विख्यात है) हैं, किन्तु यहाँ भी सम्भवतः पूरी 'बानी' उपलब्ध नहीं होती है। इसी प्रकार बानी' की एक अधूरी प्रति अनूप लाइब्रेरी बीकानेर में है। सम्भव है दो चार प्रतियाँ और इतस्ततः राजस्थान में प्राप्त होजाँय। पुरोहित हरनारायण शर्मा जयपुर के संग्रहालय में भी एक दो प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। यह संग्रहालय उनके सुपुत्र के द्वारा प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर को इस शर्त पर प्रदान किया गया है कि प्रतिष्ठान की एक शाखा जयपुर में स्थापित कर दी जाएगी जिससे यह साहित्य-सामग्री जयपुर से हटाई न जाय। तदनुसार यह शर्त राजस्थान सरकार ने स्वीकार कर ली और प्रतिष्ठान की एक शाखा जयपुर में खोल दी गई जहाँ पुरोहित जी की सारी साहित्य-सामग्री यथापि संगृहीत है।

दादू सम्प्रदाय की एक और विशेषता यह रही है कि इस सम्प्रदाय के विरले ही सन्त ऐसे मिलेंगे जिन्होंने किसी न किसी प्रकार के साहित्य की रचना न की हो। इस पंथ के प्रायः सभी सन्तों ने कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। विचारों की प्रस्तुत भूमिका में धर्म-साधना अथवा साहित्य साधना की दृष्टि से कोई अन्य ऐसा महात्मा न हुआ जो सम्प्रदाय की देश-कालिक सीमाओं का प्रस्तार करता। दादू जी के शिष्यों-प्रशिष्यों में सत्तर से अधिक महात्मा ऐसे हैं, जिन्होंने साम्प्रदायिक साहित्य की रचना की। इसका विस्तृत उल्लेख मैंने अपने शोध प्रबन्ध 'संत कवि रज्जब—सम्प्रदाय और साहित्य' में किया है, जिसका प्रकाशन प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, राजस्थान सरकार, के द्वारा हुआ है। इसी प्रसंग में अपने पाठकों को यह सूचित कर देना समीचीन होगा कि राजस्थान में एक सम्प्रदाय और है, जिसके संतों में अनेक ने साहित्यिक एवं साम्प्रदायिक ग्रंथों की रचना की है—वह है निरंजनी सम्प्रदाय जिसका प्रवर्तन राजस्थान के कोड़िया ग्राम में जन्म लेने वाले संत हरिदास निरंजनी (संत हरिपुरुष) द्वारा हुआ। सन्त हरिपुरुष ने डीडवाणा ग्राम के निकट समाधि बनाकर साधना की। दादू सम्प्रदाय की उक्त शताधिक कृतियों में जिन महात्माओं की कृतियों की विशेष प्रतिष्ठा है उनमें रज्जबदास छोटे सुन्दरदास जगजीवनदास तथा निश्चलदास प्रमुख हैं। इनमें भी रज्जब जी की 'बानी' के प्रति समाज का विशेष आदरभाव और रुचि रही है। राजस्थान और पंजाब में आज भी ऐसे लोग हैं, जिन्हें रज्जब जी के सवैये और साखियाँ प्रभूत संख्या में कण्ठस्थ हैं। वैष्णव भक्तों में साहित्यिक वैभव की दृष्टि से जो स्थान तुलसीदास और सूरदास का है, वही स्थान दादू सम्प्रदाय में रज्जबदास और सुन्दरदास का है।

रज्जब जी की दो कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। पहली 'रज्जबबानी' दूसरी 'सर्वंगी' अथवा सर्वांगयोग। एक तीसरी कृति का भी उल्लेख मिलता है, जो रज्जब जी के गुरु दादूदयाल जी की 'बानी' का संग्रह है। यह संग्रह रज्जब जी द्वारा संकलित एवं सम्पादित माना जाता है। 'रज्जब बानी' रज्जब जी की मौलिक रचना है तथा 'सर्वंगी' साधना के एक एक अंग पर कई कई महात्माओं की उक्तियों का संकलन है। 'सर्वंगी' को हम रज्जब जी की सम्पादित कृति मान सकते हैं। 'दादू बानी' प्रारम्भ में व्यवस्थित नहीं थी किन्तु रज्जब जी ने उसे अंगों में श्रेणी बद्ध कर व्यवस्थित बनाया। विभिन्न अंगों में वर्गीकृत 'दादू बानी' को 'अंगबन्धो' अथवा

'रज्जब बानी' की हस्तलिखित प्रतियों का अब लोप-सा होता जारहा है, यह हम अभी कह चुके हैं। सं १९७५ विक्रमी में यह ग्रंथ साधु सेवादास वैद्य कृपाराम जी साधु रामकरण जी के उद्योग तथा शेखावटी के सेठ शिवनारायण जी नेमाणी के आर्थिक सहयोग से बम्बई के ज्ञानसागर प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित हुआ था किन्तु सम्पादक महोदय की भाषानभिज्ञता तथा रज्जब जी के काव्य से अपरिचय के कारण यह ग्रंथ आद्योपान्त कुछ और का और ही होगया। शब्द वाक्य और छंद सभी भ्रष्ट होगये। इस ग्रंथ के सम्पूर्ण भाग की सुन्दर टीका (विशेषत शब्दार्थ) स्वामी रामदास जी दूधाधारी स्वामियों ने की थी जो ग्रंथ के साथ दी गई थी।

'रज्जब बानी' के रचनाकाल के सम्बन्ध में उक्त मुद्रित 'रज्जब बानी' के सम्पादक ने अपनी भूमिका भाग में लिखा है– इस मनोहर ग्रंथ की रचना संवत् १६२५ वि से संवत् १६६ वि के भीतर हुई है।" इस छपे हुए ग्रंथ के साथ छापेखाने व्यवस्थापकों एवं सम्पादकों का खिलवाड़ देखकर सचमुच बड़ा क्षोभ होता है। छपाई और सम्पादन में तो प्रमाद किया ही गया है रज्जब जी के सम्बन्ध में निराधार मत भी प्रस्तुत किये गए हैं। उदाहरण के लिए 'बानी' का रचनाकाल सं १६२५ से स १६५ के बीच का बताया गया है। प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होचुका है कि रज्जब जी सन १५६७ ( सं १६२४ वि ) में उत्पन्न हुए थे। यदि बानी' का रचनाकाल सं १६२५ से १६५ के बीच मान लिया जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि जब रज्जब जी एक वर्ष की आयु के थे तभी 'बानी' की रचना में प्रवृत्त हो गए थे। रचनाकाल-सम्बन्धी यह मत सर्वथा असंभव तथा निराधार है। इस सम्बन्ध में पुरोहित हरिनारायण शर्मा का मत ही मान्य है। उन्होंने 'राजस्थान पत्रिका' कलकत्ता में प्रकाशित अपने 'महात्मा रज्जब जी शीर्षक लेख में लिखा है—'रज्जब जी सं १६४४ में या उसके आस पास ही दादूदयाल के शिष्य आमेर में हुए थे और सं १७४६ में रामशरण (स्वर्गवासी) होगए। इस कारण इनकी रचनाएं सं १६५ से लगाकर स १७४ तक होती रही होंगी परन्तु अधिकांश रचनाएं इनकी सं १७२५ तक हुई होंगी जब तक इनकी इन्द्रियाँ यथोचित काम करती रही होंगी।" इसी प्रसंग में पुरोहित जी आगे कहते हैं—"अपने गुरु के परमधाम गमन पर इन्होंने छंद लिखे हैं, जिनका सं १६६ में लिखा जाना सिद्ध है। गरीबदास जी के भेंट के सवैये इसके भी कई वर्ष पीछे के हैं, शायद सं १६६५ और १६७ के बीच के हों। हमारे पास इनकी 'बानी' के कई ग्रंथ सं १७४१ और १७४२ तथा १७४१ के लिखे मौजूद हैं। इसीसे हम कहते हैं सं १७४ इनकी रचना का अन्तिम समय समझना चाहिए।" पुरोहित जी का यह मत प्रमाण-पुष्ट है। मुद्रित ग्रंथ की भूमिका का रचनाकाल-सम्बन्धी मत भ्रामक एवं अप्रामाणिक है। रज्जब जी के संस्कृत का विद्वान् होने वाली धारणा भी कोरी भ्रान्ति है। यह ठीक है कि रज्जब जी बहुश्रुत थे सत्संगी थे विद्वानों का साहचर्य उन्हें प्राप्त हुआ था किन्तु स्वय संस्कृत के विद्वान् थे—यह बात किसी भी प्रकार तर्कानुमोदित नहीं है।

रज्जब जी का दूसरा ग्रंथ 'सर्वंगी है, जिसे हम उनकी संकलन-कृति मान सकते हैं। इस ग्रंथ मे १८२ अंग हैं। अंगों के शीर्षक 'रज्जब बानी' की भांति ही हैं। विशेषता यह है कि एक एक अ ग (विषय) पर अपनी बानी के साथ साथ कई महात्माओं की उक्तियाँ रज्जब जी ने अनुस्यूत की हैं। दादू, कबीर, कृष्णदास हरदास सिह (सम्भवत यही स्वामी हरिदास निरजनी हैं) नामदेव महमूद जनगोपाल परमानन्द सूरदास महमद वखना मुकुन्द नानक गोरख कालिन्द

गोस्वामी तुलसीदास जनदास पीपा बेनी पीपा माधोदास परशुराम दीनदयाल सोम चतुर्भुज चतरदास जगन्नाथ गरीबदास रैदास फरीदा खेमदास अमरदास विष्णुदास शेख बषना सुन्दरदास बीठा अंगद सुखानन्द हनुमन्त (हनुमन्त) नरसी त्रिलोचन नारायण रामानन्द, विद्यादास सांवलिया गोविन्ददास नामदास जनदास सन्तदास पूर्णदास भैरियानन्द पृथ्वीनाथ जगजीवन आदि सन्तों की उक्तियों को खोज खोज कर विभिन्न अंगों के अनुसार विषयानुरूप सम्पादित किया है। एक दो स्थलों में भविष्य पुराण से भी कुछ अंश उद्धृत किए गए हैं। उक्त महात्माओं के अतिरिक्त स्वामी शंकराचार्य भर्तृहरि वशिष्ठ के संस्कृत श्लोकों तथा मंसूर, मुहम्मद और काजी महमूद सूफी साधकों के फारसी बैतों की योजना भी प्रसंगानुसार की गई है। एक एक विषय पर कई कई महात्माओं की सारगर्भित वचनावली का समावेश किया गया है।

नारायणे के दादूद्वारे में 'सर्वंगी' की एक विशाल शरह (पद्य टीका) भी प्राप्त होती है। 'सर्वंगी' की जो हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान में यत्र-तत्र मुझे देखने को मिलीं उनसे यह पता चलता है कि इनकी सामग्री में विशेष रूप से उसके क्रम में भिन्नता है। पाठ-शोध की दृष्टि से 'सर्वंगी' का सम्पादन 'रज्जब बानी' के सम्पादन से कम दुष्कर नहीं। 'रज्जब बानी' तथा 'सर्वंगी' दोनों ग्रन्थों के अंग शीर्षकों में विशेष अन्तर नहीं है। भेद इतना ही है कि 'रज्जब बानी' में रज्जब जी की मौलिक रचनाएं हैं तथा 'सर्वंगी' में रज्जब जी द्वारा उनकी अपनी रचनाओं के अतिरिक्त अन्य महात्माओं की उक्तियाँ भी नियोजित हैं। दोनों ग्रन्थों का कलेवर प्रायः समान है। दोनों कृतियाँ विशाल हैं। जहाँ 'रज्जब बानी' में रज्जब जी की मौलिक प्रतिभा एवं माया ब्रह्म जीव जगत् सम्बन्धी अगाध ज्ञान का परिचय मिलता है, वहीं उनकी संकलित तथा सम्पादित कृति 'सर्वंगी' में उनके बहुश्रुत होने तथा पूर्ववर्ती और समयुगीन प्रायः समस्त प्रसिद्ध महात्माओं की रचनाओं से परिचित होने का जीवन्त प्रमाण प्राप्त होता है। यह दोनों कृतियाँ दादू-पन्थी साहित्य के अप्रतिम रत्न माने जाते हैं। 'सर्वंगी' का रचना-काल सं० १६२ से १७४ के बीच में ठहरता है। यह भी निर्विवाद है कि 'सर्वंगी' की रचना 'रज्जब बानी' के उपरान्त हुई क्योंकि 'सर्वंगी' में रज्जब जी ने अपनी 'बानी' की सामग्री का भी विषयानुसार उपयोग किया है। दादू बानी के सम्बन्ध में दादू-पंथियों में प्रसिद्ध है कि दादू जी ने 'बानी' जैसे ग्रन्थ की रचना नहीं की है प्रत्युत अपने शिष्यों के समक्ष बीच बीच में वे जो भाव व्यक्त करते अथवा उपदेश करते वह पद्य में ही करते थे। वे प्रायः अपनी बात दोहों में कहते थे। उनके शिष्यों में मोहनदास ऐसे थे जो अपने गुरु दादू की सभी पद्यमयी उक्तियों को तत्काल लिख लेते थे स्यात् इसीलिए संत मोहनदास दादू-पंथी साधुओं में मोहनदास दफ्तरी के नाम से विख्यात हैं। इस प्रकार दादू जी की उक्तियों की विशृंखल राशि को अनुक्रमित एवं विषयानुसार सुसम्बद्ध करने का श्रेय रज्जब जी को है। बहुत सम्भव है कि संतों की बानियों के अंग-बद्ध करने की इस प्रक्रिया के अग्रदूत रज्जब जी ही हों जैसा कि संत-साहित्य के विद्वानों का विचार है।

## रचनाओं की प्रकृति

किसी साहित्य के अध्ययन के लिए जब हम प्रेरित होते हैं, तो हमारा ध्यान सहज ही साहित्य-शास्त्र के नियमों और सिद्धान्तों की ओर जाता है, किन्तु रज्जबजी के साहित्य (हमारे विचार से सम्पूर्ण संत साहित्य) का काव्य-शास्त्र के आधार पर पर्यालोचन करना न तो न्याय-संगत ही है और न औचित्य प्रेरित ही। सत-साहित्य की परम्परा में ही रज्जब की रचनाओं का आस्वाद कुछ निराला और भिन्न प्रकार का है। उनके कला पक्ष में तो किंचित् शास्त्रीयता मिल जाती है, परन्तु यदि हम उसका रस-मूलक अध्ययन करते हैं, तो केवल निर्वेद पुष्ट शान्त रस ही रचनाओं में आद्योपान्त व्याप्त लक्षित होता है। सर्वत्र जीवन की ऐहिकता तथा जगत् के मिथ्यात्व की चर्चा सत-स्वभाव-सुलभ सेवा जप-तप इन्द्रिय-निग्रह, मनोनिग्रह, नीति और अनीति साधु-असाधु भेद जीव-माया-ब्रह्म का निरूपण सत्यासत्य-विवेक चेतावनी तथा उपदेश लय समाधि अजपाजप सुरति निरति विषयों की नियोजना ही उपलब्ध होती है। यही कारण है कि कबीर नानक दादू सुन्दरदास पलटू, मलूकदास रविदास आदि संतों के काव्य का विद्वानों ने विषयगत विवेचन तो प्रस्तुत किया है, किन्तु उनके काव्य-शास्त्रीय पक्ष पर विचार नहीं किया।

'रज्जब बानी' के सन्दर्भ में दादू जी और सुन्दरदास की बानियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। दादू, रज्जब और सुन्दर की बानियों का यदि हम संक्षेप में तुलनात्मक विश्लेषण करें तो इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि दादू दयाल की 'बानी' सहज सरल तथा अमलान है। यह दादू जी के हृदय की अशेष विभूति से आप्यायित है। दादू बानी' की कवित्वमयता भी सहज है उसमें किसी प्रकार का कवि-यत्न नहीं है। 'रज्जब बानी' में रज्जब जी के हृदय की भाव-विभूति के साथ साथ कविता का प्रयत्न-साध्य गौरव भी परिलक्षित होता है। उनकी 'बानी' का अध्ययन करने से यह प्रतीति होती है कि रचना करते समय रज्जब जी के अध्यात्म-निष्ठ संत के साथ ही उनका कवि भी जागृत और सचेष्ट रहा है। रज्जब जी के समस्त आध्यात्मिक विचार साहित्यिक शैली में अभिव्यक्त हुए हैं। सुन्दरदास की 'बानी' में भाव ज्ञान तथा अध्यात्म तीनों का योग है। इसे यों स्पष्ट करेंगे कि सुन्दरदास जी महात्मा थे वेदान्ती थे और कवि थे। एक वाक्य में कहें तो कह सकते हैं कि दादू जी ने अपने हृदय का भाव अत्यन्त सहज और निश्छल ढंग से व्यक्त किया है रज्जब ने हृदय की आध्यात्मिक अनुभूतियों को काव्य रस में निमज्जित किया है तथा सुन्दरदास ने भावों की परिणति दार्शनिकता में की है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम तीनों महात्माओं की एक एक साखी एक ही विषय पर प्रस्तुत करेंगे —

| | |
|---|---|
| दादू | दादू सतगुरु सहज में कीया बहु उपकार। |
| | निर्धन धनवंत कर लिया गुरु मिलिया दातार॥ |
| रज्जब | तन मन सलिल समन्द मधि निर्मल नाव जहाज। |
| | सावधान गुरु वचन बहि गुरु सारे सब काज॥ |
| सुन्दरदास | सुन्दर सतगुरु एक है अनसमझे को द्वित। |
| | समय रहित सतगुरु कहौं तो है अद्वैतीत॥ |

उपर्युक्त तीनों साखियों की भावाभिव्यक्ति पर ध्यान देने से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि दादू की बानी का प्रमुख गुण सहजता है, रज्जब जी की अभिव्यञ्जना का साहित्यिकता और

सुन्दर की अभिव्यक्ति का सार्वभौमिकता। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दादू और रज्जब में सार्वभौमिकता नहीं है अथवा सुन्दरदास में सहजता और सरसता नहीं है।

रज्जब जी के काव्य-पक्ष की काव्यशास्त्रीय विवेचना करने के लिए उसके रूपकों, उपमानों दृष्टान्तों आदि पर विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा। सम्पूर्ण सन्त साहित्य पर विचार करने से हम एक निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि संत कवियों में प्रायः काव्यालंकारों में रूपक अलंकार की योजना करने की विशेष प्रवृत्ति रही है। रूपक अलंकार में उपमान और उपमेय दोनों का अभेदाभेद (एक दूसरे से नितान्त अभिन्न) करके वर्णन किया जाता है[1]। अर्थात् उपमान तथा उपमेय के परस्पर एक दूसरे के अत्यन्त सदृश होने से जब उनके परस्पर भेद का ज्ञान छिप जाय और वे अभिन्न से प्रतीत होने लगें[2]। साहित्य-दर्पणकार कविराज विश्वनाथ ने रूपक की परिभाषा करते हुए बताया है कि रूपक अलंकार में (निषेध अथवा उपमान द्वारा) अनपह्नुत (न छिपाए गए) विषय (आरोप विषय उपमेय) पर विषयी (उपमान) का अभेदारोप होता है[3]।

आचार्य मम्मट और कविराज विश्वनाथ दोनों ने रूपक के तीन भेद माने हैं। (१) परम्परित रूपक (२) सांग रूपक (३) निरंग रूपक। उपमान और उपमेय में अत्यन्त सादृश्य प्रदर्शित करने के लिए दोनों में एकता का आरोप जहाँ किया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है। रूपक अलंकार का तो यह शास्त्रीय लक्षण हुआ किन्तु उसके द्वारा होने वाले अर्थ की निष्पत्ति कवि के प्रयोग-कौशल पर निर्भर करती है। कवि उपमान और उपमेय में जितनी ही अधिक सघन सादृश्य की योजना कर सकेगा उतना ही अधिक यह अलंकार अर्थ-स्फोट में सहायक होकर पाठक को चमत्कृत करेगा। इसके लिए हम रज्जब जी के एक रूपक का उदाहरण देंगे। रज्जब जी गुरु के उपकारी स्वभाव की व्याख्या वृक्ष के रूपक के माध्यम से करते हैं

गुरु तरवर अंग डाल बहु बच बैन फल राम।
रज्जब छाया में सुखी आशिर्ष सरे सुकाम॥

यहाँ गुरु वृक्ष है, अंग उसकी डालियाँ हैं, वचन पात हैं, राम फल है। कोई भी विषय-पथिक इस गुरु वृक्ष की छाया में बैठकर अपने त्रिविध ताप दूर कर सकता है तथा उसमें लगे हुए रामफल का आस्वादन कर सकता है।

कहीं कहीं रज्जब जी रूपक के द्वारा अवगुण-युक्त उपमेय-हीन गुण के रूप में प्रस्तुत करते हुए भी उसकी महत्ता में वृद्धि कर देते हैं। एक स्थल पर वे विषय प्रवृत्त नर-नारी (उपमेय) में चकवा चकवी के उपमान का सादृश्य स्थापित कर गुरु वचन (उपमेय) में रवि (उपमान) का अभेद आरोपित करते हैं। सामान्यतः रात्रि अन्धकार, निराशा और दुर्भाग्य का प्रतीक होती है, इधर गुरु उपदेश जीवन में सत्य आलोक एवं ज्ञान का संचार करता है परन्तु उसे रात्रि बताकर भी उसकी महत्ता में वृद्धि की गई है—

रज्जब नारी नर पुरुष चकवा चकवी जोड़।
गुरु बैन बिच रैन में किया सुमन बर जोड़॥

---

१— मम्मट का काव्य-प्रकाश दशम उल्लास सूत्र १३९

२—वही-दशम उल्लास १३९ में सूत्र की व्याख्या

३—साहित्य-दर्पण दशम परिच्छेद सूत्र २८

पुरुष और स्त्री-रूपी चकवा-चकवी में विच्छेद उत्पन्न करने के लिए गुरु का उपदेश रात्रि बनकर आयगा—अर्थात दोनों में गुरु ने विरक्ति उत्पन्न कर दी। चकवा चकवी स्वभावतः निशागमन पर एक दूसरे से पृथक होजाते हैं। साधना पथ में ज्ञान और काम (नारी) एक दूसरे से विरक्त होजांय तो साधना सफल होजाय।

उपर्युक्त साखी में परम्परित तथा सांग दोनों प्रकार के रूपकों की योजना हुई है। यहाँ हम केवल सांग रूपक नहीं मान सकते क्योंकि परम्परित रूपक में एक का अभेदारोप दूसरे के अभेदारोप का कारण हुआ करता है। इस साखी में चकवा चकवी का अभेदारोप नर-नारी के अभेदारोप का कारण है तथा चकवा-चकवी के अभेदारोप के लिए गुरु वचन और रात्रि में अभेदारोप किया गया है। उधर सांग रूपक में अंगों के रूपण के साथ साथ अंगी का रूपण हुआ करता है। यहाँ पर एक देश विवर्ति सांग रूपक न होकर समस्त वस्तु विषय सांग रूपक है, क्योंकि चकवा-चकवी उपमान के आरोप्यमाण अंगों का जैसे रात्रि और विछोह का समस्त: उपात्त हुआ है। रज्जब जी द्वारा नियोजित उनकी रचनाओं के समस्त रूपकों की व्याख्या करना तो यहाँ सम्भव नहीं—परन्तु हम उनके कतिपय प्रसिद्ध रूपकों को उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं।

परम्परित और सांग रूपक—

> प्यण्ड प्राण दोयू तपहि क्षपा कड़ाही तेल।
> रज्जब दूरि ससि क्यू रहहि अगनि मध्य नहि मेल॥

इसी साखी में रूपक के साथ साथ उपमालंकार भी उपस्थित है। रज्जब जी की रचनाओं में असंख्य रूपकों की योजना हुई है। कहना चाहिए कि रज्जब साहित्य में सारी भावाभिव्यञ्जना रूपकमयी है।

पारस — गुरु परजिन पारस मिल्या सिख ही खूटी खोड़।
रज्जब पलटे लोहू सब कंकर का क्या होय॥
गुरुदेव का अंग १४७

चंदन — सतगुर चंदन बावना परस्यो पलटे काठ।
रज्जब वेसा बूक में रह्या बांस के ठाठ॥
गुरुदेव का अंग १४८

रहट — बिन पड़िमाल रहट को भरमैं जल आवे कछु नाहि।
त्यू रज्जब चेतन बिन चेला रीता संपति माहिं॥
गुरुदेव का अंग १५१

धनुर्धर — सतगुर तीरन्दाज है सेवक मन भीसांव।
रज्जब गुरु स्मरति सो बाका बैठा बाण॥
गुरु सिष निदान निर्णय का अंग—२७

चकोर — रज्जब महंत मयंक है वेसा होइ चकोर।
दुखी तिसें संसार क्यों अगनि चरे नहि चोर॥
गुरु सिष निदान निर्णय का अंग—४४

कुम्भकार— सेवक कुम्भ कुम्हार गुर घड़ि घड़ि काढ़ै खोट ।
रज्जब माहिं सहाइ करि तब बाहि है चोट ॥
गुर सिष कसौटी का अंग—२

सिलावट — गौव पुर्वे कर प्राण मति गुरत सनेही साथ ।
रज्जब रज तब काढ़ती कौन बसत बिच जाय ॥
अजपा जाप का अंग—८

रज्जब जी के साहित्य के समस्त रूपकों को यदि हम एकत्र करें तो इसके लिए स्वतन्त्र ग्रन्थ-रचना की आवश्यकता है। रज्जब-साहित्य की इस व्यापक एवं बहुसंख्य रूपक योजना को देखकर हमारी यह धारणा बनती जाती है कि यह एक स्वतन्त्र विवेचना का विषय बन सकता है। रज्जब साहित्य में दृष्टान्त उपमा अर्थान्तरन्यास अपह्नुति अनुप्रास आदि अलंकारों के विभ प्रयोग हुए हैं। कहीं कहीं तो एक ही साखी में एक से अधिक अलंकार आगए हैं।

रज्जब लघु दीरघ मिलत मानि महातम खोइ ।
यथा तक पै परसतौ आवन हुँ दधि होय ॥
साध संगति मरम लाभ का अंग

इस दोहे में दृष्टान्त अर्थान्तरन्यास अनुप्रास तीन अलंकारों की योजना हुई है। यहाँ लघु दीरघ तथा तक और पय के मिलाप में साधर्म्य की स्थापना की गई है। अतः साधर्म्य-दृष्टान्त है। विशेष से सामान्य के ग्रहण में अर्थान्तरन्यास है। 'रज्जब बानी' में यदि हम संख्यानुपात की दृष्टि से अलंकारों का क्रम प्रस्तुत करना चाहें तो सर्वप्रथम रूपक फिर उपमा तदनन्तर दृष्टान्त इसके पश्चात् प्रतिवस्तूपमा तदुपरान्त उत्प्रेक्षा तथा यत्र-तत्र अर्थान्तरन्यास और अनुप्रास अलंकार मुख्यतः उपलब्ध होते हैं। अलंकार योजना के सन्दर्भ में जब हम 'रज्जब बानी' का अनुशीलन करते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रज्जब जी ने अलंकारों की योजना भावाभिव्यक्ति को आकर्षक बनाने से कहीं अधिक उसे सुस्पष्ट एवं प्रभावशाली बनाने के लिए की है। रज्जब जी के काव्य में अलंकार अपने सहज रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जब किसी भाव को पाठक के हृदय में स्पष्ट रूप से कवि ध्वनित करना चाहता है तो वह अपनी काव्यात्मकता का आश्रय लेता है। भावाभिव्यक्ति यदि अलंकार की अपेक्षा रखती है तो अलंकार अभिव्यक्ति की शक्ति बन जाता है और यदि अलंकारों के प्रयोग में चामत्कारिक प्रदर्शन का उद्देश्य होता है तो अलंकार कविता-कामिनी के कोमल कलेवर का सौंदर्य नहीं उसका भार और विकार बन जाता है। पाठक के लिए वहाँ प्रेरणा नहीं—पीड़ा की सृष्टि होजाती है।

छन्द-योजना—हिन्दी काव्य के छन्दों का यद्यपि मुख्य आधार संस्कृत वृत्तों की गुण-प्रकृति और लक्षण हैं, तथापि संस्कृत को हम एक मात्र आधार नहीं मान सकते। हिन्दी के छन्द केवल संस्कृत से ही नहीं आये हैं अपितु प्राकृत और अपभ्रंश की छन्द-पद्धति का भी उस पर प्रभाव है। हिन्दी के अधिकांश छन्दों का (विशेषतः मात्रिक तथा कवित्त घनाक्षरी आदि छन्दों का) संस्कृत में नाम भी उपलब्ध नहीं होता। इधर संस्कृत के अनेक छन्द और छन्दोवर्ग (विशेषतः आर्या और वैतालीय वर्ग) हिन्दी में पहुँचने से पहले ही प्रयोग-बहिष्कृत होचुके थे। भारतीय छन्द तत्व पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने पर हमें उसके विकास की तीन अवस्थाओं का ज्ञान होता है—

(क) स्वर-तत्व प्रधान—Rising and falling tone

(ख) ध्वनि-तत्व प्रधान—Short and Long sounds

(ग) काल-तत्व प्रधान—Time Element

स्वर-तत्व प्रधान छन्दों की योजना वैदिक साहित्य में उपलब्ध होती है। इसमें छन्द की गति ऊँची नीची उदात्त अनुदात्त स्वरित आदि स्वर-लहरियों पर अवलम्बित होती है। इसे हम स्वराघात भी कह सकते हैं। ध्वनि-तत्व प्रधान छन्दों का प्रयोग संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है। इन छन्दों में लय ह्रस्व-दीर्घ ध्वनियों पर आधारित होती है। काल-तत्व-प्रधान छन्दों की योजना हिन्दी में उपलब्ध होती है। प्राकृत और अपभ्रंश काव्य के छन्दों की भांति ही हिन्दी के छन्दों में काल-तत्व की ही प्रमुखता है, क्योंकि उसमें छन्द की लय के लिए ध्वनि की मौलिक ह्रस्वता या दीर्घता पर विचार नहीं किया जाता अपितु किसी ध्वनि के उच्चारण में जो काल लगता है, उसके आधार पर ध्वनि की ह्रस्वता या दीर्घता का निर्णय होता है। हिन्दी के छन्दों में प्रत्येक स्वर प्रमुखतः काल सापेक्ष है। दीर्घ होने पर भी हिन्दी में स्वर का दीर्घत्व उसके उच्चारण में व्यतीत काल पर निर्भर है। खड़ी बोली के छन्दों में इस काल तत्व की प्रधानता किंचित् घट गई है किन्तु ब्रज अवधी और राजस्थानी भाषाओं में इस तत्व का विशेष महत्व है। वहां दीर्घ भी कालावलम्बित होने से ह्रस्व की भांति उच्चरित हो सकता है। भारतीय संत काव्य में भी इस काल तत्व का विशेष महत्व है, यद्यपि कबीर-परम्परा के निर्गुण काव्य की प्रवृत्ति प्रमुखतः खड़ी बोली की ओर है, फिर भी उसमें ह्रस्व और दीर्घ काल-तत्व द्वारा नियमित हैं।

रज्जब जी के मात्रिक और वर्णिक दोनों वृत्तों में यह काल तत्व प्रधान है। उनकी साखियों (दोहों) चनाक्षरियों और कवित्तों में अनेक स्थलों पर ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व करके पढ़ना पड़ता है। 'रज्जब बानी' में मात्रिक छन्दों में दोहा सोरठा चौपाई, बरवै कुण्डलिया और छप्पय का प्रयोग हुआ है तथा वर्णिक वृत्तों में सवैया कवित्त घनाक्षरी पर क्रमश-बन्ध छन्द-बन्ध प्रबन्ध छन्द हैं। इनमें से प्रत्येक के एक को उदाहरण रूप में यहाँ हम प्रस्तुत करेंगे।

चौपाई—रज्जब जी ने दो प्रकार की चौपाइयां प्रयुक्त की हैं, जिनको चौपई भी कहते हैं। इनकी चौपाइयों में मात्रिक और वर्णिक दोनों रूप प्राप्त होते हैं।

> पति परमेसुर बोरज नांव अबला आतम रति रवि ठांव।
> वैसा या लखि कोई नाहिं विपति बाल बुधि उपजै माहिं।

इस अनुष्टुभी में वर्णिक वृत्त का लक्षण विद्यमान है जबकि चौपाई मात्रिक छन्द है। उसके प्रत्येक पाद में १६ मात्राएं होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रज्जब जी ने चौपई और चौपाई में अन्तर रखा है। चौपई अर्थात् अनुष्टुभी में चार पाद तो रखे हैं किन्तु प्रत्येक पाद के अन्त में पड़ने वाला गण चौपाई का नहीं है। अनुष्टुभी में जगण और चौपाई में मगण रखा गया है। रज्जब जी की एक चौपाई का एक उदाहरण लें —

> प्रथम प्राण परम गुरु पावै परम पुरुष का भाव उपावै।
> परम भेद सो देय बताई तब परै अंग अंगनि सुख पाई॥

ग्रन्थ पद्य भेद—१

इस चौपाई के प्रथम पाद में एक मात्रा की न्यूनता है तथा चतुर्थ पाद में एक मात्रा का आधिक्य है। यहाँ पर कास तत्व की विशेषता है, अन्यथा चौपाई लक्षण की दृष्टि से अशुद्ध है।

रज्जब जी ने जितने प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, उनमें लक्षण दोष प्रायः देखने को मिलता है। रज्जब जी के समस्त छन्दों में साखी छप्पय अरिल तथा सवैया अधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। उन्होंने अपनी 'बानी' में आद्योपान्त बीच बीच में अरिल छन्द का प्रयोग किया है। 'बानी' के अन्तिम भाग म ८३ अरिल मिले हैं। दादू पन्थी संतों में अरिल लिखने की परिपाटी प्रायः देखन में आती है।

यहु दया मुनि सत्य सुशील धारिये
मन बच क्रम तिरसुद्ध सिमुमता डारिये
सब ही सुकृत कीन्ह मिहर मनसा धरी
परिहा रज्जब रीझ राम रही दया जब करी

रज्जब जी के अरिलों के चतुर्थ पाद म परिहा शब्द जुड़ा रहता है यह राजस्थानी गायन विधि का एक विशेष अंग प्रतीत होता है। लक्षण ग्रन्थों में अरिल का लक्षण भिन्न दिया है तथा जिस छन्द का रज्जब जी ने अरिल नाम से प्रयुक्त किया है लक्षण ग्रन्थों में इसका नाम प्लवंगम मिलता है। प्लवंगम में २१ मात्राएं होती हैं। आदि में गुरु अक्षर होना चाहिए। यति प्रायः आठ और तेरह पर होती है। रज्जब जी ने अपने अरिलों में प्लवंगम छन्द की भी नियमितता नहीं बरती।

छप्पय—यह छन्द रोला और उल्लाला छन्दों के योग से बनता है। इसे षट्पदी भी कहते हैं। लक्षणकारों ने छप्पय के ७१ भेद किए हैं। रज्जब जी ने उल्लाला वाली छप्पय का प्रयोग किया है। चार पाद रोला के तथा अन्तिम दो पाद उल्लाला के छप्पय छन्द का निर्माण करते हैं।

बैरागर मन बिमो अघ गुन पारस बरिए
कल्पवृक्ष बनराम फूल फल बच रस बरिए
सप्त समुद्र सुधा सोइ सरिता सु तलाबहु
पीवन पुं सु पियूष तिहीं मारग गुरु मावहु
नगर पुरी बैकुण्ठ बिच चिन्तामणि घर घर मिलै।
रज्जब गुरु पूजा सजीव माल्हु तरवर ना मिलै॥

गुरुदेव का अंग छप्पय

सवैया—रज्जब जी के सवैये दो प्रकार के उपलब्ध होते हैं। एक तो शुद्ध सवैया—इसमें मुक्ताहार, दुर्मिल सुन्दरी आदि कई जाति के सवैयों का प्रयोग किया गया है। किन्हीं किन्हीं सवैयों म आधा पाद टेक की भांति पहले दिया गया है और उसके पश्चात् ४ पूरे पाद सम दिए गए हैं। उदाहरणार्थ—

रज्जब दयाल गुन ब्रह्म को अगाध है।

किन्तु इस प्रकार के छन्दों में इस सवैये के स्थान पर रूप घनाक्षरी के लक्षण पाते हैं। घनाक्षर ३१ वर्ण का छन्द है गुरु तथा रूप घनाक्षरी ३२ वर्ण की और अन्त मे लघु होती है। उदाहरणार्थ—

विरक्त रूप भर्यो वपु बाहरि भीतर मूल अनन्त विराजी।
कूकरि सों पनहीं पुनि त्यागि जू माँहि तृषा तिहुँ लोक की साजी।
कपट कला करि लोक रिझायो हो रोटी की ठौर करी देखो ताजी।
हो रज्जब रूप रच्यो उन को जिम साधु नहीं सब साजिर पाजी॥

( किरीट सवैया २४ वर्ण )

घनाक्षरी—

"मसमा जु आवै नाँहि विभूति लगावै नाँहि
पाखण्ड सुहावै नाँहि ऐसी कछू चाल है।
टीका माला भावै नाँहि भेख स्वांग आवै नाँहि
परपंच पचावै नाँहि ऐसा कछू हाल है।
टोपी मुद्रा सेवै नाँहि लोच सिंगी लेवै नाँहि
जरम ज़िन देवै नाँहि ऐसा कछू ख्याल है।
तुरकी तो छोडि आई हिन्दुन की हद छाँडी
अन्तर अमर माँडी ऐसो साधु-लाल है॥

अब हम रज्जब जी के पद त्रिभंगी तथा वर्ण छन्द का एक-एक उदाहरण देकर छन्द प्रकरण समाप्त करेंगे—

त्रिभंगी—३२ मात्रा अंत में गुरु

तो बैरी-त्रासं दूँदर-वासं क्वाँई मासं गुण-पासं।
विसम जु वासं फेरया कासं डोपी मासं नह तासं।
दुख जु आसं कहिए कासं चौर विनासं नह हासं।
प्राणी पासं अमितरासं बारहमासं काढि करम करता केसं।

अन्तिम पाद में त्रिभंगी के लक्षणों से यह छन्द च्युत है।

वर्ण छन्द—भगण तगण जगण

"होय अनन्त चलै ज्यूँ जीव।
सुमहु संत परसै ज्यूँ पीव।
प्रथमहिं देहु नाम का मूल।
होय सकल डाली फल-फूल।

यद्यपि इस छन्द में वर्ण छन्द की गति है किन्तु गणानुकूलता नहीं है। अत इसे हम शुद्ध वर्ण न मानकर एक प्रकार की अनुष्टुपी ही मानते हैं।

पद—

"राम बिन सावन रह्यो ना जाई।
काली घटा काल ह्वै आई दामिनि दाघे जाई।
चमक चकाय बाण सब कीन्हे बिन पिय के परसंग।
महा विरहिनि बेहाल लाल बिन लागे विरह भुवंग।
सूनी सेज हेम नहीं कामों अबला धरै न धीर।
दादुर मोर पपीहा बोलैं तैं मारत हैं तीर॥

रज्जब जी के पद विशुद्ध भजनों की परम्परा में हैं।

सन्त कवियों की बानियों का सार सर्वत्र दोहों (साखियों) में अभिव्यक्त हुआ है। सन्त कवि अपने पदों अथवा अन्य प्रकार के छन्दों के लिए उतने प्रसिद्ध नहीं जितना दोहों के लिए। रज्जब जी ने अपना समस्त गम्भीर विचार-तत्व साखियों में व्यक्त किया है। यद्यपि अनेक प्रकार के छन्दों में उनकी रुचि और गति है, परन्तु साखियों में व्यक्त की गई उनकी विचार-विभूति ही अन्य छन्दों में दुहराई गई है। छन्द-रचना के सम्बन्ध में हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सन्त कवियों में कोई भी छन्द आद्योपान्त अपने शुद्ध लक्षणों के निकष पर खरा नहीं उतरता। रज्जब-साहित्य के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। वहाँ भी दोहे का शुद्ध निर्वाह नहीं हुआ या यह कहिये कि दोहे के कई रूप-भेद रज्जब जी में उपलब्ध होते हैं।

> बिरष बीज फिरि आवई पञ्च प्यण्ड तो बार।
> तो चौरासी क्यों मिटे नर देखौ बिरताय॥
>
> (*चौरासी निवास निर्णय का अंग–१*)

यह दोहा निर्धारित लक्षणों के आधार पर शुद्ध है, परन्तु कहीं-कहीं दोहे के प्रारम्भ में रज्जब जी ने अपना नाम जोड़कर उसे लक्षणच्युत बना दिया है।

> रज्जब तन में मन मुकुते रहै बरतनि बंधे सु नाहिं।
> *पंकज वृत्ति देखै पर्वें माया काया माहिं॥*

यहाँ प्रारम्भ में रज्जब शब्द आ जाने के कारण प्रथम चरण में १३ मात्राओं के स्थान पर १० मात्राएँ तथा तृतीय चरण में १३ मात्राओं के स्थान पर १४ मात्राएँ आ गई हैं। रज्जब जी ने कई स्थानों में दोहे एवं अरिल की अन्तिम पंक्तियों में परिहाँ शब्द जोड़ा है, उसके कारण भी दोहा छिन्न भिन्न हो गया है। मात्रा और लय की असंगतियाँ तो आद्योपान्त मिलती हैं। दोहा के अतिरिक्त चौपाई छप्पय सवैया घनाक्षरी त्रिभंगी और पदों (भजनों) की योजना हुई है। रज्जब जी की मेधा और पुरुषार्थ दोनों को देखकर कहा जा सकता है कि यदि वे विशुद्ध छन्द-रचना की ओर ध्यान देते तो उनके छन्दों में कहीं कोई शिथिलता न आ सकती थी किन्तु प्रतीत होता है कि निर्गुण सन्तों की छन्द सम्बन्धी तथाकथित अनियमितता की रक्षा के लिए ही रज्जब जी ने छन्दों की शुद्धता के प्रति कहीं-कहीं उपेक्षा भाव रखा है।

भाषा—सन्त-साहित्य की भाषा में अनेक भाषाओं का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। निर्गुण सन्त कवि भाषा की एकरूपता का निर्वाह नहीं कर सके। यही कारण है कि कबीर आदि सन्त-कवियों की भाषा को विद्वानों ने सधुक्कड़ी अथवा खिचड़ी भाषा कहा है। किसी भाषा के रूप अथवा प्रकृति निर्णय में उसके कारक क्रिया-पद एवं सर्वनामों का परीक्षण ही विशेष महत्व रखता है। यद्यपि विभिन्न भाषाओं में विभिन्न वस्तुओं के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग होता है, किन्तु भाषाओं की वस्तु संज्ञा भिन्नता उतनी महत्व की नहीं जितनी कारक अव्यय सर्वनामों एवं क्रिया पदों की भिन्नता। उदाहरण से यह स्पष्ट होजायेगा।

| भाषा | सर्वनाम | अव्यय | कारक |
|---|---|---|---|
| हिन्दी खड़ी बोली | हमारा, तुम्हारा | निकट | का |
| अवधी | हमार, हमरे हमरे, तुम्हार | नियर, नेरे | केर या क |

| ब्रज | हमारो तुम्हारो | ढिग | को की |
|---|---|---|---|
| राजस्थानी | म्हारो थारो | कने नेड़े | र, रा |
| पंजाबी | साड्डा त्वाड्डा | नेड़े | दा |
| गुजराती | मारो तमारो | पासे | नू |
| मराठी | माझा तुझा | जवळ | चा |
| बंगला | आमार, तोमार | काछे | रे, रा |

रज्जब जी की भाषा कबीर-परम्परा की भाषा है, किन्तु कबीरदास की भाषा में वह सफाई और सुघरता नहीं है जो रज्जब जी की भाषा में है। इसका कारण यह है कि दोनों की भाषा में राजस्थानी भाषा का पुट है और रज्जब जी राजस्थान के ही निवासी थे जबकि कबीर उत्तर प्रदेश (काशी) के थे। रज्जब जी के गुरु दादूदयाल की भाषा की परम्परा रज्जब जी की भाषा में प्राप्त होती है। अन्तर केवल इतना है कि कबीर की भाषा कठोर शब्द-बहुल है तथा दादू जी और रज्जब जी की भाषा अपेक्षाकृत अधिक मधुर, मनोहारी एवं साहित्यिक है। कहना चाहिये कि कबीर की भाषा उतनी काव्यानुवर्तिनी नहीं है, जितनी दादू और रज्जब की। रज्जब जी की भाषा राजस्थानी होते हुए भी बीच-बीच में पंजाबी गुजराती उर्दू फारसी तथा संस्कृत के छींटे भी मिलते हैं। अनेकानेक भाषाओं की शब्दावली के मिश्रण के कारण इन सन्तों के काव्य का भाषा शास्त्रीय अध्ययन दुष्कर है। भाषा-विज्ञान-सम्मत नियमितता इन सन्तों की भाषा में नहीं उपलब्ध होती। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि यदि कबीर की भाषा की भाषा-वैज्ञानिक-विवेचना हो सकती तो उस परम्परा के सभी सन्तों की भाषा पर सुविधा से भाषा-विज्ञान आधारित निर्णय प्रस्तुत किये जा सकते थे परन्तु ऐसा नहीं हो सका। बाबू श्यामसुन्दरदास का यह कथन ठीक ही है कि कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीर की रचना में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं, परन्तु भाषा का निर्णय अधिकतर संज्ञा शब्दों पर निर्भर नहीं। भाषा के आधार क्रिया-पद संयोजक-शब्द तथा कारक-चिह्न हैं, जो वाक्य विन्यास की विशेषताओं के लिए उत्तरदायी होते हैं। कबीर में केवल शब्द ही नहीं कारक-चिह्न आदि भी कई भाषाओं के मिलते हैं। (कबीर-ग्रन्थावली की भूमिका) यह कथन रज्जब जी की भाषा के सम्बन्ध में भी पूर्णत: सत्य उतरता है।

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत यों तो अनेक बोलियाँ हैं किन्तु उस भाषा के विद्वानों ने उसको मुख्यत: ५ श्रेणियों में विभक्त किया है—मारवाड़ी ढूंढाड़ी मालवी मेवाती और बागड़ी। यह श्रेणी-विभाजन उन क्षेत्रों के आधार पर किया गया है, जिनके नाम से इन बोलियों को अभिहित किया जाता है। मारवाड़ी को प्राचीन काल में 'मरुभाषा' भी कहते थे। यह जोधपुर, बीकानेर जैसलमेर तथा सिरोही राज्यों में प्रचलित है तथा अजमेर मेरवाड़ा किशनगढ़ पालनपुर के कुछ भागों जयपुर राज्य के शेखावटी प्रदेश सिन्ध प्रान्त के कुछ भागों में जोधपुर और उसके आसपास के कुछ स्थानों में बोली जाती है। मेवाड़ी इसी मारवाड़ी की उपबोली है। ढूंढाड़ी का क्षेत्र शेखावटी प्रान्त को छोड़कर पूरा जयपुर राज्य लावा किशनगढ़ टोंक तथा अजमेर, मेरवाड़े का उत्तर-पूर्वीय भाग है। इस बोली पर गुजराती और मारवाड़ी दोनों भाषाओं का प्रभाव है। इसकी साहित्यिक कृतियों में बीच-बीच में ब्रजभाषा का पुट मिलता है। ढूंढाड़ी का पूरी और

कोटे में प्रचलित रूप हाड़ौती नाम से विख्यात है। इन दोनों बोलियों में नाममात्र का अन्तर है। मालवा प्रदेश की भाषा मालवी है तथा मेवाड़ और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में यह व्यवहृत होती है। इसमें मारवाड़ी और ढूंढाड़ी दोनों विशेषताएँ विद्यमान हैं। कहीं-कहीं मराठी का प्रभाव भी है। यह कर्णमधुर और कोमल भाषा है। मालवा के राजपूतों में यह रांगड़ी नाम से प्रसिद्ध है। मेवाती का प्रचलन अलवर भरतपुर राज्य के उत्तर-पश्चिम भाग तथा दिल्ली के दक्षिण गुड़गांव में बोली जाती है। इस पर ब्रजभाषा का विशेष प्रभाव है। डूंगरपुर और बांसवाड़ा के सम्मिलित राज्यों का नाम बागड़ है, उस प्रदेश की भाषा बागड़ी कहलाती है। यह मेवाड़ के दक्षिण तथा सूंथ के उत्तरी-भाग में बोली जाती है। इन पाँचों बोलियों के क्रिया-पदों कारक-चिह्नों और सर्वनामों में कभी-कभी बड़ा अन्तर दिखायी पड़ता है—

| हिन्दी खड़ी बोली | मारवाड़ी | ढूंढाड़ी | मालवी | मेवाती | बागड़ी |
|---|---|---|---|---|---|
| था | हो | हो | थी | थो और हो | हतो |
| उसे | उसनै | उन्नें | ऊणीने | वाकू | पेने |

रज्जब जी ने अपने काव्य में जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं है। हाँ उसमें राजस्थानी की सर्वाधिक विशेषताएँ विद्यमान हैं। पं मोतीलाल मेनारिया जब यह कहते हैं— 'ढूंढाड़ी में प्रचुर साहित्य है। सन्त दादू और उनके शिष्य प्रशिष्यों की रचनाएँ इसी भाषा में हैं ( राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ १ ) तो उनका यही आशय है कि इन सन्तों की भाषा राजस्थानी प्रधान है, किन्तु उसका यह अर्थ कदापि नहीं होसकता कि इन सन्तों की भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव नहीं। रज्जब जी की भाषा पर जिन बोलियों अथवा भाषाओं का प्रभाव है, उनमें ब्रज अवधी पंजाबी गुजराती मराठी और खड़ी बोली प्रमुख हैं। यह मानना भी असंगत नहीं कि रज्जब जी की भाषा राजस्थानी तथा उसकी एक बोली ढूंढाड़ी के लक्षणों से विशेष अभिभूत है। यों राजस्थानी की उपर्युक्त लिखित पाँचों बोलियों का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में रज्जब जी की भाषा में दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त फारसी और संस्कृत की हल्की छाया भी यत्रतत्र प्राप्त होती है। उनकी 'सर्बांगी' में तो कतिपय संस्कृताचार्यों के श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं तथा रज्जब जी ने स्वयं भी अपभ्रंश भाषाश्रित अशुद्ध संस्कृत में कुछ काव्य पंक्तियाँ लिखी हैं। रज्जब जी ने फारसी में कुछ शेर (बैत) लिखे हैं, किन्तु उनमें भी फारसी की शुद्धता का अभाव है। 'रज्जब-बानी' में भी फारसी के कुछ बैतों के दर्शन होते हैं, किन्तु फारसी भाषा-सम्बन्धी नियमितता का वहाँ भी लोप है।

रज्जब जी ने अपनी रचनाओं में 'कदे' (कभी) 'कने' (निकट) 'हूं' (हो) 'री' 'अर' (और) ऊभे' (खड़े) 'सों' (साथ) 'कया' (किया हुआ) 'नेड़े' (निकट) माँहि' (भीतर) आदि राजस्थानी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। अपभ्रंश शैली में 'ततम' (तत्व) 'दतम' (दिया) 'कन्दम' (कन्द) 'चन्दम' (चन्द) 'बकम' (बक) 'बककम' (बकना) आदि शब्दों का प्रयोग किया है। पंजाबी में 'न' के स्थान में 'ण' का प्रयोग होता है। रज्जब जी ने भी 'ण' का प्रायः प्रयोग किया है। यों यह पद्धति राजस्थानी में भी है। उनकी भाषा में ब्रज और अवधी के शब्दों की कमी नहीं। खड़ी बोली के अव्यय क्या कैसे सर्वनाम पदों में किसका उसका,

तुमको मुझको मैं मेरा तू तेरा तुम्हारा क्रिया-पदों में या हुआ, गया जाना है, जाइये आइये आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि खड़ी बोली के निर्माण में सन्त कवियों की भाषा का महत्वपूर्ण योग है।

निष्कर्षतः हम यह मानते हैं कि रज्जब जी की भाषा में पाँच-छः भाषाओं और बोलियों का सम्मिश्रण है। वह कोई एक ऐसी स्वतन्त्र भाषा नहीं है जिस पर व्याकरण के नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार विचार किया जा सके। उसके शब्दों का व्युत्पत्तिमूलक अध्ययन करने के लिए हमें कई भाषाओं और बोलियों की ओर ध्यान देना पड़ता है। यदि हम एक निर्णय लेना ही चाहें तो कह सकते हैं कि रज्जब जी की भाषा राजस्थानी सिद्ध होती है तथा खड़ी बोली उसके अधिक निकट है और उसमें सन्त कवियों की रचनाओं में प्रचलित बोलियों के समस्त रूपों का समावेश हुआ है। ब्रज और अवधी का लोच पंजाबी की परुषता मराठी की गम्भीरता गुजराती की मधुरता एवं खड़ी बोली की प्रौढ़ता—यह सब रज्जब जी की भाषा के विविध अंग हैं तथा राजस्थानी भाषा उसका परिधान है।

इसके पूर्व कि रज्जब की भाषा पर अपने विचारों का उपसंहार करें, आवश्यक है कि उनका निजी भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी समझ लें। वे भाषा को सार्वजनीन बनाने के पक्षपाती हैं। रज्जब जी के विचार से प्राकृत संस्कृत का मूल है तथा उसीने संस्कृत को जन्म दिया है—

'आदि को प्राकृत मूल है अंत पराकृत पान।
रज्जब बिबि-बृक्ष संस्कृत फल रस बरजे बान॥''

—(विचार का अंग साखी २)

यहाँ पर भाषा-वृक्ष का मूल और शिखा प्राकृत को बतलाया गया है तथा संस्कृत को बीच का खण्ड माना गया है। इसमें सन्देह नहीं कि रज्जब जी ने एक सिद्ध भाषा-शास्त्री की भाँति भाषा के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया है। संस्कार की हुई भाषा का नाम ही संस्कृत है। जिसका संस्कार हुआ वह भाषा प्राकृत ही हो सकती है और जब संस्कृत असंस्कृत हो गई तभी उसका नाम अपभ्रंश पड़ा। प्राकृत और अपभ्रंश एक ही भाषा के दो रूप से प्रतीत होते हैं। रज्जब जी इसीको भाषा-भेद की सच्ची जानकारी मानते हैं—

पराक्रित मधि ऊपजै संसक्रीरत सब बेद।
अब समझावै कौन करि पाया भाषा भेद॥

—(विचार का अंग साखी ४)

रज्जब जी की दृष्टि में प्राकृत सूर्य के समान है तथा संस्कृत के नियम (बेन्) मेघों के समान हैं। जिस प्रकार सूर्य के बिना मेघ व्यर्थ हैं उसी प्रकार प्राकृत के बिना संस्कृत शक्तिहीन है—

'प्रगट पराकृत सूर सम नियम मैन उनहार।
जन रज्जब जाये एक दिन बहु ओर अन्धार॥

—(विचार का अंग साखी ५)

जो शरीर में प्राण का महत्व है वही संस्कृत में प्राकृत का। प्राकृत के बिना शब्द की सिद्धि नहीं होती—

"प्राकृत प्राण बिनु कछु नहीं सबद न साबति होय।
तैसे रज्जब संस्कृत बिना सु प्राकृत जोय॥"

—(बिचार का अंग साखी ५)

संस्कृत अपने बीज रूप में प्राकृत ही थी। यह परिवर्तन तो बाद में हो गया है—

बीज रूप कछ और था वृक्ष रूप भया और।
त्यों प्राकृत से संस्कृत रज्जब समझा और॥

—(बिचार का अंग साखी ५)

अन्त में रज्जब जी प्राकृत और संस्कृत दोनों को मिथ्या मानते हैं, यदि उनमें राम नाम की महिमा का वर्णन नहीं है गान नहीं है—

'रज्जब बाणी सत्य सो जामा है नित नाम।
क्या पराकृत क्या संस्कृत राम बिना बेकाम॥

—(बिचार का अंग साखी ५)

तुलसी ने ठीक इसी प्रकार की बात कही है—

"बिधु बदनी सब भाँति सँवारी।
सोह न बसन बिना बर नारी॥
भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ।
राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥

रज्जब जी के भाषा-सम्बन्धी विचारों से यह लक्षित होता है कि वे ऐसी भाषा को श्रेष्ठ मानते थे जिसका सम्बन्ध सामान्य जन-समाज से हो। लोक भाषा या जन-भाषा का उनकी दृष्टि में विशेष महत्व है। रज्जब जी जब प्राकृत का बारम्बार पोषण करते हैं तो उनका प्रयोजन मात्र प्राकृत की एक परम्परा से नहीं है। उनके विचार से कवि की भाषा में लोक-गृहीत होने की विशेषता तथा सामान्य जन-समाज के मानस को प्रभावित करने की क्षमता होनी चाहिये। ऐसी भाषा जो समाज के एक छोटे शिष्टवर्ग की समझ में आवे उसको काव्य में अधिक प्रश्रय नहीं मिलना चाहिये। इसी भाव से रज्जब जी प्राकृत का समर्थन करते हैं। इन निर्गुण परम्परा के सन्तों में भाषा विषयक लोक संग्रह-भाव के प्रति अविचल निष्ठा है। यही कारण है कि रज्जब जी राजस्थान के महात्मा होने पर भी अपनी भाषा को न तो डिंगल बनाने के पक्ष में थे और न ऐसी प्रादेशीय भाषा बनाने के पक्ष में जो राजस्थान की सीमाओं में सिमट कर अपनी व्यापकता खो बैठे उन्होंने अपने विचार उस भाषा में व्यक्त किये जो इस देश के प्रत्येक क्षितिज को छू सके।

---

# अध्यात्म और दर्शन

रज्जब जी के काव्य में दार्शनिक विचार-तत्व कवि की अत्यधिक रमणीय एवं व्यापक अनुभूति का आश्रय पाकर बड़ा ही आकर्षक एवं हृदयग्राही बन गया है। उन्होंने अपनी बानी में वर्णित लोक-प्रसंगों की प्रशस्त भूमिका में जिन विपुल आध्यात्मिक एवं दार्शनिक अनुभूतियों की अवतारणा की है वह हिन्दी-साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है। रज्जब जी ने कबीर और अपने गुरु दादू की विचार-परम्परा में ही वेद पुराण शास्त्र उपनिषद् कुरान कलाम आयत में प्रतिपादित जटिल ज्ञान को उसे बिना शास्त्र परम्परा से च्युत किये सहज एवं सामान्य जन-सुलभ बना दिया है। रज्जब बानी के बहुविध अंगों का पर्यालोचन हमें यह कहने की सहज प्रेरणा देता है कि रज्जब जी ने धर्म-साधना की कोई दिशा अथवा स्थिति अस्पृष्ट नहीं छोड़ी। निर्गुण सन्त-परम्परा में सगुण उपासना की अपेक्षा माधुर्य भाव का प्राय अभाव है। उसका कारण यह है कि निर्गुणोपासक सन्तों ने संसार के प्रति सक्रिय विरक्ति की वृत्ति अपनायी। उनको यह संसार निस्संशय ही मिथ्या मृगतृष्णा गन्धर्वनगर शीतकोट पानी का बुदबुदा मोदक का भवन माया का मन्दिर, क्षणभंगुर प्रतीत हुआ। विविध रूपा सृष्टि की यह मोहमयी छलना उन्हें अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी। वे संसार को असार समझ कर इससे पूर्णतः असंपृक्त रहने लगे। उनका प्रबल आग्रह इन्द्रिय-निग्रह तथा आसंगों से मुक्ति पर था।

भारतीय सन्त-परम्परा अपनी धार्मिक एवं दार्शनिक अनुभूतियों में शंकर के अद्वैतवाद से वैष्णव धर्म के भक्ति-तत्व से शैवों एवं नाथपंथियों के प्राणयोग अथवा हठयोग से सूफियों के एकेश्वरवाद और प्रेम की पीर से बौद्धों के अहिंसा और करुणा-भाव से एक साथ प्रभावित दृष्टिगोचर होती है। प्रभाव और अनुकरण भिन्न वस्तुएँ हैं। किसी वस्तु की समग्र अनुकृति में भेद अथवा भिन्नता के लिए अवकाश नहीं रहता परन्तु किसी वस्तु का प्रभाव प्रभावित व्यक्ति के हृदय में उस वस्तु की त्रुटियों के प्रति तिरस्कार तथा उसकी विशेषताओं के प्रति स्वीकार-भाव उत्पन्न कर सकता है। कभी-कभी तो वस्तु का प्रभाव वस्तु से भिन्न एवं विरोधी निष्कर्षों को जन्म देता है। भारतीय निर्गुणपंथी सन्तों में हम यही बात पाते हैं। वे उपर्युक्त सम्प्रदायों की विशेषताओं से प्रभावित तो हुए, पर साथ ही उनकी त्रुटियों का बड़ी निर्ममतापूर्वक उन्होंने खण्डन भी किया। यहां पर हम रज्जब जी की अनुभूतियों के संदर्भ में उन सम्प्रदाय-स्रोतों का क्रमशः पर्यवेक्षण करेंगे जिनसे रज्जब जी के विचारों आदर्शों तथा धार्मिक भावों का साम्य और संसर्ग है। रज्जब जी की साधना-पद्धति दादूपन्थी सन्तों में रज्जबावत नाम से विख्यात है।

इनके अनुयायियों को रज्जबपंथी अथवा रज्जबावत कहने की परिपाटी है और इस प्रकार के साधु-सन्त इधर उधर अनेक स्थानों में पाये जाते हैं। किन्तु रज्जब पंथ सामूहिक धर्म पंथ के रूप में नहीं चल सका। दादू पंथ की ही प्रधानता रही। परन्तु किसी पथ का नाम उस पंथ की

उपासना पद्धति आपको विचारों का ही व्यंजक होता है। अतः हम रसखान की अथवा उनके रसखावत पंथ की मान्यताओं तथा विचारों के प्रसंग में उन समस्त सम्प्रदायों की मान्यताओं पर विचार करेंगे जिनसे रसखावत या तो प्रभावित है या साम्य रखता है।

## रसखावत और वैष्णव धर्म —

वैष्णव धर्म को विद्वानों ने भागवत धर्म के नाम से अभिहित किया है। इस धर्म के चार व्यूह (शाखाएँ) माने गये हैं। चारों व्यूहों का नामकरण यादव वंश के महनीय पुरुषों के नाम के ऊपर किया गया है। वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—ये चतुर्व्यूह कृष्ण उनके ज्येष्ठ भ्राता पुत्र तथा पौत्र पर क्रमशः अवलम्बित है।[1] भगवान् विष्णु का वेद में वर्णन आया है, किन्तु अन्य देवताओं की तुलना में विष्णु को वेद में कम महत्व दिया गया है। ब्राह्मणों और पुराणों के युग में विष्णु की महत्ववृद्धि उत्तरोत्तर होती गयी और यह वृद्धि यहाँ तक हुई कि विष्णु सर्वोच्च देवता माने जाने लगे और अग्नि सबसे छोटे देवता। विष्णु के महत्वुत्थान के अनन्तर संस्कृत के महाकाव्य काल में वासुदेव विष्णु और नारायण का भेद समाप्त हो गया तथा ये एक ही देवता के भिन्न-भिन्न सम्बोधन नाम लिये गये।[2] इस प्रकार पुराण काल में वैष्णव धर्म सर्वाधिक व्यापक और प्रभावशाली बन गया। वैष्णव धर्म के जिन चार व्यूहों का हमने ऊपर उल्लेख किया है, उनमें कृष्ण की उपासना करने वाले एकान्तिक कहलाते थे। नारद पाञ्चरात्र में एकान्तियों के दो भेद बताये गये हैं—एक तो वे जो केवल वासुदेव को ही ईश्वर मानते थे और दूसरे वे जो कई देवताओं को पूजते थे। वैदिक-साहित्य के विद्वान डा० मुंशीराम शर्मा सोम' ने 'अपने भक्ति का विकास' नामक ग्रंथ में पाञ्चरात्र संहिताओं पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है और उसमें भी भंडारकर से उनका पूर्ण मतैक्य है। उन्होंने पाञ्चरात्रों को शैवागम एवं शैव-साहित्य से प्रभावित माना है। अपने इस अनुमान के प्रमाण में उन्होंने जो तर्क प्रस्तुत किया है उससे निश्चित ही पाञ्चरात्र संहिताओं पर शैव-दर्शन का प्रभाव पुष्ट हो जाता है। पाञ्चरात्र-साहित्य में नारद पाञ्चरात्र संहिता ने कृष्ण की भक्ति का प्रबल रूप से पोषण किया है। डा० शर्मा 'भक्ति का विकास' (पृष्ठ २६४) में लिखते हैं—'नारद पाञ्चरात्र के अन्तर्गत ज्ञानामृत सार नाम की संहिता को बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया था। इसके अनुसार नारद श्रीकृष्ण का माहात्म्य तथा उनकी अर्चा-विधि सीखने के लिए शंकर के पास जाते हैं। कैलाश पर्वत पर पहुँच कर वे सात द्वारों वाले शंकर के भवन में प्रवेश करते हैं। इन द्वारों पर वृन्दावन यमुना कदम्ब पर गोपियों के वस्त्र लेकर बैठे हुए श्रीकृष्ण गोपियों का नग्न रूप में स्नान के पश्चात् बाहर आना कालिय-दमन गोवर्धन धारण श्रीकृष्ण का मथुरा-गमन गोपियों का शोक-प्रदर्शन आदि श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के

---

१ भागवत-सम्प्रदाय पृष्ठ ११ से —श्री बलदेव उपाध्याय।

२ "In Epictimes Vishnu Grew to be in every aspect the suprem spirit, and Vasudev is ide tified with Vishnu in Chapter 55 and 5 of the Bhishm Parva The supreme spirit is addressed a Narain and Vishnu and is identified with Vasudeva.

*—Collected works of Sir Bhandarkar Vol. IV Page 4*

भिन्न वंचित थे।

उधर विष्णु के अवतार के रूप में राम प्राचीन काल से प्रतिष्ठित थे। रामोपासना की पूर्ववर्ती पीठिका कुछ भी रही हो भारतवर्ष में राम-भक्ति को जन-जन के हृदय की विभूति बनाने वाले स्वामी रामानन्द थे जिन्होंने जाति-पाँति के बन्धनों को छिन्न-भिन्न कर अनन्य अव्याहत भक्ति का उपदेश किया। स्वामी रामानन्द के शिष्यों की संख्या ५ से अधिक बताई गई है, परन्तु उनमें १२ ऐसे शिष्य थे जो उनके विशेष कृपाभाजन थे। जहाँ तक रामानन्द के भक्ति-सिद्धान्त-पक्ष का प्रश्न है, वे विशिष्टाद्वैतवादी ही कहे जायेंगे किन्तु वे किसी वाद की रूढ़ियों में नहीं बँधे। वे किसी परम्परा का विवेकपूर्वक मनन करने के उपरान्त ही उसकी विशेषताओं से प्रभावित होते थे। स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में हम यह बता चुके हैं कि वे ऐसे अक्षय हिमालय सदृश सिद्ध हुए कि उससे एक ओर निर्गुण भक्ति-तरंगिणी फूटी जिससे कबीर जैसे निर्गुण वैष्णव भक्त का आविर्भाव हुआ तथा दूसरी ओर सगुण भक्ति की सरिता उद्भूत हुई जिसमें रामभक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जैसे महात्मा का उदय हुआ। रामानन्द की यह रामावती भक्ति-परम्परा उनके गुरु स्वामी राघवानन्द की सत्प्रेरणा का फल थी।

स्वामी रामानन्द के शिष्यों में कबीर अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न एवं स्वतन्त्र चिन्तनशील महात्मा थे। उन्होंने रामावती मत में आस्था रखते हुए भी स्वतन्त्र निर्गुण-भक्ति की परम्परा का प्रवर्तन किया। इनकी निर्गुण-भक्ति-पद्धति का प्रभाव यों तो अनेकानेक सन्तों पर पड़ा परन्तु इनका सीधा प्रभाव नानक दादू, रज्जब और सुन्दरदास पर विशेष लक्षित होता है।

रज्जब जी संस्कृत के पूर्ण विद्वान् थे—यह धारणा भ्रामक है। पं कृपाराम जी साधु ने रज्जब बानी की भूमिका में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। किन्तु यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि रज्जब जी ने उस भारत देश में जन्म लिया जहाँ वेद वेदांग ब्राह्मण उपनिषद्, पुराण शास्त्र स्मृतियाँ बहुत पहले जन्म ले चुके थे तथा जिनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञान कर्म उपासना के सूक्ष्म परमाणु देश के सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्याप्त थे। भारत के शीतल आध्यात्मिक मलयाचल से ब्रह्मोद्यान का सुखदायक समीरण प्रवाहित हुआ था उसने निखिल विश्व के अंचल को संस्पृष्ट एवं संसिक्त किया। यही कारण था कि विदेशों के अनेकानेक विद्वान् संस्कृत भाषा की अध्ययनेच्छा की उत्कटता का संवरण न कर सके। कुछ ने भारत आकर और कुछ ने अपने-अपने देश में ही संस्कृत भाषा का अध्ययन कर यहाँ की अध्यात्म विद्या में निष्णात हुए। जगत के अन्वेषी योरोपीय विद्वान् शापेनहार, मैक्समूलर, पाल डायसन (Paul Deuseen) फ्रेडरिक श्लैगेल मैक्डानेल एण्ड्रयूज हक्सले एम मेटिल ऐथनोटिस ब्पैरन शेलिंग सारकुस कीथ विन्टरनित्ज गेटे थिबो प्रभृति ऐसे व्यक्ति हैं, जो भारत के आध्यात्मिक-साहित्य पर एक साथ मे मुग्ध हैं। जर्मनी के आर्थर शापेनहार भारत के मुस्लिम राजपुत्र दाराशिकोह द्वारा कराये गये कतिपय उपनिषदों के फारसी अनुवाद की फ्रांसीसी में अनूदित कृति से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भारतीय उपनिषद् विद्या को अपने जीवन और मृत्यु, दोनों में शान्तिप्रदायिनी माना।[१] भारतीय

१ 'कल्याण' के उपनिषद् अंक में श्री वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय का लेख पृष्ठ ८५
"In the whole world, there is no study so elevating as that of Upanishads. It has been the solace of my life. It will be the solace of my death."

वेद-साहित्य तथा भारत की प्रशंसा में मैक्समूलर महोदय अतिशय भावापन्न हो गये हैं। जब विदेश की धरित्री में उत्पन्न विद्वानों की यह दशा थी तो भारतीय वसुन्धरा के रज-कणों में पालित-पोषित नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के आराधन में रत महात्मा रज्जब भारत के दिव्य अध्यात्म में क्यों न मग्न होते? भारतीय अध्यात्म में संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं है। कोई किसी जाति का हो किसी वर्ण का हो किसी धर्म का हो किसी देश का हो यदि उसकी आत्म-वृत्ति है, तो उसको ब्रह्म-विद्या में दीक्षित होने का सर्वथा अधिकार है। हम इसकी चर्चा पहले कर चुके हैं कि रामानन्दी-परम्परा की सन्त-मण्डली में प्रायः भारत की समस्त ऊँची-नीची जातियों का प्रतिनिधित्व था तथा रामानन्द का रामावत-सम्प्रदाय अपने पूरे प्रभाव के साथ भारत में व्याप्त हुआ। रामानन्द के धर्म का मर्म यह है कि उन्होंने शास्त्रानुमोदित उपासना-पद्धति को रूढ़ परम्पराओं के जटिल बन्धन से मुक्त कर उसे विवेकसम्मत बनाया तथा धर्म-व्यवस्था में अखण्ड विमल मानवता को सार्वभौम एवं सार्वजनीन धर्म की श्रृंखला में बाँधने का सजीव प्रयत्न किया। रामानन्द की धर्म दीक्षा कबीर-परम्परा के सन्तों की धर्मदीक्षा है। इन सन्तों ने रामानन्द से आगे जाकर धर्म को विश्वबन्धुत्व के सूत्र में गूँथा। इसी सन्त-परम्परा में रज्जब जी का आविर्भाव हुआ। रज्जब जी के साहित्य से परिचित होने के लिए पुनः मेरा शोध-ग्रन्थ अवलोकनीय है।

## रज्जब जी की भगवद्भक्ति

महात्मा रज्जब जी ने जिस उपासना-पद्धति का निर्देश किया वह कबीर और दादू की उपासना-पद्धति से पूर्ण साम्य रखती है। निराकार, निर्विकार निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त एक ब्रह्म की उपासना ही रज्जब जी का अभिप्रेत है। जब हम अपने प्राचीन उपनिषद्-साहित्य पर दृष्टि डालते हैं तो देखते हैं कि उसमें निराकार, सर्वव्याप्त ब्रह्म की उपासना की ही विशद व्याख्या की गई है। निर्गुण धारा के इन सन्तों ने भी उसी निराकार ब्रह्म की उपासना का उपदेश किया। इन सन्तों की विलक्षणता यह है कि वैष्णव होते हुए भी ये अवतारवाद का खण्डन करते हैं जब कि वैष्णव धर्म का आधार ही अवतारवाद है। इन सन्तों ने नाना वैष्णव अवतारों के नामों का अपने काव्य में उल्लेख किया है किन्तु वे नामों की सोपाधि उपासना के पक्ष में नहीं थे। वासुदेव नारायण विष्णु, कृष्ण गोपाल गोविन्द मुरारी मधुरारि इत्यादि अवतारों के प्रायः समस्त नामों को इन्होंने स्वीकार किया है परन्तु इन नामों को किसी शारीरिक पुरुष से संलग्न न कर उनको उसी ब्रह्म के लिए प्रयुक्त किया है। यहाँ पर हम रज्जब जी की आध्यात्मिक अनुभूतियों को भारतीय आध्यात्मिक-साहित्य की विविध मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में परखना चाहेंगे।

वैष्णव धर्म का मूल उद्गम वेद है। डा० मुंशीराम शर्मा ने अपने 'भक्ति का विकास' नामक ग्रन्थ में इस विषय का सुन्दर प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है। भगवान् की उपासना और भक्ति के जितने रूप वेदोत्तर-साहित्य में प्राप्त होते हैं वे समस्त वेदों में पहले से बीजरूप में विद्यमान हैं। उनका कथन है— "संसार के प्राचीनतम साहित्य-वेद में भक्तियोग के ये सभी स्तर विद्यमान हैं। वेद प्रभु को सृष्टि का व्यवस्थापक शासक राजा वरदाता जीवों को कर्मानुसार फल देने वाला न्यायी स्वामी पिता माता बन्धु और सखा सभी रूपों में प्रकट करता है।"[१] डा० शर्मा

---

१ भक्ति का विकास—पृष्ठ ११८

उन्होंने इस कथन के प्रमाण में ऋग्वेद अथर्ववेद तथा यजुर्वेद के मन्त्रों को उद्धृत किया है। भगवान् के उक्त रूपों की उपासना ही भक्ति के नाना भेदों में रूपान्तरित हो गई। दास्य और सख्य आदि भक्ति-पद्धतियाँ भगवान के इन्हीं उपर्युक्त रूपों पर आधारित हैं। भक्ति प्रमुखतः वैष्णव उपासना का ही अपर नाम है। भक्ति का मूल स्रोत यदि हम वेदों को मानें तो अनुचित न होगा। पं० परशुराम चतुर्वेदी का स्पष्ट मत है कि 'वैष्णव धर्म बीजरूप में कतिपय साधारण वैदिक भावनाओं को ही लेकर चला था। फिर भक्ति-सम्बन्धी एवं उपास्यदेव-विषयक धारणाओं के क्रमिक विकास के साथ-साथ उसमें क्रमशः भिन्न-भिन्न बातों का समावेश होता गया और वह समय पाकर एकान्तिक सात्वत भागवत एवं पाञ्चरात्र के रूपों में ढलता हुआ एक सुव्यवस्थित वैष्णव रूप में परिणत हो गया।'[1] इस प्रसंग में हम इतना अवश्य संकेत करेंगे कि विष्णु प्रधानतः निराकार, विराट् विश्वनियन्ता के रूप में ही चित्रित हुए, किन्तु कालान्तर से उनके चतुर्भुजी रूप क्षीरशायी चतुरायुधधारी साकार रूप की प्रतिष्ठा हुई। उसके अन्तर्गत अवतारवाद को प्रश्रय मिला। परन्तु हमारे निर्गुणी सन्तों ने भारतीय औपनिषदिक परम्परा के अभिनव सूत्रधार बन कर विष्णु की अवतारधारित सत्ता को पुनः निर्गुण निराकार ब्रह्म की ओर मोड़ कर उसे ज्ञानी-ध्यानी भक्तों का उपासना-विषय बना दिया। बहिरंग स्थूल उपासना को अंतरंग सूक्ष्म उपासना में परिणत कर दिया। निर्गुणी सन्तों में कबीर इस उपासना-मार्ग के आदि प्रवर्तक माने जा सकते हैं, जिनकी जीव तथा ब्रह्म-सम्बन्धी मान्यताओं के आधार पर दादू, रज्जब सुन्दरदास प्रभृति महात्माओं ने इस धारा को प्रसारित किया।

विवेचन की सुविधा एवं स्पष्टता की दृष्टि से रज्जब जी की भगवद्भक्ति के मूल उपादानों अथवा अंगों का श्रेणी-विभाजन करना आवश्यक प्रतीत होता है। उनकी भक्ति के अंगों को हम षड्युग्मों में विभक्त कर सकते हैं —

(क) सद्गुरु और सबद।
(ख) सेवा और सत्संग।
(ग) प्रेम और विरह।
(घ) नाम-जप और ध्यान।
(ङ) ज्ञान और वैराग्य।
(च) समर्पण और अनन्यता।

रज्जब जी भारतीय वैष्णव-परम्परा के अनुसार अपनी 'बानी और सर्वंगी' दोनों में गुरु की वन्दना करते हैं। गुरु के महत्व की मान्यता संसार के समस्त धर्मों में एक-सी लक्षित होती है। ईसाइयों में पादरी (प्रीस्ट) इस्लाम और सूफियों में उस्ताद पीर वैष्णवों शैवों और शाक्तों में गुरु बौद्ध और जैनियों में भी गुरु का महत्व निर्विवाद रूप से प्रमाणित होता है। रज्जब जी 'बानी' के प्रारम्भ में लिखते हैं —

दादू नमो निरंजनं नमस्कार गुरुदेवतः।
वन्दनं सर्व साधवा प्रणामं पारंगतः॥

---

१ वैष्णव धर्म—पृष्ठ १४

ये पंक्तियाँ रज्जब जी के गुरु दादूदयाल की रची हुई हैं, जो दादू-वाणी के प्रारम्भ में दी गई हैं। रज्जब जी की गुरु में अद्भुत निष्ठा थी। उनका जैसा प्रतिभा-सम्पन्न सन्त-कवि गुरु-वन्दना अपने गुरु के शब्दों में ही करता है, यद्यपि वे स्वयं मौलिक रचना करने में सक्षम थे। इसे हम उनकी गुरु के प्रति अनन्य भक्ति ही मानेंगे। इसी वन्दना-प्रकरण में वे आगे कहते हैं—

> तिनका पूरे पीर कूं, गुरु आतहिं डंडौत ।
> रज्जब भय भगवंत के सबै आत्मगुणौत ॥
> गुरु असुर नर साध कवि सबनि करूं अस्तुति ।
> रज्जब की चकचूक परि छिमा करौ हूं स्तुति ॥

इन पंक्तियों में रज्जब जी अपने गुरु को पूरा पीर बताते हैं तथा उन्हें नमस्कार करते हैं, तदनन्तर वे सर्वात्माओं का नमन करते हैं। आगे चलकर पुन गुरु तथा सरस्वती के उपासकों (अक्षरवर) महात्माओं तथा कवियों को नमस्कार करते हैं और अपनी सम्भाव्य त्रुटियों एवं भूलों के लिए क्षमा-याचना करते हैं। वे अपनी त्रुटियों की क्षमा के लिए सुन्दर तर्क भी इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—

> शरीर सबद की एक गति विविध भाँति तन होय ।
> भले बुरे बिच बप बयन दोष न दीजो कोय ॥

रज्जब जी का कथन है कि जिस प्रकार शरीर भला-बुरा और बीच का अर्थात् सतोगुणी तमोगुणी एवं रजोगुणी होता है उसी प्रकार शब्द की भी तीन गतियाँ हैं—उत्तम अधम और मध्यम। जब शरीर की तीन कोटियाँ हैं, तो उससे निःसृत शब्द को उन तीन गतियों के प्रभाव से मुक्त नहीं रखा जा सकता। अत भले-बुरे और बीच के शब्द क्षम्य हैं।

रज्जब जी की दृष्टि में माया पानी और मन दूध है दोनों जब एक में मिल गये तो बिना गुरु-हंस के उनका पृथक करना दुष्कर है।

> माया पानी दूध मन मिले सु पूरण संधि ।
> जन रज्जब बलि हंस गुरु, तोरि न्यारी सो सधि ॥

—(गुरुदेव का अंग)

मनुष्य के समस्त कर्म ताला हैं जिसमें जीव निबद्ध है। बिना गुरुरूपी कुंजी के उसका खुलना कठिन है।

> सकल करम ताला भये जीव जड़्या ता मांहि ।
> रज्जब गुरु कूंची बिना कबहूं छूटै नांहि ॥

—(गुरुदेव का अंग)

गुरु की उपासना ही रज्जब की दृष्टि में सब कुछ है सर्वोपरि है। यदि सेवा करते बन जाय तो गुरु के शरण मे अपार धन है किन्तु लेने के साधन जब तक शिष्य में न होंगे तब तक उस धन का संग्रह करना कठिन है।

गुरु घर माहै मन बरा सिष संप्रदा न जाय ।
जब लग लसन सेज के कुगति न उपजे जाय ॥
—(गुरुदेव का अंग)

श्रीमद्भगवद्गीता म अर्जुन से कृष्ण ने गुरु से यह धन प्राप्त करने की युक्ति संक्षेप में बतायी है —

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥
—(अध्याय ४—३४)

'अर्जुन ? तू उस तत्व-ज्ञान को तत्वदर्शी ज्ञानी गुरुओं के समीप जाकर प्रणामपूर्वक युक्तियुक्त प्रश्नावली द्वारा उनकी सेवा करते हुए प्राप्त कर।" इधर रज्जब जी शिष्य में श्रद्धा का होना आवश्यक बतलाते हैं —

सिष्य सही सोई भया गहै सीख में सोय ।
रज्जब श्रद्धा सीख सूं दूजा कदे न होय ॥
—(गुरुदेव का अंग)

श्री गीता में भगवान् कहते हैं —

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानंलब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
—(अध्याय ४—३९)

ज्ञानपारायण जितेन्द्रिय पुरुष यदि श्रद्धावान है, तो वह अवश्य तत्वज्ञान को प्राप्त करता है ज्ञान प्राप्त कर शीघ्र ही परम शान्ति लाभ करता है।

श्वेताश्वतर के षष्ठम अध्याय के अन्त में शिष्य की गुरु-भक्ति का प्रतिपादन किया गया है —

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

यहाँ पर परमेश्वर की भक्ति के समकक्ष ही गुरु-भक्ति की प्रतिष्ठा अंकित की गयी है। कबीर ने इसी उक्ति की छाया में कहा था —

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दिया बताय ॥

रज्जब जी तो गुरु को जगनियन्ता जगदीश से बड़ा ही नहीं बताते प्रत्युत् जगदीश की की हुई भूल का परिशोधनकर्ता बताते हैं। उनके विचार से भगवान ने तो सारे संसार के जीवों को

शरीर के बन्धन में डाल दिया किन्तु गुरु ने उस देहाध्यास से जीव को विमुक्त कर दिया। अतः उसकी महिमा कोई नहीं प्राप्त कर सकता—

जीव रच्या जगदीस ने बांध्या काया मांहिं।
जन रज्जब मुकता किया ता गुरु समि कोइ नांहिं॥
—(गुरुदेव का अंग)

गुरु की विभूति का लाभ तभी शिष्य को होता है, जब वह स्वयं अधिकारी हो—उसका पात्र हो और इधर गुरु योग्य एवं विभूति प्रदान करने में समर्थ हो। यदि दोनों मूर्ख हुए, तो कबीर ऐसे गुरु-शिष्य को 'अन्धे अन्धा ठेलिया' कह कर कूप में गिरता हुआ देखते हैं और हमारे रज्जब भी कहते हैं—

रज्जब वैसा चाहिए जिन गुरु मिला जाचक।
कुम्भमयी पहु कूंभली ज्यूं पावहिं प्रभु पंथ॥

यही भाव कठोपनिषद् की द्वितीय वल्ली के ५वें श्लोक में इस प्रकार आया है —

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

अर्थात् अविद्या में पड़े हुए अपने आपको बुद्धिमान् और विद्वान मानने वाले मूर्ख लोग नाना योनियों में भटकते हुए वैसे ही ठोकर खाते हैं, जैसे अन्धे व्यक्ति के द्वारा चलाये जाने वाले अन्धे भटकते रहते हैं। रज्जब जी योग्य शिष्य और सद्गुरु के मिलाप में ही मंगलकारिणी सिद्धियों का दर्शन करते हैं। उनका मत है—

सतगुरु परसहि परसते सिख की संक्या नांहिं।
ज्यूं दिनकर सूं दिन प्रसे त्यूं निसि सूझै नांहिं॥
—(गुरु संयोग वियोग महातम का अंग)

गुरु के प्रत्यक्ष संयोग से शिष्य की समस्त शंकाओं का उसी प्रकार निराकरण हो जाता है, जिस प्रकार भगवान् भास्कर के उदय होने पर दिन हो जाता है। किन्तु सूर्य के अभाव में रात्रि के अन्धकार में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। गुरु के अभाव में भी अविद्यान्धकार के कारण मनुष्य को अपना कर्तव्य नहीं सूझता। अतः गुरु-शिष्य दोनों का संयोग प्रेम-स्नेह सहवास आवश्यक है। इसी तथ्य को कठोपनिषद् के शान्ति पाठ में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है —

ओम् सहनाववतु। सहनौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनाव धीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥

हे भगवन् हम दोनों गुरु शिष्य साथ-साथ रक्षा करें साथ-साथ पालन करें साथ साथ शक्ति प्राप्त करें हम दोनों की अधीत विद्या तेजोमयी हो हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।

रज्जब जी ने गुरु-शिष्य प्रकरण में गुरु और शिष्य की अवस्थाएँ विविध रूपकों के आश्रय से अंकित की हैं।

( क ) गुरु और शिष्य।
( ख ) सद्गुरु और सच्छिष्य।
( ग ) समर्थ गुरु एवं अनधिकारी शिष्य।
( घ ) सद्गुरु तथा सुयोग्य शिष्य।
( ङ ) मूर्ख गुरु एवं मूर्ख शिष्य।

भक्ति का प्रेम-तत्व इन सन्तों को केवल सूफियों से प्राप्त हुआ इस मान्यता में विद्वानों की उपपत्तियाँ और विप्रतिपत्तियाँ दोनों ही प्राप्त होती हैं। भारतीय भक्ति-साहित्य में प्रेम और विरह की उद्भावना कुछ विद्वान् मौलिक न मान कर उसे सूफी-साहित्य का ससंबमात फल मानते हैं परन्तु इस विषय पर भी विद्वज्जनों में मतैक्य नहीं है। इस विषय पर विशेष विवेचन करना यहाँ अपेक्षित नहीं है। रज्जब जी के भगवत्प्रेम तथा विरह-तत्व पर विचार करना ही हमारा अभीष्ट है। रज्जब जी भगवदुपासना में प्रेम-तत्व को ही प्रमुख मानते हैं। नारद-भक्ति-सूत्र के दूसरे सूत्र में भक्ति को परम प्रेम रूपा बताया गया है—सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा—तथा पाँचवें सूत्र में कहा गया—यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति—अर्थात् जिस ( परम प्रेम रूपा भक्ति ) के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है न द्वेष करता है न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उसे ( सांसारिकता में ) उत्साह होता है। रज्जब जी कहते हैं —

प्रेम प्रीति हित मीति हूं, रज्जब दुविधा नाहिं।
सेवक स्वामी एक ह्वै आये इत मत माहिं॥

प्रेम के सदन में सेवक और स्वामी का भेद समाप्त हो जाता है ध्याता ध्येय और ज्ञाता ज्ञेय का पार्थक्य भी मिट जाता है। प्रेम के प्रभाव की सीमा इसके आगे भी है—

प्रेम प्रीति हित नेह की रज्जब अकथ बाट।
सेवक को स्वामी करहिं सेवक स्वामी ठाट॥

रज्जब जी का मत है कि प्रेम के क्षेत्र में स्वामी स्नेह-विभोर होकर अपने सेवक को आनन्द देने के लिए स्वयं सेवक बन जाता है तथा सेवक अपने स्वामी को दूर कराने के लिए स्वामी में सेवक की भाँति स्वरूप-निवारण की सेवा लेने लगता है। स्वामी और सेवक एकमय हो जाते हैं।

भगवत्प्रेम को जागृत एवं सजीव बनाने के लिए विरहानुभूति का होना आवश्यक है। विरह प्रेमानुभूति को अधिकाधिक तीव्र बनाता है। विरह प्रेम को अनिष्ट एवं धनिष्ठ करता है। जब तक विरह भावना का आविर्भाव प्रेमी के हृदय में नहीं होता प्रेम में प्रौढ़त्व नहीं आ पाता। "नारदस्तु तदर्पिता खिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति" इस भक्ति-सूत्र में नारद जी ने बताया कि सब कर्मों को भगवान् को अर्पण करना और भगवान् का थोड़ा-सा विस्मरण होने में परम व्याकुलता होना ही भक्ति है। रज्जब जी ने विरह के अंग में कतिपय रूपकों के माध्यम से

विरह की अनुभूति की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। रज्जब जी कहते हैं कि भगवत्प्रेमी अपने प्रीतम परमात्मा के विरह में उसी प्रकार एकतार ध्यान रत हो जाता तथा दर्शनों की आकांक्षा रखने लगता है, जिस प्रकार तपती हुई धरित्री मेघराज से जल की याचना करती है—

प्राण पिण्ड रग रोम सब हर दिसि रहे निहारि ।
ज्यों वसुधा जलराम सों विरही चाहै वारि ॥

इस विरह-व्यथा की अकथ कथा को किससे कहा जाय। यह तो राक्षसाधिपति रावण की चिता के समान अहर्निश धधक रही है, किसी प्रकार बुझती नहीं—

रज्जब कहिये कौन सौं इस विरहै की आग ।
मानहु रावण की चिता अहनिसि नहीं बुझात ॥

विरह की अग्नि प्रेमी के हृदय में बस गई है और उसे आपादमूड़ जला रही है। प्रेमी भगवान से कृपा-वारि बरसाने की याचना करता है—

विरहा पावक घर बसे नख सिख जोरे देह ।
रज्जब अमरि रहम करि बरसहु मोहन मेह ॥

विरह तो विषधर बन कर प्रेमी को डस रहा है भगवान् का दर्शन ही उसकी औषधि है। जब तक वह औषधि न प्राप्त हो जाय तब तक प्रेमी का तन मन बेचैन रहेगा—

रज्जब विरह भुजंग परि औषधि हरि दीदार ।
बिन देखे पीतम दुखी तन मन नहीं करार ॥

हे सिरजनहार ! कृपा कर सुनिये जिस प्रकार स्त्री अपने पति के विरह में व्याकुल होकर अपना सारा शृङ्गार भूल जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे वियोग में मैं सभी कुछ भूल गया हूं—

जैसे नारी नाह बिन भूली सकल सिंगार ।
त्यूं रज्जब भूला सकल सुनि सनेह सिरजनहार ॥

अब तो भगवत् विरह में प्रेमी की यह दशा हो गई है कि उसके बिना सुख-सामग्री तनिक भी नहीं रुचती। हाँ यदि उसका संयोग हो जाय तो नाना प्रकार के दुःख भी अच्छे लगेंगे—

रज्जब रुचै न राम बिन सकल भांति के सुख ।
भगवंत सहित भावहिं सबै नाना विधि के दुख ॥

विरह की तीव्र वेदना यद्यपि दुखदायी है, किन्तु प्रियतम ( ब्रह्म ) से मिलाप का साधन होने के नाते वह प्रिय है सूर्य का ताप सह कर ही जल आकाश में पहुंचता है। अतः ऊर्ध्वगामी होने के लिये कष्ट-सहिष्णु बनना पड़ता है—

दुख दिनकर की दृष्टि करि, मेह नीर नभि जाहि ।
रज्जब रमिये शून्य में यहै सुगति का माहि ॥

संसार में विरह तो कई प्रकार के होते हैं तथा उनके भाव भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं, किन्तु जो राम के विरह में व्याकुल रहे, ऐसे जीव विरले ही होते हैं—

एक बिरह बहु भांति का भाव भिन्न भिन्न होय ।
रज्जब रोवै राम कूं, सो जन बिरला कोय ॥

रज्जब जी ने सामान्य विरहाग्नि से ब्रह्माग्नि को प्रचण्डतर बताया है। ब्रह्माग्नि बड़वाग्नि की भांति शरीर रूपी जल को भी भस्म कर देती है यदि शरीर-जल को वह ब्रह्माग्नि जला न पाई, तो उसे कच्ची आग समझना चाहिये—

ब्रह्म अगिनि बड़वा अनल तन तोयं के जाय ।
इस्क आगि काची कहै जो जप वारि समाय ॥

इस साखी में रज्जब जी ने अत्यन्त मार्मिक भाव अभिव्यंजित किया है। उनका तात्पर्य यह है कि ब्रह्माग्नि के उत्पन्न हो जाने पर शरीर की पञ्चिकता प्रशमित हो जाती है इन्द्रियों का वेग शान्त हो जाता है। सच्ची आग वही है, जो इन्द्रियों को भस्म कर दे। यदि इन्द्रियासक्ति भगवत्प्रेम पर अपना प्रभाव रखने लगी तो ब्रह्माग्नि को कच्चा मानना चाहिये। इस विरह के अभाव में दीनदयाल का दर्शन होना असम्भव है। विरह-विभूति के बिना महाविभूति उपलब्ध नहीं हो सकती—

दरद बिना क्यूं देखिये परगट दीनदयाल ।
रज्जब विरह वियोग बिन कहाँ मिले सो लाल ॥

रज्जब जी ने विरह को चार रूपों में चित्रित किया है —

(क) विरह वेदना का दायक है।
(ख) विरह प्रेम का पोषक है।
(ग) विरह चित्त को शुद्ध एवं निर्मल बना देता है।
(घ) विरह वरदान है अतः काम्य है।

इस प्रेम और विरह का हमने वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर विचार किया है अगले खण्ड में सूफी-भावना की संगति में भी इस पर विचार किया जायेगा।

## रज्जबमत तथा शैव एवं शाक्त मत

यद्यपि वैष्णव भक्ति एवं शैव मत के मूल बीज वेदों में उपलब्ध होते हैं, परन्तु ये दोनों ही उपास्य वैदिक-युग में गौण थे। विष्णु और रुद्र को प्रमुखता तथा श्रेष्ठता वेदोत्तर-काल में मिली। यदि दोनों के उत्कर्ष की गति पर हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि शैव मत का प्रचार प्रारम्भ में उस व्यवस्था एवं प्रभाव के साथ नहीं हुआ जिस व्यवस्था और प्रभाव के साथ वैष्णव धर्म का। शिव को प्रमुख देवता के रूप में प्रतिष्ठा वेदोत्तर-काल में ही मिली। रुद्र कभी भी विशुद्ध रूप से कर्मकाण्ड के देवता नहीं थे। वे ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय तक एक प्रमुख देवता बन गये थे जिनका अपना वास्तविक व्यक्तित्व था। अतः जब इन विचारकों ने धार्मिक विचारधारा में यह नया आन्दोलन प्रारम्भ किया तब स्वभावतः उन्होंने कर्मकाण्ड के अन्य देवताओं को छोड़ कर इसी देवता की उपासना को अपनाया। इस प्रकार रुद्र की उपासना जनसाधारण में ही नहीं अपितु आर्य जाति के सर्वाधिक उन्नत और प्रगतिशील वर्गों में होने लगी।

इससे रुद्र के पद में और भी वृद्धि होना स्वाभाविक ही था। चूंकि किसी भी समाज में नीति और सदाचार की भावना और 'ऋत' की कल्पना सर्वप्रथम उसके उन्नत और प्रगतिशील वर्गों में ही विकसित होती है, अतः पहले का ही शक्तिशाली रुद्र जिसका आतंक लोगों के हृदयों में छाया हुआ था, इसी 'अमृत' के मूर्तिमान स्वरूप बन गये, जब कि अन्य देवता सर्वशक्तिमान् यज्ञ-विधि के समक्ष क्षीण होते चले जा रहे थे। इससे रुद्र का पद निश्चित रूप से इन अन्य देवताओं से ऊँचा हो गया और नाम से ऊँचा नहीं, अपितु वास्तव में रुद्र 'महादेव' ही बन गये।[1]

लगभग इसी युग में भारत में शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ तथा उनके 'अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त' से भी काश्मीर के अद्वैत शैव-सिद्धान्त को बल मिला होगा। यों तो जैसा कि हम कह चुके हैं कि शिव की उपासना रुद्र एवं सोम के रूप में वेद में मिलती है, परन्तु शैव मत का विकास वेदोत्तर-काल में ही हुआ। ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता एवं वाजसनेयी संहिता, इसके उपरान्त ब्राह्मण-ग्रन्थों में ऐतरेय ब्राह्मण, कौषीतकी ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण अथवा जैमिनीय ब्राह्मण, ताण्ड्य अथवा पंचविंश ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, उपनिषदों में बृहदारण्यक, केन, श्वेताश्वतर, सूत्र-ग्रन्थों में पारस्कर श्रौत सूत्र, आश्वलायन श्रौत सूत्र, शांखायन श्रौत सूत्र, बौधायन धर्म सूत्र, मानवगृह्य सूत्र, बौधायनगृह्य सूत्र, इनके अतिरिक्त वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, साहित्य ग्रन्थों में बौद्ध कवि अश्वघोष के बुद्ध चरित तथा सौन्दरानन्द, शूद्रक का मृच्छकटिक, मनु की मनुस्मृति, भरत का नाट्यशास्त्रम्, वात्स्यायन का काम सूत्र, कालिदास के रघुवंश महाकाव्य तथा विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक, मेघदूत काव्य, पुराण-ग्रन्थों में अग्नि पुराण, गणेश पुराण, गरुड़ पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण, ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्य पुराण, लिंग पुराण, वायु पुराण, सौर पुराण, तन्त्र-ग्रन्थों में कुलचूडामणि तन्त्र, कुलार्णव तन्त्र, तन्त्राभिधान तन्त्र, तन्त्रराज तन्त्र, प्रपंच सार तन्त्र आदि कृतियाँ शैव-उपासना की विविध प्रणालियों का वर्णन करती हैं।[1]

वैष्णव और शैव मतों के अनुयायी एक-दूसरे के उपास्य देवताओं के प्रति अत्यन्त आदर का भाव रखते थे। ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण जैसे कई पुराणों में तो विष्णु और शिव में अभेद स्थापना का प्रयास परिलक्षित होता है। उपासना की दोनों धाराओं में यह एकेश्वर विष्णु और एकेश्वर शिव तथा दोनों के अभेद के प्रतिपादन की परम्परा गोस्वामी तुलसीदास तक चली। शिव द्रोही विष्णु का दास नहीं हो सकता, यह मान्यता तुलसीदास जी की थी। पुराणकारों ने अद्वैत विष्णु और अद्वैत शिव को एक ही मूल शक्ति के दो रूप सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है।

वैदिक-साहित्य से लेकर गृह्य-सूत्रों तक रुद्र अथवा शिव के अतिरिक्त किसी स्त्री-देवता का उल्लेख नहीं मिलता। कहीं-कहीं रुद्राणी और भवानी जैसे शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है, किन्तु यह शब्द भी रुद्र और भव से बने हुए हैं। महाभारत के भीष्म-पर्व के २३वें अध्याय में कृष्ण की सम्मति से अर्जुन विजय के लिए दुर्गा का स्तवन करते हैं, इससे यह परिचय प्राप्त होता है कि दुर्गा नाम की देवी का आविर्भाव महाभारत के रचना-काल से पूर्व हो चुका था। धीरे-धीरे दुर्गा की

---

१ शैव मत पृ० —डा० यदुवंशी पृष्ठ २१

पूजा एक परम शक्तिशालिनी देवी के रूप में होने लगी थी तथा दुर्गा अनेक नामों जैसे—कुमारी काली कपाली महाकाली चण्डी कात्यायनी कराला विजय कौशिकी उमा कांतारवासिनी से सम्बोधित होने लगी थी। महाभारत के विराट्-पर्व के ६ठे अध्याय में दुर्गा को युधिष्ठिर ने महिषासुर मर्दिनी कह कर सम्बोधित किया है—ऐसी ही कथा हरिवंश पुराण में भी प्राप्त होती है। इस शक्ति की उपासना करने वाले ही शाक्त कहलाते हैं। शक्ति की उपासना-पद्धति की व्याख्या करने वाले प्रचुर तन्त्र-साहित्य की रचना की गई। इसी शिव और शक्ति के सम्बन्ध तथा उनके परस्पर तादात्म्य की व्याख्या करने वाला जटिल दर्शन आगमन-दर्शन कहलाया।[1]

हठयोग के आचार्य भगवान शंकर माने जाते हैं। हठयोग प्रदीपिका के प्रथम श्लोक में आदिनाथ भगवान शंकर को हठयोग का उपदेष्टा मान कर उनको नमस्कार किया गया है।[2] मुगल शासन-काल के इन सन्तों के निर्गुण भक्ति-मार्ग के आविर्भाव से पूर्व नाथ-सम्प्रदाय के योग-सिद्धान्त का भारत में पर्याप्त प्रभाव था। वे भी निर्गुण सन्तों की भाँति घट प्रदेश में ही निरंजन का दर्शन करते रहते थे। नाथपन्थी उस निरंजन के दर्शन के लिए योग-प्रक्रिया अपनाते थे। उस योग प्रक्रिया में वे हठयोग को विशेष महत्व देते थे। हठयोग की शारीरिक-प्रक्रियाओं द्वारा स्थूल शरीर पर विजय प्राप्त करते तथा चित्तशुद्धि द्वारा सूक्ष्म शरीर का वश में कर परमात्मा का साक्षात्कार करते थे। यह स्थिति केवल नाथपन्थियों की ही नहीं थी भारत के समस्त धर्मों का अवलोकनार्थ एक ही परिणाम दृष्टिगोचर होता है—सभी धर्मों में तान्त्रिक प्रभाव किसी-न-किसी रूप में अवश्य लक्षित होता है। यही कारण है कि वैष्णव-तन्त्र शैव-तन्त्र शाक्त-तन्त्र बौद्ध-तन्त्र आदि में पर्याप्त समानताएँ प्रतिभासित होती हैं। कहना चाहिये कि भारत की सम्पूर्ण धर्म-पद्धति ही तन्त्र की जटिलता में बँध कर जड़ हो गई। हमारे यहाँ की धार्मिक-तान्त्रिकता में हठयोग-साधना सर्वनिष्ठ प्रतीत होती है। नाम अथवा शब्द भेद से लगभग एक ही सी हठयोग-क्रियाओं एवं आचारों का प्राधान्य इस तन्त्र-साधना में प्राप्त होता है। षट् चक्रों की साधना तथा कुण्डलिनी योगाचार सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। निर्गुण-भक्ति-मार्ग के अनुयायी सन्तों ने परमात्म-साक्षात्कार के लिए हठयोग-प्रक्रिया को नहीं अपनाया किन्तु निगम-भक्ति द्वारा जीव व परमात्मा के सम्बन्ध में आवरणभूत माया को हटा कर घट में ही उस अद्वैत निरंजन का दर्शन किया। फिर भी जनसाधारण में प्रचलित नाथ-सम्प्रदाय के योग-प्रक्रियाओं का सामान्य प्रभाव उन पर भी पड़ा। अतः उन्होंने भी अपने मार्ग के अनुकूल निरंजन-दर्शन के उपयोगी योग की सामान्य क्रियाओं को अपनाया और उनका निरूपण अपनी वाणियों में किया। हठयोग उनके निर्गुण-भक्ति-मार्ग से मेल नहीं खाता था क्योंकि हठयोग में नेति धोति बस्ति—अनेक प्रकार के आसन प्राणायाम मुद्राबन्ध आदि क्रियाओं द्वारा शरीर को बलपूर्वक हठात् वश में किया जाता है और शरीर को कष्ट दिया जाता है, जब कि भक्ति-मार्ग में शरीर पर विशेष अथवा किसी प्रकार का अत्याचार न करके इन्द्रिय व मन को ईश्वर-स्मरण व प्रेम द्वारा वश में करके आत्मा में अविच्छिन्न रूप से लगा दिया जाता है और इस तरह घट में उस निरंजन का दर्शन किया जाता है किन्तु हठयोग की क्रियाओं को

---

१ Collected work of Sir R. G Bhandarkar Vol. IV Page 203—9

२ श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोगविद्या ।
विभ्राजते प्रोन्नत राजयोगमारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ॥

छोड़ कर और भी यौगिक-क्रियाएँ ऐसी हैं, जिनके द्वारा ब्रह्माण्ड का पिण्ड में दर्शन किया जाता है और वे क्रियाएँ प्राणायाम स्वरोदय व अन्य प्रणालियों से मन को शुद्ध करके उसको आत्मा में लीन करने वाली हैं। ऐसी क्रियाएँ योग-शास्त्र में लययोग नाम से प्रसिद्ध हैं। लययोग के भी सब अंगों का सन्तों की वाणियों में वर्णन उपलब्ध नहीं है, किन्तु त्रिवेणी-स्नान आत्मा में मन का लय सुषुम्ना इड़ा पिंगला सूर्य चन्द्र शून्य स्थान कुण्डलिनी अनाहत नाद अजपाजाप नादबिन्दु आदि का निरूपण मिलता है और वह भी विप्रकीर्ण ही मिलता है।[१] स्वामी सुरजनदास जी का यह विचार अपने में मौलिक एवं मूल्यवान् है। सन्त-साहित्य में हठयोग-सम्बन्धी यह नाथपन्थी प्रभाव कबीरदास जी के माध्यम से प्रचलित हुआ। कबीर-परम्परा के अन्य सन्तों जैसे—नानक दादू, रज्जब आदि ने कबीर की मान्यताओं को स्वीकार किया था और यही कारण था कि उन्होंने कबीर के प्रतिपाद्य को अपना प्रतिपाद्य माना और उसीका अनुमोदन किया।

रज्जबमत तथा शैव शाक्त-साधना का इतना ही सम्बन्ध हम मान सकते हैं कि शैवों और शाक्तों में यौगिक-क्रियाएँ विद्यमान थीं जो निर्गुण भक्त सन्तों अथवा रज्जब जी को किसी-न किसी रूप में मान्य थीं। कबीर दादू रज्जब आदि के एकेश्वरवाद में निर्गुण राम के अतिरिक्त किसी अन्य देवता के लिए किंचिन्मात्र स्थान नहीं था। शिव शक्ति अथवा अन्य अवतारों के प्रति इन सन्तों की अनास्था थी। वे बहुदेवोपासना के कट्टर विरोधी थे। इसका संकेत हम पीछे कर आये हैं। परिणामत शैव और शाक्त धर्मों का आचार-विचार, अनुष्ठान पूजा कर्मकाण्ड इन सन्तों के साहित्य में किसी रूप में नहीं प्राप्त होगा प्रत्युत यदि कहीं कुछ उल्लेख भी है तो वैष्णव की छारी भली ना साक्त बड़माव' के रूप में है। बहुदेवोपासकसम्प्रदायों से इन निर्गुण भक्तों को चिढ़ थी। तब फिर रज्जब जी के सिद्धान्तों मे शैव अथवा शाक्त-भावना का आरोप करके उनका अनुशीलन करना किसी प्रकार न्यायानुमोदित नहीं। रज्जब जी ने जहाँ शक्ति शीव छोत्र के अंग में शक्ति का उल्लेख किया है, वह माया के रूप में। ब्रह्म और माया के अतिरिक्त रज्जब जी और कुछ नहीं मानते। वे उस शक्ति (माया) को उभयगुणी मानते हैं—

> स्वारथ परमारथ सकति ही रूप माया ब्रह्म।
> रज्जब रुचि सौं कामिस्यो जो है जाके मन॥[२]

आशय यह है कि शक्ति (माया) मे स्वार्थ और परमार्थ—दोनों है, वह विकृत भी है और धन्य भी है जिसके हृदय म जैसी आकांक्षा हो अपनी रुचि के अनुसार इस शक्ति से वही लिया जा सकता है।

शक्ति शीव छोत्र के अग म भी रज्जब जी शक्ति को शाक्तों की उपास्यदेवी के रूप में नहीं चित्रित करते उसे माया के रूप मे ही प्रस्तुत करते हैं—

> माया सो त्यागी तबहि जोहि कहो समझाय।
> एक ब्रह्म दूसरी माया बहु संशय नहि जाय॥

---

१ दादू वाणी सम्पादक स्वामी मंगलदास भूमिका-लेखक स्वामी सुरजनदास जी एम ए साहित्य व्याकरण सांख्ययोगाचार्य।

२ रज्जब वाणी सक्ति उभयगुणी का अंग।

माया अत्यन्त शक्तिशालिनी है, यह निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है—

> ब्रह्मण्ड व्यापत जिन कोटि ससि मसि माया सुर रूप ।
> रज्जब निकसै कौन विधि रिपि छाया हरि रूप ।।
>
> —(शक्ति सील-बोध का अंग)

यह माया ब्रह्माण्ड-पिण्ड और प्राण में त्रिगुणमयी होकर व्याप्त हो गई है, तब इसका इस हरि रूप से निकालना कठिन है, क्योंकि यह भक्ति के रूप में कामनाओं की छाया बन कर समा गई है।

इस प्रकार रज्जब जी इस शक्ति को माया के पदार्थ के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। शैव और शाक्त-उपासना का कोई सम्बन्ध रज्जब जी की अनन्यभक्ति में नहीं प्राप्त होता। केवल हठयोग की क्रिया में कुछ साम्य वैषम्य हो सकता है, जिस पर हम स्वतन्त्र रूप से विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

चक्रों की साधना हठयोग में निर्धारित की गई। कालान्तर में ६ चक्रों के स्थान पर ८ चक्रों का प्रतिपादन भी किया गया तथा दोनों की मान्यता प्रतिष्ठित हो गई। हठयोग में प्राणायाम की महत्ता सर्वोपरि है। प्राणायाम की अनेक विधियाँ तथा प्रकार निर्दिष्ट किये गये। रेचक पूरक और कुंभक प्राणायामों के कई भेद निरूपित किये गये किन्तु इस प्रसंग में इन सबका विवेचन अपेक्षित नहीं है। यौगिक-क्रियाओं की पृष्ठभूमि के रूप में एक सामान्य विवेचन के पश्चात् प्रस्तुत प्रसंग में यह देखना आवश्यक है कि रज्जब जी की साधना में योग के दो मूल प्रकारों—हठयोग तथा राजयोग का कहाँ तक प्रभाव है। निर्गुण-भक्ति-साधना के सन्तों की प्रवृत्ति स्थूल के विसर्जन और सूक्ष्म के ग्रहण में विशेष रही है। उन्होंने सगुण-उपासना में प्रतिपादित ब्रह्म के नाना अवतारों का खण्डन किया परन्तु अवतारों के नामों को सहर्ष स्वीकार किया। वे अव्यक्त ब्रह्म को नाना संज्ञाओं से सम्बोधित करते हैं परन्तु उसे रूपात्मक अथवा स्थूल बनाने के पक्ष में नहीं हैं। उन्होंने मन और इन्द्रियों के निग्रह पर विशेष बल दिया बाह्य-कर्मकाण्डों एवं वेद-रचना की स्थूलता का निराकरण किया। उनकी साधना अन्तर्वर्तिनी तथा अन्तर्मुखी थी। वे निर्गुणोपासक-सन्त बाह्याडम्बर अथवा उपासना की स्थूल-पद्धतियों के पक्ष में नहीं थे। रज्जब जी उपासना के बहिरंग साधनों का निरसन करते थे। हठयोग की क्रियाएँ चूंकि योग के बहिरंग साधन हैं, इसीलिए रज्जब जी साधना में हठयोग को पूर्णतः नहीं अपना सके। उनकी हठयोग-सम्बन्धी आस्था अधिक से अधिक इड़ा पिंगला सुषुम्ना अथवा चन्द्र-सूर्य मिलाप तक चक्रों में केवल षट्चक्रों के नाम स्मरण तक ही सीमित रही। रज्जब जी हठयोग के यम नियम आसन मुद्रादि के ब्यौरे में नहीं गये और न इन कृत्रिम असहज साधनाओं पर उनका विश्वास ही था। वे तो सहज साधना को प्रश्रय देते थे।

हठयोग की जिन विशेष धारणाओं का प्रभाव रज्जब जी के साहित्य में लक्षित होता है, वे निम्नलिखित हैं —

(क) इड़ा पिंगला सुषुम्ना के संयोग से अमृतत्व की प्राप्ति।
(ख) पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड की अवस्थिति।
(ग) संयम एवं इन्द्रिय-निग्रह।
(घ) ब्रह्म रंध्र अथवा शून्य में प्राणारोप।

हमारे विचार से हठयोग की अपेक्षा रज्जब जी राजयोग को अधिक महत्व देते हैं। योग के अंतरंग साधनों पर उनकी अधिक आस्था है। यम ध्यान तथा समाधि उनकी परमात्म-साधना के विशेष अंग हैं।

रज्जब जी ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग शरीर और मन को ही बतलाते हैं —

> तन मन में मारग मिल्या सतगुरु दिया दिखाय ।
> जन रज्जब रमि राम सों परम पुरुष कने जाय ॥[१]

पिण्ड में ही ब्रह्म का अन्वेषण करना चाहिये। बहिर्मुखी वृत्तियों द्वारा ब्रह्म प्राप्त नहीं हो सकता—

> सप्त द्वीप नवखण्ड फिरि हाथ चढ़ै कछु नाहिं ।
> रज्जब रतना पाइये आपै घर घरि माहिं ॥[२]

रज्जब जी कहते हैं कि सारे ग्रह लोक-द्वीप-खण्ड मनुष्य के पिण्ड के ही भीतर समाये हुए हैं। अतः बाहर भ्रमण करने की अपेक्षा यदि अन्तर्गमन किया जाय तो अन्तर्यामी प्राप्त हो सकता है—

> अंतरि सांचे लोक सब अंतरि औघट घाट ।
> अंतरयामी यूं मिलै जन रज्जब उर बाट ॥[३]

शिव-संहिता के द्वितीय पटल के प्रारम्भ में इसी विचार को विस्तार से इस प्रकार व्यक्त किया गया है —

> देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः ।
> सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥१॥
>
> ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
> पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः ॥२॥
>
> सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ ।
> नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥३॥
>
> त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः ।
> मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते ।
> जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ॥४॥
>
> ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः ।
> मेरुशृङ्गे सुधारश्मिर्बहिरष्टकलायुतः ॥५॥
>
> वर्तते ऽहर्निशं सोऽपि सुधां वर्षत्यधोमुखः ।
> ततोऽमृतं द्विधाभूतं याति सूक्ष्मं तथा च वै ॥६॥

---

१ रज्जब बानी मधि भाग निज स्थान निर्णय का अंग साखी १
२ रज्जब बानी मधि भाग निज स्थान निर्णय का अंग साखी १३
३ रज्जब बानी मधि भाग निज स्थान निर्णय का अंग साखी १९

इडा मार्गेण पुष्पमर्थं याति मन्दाकिनी जलम् ।
पुष्णाति सकलं देहमिडामार्गेण निश्चितम् ॥७॥

यही कारण है कि रज्जब जी बहिर्मुख भ्रमण को श्रेयस्कर नहीं समझते ।

पिण्ड में ब्रह्माण्ड की स्थिति का अनुमोदन हठयोग एवं राजयोग दोनों करते हैं। राजयोगान्तर्गत बिन्दुयोग में भी इसी तथ्य को प्रस्तुत किया गया है—

'इदानीं पिण्ड ब्रह्माण्डयोरैक्यमस्ति तस्मात् ब्रह्माण्ड मध्ये ये पदार्थास्तेपि पिण्ड मध्ये सन्तीति कथ्यते ।'[1]

अर्थात् पिण्ड ब्रह्माण्ड में ऐक्य है, अतः ब्रह्माण्ड में जो पदार्थ हैं, वे पिण्ड में भी हैं।

बिन्दुयोग में पिण्ड ब्रह्माण्ड के ऐक्य को सूक्ष्म ब्योरे के सहित समझाया गया है। 'इदानीं शरीर मध्ये लोक त्रयं कथ्यते' कह कर तीनों लोक 'इदानीमुपरितन लोक चतुष्कं कथ्यते' द्वारा चारों लोक 'इदानीं सप्त द्वीपानि पिण्ड मध्ये कथ्यन्ते' द्वारा सप्त द्वीप इसी प्रकार सप्त समुद्र नवखण्ड अष्टकुल पर्वत सूर्य-चन्द्र नक्षत्र ग्रह आदि सभी पिण्ड में अत्यन्त रोचक शैली में प्रतिपादित किये गये हैं।

पुरुष पवन रूप हो जाता है तथा ऊर्ध्वगामी हो जाता है, इसकी पुष्टि राजयोग करता है—

"तदनन्तरं पवन रूपी पुरुषो भवति। समस्तां पृथ्वीं दृष्ट्या पश्यति —— परमेश्वरं समीप पश्यति।"[2]

इसके उपरान्त यह पुरुष पवन रूपी हो जाता है, अपनी दृष्टि से सब पृथ्वी को देखता है परमेश्वर को समीप से देखता है।

रज्जब जी बहिर्मुख होकर भ्रमण करने वालों का उदाहरण देते हुए कहते हैं—

उनचास कोडि अहनिसि फिरहिं चतुर प्रहर ससि भान ।
रज्जब उर्ध अलाह मधि अजहूँ नाथ न जान ॥

उनचास करोड़ रात-दिन मदमस्त चक्कर लगाते हैं, सूर्य-चन्द्र चारों पहर चलते हैं, किन्तु परमेश्वर का सान्निध्य उन्हें नहीं प्राप्त हो पाता। रज्जब जी का कथन है कि उस रसूल का मार्ग पिण्ड के भीतर ही है।

बस उल्टे चल कर उस मजूद को प्राप्त करने के लिए कोई साहसी मुसाफिर ही जाता है। इन्द्रियों की गति बहिर्मुखी है—उनको अन्तर्मुखी बनाना बड़े साहसी साधक का कार्य है—यही उल्टा चलना है। इसीको 'उल्टा चलै बीसिया' कहते हैं—

रज्जब राह रसूल का पैंडा पंजर माहिं ।
उल्टे चलि मौजूद में मरद मुसाफिर जाहिं ॥[3]

---

१ बिन्दुयोग भाषा टीका सं०—पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र पृष्ठ ४७-५४

२ बिन्दुयोग पृष्ठ ५२

३ रज्जब बानी अथ मार्ग मिश्र स्थान निर्णय का अंग साखी ९६

जिन्होंने मन और इन्द्रियों को वश में करके मदन भुजंग का[1] वध कर दिया है, वही पुरुष परम पुरुष से मिल पाते हैं।

मन हस्ती जिन वश करी, मारया मदन भुजंग।
सो रज्जब सहजैं मिलैं, परम पुरुष के संग ॥[1]

रज्जब जी कहते हैं कि यदि भगवान् के मार्ग में चलने का चाव है, तो शरीर और मन को परों तले रखाओ—

हरि के मारग चलन का जे कछु है चित चाव।
तो रज्जब त्यागी चलत, दै तन मन सिर पांव ॥[2]

साधक को रणविजयी की भाँति इन्द्रियों से युद्ध ठानना चाहिये। ज्ञान की कृपाण लेकर युद्ध जीता जा सकता है—

युध है संग्राम सदा करि हस्ती अरि मारि।
जन रज्जब युध कीजिये ज्ञान खड्ग कर धारि ॥[3]

रज्जब जी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए हठयोग की प्रक्रिया ग्रहण करने का निर्देश करके लययोग अथवा ध्यानयोग का आश्रय बताते हैं—

कछिब वृत्ति ध्यान धरि अकल पुरुष की ओर।
तो रज्जब सहजै मिलै परम पुरुष सिरमौर ॥[4]

जिस प्रकार कच्छप जल के भीतर रह कर अपने तट पर रखे हुए अण्डों का ध्यान से पालन करता है, उसी प्रकार जीव का संसार की माया में रहते हुए ध्यान उस ब्रह्म की ओर ही लगाना चाहिये। इस प्रकार निश्चय ही परमात्म प्राप्ति हो जाती है।

रज्जब जी का विश्वास है कि ध्यान जैसा रहेगा गति-मति भी वैसी ही हो जायगी। इन्द्रिय विषयों में ध्यान रहेगा तो भौतिक रस ही प्राप्त होगा।

पंच तत्व करि पंच रस आन तत्व करि ध्यान।
रज्जब रहै अकाशमिहि जो तेहि ठाहर थान ॥[5]

इस ध्यानयोग के लिए धैर्य एवं अभ्यास की महती आवश्यकता है। रज्जब जी इसके लिए उदाहरण देते हैं कि चातक चाहे कितना टेरे, विपुल वर्षा बीत जाय परन्तु स्वाती का बूंद चौथे मास अर्थात् क्वार में ही प्राप्त होता है। चातक को भी धैर्य से ही काम लेना पड़ता है—

रज्जब धीरजौं मैं न पाइये धेरा करी दिलास।
चातक हूं मैं आवई स्वाति सु चौथे मास ॥[6]

---

१ शूरातन का अंग, साखी ३१
२ शूरातन का अंग, साखी ११
३ शूरातन का अंग, साखी ४१
४ विचार का अंग साखी २
५ ध्यान का अंग साखी ११
६ धीरज सहज स्वाति का अंग साखी ४

जब तक इन्द्रियों के स्वामी मन को ब्रह्म में लय न कर दिया जायगा तब तक इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में आसक्त रह कर शरीर का नाश करती रहेंगी—

इन्द्री प्रसन जीभ रस नासा बास अखि रंग ।
रज्जब श्रवणों शब्द सुनि किये पंच वपु भंग ॥[1]

मदन साधक के लिए अत्यन्त विघ्नकारी सिद्ध होता है। रज्जब जी काम और काल में काम को अधिक अपकारी मानते हैं। काल तो एक दिन ही मारता है, परन्तु काम तो अहर्निस मारता रहता है—

रज्जब करड़ा काल सौं काम सु काया माँहि ।
वह मारेगा एक दिन यहु अहनिसि मारै माँहि ॥[2]

इस इन्द्रिय मन और काम को मारने के लिए एक ही उपाय है कि इस संसार में रहते हुए सार को ग्रहण करे तथा असार का त्याग करे। इस सगुण विश्व में निर्गुण ब्रह्म को पकड़ सके तो इन्द्रियाँ भी विषयासक्त न रह कर ब्रह्मासक्त हो जायेंगी। इसके लिए रज्जब जी ने अत्यन्त आकर्षक उपमान प्रस्तुत किया है—

ये काँटा है वृक्ष में छाँह माँहि कछु नाँहि ।
रज्जब मिलिये तरहु सौं गहि निर्गुण गुण माँहि ॥

वृक्ष में काँटे होते हैं—वृक्ष का गुण है, किन्तु उसके निर्गुण रूप छाया को ग्रहण करने से शीतलता मिलती है। इसी प्रकार संसार अपनी त्रिगुणमयी स्थिति में काँटेदार वस्तु है—परन्तु गुणातीत ब्रह्म को जो छाया रूप में विश्व भर में व्याप्त है—ग्रहण करने से मनुष्य परमानन्द को प्राप्त होता है।

संसार में तो गुण और अवगुण रहेंगे ही परन्तु उनमें सार-सार चुन लेना ही कौशल है। जिस प्रकार भ्रमर तिल के पुष्प से केवल सौरभ ले लेता है और फूल को वहीं छोड़ देता है उसी प्रकार इस विश्व-पुष्प में व्याप्त परिमल रूप ब्रह्म को चुन लेने वाला ही सच्चा साधु है—

रज्जब साधू गुण गहै अवगुण दृष्टि न आय ।
ज्यूं अलि तिल तजि पुहुप कूं परिमल लेय उड़ाय ॥[3]

वेष धारण करने अथवा स्वांग बनाने से ब्रह्म-साधना में कोई बल नहीं मिलता। वेष धारण करना तो प्रदर्शन है प्रत्युत सच्ची साधना में यह बाधक ही है—

स्वांग सनेही संसारी सांच सनेही साध ।
रज्जब सोऽहं साहु का अरथ अगोचर लाध ॥[4]

---

१ इन्द्रिय का अंग
२ काम का अंग
३ सारग्राही का अंग
४ स्वांग का अंग

प्रदर्शन में रुचि रखने वाला स्वांग अथवा भेष बनाता है तथा साधु सत्य में निष्ठा रखता है। यही खोटे और खरे की पहचान है।

सिर मुंड्या अस्थूल का काम बच्या मन माँहि।
रज्जब मन मूंड़ बिना सिर मूंड़ कछू नाहि॥[1]

इसीको कबीर ने कहा—

केसनि कहा बिगारिया जे मूंड़ सौ बार।
मन को काहे न मुंड़िये जामे विषय विकार॥

भेष में ऊपर से कुछ और भीतर से कुछ और ही दीखता है—

ऊजल रसना तैलकी लोभी औगुन कोय।
रज्जब दीपक ज्योति में काजल कारा होय॥[2]

हठयोग प्रदीपिका के प्रथम उपदेश के ६६वें श्लोक में यही भाव व्यक्त किया गया है—

न वेष धारणं सिद्धि कारणं न च तत्कथा।
क्रियैव कारणं सिद्धे सत्यमेतन्न संशयः॥

अर्थात् वेष धारण करना सिद्धि का कारण नहीं होता और योग-शास्त्र की कथा भी सिद्धि का कारण नहीं होती। इसमें कोई संशय नहीं है कि केवल क्रिया अथवा योगाभ्यास ही सिद्धि प्राप्ति का एकमात्र कारण है। रज्जब जी ने ज्ञान बिना करनी का अंग तथा करनी बिना ज्ञान प अंग में इसी सिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या की है।

योग की परिभाषा करते हुए हमने कहा था कि स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रयाण ही योग है रज्जब जी अपनी साधना में सूक्ष्म साधना अथवा अन्तःसाधना को असाधारण महत्व प्रदान कर हैं। वे भक्ति अथवा उपासना की बाहरी क्रियाओं को हृदय के भीतर ही लय कर देते हैं। उनम नवधा-भक्ति का उदाहरण देखिये—

श्रवण परीक्षित कथ श्रवण शुकदेव सु भावै।
पवन मजन प्रहलाद सु, नमता औपद ध्यावै॥
पूजा चरण पृथु प्रेम अंकुर अक्रूर सु बंदन।
हेत दास हनुमन्त प्राण पारथ सु प्रीति मन॥
बलि ज्यूं बल बलिहारि कर रज्जब रामहिं रीझिये।
इहि प्रकार नौधामगति सु आतम अन्तर कीजिये॥[3]

साधक के अन्तर में ही नौ प्रकार की भक्तियों का नित्य सम्भेव होता रहता है फिर बाह उपासनो की क्या आवश्यकता।

---

१ स्वांग का अंग
२ स्वांग का अंग
३ कवित्त उपदेश का अंग

पिण्ड में ब्रह्माण्ड किस प्रकार समाया है, यह भी देखिये—

आतम अगम अकास भवन तिहिं बसै विसम्भर ।
मन सु पवन ससि सूर प्रीति परम जिन अम्बर ॥
तारे तत्व तहां बसैं सन्त सुई सेवक सारे ।
इन्द्री ग्रामे पंच गगन में गुप्त गुसारे ॥
छिपै न मनसा जीव सलिल रावै नाहिं लेसै ।
जन रज्जब यूं सन्त देखिये सूक्ष्म ही देसै ॥

हठयोग और राजयोग में यही अन्तर है कि हठयोग मन के निग्रह के लिए इन्द्रियों के निग्रह पर बल देता है और उसके लिए शरीर को नाना क्रियाओं से कसने का निर्देशन करता है। हठयोगी की दृष्टि से इन्द्रियों को पंगु बना देने से मन स्वयमेव पंगु बन जायगा फिर मन को अलग से निरुद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। किन्तु राजयोग क्रमिक-अभ्यास से मन और प्राण के निग्रह पर बल देता है। उसकी दृष्टि में मन के संयमित हो जाने पर इन्द्रियां स्वयं ही संयमित हो जायेंगी क्योंकि स्वामी के नष्ट हो जाने पर सेवक क्या कर सकता है। जब युद्ध-भूमि में सेनापति पराजित हो जाय तो फिर सामान्य सैनिक क्या कर सकते हैं। मन इन्द्रियों का स्वामी है, अतः उसे ही परमात्मा की ओर लगाना चाहिये।

रज्जब जी योग की इन विविध प्रक्रियाओं में 'राजयोग' अथवा 'ध्यानयोग' को ही महत्व देते हैं। भले ही कहीं बीच-बीच में वे इंगला पिंगला और सुषुम्ना का संकेत कर दें परन्तु मूलतः हम रज्जब जी की उपासना में राजयोग की ही प्रधानता पाते हैं। रज्जब जी का ध्यानयोग—ल्यो अथवा लययोग—इसी राजयोग के ही पोषक अंग हैं। रज्जब जी मन का निग्रह अथवा इन्द्रियों का निग्रह हठयोग की अस्वाभाविक क्रियाओं द्वारा नहीं शनै-शनै अभ्यास करने के पक्ष में हैं। वे मानव की समस्त अन्तर्वृत्तियों को परमात्मा के ध्यान में प्रवृत्त कर देना चाहते हैं और इसके अनन्तर उनका यह विश्वास है कि फिर साधना पथ के शत्रु बाधा नहीं पहुंचा सकते।

चिदानन्द चित में रहौ मनमोहन मन माहिं ।
रज्जब अमर रहण करि मरि मर जावै नाहिं ॥

—(विनती का अंग)

रज्जब जी की साधना और उपासना को हम एक ही नाम देना चाहते हैं और वह है भक्तियोग। उनकी साधना में सुरति (प्रवृत्ति) और निरति (निवृत्ति) दोनों बने रहते हैं। रज्जब जी भक्ति-योगी हैं। वे प्रवृत्ति को परमात्मा की ओर मोड़ देने का उपदेश देते हैं—परमात्म-विषयक रति शुद्ध विरति अथवा निवृत्ति बन जाती है। परमात्मा के आधार के बिना ओढ़ी गई निवृत्ति के लिए प्रति क्षण भौतिक प्रवृत्ति में परिणत हो जाने की आशंका बनी रहती है। इसीलिए ज्ञानयोग से भक्तियोग श्रेष्ठ है। रज्जब जी के योग को न तो हम हठयोग का नाम देना चाहते हैं और न राजयोग ही वह गीता में प्रतिपादित शुद्ध भक्तियोग है। यहां रज्जब जी कहते हैं—

सकल पतित पावन किये अधम उधारनहार ।
बिरद बिचारो बाप जी जन रज्जब की बार ॥

रज्जब ऊपर रहम करि हरि जी दीजै नाम ।
माता राखो गोद का नरक निवारनराम ॥[1]

यह रहम अथवा कृपा की याचना अपराधों को क्षमा कराने की प्रार्थना केवल भक्तियोग में ही सम्भव है। अभी रज्जब जी ने भगवान को पिता रूप में स्मरण किया था अब वे माता-पिता दोनों रूपों में उसका स्मरण करते हैं—

सुत भूलहिं भुलावहीं माता पिता क्षमाइ ।
त्यूं रज्जब सूं कीजिये अपराध आगौ भाइ ॥[2]

रज्जब जी ब्रह्म को पक्षी तथा जीव को अण्डा बता कर वात्सल्य की पराकाष्ठा प्रस्तुत करते हैं—

रज्जब ब्रह्म विहंग के आतम अण्ड समान ।
पै आवा सेवौ नहीं तौ क्यूं निपजै तन प्राण ॥[3]

जब तक परमात्मा जीवात्मा का पालन नहीं करेगा तब तक उसकी स्थिति कहाँ सम्भव है। रज्जब जी कहते हैं कि मैं तो सदैव चूकता आया हूँ। अब भी अपराध करता आ रहा हूँ परन्तु हे प्रभु ! मेरे उद्धार करने में तुम क्यों चूक रहे हो—

रज्जब आया चूकता सदा चूक ही माहिं ।
पै प्रभु तुम चूकहु सु क्यों मुझहि उधारो नाहिं ॥[4]

पापों से निवृत्त रह कर भवसागर से पार होने की कला को ज्ञानयोग कहते हैं तथा पापों
पड़ कर अपने को भगवान् के चरणों में अर्पित कर देने को भक्तियोग कहते हैं। रज्जब जी शु
भक्तियोगी थे। गीता में भगवान् ने अर्जुन से इसी भक्तियोग का उपदेश देते हुए कहा—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

(अध्याय १२—८)

अर्जुन ! मेरे में मन को लगा मेरे में ही बुद्धि को लगा इसके उपरान्त तू मेरे में
निवास करेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं।

रज्जब जी इसी भक्तियोग के आकांक्षी एवं पक्षपाती हैं। उनके भक्तियोग के रहस्य
सम्यक् प्रकारेण समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि वे सम्पूर्ण ब्रह्म का आभ्यन्तर प्रतिरूप करना सिद्धि के लिए नितान्त अपेक्षित मानते हैं। कदाचित् योग का रहस्य भी यही है

---

१ विनती का अंग
२ विनती का अंग
३ विनती का अंग
४ विनती का अंग

स्थूल का सूक्ष्म में लय करना ही योग का प्रयोजन है। इस दृष्टि से रज्जब जी के स्थूल को सूक्ष्म में अन्तर्भूत करने की कतिपय क्रमिक अवस्थाएँ हैं —

(क) ब्रह्माण्ड को पिण्ड में विलय।
(ख) पिण्ड का मन में निमज्जन।
(ग) मन का प्राण में लय।
(घ) प्राण का आत्मा में प्रविलय।

यौगिक-साधना की ये चारों अवस्थाएँ रज्जब जी के साधना-मार्ग में उपलब्ध होती हैं, जो भारतीय योग-शास्त्र एवं निर्गुण सन्त-साधना की परम्परा से पृथक् नहीं है।

## रज्जबवाणी और सूफी भावना

सूफी मत इस्लाम धर्म की वह उदात्त आध्यात्मिक शाखा है, जिसमें ब्रह्मानुभूति के लिए माधुर्य भाव को विशेष प्रश्रय दिया गया है। एक ओर सूफी-साधना ने विवेक द्वारा इस्लाम धर्म की अन्धानुसरण की मारक प्रवृत्तियों का निराकरण कर उसे बुद्धिसंगत बनाया दूसरी ओर इस्लाम धर्म की जड़-बौद्धिकता को भावना द्वारा कोमल मधुर एवं प्रेमासिक्त किया। सूफी-धर्म की यह विलक्षणता ही है कि उसने बौद्धिक-जड़ता के निरसन के लिए भावना को साधन बनाया तथा विवेकशून्य भावुकता के खण्डन के लिए बुद्धि का आश्रय लिया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सूफी मत में भावना और बुद्धि का अतीव सुखद सम्मिलन है। भारतीय धर्म-शास्त्र की भाषा में इसे यों कह सकते हैं कि सूफी मत में ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय है। सूफी मत एवं भारतीय वेदान्त के सैद्धान्तिक पक्षों में पर्याप्त साम्य लक्षित होता है। सूफी मत और वेदान्त—दोनों ही 'अद्वैत' अथवा 'अद्वैत' ब्रह्मवादी हैं तथा दोनों का मत है कि वह परमेश्वर निखिल ब्रह्माण्ड का स्वामी है। दोनों में धार्मिक-सहिष्णुता का भाव है। सूफी मत समस्त धर्म-श्रुतियों के प्रति आदर-बुद्धि रखते हुए प्रकृति को श्रेष्ठतम पुस्तक मानता है। इधर श्रीमद्भगवद्गीता में नाना साधना-मार्गों द्वारा उसी ब्रह्म प्राप्ति का अनुमोदन किया गया है। सूफी मत एवं वेदान्त के साम्य को दीवान बहादुर के एस रामास्वामी शास्त्री ने अत्यन्त रोचक प्रणाली में प्रस्तुत किया है।[१] सूफी-साधना एक

१ The Evolution of Indian Mysticism P 104-5 by Diwin Bahadur K. S. Ramaswami Shastri.

"The Sufi method combines the Indian methods of Gyan and Bhakti. Both Sufism and Vedantism affirm the existence of one God and say that He is the soul and freind ard Lord of all individual souls. Both are full of toleration. The Sufi respects all scriptures while he prefers the book of Nature to all of th m. The Gita says that men in all times and climes seek God in diverse ways and reach Him by diverse means. Saadi says, 'Every soul is born for a certain purpose is kindled in his soul" The Sufi says, "I saw thee in the Sacred Kaba and in the temple of idol also Thee I saw" No sectarian would hold such a view Both Sufism and Vedantism seek the Divine Light and yearn for Divine Union. Both affirm God as having form and as being formless. Both advocate practising med tation obedience to a Guru (called a Pir in Sufism) fasts, penances, Japa or recitation of the sacred word (called Zikr in Sufism) the use of rosary and universal non-injury and love based on d tachment and di passion and self control Both affirm the fatherhood of God and brotherhood of man. Both command the sublimation of false ego into the real self The only import nt d fference between them is that Sufism like Islamic thoughts in general does not accept the Ve antic Doct ine of Divine Incarnation ( Avatar )

धार्मिक विश्वास है, तर्कपोषित दर्शन-शास्त्र नहीं। इसमें दर्शन-शास्त्र पर आधारित जीवन और जगत् को समस्या के रूप में नहीं प्रस्तुत किया गया प्रत्युत चरित्र एवं समस्यात्मक जीवन और जगत् की समाधानात्मक विश्वासनिष्ठा है। दर्शन बुद्धि द्वारा ब्रह्म के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास करता है, धर्मभावना द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार कर मनुष्य और ब्रह्म को एकमेक कर देता है। दर्शन में आग्रह होता है और धर्म में नैतिक-सहिष्णुता। सहिष्णुता की दृष्टि से सूफी धर्म अत्यन्त उदार एवं सर्वग्राही माना जाता है। सूफी मत में संसार की समस्त विश्वास-परम्पराओं के लिए अवकाश है, जो बुद्धिसंगत मानव मंगलकारी तथा परिणामग्राही है।[1]

सूफी-साधना के विशिष्ट तत्त्वों एवं अंगों का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि उस पर ईसाई नास्तिक यहूदी नियोप्लैटोनिक होरमिक जोरोस्ट्रियन तथा बौद्ध धर्मों का प्रभाव पड़ा था। इन समस्त धर्मों के उन अंगों की विवेचना करना यहाँ हमारा अभीष्ट नहीं जिनका प्रभाव सूफी-साधना पर पड़ा था।[2] सूफी साधकों की कई जमातें हैं। इन सम्प्रदायों की भिन्नता होते हुए भी मौलिक सिद्धान्त-पक्ष सबका एक है। सूफी एकान्तवास स्वाध्याय जप एवं ध्यान को बड़ा महत्त्व देते हैं। जुनैद ने अपनी सूफी-साधना के विशिष्ट अंग—आत्मसमर्पण उदारता धृति मौन तितिक्षा ऊनी वस्त्र यात्रा एवं निर्धनता माने थे।[3] तथा उनके अनुसार इन गुणों के आदर्श—इस्हाक अब्राहम अयूब जकरिया मूसा ईसा और मुहम्मद साहब थे। इस्लाम और सूफी मतों में साधना की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं—

(१) शरीअत।
(२) तरीकत।
(३) हकीकत।
(४) मारफत।[4]

इन चारों अवस्थाओं को कर्म-उपासना ज्ञान तथा सद्ज्ञान मान सकते हैं। पहली दो अवस्थाओं से सूफियों का उतना सम्बन्ध नहीं जितना बाद की दो अवस्थाओं से। सूफी मत में

---

१ Mohammedanism P 110 by Sir Hamilt n A. R G bbe.

"Sufism, inspite of the loftiness of its religious ideals had almost from the first been less fastidious and more ready to admit alien practices and ideas provided that they seemed to produce results."

२ Sufism P 1 by A. J Abberry

that the Sufis owed much or little of what they did or said to Christian, Jewish, Gnostic, Neoplatonic, Hermetic, Zorostrian or Buddhist example."

३ Islamic Sufism P 21 by Sirdar Akbal Ali Shah

"Junayd, for example, based his Tasawaf on eight different qualities of the mind, viz. submission, liberality patience, silence, separation ( from the world ) woollen dress, travelling, poverty—as illustrated in the lines of Isaac Abraham, Job Zachariat Moses, Jesus and the seal of Prophets "

४ In the Eastern Rose Garden, published by Sufi movement P 47

"There are four paths or stages that lead a person into spiritual knowledge from the limited to the unlimited "

ज़िक्र ( जप ) का महत्व है। जप में समा ( संगीत ) को विशेष स्थान प्राप्त है, किन्तु कुछ सूफी उदाहरणार्थ सर्राज कुशेरी और हुजविरी कीर्तन-पद्धति को वासनात्मक मानते हैं। मन्सूर नामक प्रसिद्ध सूफी साधक इस समा ( संगीत ) को हाल ( ध्यानस्थावस्था ) का साधन मानता था।

परमात्मा-विषयक रति सूफी-साधना का सर्वस्व है। हल्लाज ने—जिनको मंसूर भी कहते हैं—अनलहक' ( अहं ब्रह्मास्मि ) की घोषणा की जिसके फलस्वरूप उन्हें प्राणदण्ड भोगना पड़ा। इन्होंने तसव्वुफ को सफल एवं अमर बना दिया।

सूफी-साधना में इस्लाम धर्म की कर्मकाण्ड-पद्धति के लिए विशेष स्थान नहीं। हज्ज (मक्का की यात्रा) रोज़ा (रमज़ान का उपवास) ज़कात (दान) और नमाज़ (पूजा) को साम्प्रदायिक-उपासना की बाह्य-पद्धतियाँ मान कर सूफी इन पर विशेष ध्यान नहीं देते थे। सूफी बनने के लिए तो परमेश्वर में प्रपत्ति ही पर्याप्त है। "प्रीति उत्पन्न होने से मोमिन या मुसलिम सूफी बन जायगा और शरीअत के आगे बढ़ कर तरीक़त का उपयोग करेगा। अस्तु, मुसलिम को तसव्वुफ के क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए सामान्यतः तोबा ज़हद सब्र शुक्र रियाज़ खौफ़ तवक्कुल रज़ा फ़िक्र और मोहब्बत का क्रमशः अनुष्ठान करना पड़ता है। कुछ लोग इन्हीं को मुक़ामात कहते हैं, पर वास्तव *में ये मुसलिम मुक़ामात हैं, सूफियों के नहीं क्योंकि सूफी मोहब्बत को अपना प्रेम स्थान समझते हैं,* लक्ष्य नहीं।"[1] सूफी ईश्वर के प्रेमानन्द को प्राप्त कर लेने पर फ़ना की स्थिति को समाप्त कर बक़ा की स्थिति में प्रविष्ट हो जाता है। फ़ना ऐहिक संयोग तथा बक़ा अलौकिक ईश्वरीय संयोग का पर्याय है। सूफियों ने अपनी दिव्य स्थितियों के चित्रण में प्रतीकात्मक-पद्धति का भी आश्रय लिया है। परन्तु सूफियों की साधना का विशाल प्रासाद इसके इश्क़ी पर तना है। प्रेम-दर्शन की व्याख्या ईरान के सूफी-कवि जलालुद्दीन रूमी ने अत्यन्त प्रभावोत्पादक शैली में किया है।[2] प्रेमी साधक अपनी प्रेम-साधना में कभी शान्त नहीं होता वह एक समय उस दिव्य सौन्दर्य को अनावृत कर ही लेता है।[3] सूफी आध्यात्मिक-साधना में प्रमुखतः तीन तत्व मानते हैं, वे हैं—क़ालिब ( हृदय ) रूह ( आत्मा ) तथा सिर्र ( अन्तरात्मा )।[4] ईश्वर-प्रेम में विरहानुभूति सूफियों की सहानुभूति में विशेष रूप से सहायक है। इस वियोगाग्नि में सूफी निरन्तर जलते रहना चाहता है।

---

१ तसव्वुफ अथवा सूफी मत पृष्ठ ९१

२ Rumi Poets and Mystic by Nicholson P 29

Love, Love alone can kill what seemed so dead,
The frozen snake of passion, love alone,
By tearful prayer and fairy longing fed,
Reveals a knowledge schools have never known

३ Rumi Poets and Mystic by Nicholson P 30

Love will not let his faithful servants tire,
Immortal beauty draws them on and on,
From glory into glory drawing nigher
At each remove and loving to be drawn.

४ The Mystics of Islam by R. A. Nicholson P 68.

"The Sufis distinguish three organs of spiritual communication the heart ( Qulb ) which knows God, the spirit ( Ruh ) which loves him and the innermost ground of the soul ( Sirr ) which contemplates Him.

हमारे निर्गुण सन्त-साहित्य में जहाँ अनेक अन्य प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं, वहाँ सूफी-साधना भी काव्यमय भावना बन कर प्रस्फुटित हुई। कबीर, नानक दादू, रज्जब और सुन्दरदास प्रभृति सभी निर्गुणी सन्तों ने सूफी मत के प्रेम-दर्शन को अपनी आध्यात्मिक अनुभूति का अपरिहार्य अंग बना लिया। किन्तु एक अन्तर की ओर हम आपका ध्यान अवश्य आकृष्ट करेंगे वह यह कि इन निर्गुणी सन्तों ने सूफियों के दिव्य प्रेम (इश्क हकीकी) को तो अपनाया परन्तु लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) को उसका साधन नहीं बनाया। सूफी-भावना और सन्त-साहित्य के इस प्रकरण में हमारा यह भी विचार है कि सूफी विचारधारा का प्रभाव कबीर में तो सीधे पड़ा प्रतीत होता है किन्तु उनके बाद के सन्तों में दादू को छोड़ कर अन्य सभी महात्माओं ने यह सूफी प्रेम-दर्शन सीधे सूफियों से ग्रहण न करके अपनी गुरु-परम्परा से प्राप्त किया है। इस मान्यता का आधार यह है कि हम देखते हैं कि प्राय सभी सन्तों की वाणियों में प्रेम और विरह-सम्बन्धी उक्तियाँ कबीर की तद्विषयक उक्तियों से न केवल भाव-साम्य रखती हैं, वरन् शब्द-साम्य और भाषा-साम्य भी उनमें देखने को मिलता है। इस प्रकार का साम्य हम पीछे प्रदर्शित कर चुके हैं।

रज्जब जी के काव्य में भी सूफियाना रंग विद्यमान है। उनके काव्य में सद्गुरु की प्रतिष्ठा ईश्वर-प्रेम की पीड़ा विरह-वेदना परमात्मा की अद्वैतता (वहदानियत) अवतारवाद का खण्डन मूर्ति पूजा का विरोध बाह्य-कर्मकाण्ड का निराकरण जप (जिक्र) की प्रधानता ऐहिकता (फना) का दिव्यता (बका) में लय तन्मयता (हाल) या आनन्द निमग्नता दीनता विनम्रता निस्पृहता आदि प्राय समस्त सूफी-साधना के तत्त्व है समाविष्ट है। रज्जब-साहित्य के इन तत्त्वों पर संक्षेप में विचार कर लेना यहाँ अपेक्षित है। सर्वप्रथम रज्जब जी की सद्गुरु-विषयक भक्ति-भावना इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। यद्यपि वैष्णव भक्ति के प्रसग में हम इसकी विस्तार में चर्चा कर चुके हैं, किन्तु सूफी मत म पीर अथवा मुरशिद (गुरु) के सम्बन्ध में यह धारणा है कि बिना मुरशिद के भगवदुपासना के मार्ग (राहे मार्फत) पर चलने की प्रवृत्ति नहीं उत्पन्न हो सकती। रज्जब जी ने अपनी बानी—'गुरु का अंग' में गुरु-शिष्य की अपेक्षा दोनों की योग्यता आदि पर अत्यन्त विस्तार से चर्चा की है। रज्जब जी भगवद्सिद्धि को हीरा मानते है। हीरा कठोर वस्तु है गुरु ही उस वज्र के भीतर भी छेद कर देता है, जिसमें शिष्यरूपी धागा सुविधा से प्रविष्ट हो जाता है—

> हरि सिद्धी हीरासमी बज्र न बेघ्या जाय।
> तहाँ गुरु पैसा किया तब सिष सूत समाय॥
>
> —(गुरुदेव का अंग)

सद्गुरु की कृपा से शिष्य को वह दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिससे वह तीनों लोकों की वस्तुस्थिति देख लेता है। बिना गुरु के भ्रम व सन्देह का निवारण अन्य कोई नहीं कर सकता—

> सतगुरु बिन सन्देह कूँ, रज्जब भानै कौन।
> सकल लोक फिरि देखिया मिरखे तीन्यूं भौन॥
>
> —(गुरुदेव का अंग)

हम गुरु-शिष्य के सम्बन्धों का श्रेणीबद्ध विश्लेषण पीछे कर चुके हैं, अत यहाँ पर उसके विस्तार में जाने से पुनरावृत्ति होगी। यहाँ केवल इतना संकेत करना ही पर्याप्त है कि सूफी मत में

सद्गुरु का महत्व आत्यन्तिक है, जिसका प्रभाव रज्जब जी के साहित्य में भी विद्यमान है, अविद्यान्धकार के निवारण के लिए गुरु का महत्वपूर्ण योग सर्व जनसम्मत है।

## प्रियतम परमात्मा

रज्जब जी ने स्थल-स्थल पर परमात्मा को प्रियतम के रूप में चित्रित किया है। सूफियों का इश्क हक़ीक़ी उनकी इस प्रियतम-साधना में पूर्णतः विद्यमान है। रज्जब जी साधक और ब्रह्म को पतिव्रता और पति मानते हैं। कोई स्त्री पातिव्रत-धर्म का निर्वाह करके ही अपने पति को अपना बना सकती है। यदि वह बहु-पुरुष-उपासना में लगती है, तो पति का साहचर्य खो देती है। एक ब्रह्म की प्राप्ति से संसार के सारे ऐश्वर्य स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं—उसके बिना कुछ भी हाथ नहीं लगता।

> येक मिल्यूं सारे मिलैं सब मिलि मिल्या न येक।
> तातै रज्जब जात पति सूझो बड़ा बड़ा अमेक ॥
>
> —(पतिव्रता का अंग)

आशिक तथा पतिव्रता स्त्री को न दोजख का खौफ होता और न बहिश्त की हविस उनका मन तो एक में आसक्त है—

> दोजख भिस्तहिं क्या करै जो अल्लह के मार।
> रज्जब राजी येक सौं कामिनि इहीं करार ॥
> भिस्त न भावै आशिकूं, दोजख दुखी दखि नाहिं।
> रज्जब राते रब्ब सौं येक बस्या मन माहिं ॥
>
> —(पतिव्रता का अंग)

सूफी-साधना के इतिहास में शराब का बड़ा महत्व है। परन्तु शराब यदि खुदापरस्ती की रही अर्थात् सूफियों ने मदिरा का प्रयोग प्रतीकात्मक ढंग से किया तब तो कुछ नहीं कहा जा सकता किन्तु यदि सूफी शराब का सेवन वस्तुतः करते थे तो हम कहेंगे कि रज्जब जी मदिरा-मांस-सेवन के विरोधी हैं।

> बरत न छाड़े राम कूं, बरत न भुगतै काम।
> बरत न मद मासहिं भखै मखै न निर्जल याम ॥
>
> —(पतिव्रता का अंग)

रज्जब जी उस प्रियतम परमात्मा को वियोगावस्था में टेरते हैं और कहते हैं कि हे भगवन्! क्या तुमने अब मौन धारण कर लिया है या फिर मेरा प्राणान्त ही चाहते हो —

> रज्जब टेरै रैन दिन क्यों बोलै नहिं कंत।
> कै तुम अब मौनी भये कै तुम चाहो अंत ॥
>
> —(विनती का अंग)

हमारे निर्गुण सन्त-साहित्य में जहाँ अनेक अन्य प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं वहीं सूफी-साधना भी काव्यगत-भावना बन कर प्रस्फुटित हुई। कबीर, नानक दादू, रज्जब और सुन्दरदास प्रभृति सभी निर्गुणी सन्तों ने सूफी मत के प्रेम-दर्शन को अपनी आध्यात्मिक अनुभूति का अपरिहार्य अंग बना लिया। किन्तु एक अन्तर की ओर हम आपका ध्यान अवश्य आकृष्ट करेंगे वह यह कि इन निर्गुणी सन्तों ने सूफियों के दिव्य प्रेम (इश्क हकीकी) को तो अपनाया परन्तु लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) को उसका साधन नहीं बनाया। सूफी भावना और सन्त-साहित्य के इस प्रकरण में हमारा यह भी विचार है कि सूफी विचारधारा का प्रभाव कबीर में तो सीधे पड़ा प्रतीत होता है किन्तु उनके बाद के सन्तों में दादू को छोड़ कर अन्य सभी महात्माओं ने यह सूफी प्रेम-दर्शन सीधे सूफियों से ग्रहण न करके अपनी गुरु-परम्परा से प्राप्त किया है। इस मान्यता का आधार यह है कि हम देखते हैं कि प्राय सभी सन्तों की वाणियों में प्रेम और विरह-सम्बन्धी उक्तियाँ कबीर की तद्विषयक उक्तियों से न केवल भाव-साम्य रखती हैं, वरन् शब्द-साम्य और भाषा-साम्य भी उनमें देखने को मिलता है। इस प्रकार का साम्य हम पीछे प्रदर्शित कर चुके हैं।

रज्जब जी के काव्य में भी सूफियाना ढंग विद्यमान है। उनके काव्य में सद्गुरु की प्रतिष्ठा ईश्वर-प्रेम की पीड़ा विरह-वेदना परमात्मा की अद्वैतता (वहदानियत) अवतारवाद का खण्डन मूर्ति पूजा का विरोध बाह्य-कर्मकाण्ड का निराकरण जप (जिक्र) की प्रधानता ऐहिकता (फना) का विस्मृत (बका) में लय तन्मयता (हाल) या आनन्द निर्धनता दीनता विनम्रता निस्पृहता आदि प्राय समस्त सूफी-साधना के तत्त्व से समाविष्ट है। रज्जब-साहित्य के इन तत्त्वों पर संक्षेप में विचार कर लेना यहाँ अपेक्षित है। सर्वप्रथम रज्जब जी की सद्गुरु-विषयक भक्ति-भावना इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। यद्यपि वैष्णव भक्ति के प्रसंग में हम इसकी विस्तार में चर्चा कर चुके हैं, किन्तु सूफी मत में पीर अथवा मुरशिद (गुरु) के सम्बन्ध में यह धारणा है कि बिना मुरशिद के भगवदुपासना के मार्ग (राहे मार्फत) पर चलने की प्रवृत्ति नहीं उत्पन्न हो सकती। रज्जब जी ने अपनी बानी—'गुरु का अंग' में गुरु-शिष्य की अपेक्षा दोनों की योग्यता आदि पर अत्यन्त विस्तार से चर्चा की है। रज्जब जी भगवद्सिद्धि को हीरा मानते हैं। हीरा कठोर वस्तु है, गुरु ही उस वज्र के भीतर भी छेद कर देता है, जिसमें शिष्यरूपी तागा सुविधा से प्रविष्ट हो जाता है—

हरि सिद्धी हीरामयी बज्र न बेध्या जाय।
तहाँ गुरु बेधा किया तब सिष सूत समाय॥

—(गुरुदेव का अंग)

सद्गुरु की कृपा से शिष्य को वह दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिससे वह तीनों लोकों की वस्तुस्थिति देख लेता है। बिना गुरु के भ्रम व सन्देह का निवारण अन्य कोई नहीं कर सकता—

सतगुरु बिन सन्देह यूं, रज्जब भागै कौन।
सकल लोक फिरि देखिया निरखे तीन्यूं भौन॥

—(गुरुदेव का अंग)

इस गुरु-शिष्य के सम्बन्धों का श्रेणीबद्ध विश्लेषण पीछे कर चुके हैं अत यहाँ पर उसके विस्तार में जाने से पुनरावृत्ति होगी। यहाँ केवल इतना संकेत करना ही पर्याप्त है कि सूफी मत में

सद्गुरु का महत्व आत्यन्तिक है, जिसका प्रभाव रज्जब जी के साहित्य में भी विद्यमान है अविद्यान्धकार के निवारण के लिए गुरु का महत्वपूर्ण योग सर्व धर्मसम्मत है।

## प्रियतम परमात्मा

रज्जब जी ने स्थल-स्थल पर परमात्मा को प्रियतम के रूप में चित्रित किया है। सूफियों का इश्क हकीकी उनकी इस प्रियतम-साधना में पूर्णतः विद्यमान है। रज्जब जी साधक और ब्रह्म को पतिव्रता और पति मानते हैं। कोई स्त्री पातिव्रत-धर्म का निर्वाह करके ही अपने पति को अपना बना सकती है। यदि वह बहु-पुरुष-उपासना में लगती है, तो पति का साहचर्य खो देती है। एक ब्रह्म की प्राप्ति से संसार के सारे ऐश्वर्य स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं—उसके बिना कुछ भी हाथ नहीं लगता।

> येक मिल्यूं सारे मिलैं सब मिलि मिल्या न येक।
> तातै रज्जब जात पति दूसो बड़ा बड़ा अमेक॥
>
> —(पतिव्रता का अंग)

आस्तिक तथा पतिव्रता स्त्री को न दोजख का खौफ होता और न बहिश्त की हविस उनका मन तो एक में आसक्त है—

> दोजख भिस्तहिं क्या करै जो अल्लाह के यार।
> रज्जब राजी येक सौं कामिनि इहै करार॥
> भिस्त न भावै आशिकूं, दोज़ दुखी रुचि नांहि।
> रज्जब रातै रब्ब सौं येक बस्या मन मांहि॥
>
> —(पतिव्रता का अंग)

सूफी-साधना के इतिहास में शराब का बड़ा महत्व है। परन्तु शराब यदि खुदापरस्ती की रही अर्थात् सूफियों ने मदिरा का प्रयोग प्रतीकात्मक ढंग से किया तब तो कुछ नहीं कहा जा सकता किन्तु यदि सूफी शराब का सेवन वस्तुतः करते थे तो हम कहेंगे कि रज्जब जी मदिरा-मांस-सेवन के विरोधी हैं।

> बरत न छाड़ै राम सूं बरत न भुगतै काम।
> बरत न मद मासंहिं भखै लखै न निर्जन धाम॥
>
> —(पतिव्रता का अंग)

रज्जब जी उस प्रियतम परमात्मा को वियोगावस्था में टेरते हैं और कहते हैं कि हे भगवन्! क्या तुमने अब मौन धारण कर लिया है या फिर मेरा प्राणान्त ही चाहते हो —

> रज्जब टेरे रैन दिन क्यों बोलै नहिं कंत।
> कै तुम अब मौनी भये कै तुम चाहौ अंत॥
>
> —(बिनती का अंग)

रज्जब जी उस परम पुरुष को अपने हृदय में बसाना चाहते हैं—

भाव रही घर में बसौ परम पुरुष सिरमौर ।
रज्जब के सुख प्रसवैं सब न पावहि और ॥

—(बिनती का अंग)

इतना ही नहीं साधक बिरहाग्नि में भस्म होकर उसी प्रियतम परमात्मा में मग्न हो जाना चाहता है—

प्रीतम प्रकटो ताप ज्यों प्यण्ड ते प्राण पुलाय ।
रम लाग्यो भाव में, जन रज्जब बलि जाय ॥

—(बिनती का अंग)

अजाजील शैतान मन को कुमार्गों में प्रवृत्त कर रहा है। हे परमेश्वर ! यदि तुम कृपा करो तो उससे मुक्ति मिले—

अजाजील दिल माहि बैठा भली न उपजन पावे ।
साहिब अपना कौन बिचारै सो बिन तुम पै आवे ॥

—(बिनती का अंग)

रज्जब जी हिन्दू-भक्ति के अन्तर्गत माया को भी स्वीकार करते हैं तथा इस्लाम धर्मानुमोदित शैतान के वजूद की दाद देते हैं।

## विरह-तत्व

उस प्रियतम परमात्मा के साक्षात्कार के लिए साधक तड़प रहा है। उसका रोम-रोम उसीके ध्यान में लगा है—

प्राण प्यंड रग रोम सब हरि बिधि रहे निहारि ।
ज्यों अनुषा जन राम सौं बिरही चाहै चारि ॥

—(बिरह का अंग)

यह वैज्ञानिक तथ्य है कि ताप से ही वर्षा होती है, यहाँ देखिये—

बिरहा पावक पर जलै जल बिन जारै देह ।
रज्जब ऊपरि रहम करि बरसहु मोहन मेह ॥

—(बिरह का अंग)

उस प्रियतम के अभाव में कोई ऋतु नहीं भाती—

जन रज्जब जगदीश बिन ऋतु भली कोइ नाहिं ।
सीत हुतासन वर्षा पुरव बिरह बिथा मन माहिं ॥

—(बिरह का अंग)

रज्जब जी व्यथातिरेक में विरही शिशु और पशु की एक दशा बताते हैं—

> विरही बालक मूंग पशु, करहि कहैं दुख सुखि ।
> रज्जब मन की मन रही लहै न मारग मुखि ।।
>
> —(विरह का अंग)

विरह का पन्नग जब डस लेता है, तब कोई जड़ी या मंत्र काम नहीं देते—

> दसवें कुल का नाग है, बरत सु बैठी माहिं ।
> जन रज्जब ताके डसे मंतर मुली नाहिं ।।
>
> —(विरह का अंग)

जिस प्रकार विरहिणी अपने वर से बिछुड़ कर विदीर्ण हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्म के वियोग में साधक व्याकुल हो जाता है—

> ज्यूं विरहिनि वर बीछुटै बिहरि गई तहि काल ।
> त्यूं रज्जब दुख कारनैं बिपति मांहि बेहाल ।।
>
> तथा
>
> जैसे नारी नाह बिन भूली सकल सिंगार ।
> त्यूं रज्जब भूसा सकल सुनि सनेह बिसतार ।।
>
> —(विरह का अंग)

राम के बिना सावन मास की शोभा भी साधक को प्रिय नहीं लगती निम्नांकित पद में विरह का सजीव सजीव चित्र रज्जब जी ने प्रस्तुत किया है—

> राम बिन सावन सह्यो न जाई ।
> कारी घटा काल ह्वै आई कामिनि खायें भाई ।।
> कनक अवास वास सब फीके बिन प्रिय के परसंग ।
> महा बिपति बेहाल लाल बिन लागै विरह भुवंग ।।
> सूनी सेज हेत कहूं कासौं अबला धरै न धीर ।
> दादुर मोर पपीहा बोलैं ते मारत हैं तीर ।।
> सकल सिंगार भार ह्वै लागो मन भावै कछु नाहीं ।
> रज्जब रंग कौन ते कीजै जे पिव माहीं नाहीं ।।
>
> —(राग मलार)

एक पद और उद्धत करेंगे—

> विरह वियोग विरहिनी बीधी घर बन कछू न सुहावै रे ।
> दस दिसि देखि नयो चित चाहत कौन दसा दरसावै रे ।।
> ऐसा सोच पड़या मन माहीं समझि समझि पूं पावै रे ।
> विरह बाण घट अंतर लागे पावक ज्यूं धमावै रे ।।
> विरह अगिन तन पिंजर दीनों पिउ कूं कौन सुनावै रे ।
> जन रज्जब जगदीस बिना दिन पल पल बरस बिहावै रे ।।
>
> —(राग रामगिरि)

रज्जब जी के साहित्य में शुद्ध सूफी-साधना-परम्परा का प्रेम एवं विरह-तत्व व्यक्त हु है। सूफी-साधना के जिन तत्वों का हमने उल्लेख किया है उनके आधार पर रज्जब जी साहित्य की विवेचना के लिए एक स्वतन्त्र कृति की आवश्यकता है। यहाँ पर हम केवल उन शीर्षक देकर रज्जब-वाणी से प्रसंगसम्मत संकेतात्मक उदाहरण-मात्र प्रस्तुत करेंगे।

## अवतारवाद का खण्डन

रज्जब जी अवतारों को ब्रह्म नहीं मानते। वे उन्हें मायाबद्ध जीव ही मानते हैं। उन विचार से अवतार से यह आशा करना कि वह भवसागर पार कर देगा—भ्रम-मात्र है। अवत तो स्वयं मायाग्रस्त है, तब फिर मायाग्रस्त मायाग्रस्त को किस प्रकार मुक्त करेगा—

> बांध्या बांधे यूं नवै मुकति होन की आस।
> सो रज्जब कैसे खुलै बहि मूंठे वेसास॥
>
> —(पीव पिछाण का अंग)

यह ब्रह्म तो अकल है, किन्तु अवतार सकल है—

> आदिविचारत्यव अकल है कला रूप अवतार।
> आपा आतम शोधि विधि देख्या करौ विचार॥
>
> —(पीव पिछाण का अंग)

अकल अवतार नहीं ले सकता और अवतार अकल नहीं हो सकता यह ब्रह्म ब्रह्मा-विष्णु महेश से भी ऊपर है—

> अकलहिं कोउ कलै कलि नाहीं।
> आदि अंत मधि महापुरुष तब पारहिं पावै नाहीं॥
> ब्रह्मा आदि विचारत थाके संकर सोच सरीरा।
> नारद सहित सनक सिव साधक कोउ न लहै तट तीरा॥
> शेष सहस्र दै रसन रटत नित परम प्रभा मन आना।
> नेति नेति कहि निगम पुकारत लेख है हैराना॥
>
> —(पद भाग)

## जप (जिक्र) का महत्त्व

> छिन छिन जन हरि नाम रटैगा।
> आदि अंत मधि शुद्ध भये सब अखिल अघम सब प्राण कटैगा॥
> आलस्य अविक भये अब अंतर उर अंतर यह नाम बस्यो।
> सदा सुखी साईं के सन्मुख प्रेम पिया सों नाहिं खस्यो॥
> अद्भुत बात कहूँ को मुख ते हरि हीरो हिय हेम जड्यो।
> संपत सुचित मध्य मन माहीं सुख सीरप हरि सड्यो॥
> कुसल कल्यान जीव के सुख सुख जन के आनंद धर्म बढ्यो।
> जन रज्जब जग में नहिं आवै जप जगदीश संसार तज्यो॥
>
> —(राग बिलावल)

इस माया मंझाव मधि सुमिरन समि कछु नाहिं ।
ती अधार उर राखिये जन रज्जब किब माहिं ॥
—(सुमिरन का अंग)

रज्जब टीका नाम को वेद कुरान सु देहि ।
यूं ततवेत्ता स्यामि सब हरि सुमिरन करि लेहि ॥
—(सुमिरन का अंग)

## लघुता और दीनता

सूफी संसार में अपने को तृणवत् मान कर चलते हैं। अपने को अकिञ्चन दीन समझना तथा सबसे छोटे होकर रहना सूफियों के सहज गुण हैं। रज्जब जी सूफी सन्तों की इस प्रवृत्ति को अपनी परम्परा में अपनाया है। वे इसी लघुता और दीनता का पोषण करते हुए कहते हैं कि दीर्घ के द्वारा समुद्र का लांघना सम्भव नहीं था। पवन-पुत्र हनुमान भी समुद्र को पार करने के लिए छोटे बने।[१] संसार में जो लघु बन जाता है, वह ऊँचे जाता है और जो दीर्घ बन जाता है वह नीचे को जाता है। तराजू का जो पलड़ा हल्का रहता है, वह ऊपर को जाता है, किन्तु जो भारी होता है, वह अधोगामी होता है।[२] अँगुलियों में सबसे छोटी अँगुली को ही अँगूठी उपलब्ध होती है। अन्य बड़ी अँगुलियाँ इससे वंचित रहती हैं। चन्द्रमा और देवनाथ छोटे होने के कारण ही सबके द्वारा प्रणम्य बनते हैं। बालक छोटा होने के कारण ही सबकी गोद में बैठता है। वृक्ष की कभी छोटी होने के कारण वृक्ष से च्युत नहीं की जाती किन्तु फूलों और फलों को वृक्षों से अलग कर दिया जाता है। छोटी मूर्तियों को उर और सिर में स्थान मिलता है। वृक्षों में जो बहुत छोटे हैं, उन्हें नाना प्रकार की सेवाएँ प्राप्त होती हैं।[३]

## निर्वैर दया तथा निष्काम भावना

रज्जब जी ने कृपा के कई प्रकारों की चर्चा अपनी बानी में की है, किन्तु निर्वैर कृपा को उन्होंने श्रेष्ठ बताया है। उनके मत से द्वेष अथवा वैर-विहीन कृपा ही प्रधान है इसीके द्वारा सब लोगों का पोषण होता है। इसीके द्वारा मंगल-लाभ होता है।[४] दया के वृक्ष में धर्म का फल लगता है। वह वृक्ष हृदय की पृथ्वी में उगता है। हरि-कृपा की वर्षा से हरि निष्पन्न होता है तथा इस वृक्ष के रखवारे सदैव इस निर्वैर-कृपा का फल खाते रहते हैं।[५] जो व्यक्ति सकाम होकर कर्म करते हैं, वे इस संसार में रसते रहते हैं, किन्तु निष्काम कर्म करने वाले अमूल्य माने जाते हैं।[६] सहकामी उस दीपक की भाँति है, जो तेल पाने पर प्रकाश करता है, किन्तु निष्काम सन्त उस

१ लघुता का अंग
२ लघुता का अंग
३ कवित्त भाग—लघुता का अंग
४ दया निर्वैर का अंग
५ दया निर्वैर का अंग
६ सहकाम निहकाम का अंग

हीरे की भाँति है, जो स्वभावतः सर्वदा प्रकाशित रहता है।[१] कामना आत्मा को बन्धन में डालती है तथा निष्कामता इस बन्धन से मुक्त करती है।[२] जिसके हृदय में परमेश्वर का ध्यान है, उसे सिद्धियाँ नहीं रुचती। मन वचन कर्म से जो इच्छारहित निष्काम है, वही पूर्णतः सुखी है।[३]

## भय (खौफ)

हम सूफी-साधना के विवेचन में सभी सूफी के गुणों अथवा लक्षणों में एक गुण भय (खौफ) की चर्चा कर चुके हैं। रज्जब जी ने सन्त के लिए इस गुण को अनिवार्य माना है। उनका विचार है कि नटिनी रस्से पर चढ़ते हुए सदैव मन में भय रखती है इसीलिए वह सावधान रहती है। सावधान रहने पर वह निर्भीक होकर रस्से पर चढ़ती रहती है। इसी प्रकार जो साधक भगवान् से भय मान कर साधना करता है, वह अतीव (महात्मा) बन जाता है।[४] साधक के भय रूपी भवन में ही वह परमात्मा निवास करता है, और ऐसे ईश्वर-भक्तजनों के सारे कार्य पूरे होते रहते हैं और भगवान् कभी हृदय से बाहर नहीं जाता।[५] रज्जब जी भय को भाव-भक्ति का मूल बतलाते हैं। भय से सारे काम बनते हैं।[६] भगवान् की कृपा और क्रोध दो शक्तियाँ हैं—इन दोनों से साधक को डरना चाहिये कृपा के द्वारा वह क्षण भर में सब काम कर देता है और क्रोध के द्वारा क्षण में सब नष्ट भी कर सकता है, अतः उससे डर कर ही साधक को संसार में रहना चाहिये।[७]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रज्जब जी के साहित्य में सूफी-सिद्धान्त के प्रायः सभी लक्षण एवं तत्त्व विद्यमान हैं। सूफी-भावना के अनुसार रज्जब जी विश्व भ्रातृ भाव पर आस्था रखते हैं। अन्तर्मुखी-साधना को वे बाह्याचार की अपेक्षा श्रेष्ठ मानते हैं। शरीर को नियमित करने के लिए वे मन को राम में लय कर देने का उपदेश करते हैं। भगवान् की सर्वव्यापक सत्ता पर सूफी-साधक उसे प्रभुता (शक्ति) मान कर आश्चर्य प्रकट करते हैं। रज्जब जी ने अपनी बाणी में 'हैरान का अंग' में इसी प्रकार का आश्चर्य-भाव व्यंजित किया है। सूफी जो अपनी उपासना में असाम्प्रदायिक मध्यम प्रतिपदवादी थे वह बौद्ध धर्म का प्रभाव था। रज्जब जी ने 'निरपख' और 'मध्य मार्ग' आदि का पोषण एवं प्रतिपादन किया है। सूफियों में स्थूल के प्रति विराग तथा सूक्ष्म में रति देखी जाती है। रज्जब जी अव्यक्त अगोचर, निराकार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना में विश्वास करते हैं।

## 'बाणी' का सम्पादन

महात्मा रज्जब के साहित्य पर मेरा शोध-कार्य चल रहा था तन्निमित्त मैं रज्जब-साहित्य का अध्ययन कर रहा था। उन्हीं दिनों मेरे मन में बारम्बार यह विचार आता था कि मैं रज्जब जी के

---

१ सहकामी निष्कामी का अंग
२ सहकामी निष्कामी का अंग
३ सहकामी निष्कामी का अंग
४ भयभीत भयानक का अंग
५ भयभीत भयानक का अंग
६ भयभीत भयानक का अंग
७ भयभीत भयानक का अंग

साहित्य को हिन्दी-प्रेमियों के सामने उपस्थित करूँ। मेरा यह विचार रज्जब बानी की साहित्यिक समृद्धि का ही परिणाम था। निर्गुण सन्त-परम्परा में इतनी रसात्मक कृति ! इसी मनोभाव से मैंने 'रज्जब बानी' और 'सर्वाङ्गी' के अध्ययन को अधिक विस्तृत एवं व्यवस्थित कर लिया था। राजस्थान के महात्मा की बानी के अध्ययन में राजस्थान के साम्प्रदायिक महात्माओं का योग वरदान बन गया। रज्जब बानी का यह सम्पादित प्रकाशन इसी वरदान का फल है।

बानी के सम्पादन में हर सावधानी के बरतने पर भी कहीं वर्तनी की और कहीं शब्दों की जो अशुद्धियाँ रह गई हैं, वे असम्य हैं और यह अपराध मेरा है, वैसा ही जैसा कि रेशम के तार निकालने में कुछ तारों का टूट जाना और कुछ पाट-कीटों की दुर्निवार मृत्यु। रेशम के तार निकालने वालों का क्या दोष ?

हस्तलिखित प्रतियों की लिपि से उतार कर लिखते समय कुछ तो मेरी नासमझी से और कुछ मेरी लाचारी से यदि कतिपय शब्दों व्यंजनों और स्वरों के कुछ तार टूट गये—कुछ शब्द-कीटों के 'शरीर बदल गये' तो इसमें मेरा क्या वश था ?

राजस्थान में उपलब्ध रज्जब बानी की हस्तलिखित प्रतियों में कतिपय शब्दों के दो-दो रूप मिलते हैं, उदाहरणार्थ —

| | | |
|---|---|---|
| जातिग | — | जातग |
| पातिम | — | पातम |
| पातिक | — | पातक |
| जाइ | — | जाय |
| बाइ | — | बाय |
| मरना | — | मरना |
| बरना | — | बरना |
| तृष्णा | — | तृष्णा |
| निर्गुण सगुण | — | निरगुन |
| धर्म धम | — | धरम |
| सुमिरहि | — | सुमिरइ |
| परमोध प्रमोध | — | परमोध प्रमोद |
| मोंहू | — | मूंहू |
| तोसौं | — | तोसूं |
| कासौं | — | कासूं |
| मोसौं | — | मोसूं |
| तोकौं | — | तोकूं |

राजस्थान में रज्जब बानी की दो-तीन हस्तलिखित प्रतियाँ देखने पर मेरी यह धारणा बनी है कि प्रत्येक प्रति में हस्तलेखन की कुछ-न-कुछ अशुद्धियाँ अवश्य हैं, जिसके कारण किसी प्रति को सर्वांश शुद्ध मान कर पाठ-शोध का आधार नहीं बनाया जा सकता। पाठ-शोधन में अपनी ओर से

मुनि भाषा भाव शब्द संचार स्वर संगति आदि का ध्यान रख कर पाठ की सहजता को ही प्रधानता दी है। इसी प्रकार ख और ष के ग्रहण में मैंने स्वतन्त्रता बरती है, जब कि रज्जब वाणी में ख और ष दोनों के लिए प्रायः ष का ही प्रयोग हुआ है।

उपर्युक्त शब्दों में कुछ के रूप तो लिपिकों की अनभिज्ञता के कारण बदल गये हैं और कहीं-कहीं पादपूर्ति या छन्द-विन्यास के लिए स्वयं रज्जब जी ने बिना अर्थ बदले दो-दो तीन-तीन रूपों में उनका प्रयोग किया है। इसका आभास ऊपर दी गई शब्दावली से मिल जाता है।

रज्जब वाणी का सम्पादन जैसा मुझे इष्ट था नहीं हो सका। कारणों की चर्चा करने से अब कोई लाभ नहीं है। अगले संस्करण में यदि कुछ अध्यवसाय की अन्तःप्रेरणा मुझे हुई तो उसकी कतिपय शब्द-सम्बन्धी अशुद्धियों को दूर कर दूंगा। मैं इतना अवश्य कहूंगा कि इस वाणी में संकलित रज्जब जी की कृतियों को अलग-अलग स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की आवश्यकता है। मैं विश्वास करता हूं कि एक बार रज्जब वाणी में प्रवृत्ति होने के बाद सन्त साहित्य-प्रेमियों द्वारा यह कार्य अवश्य ही पूरा होगा।

इस ग्रन्थ के अध्ययन सम्पादन एवं प्रकाशन के लिए जिन महानुभावों एवं संस्थाओं के प्रति मैं ईमानदारी से कृतज्ञ हूं वे हैं —

१—स्वामी मंगलदास जी महाराज जयपुर।
२—स्वामी नारायणदास जी पुष्कर, अजमेर।
३—श्री महन्त जी श्री दादू द्वारा नारायणा।
४—श्री हरीराम जी स्वामी नारायणा।
५—पं० परशुराम जी चतुर्वेदी बलिया।
६—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी चण्डीगढ़।
७—डा० नगेन्द्र दिल्ली।
८—श्री अगरचन्द नाहटा बीकानेर।
९—डा० मुंशीराम शर्मा कानपुर।
१ —पं० अयोध्यानाथ शर्मा कानपुर।
११—पं० कृष्णशंकर शुक्ल दिल्ली।
१२—डा० प्रेमनारायण शुक्ल कानपुर।
१३—श्री माधव जी शुक्ल दिल्ली।
१४—अल्फ्रेड पार्क लाइब्रेरी इलाहाबाद।
१५—श्री दादू संस्कृत महाविद्यालय जयपुर।
१६—अनूप लाइब्रेरी बीकानेर।
१७—सुमेर पुस्तकालय जोधपुर।
१८—प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर।
१९—श्री आनन्दस्वरूप पुस्तकालय कानपुर।
२ —श्री रामनाथ गुप्त कानपुर।

कोष व सूची निर्माण में सहयोगी :—डा सुरेन्द्रनाथ तिवारी श्री रामाश्रय वर्मा कानपुर।

प्रकाशन :—उपमा प्रकाशन (प्राइवेट) लिमिटेड कानपुर।

मुझे सन्तोष है कि हिन्दी-साहित्य को एक सन्त कविरत्न—और वह पठान मुसलमान—और मिला।

बानी-कोष :—बानी के अन्त में शब्द कोष देने का प्रयोजन पाठकों की उन स्थलों पर सहायता करना है, जहाँ सम्भाव बोध में कठिनाई है। कतिपय शब्दों के ऐसे भी अर्थ दिये गये हैं जो बानी के प्रासंगिक संदर्भ में तो उपयुक्त हैं किन्तु सामान्यत उन शब्दों के मौलिक अर्थ नहीं नहीं हैं, जो ग्रन्थ में बानी के कोष में दिये गये हैं। अत विद्वान् पाठकों से निवेदन है कि ऐसे शब्दों का अर्थ बानी में तो वही लें जो मैंने दिया है परन्तु अन्य साहित्यिक प्रसंगों में उन्हीं रूपों में न लें। आशय यह कि कुछ शब्दों के अर्थ बानी के प्रसंग से इतना सम्बद्ध और उसके इतना आश्रित हैं कि वहाँ वे अपने मूल अर्थ से भिन्न अर्थ रखते हुए भी उपयुक्त हैं। यदि कोई शब्द किसी प्रसंग-विशेष से बँध कर वहाँ आपका काम निकाल दे तो उस शब्द का वही अर्थ सर्वदा और सर्वत्र न लें। यदि चीमे की धार से कभी कागज काटने का काम सर जाय तो चीमे को चाकू न समझ लेना चाहिये। पाठकों की सुविधा के लिए कोष में दी गई शब्दावली का वर्णानुक्रम में न देकर बानी के अंगानुक्रम न प्रस्तुत किया गया है।

चित्र :—बानी के प्रारम्भ में रज्जब जी का चित्र दिया गया है, जिसमें रज्जब जी अपने गुरु स्वामी दादूदयाल जी (आसनस्थ) के समक्ष प्रणत-मुद्रा में खड़े हैं। इस चित्र की प्रामाणिकता पर न मुझे विश्वास है और न सन्देह। दादू-द्वारा नारायणा में प्रति वर्ष होने वाले फाल्गुन मास के मेले मे मैंने यह चित्र एक महात्मा से प्राप्त किया था जिसकी प्रतिलिपि करा कर उसे मैं यहाँ दे रहा हू। वे महात्मा अब कहाँ हैं और कहाँ के थे—यह मुझे अब स्मरण नहीं। इस चित्र की इतनी उपयोगिता अवश्य है कि यह पाठकों के लिए रज्जब जी के व्यक्तित्व की एक झाँकी अवश्य ही दृग्गोचर कर देगा। हमारे देश म राम और कृष्ण के चित्र तो सर्वथा अनुमानित हैं, फिर रज्जब जी का चित्र तो अनुमान की रेखाओं को पार कर प्रमाण के निकट पहुँच रहा है। इसी भाव प्रेरणा से मैंने उसे यहाँ दिया है।

रज्जब जी की हरिनामाङ्कित सरस काव्य बानी विज्ञ पाठकों को उसी प्रकार सादर ग्राह्य होगी जिस प्रकार मुक्ता-गर्भित सीपी।

सरसापि कवेर्वाणी हरिनामाङ्किता यदि।
सादरं गृह्यते तज्ज्ञैः शुक्तिर्मुक्तान्विता तथा॥

—व्रजलाल वर्मा

# अनुक्रमणिका

## साखी भाग

# साखी भाग

श्री राम श्री सति, श्री स्वामी दादूदयाल श्री सहाइ, सकल सत सहाइ,
प्राणपति सतगुर देव दादू प्रसादात् । अथ रज्जब जी को कृत सांख्यो ।
प्रथम अस्तुति को अंग लिखतं ।

दादू नमो नमो निरंजनं नमस्कार गुर देवत ।
बंदनं सर्व साधवा प्रणामं पारंगत ॥१॥

सिखदा पूरे पीर कू गुर प्यारहिं डंडौत ।
रज्जब मैं भगवंत के सर्व आत्मद्दु नौत ॥२॥

गुर आदिर सर साध कवि सबन करौं अस्तुति ।
रज्जब की चक भूमि पर, छिमा करौ ह्वै सुति ॥३॥

सरीर सबद की येक गति बिबिधि भांति तन होइ ।
भले बुरे दिष वप बयन दोस न दीज्यो कोइ ॥४॥

## भेंट का अंग

साबि सही किनहूं नहीं दीरध दाति न कीन ।
रज्जब राम उमग करि, सो दादू कौ दीन ॥१॥

साईं सग सेवा रची टरया न अपणी टेक ।
सौ दादू सम नांहि दूसरा दीरघ दास सु येक ॥२॥

दादू दूजा ना गह्या निबह्या एकहि ठाट ।
जन रज्जब लागा नहीं कचन गिरि कू काट ॥३॥

करामाति कर ना गही सिद्धि न सूंघी साध ।
रज्जब रिधि रूठा रह्या दादू दिस सौं अगाध ॥४॥

दादू सूर मजीत गढ़ पूरा प्राण प्रचण्ड ।
रज्जब गुण जै जै करैं, हारया सब ब्रह्मण्ड ॥५॥

नवस नाग नर निग्रहै स्वागमू सबद सुनाइ ।
रज्जब दादू मेस पति मु महि बिधि गह्या न जाय ॥६॥

दादू दरिया राम जल सकल सत जन मीन ।
सुख सागर मे सब सुखी जन रज्जब जा मीन ॥७॥
गुर दादूर कबीर की काया भई कपूर ।
रज्जब रीझ्या देखि करि सरगुण निरगुण नूर ॥८॥
काया कपूरहि ले गये प्राणी परमल अंग ।
रज्जब मिल ते देखियहि सहज सुधि कै संग ॥९॥

## अथ गुरदेव का अंग

रज्जब रहिये राम मैं गुर दादू के परसादि ।
नातर जाता देख तौं अगम अगौसिक बादि ॥१॥
दादू दीनदयाल गुर सो मेरे सिरमौर ।
जन रज्जब उनकी दया तैं पाई निहचल ठौर ॥२॥
जन रज्जब जुगि जुगि सुखी गुर दादू की दाति ।
आप समागम करि लिये भई निरंजन जाति ॥३॥
गुर दादू सौं गमि भई, समझ्या सिरजनहार ।
रज्जब राते राम सूं छूटे विषय विकार ॥४॥
गुर दादू की दृष्टि सौं देख्या दीरघ राम ।
रज्जब समझे साम सब सरभा मुभासम काम ॥५॥
जन रज्जब सुकृत सबै गुर दादू का उपगार ।
मनसा वाचा कर्मना तामै फेर न सार ॥६॥
रज्जब सिख दादू गुरू दीया दीरघ ग्याम ।
तन मन आतम ब्रह्म का समझ्या सब अस्थान ॥७॥
रज्जब कौं अज्जब मिल्या गुर दादू परिसिधि ।
ज्यौरसि माया ब्रह्म की सकल बताई बिधि ॥८॥
रज्जब रजा खुदाय की पाया दादू पीर ।
कुसि मजिस मुहरम किया दस नाही दिलगीर ॥९॥
रज्जब रजमा पाइया गुर दादू दरबार ।
धरे अमर का मुख सह्या सनमुख सिरजनहार ॥१ ॥
रज्जब कौ अज्जब मिल्या गुर दादू दातार ।
दुख दारिद तब का गया सुख सम्पति सु अपार ॥११॥

देखो पारस परस तौं लोहे साम सुमीन ।
रज्जब गुर दादू मिलत सो गति हम सौं कीन ॥१२॥
समब तसल्लह तासिमां दादू की दरगाह ।
रज्जब रजमां पाइये हाफू कुसी गुनाह ॥१३॥
गुर दादू देखत कटे जिव के कोटि जंजीर ।
जन रज्जब मुकते किये पाया पूरा पीर ॥१४॥
गुर दादू का ग्यान सुनि छूटैं सकल विकार ।
जन रज्जब दूतर तिरहि देखैं हरि दीदार ॥१५॥
सम त्रिभुवन तम पूरि था आतम अंध विसेख ।
तहं रज्जब सूझ्या सकल दादू दिनकर देख ॥१६॥
फाटे परबत पाप के गुर दादू की हांक ।
रज्जब निकस्या राह उस प्राण मुकति बेबाक ॥१७॥
हरि सिद्धी हीरा भई बन्ध न बेधी जाइ ।
तहां गुरू गैला किया तब सिख सूत समाइ ॥१८॥
दादू दौसल जीव का जन रज्जब जग माहिं ।
जे जिन सिरजे सो सही तीजा कोई नाहिं ॥१९॥
जन रज्जब जगदीस सग दादू सिर गुरदेव ।
मनसा वाचा करमना तब लग मांडी सेव ॥२ ॥
गुर दादू की दस्त मे जन रज्जब का जान ।
ज्यौं राखे त्यौं रहैंगे सिवक दिया सुविहान ॥२१॥
आदि अन्त मधि ह्वै गये सिष साधिक सिरताज ।
जन रज्जब के जीव की गुर दादू कौं लाज ॥२२॥
दादू के दीदार में रज्जब मस्त मुरीद ।
खिलवाला कुरबान करि कीया घुन न खरीद ॥२३॥
गुर दादू का ग्यान गहि रज्जब कीया गौन ।
तन मन इन्द्री जरि दलन मुहंडे आबै कौम ॥२४॥
गुर दादू का हाथ सिरि हिरदय त्रिभुवननाथ ।
रज्जब डरिये कौन सो मिल्या सहाई साथ ॥२५॥
गुर दादू की गति गही ता सिरि मोटे भाग ।
जन रज्जब जुगि जुगि सुखी पावै परम सुहाग ॥२६॥

सबद सुरति गुर सिष्य हैं मिले श्रवन अस्थान ।
भाव भेंट परि दया दत रज्जब दे ले प्रान ॥२७॥

सरबस दे सरबस लिया सिष सतगुर मन आइ ।
रज्जब महद मिलाप की महिमा कही न जाइ ॥२८॥

सतगुर की सुनि सीख को उपज्या यहु बिचार ।
रज्जब रत्त सुराम सौं बिरले इहि संसार ॥२९॥

मन समुद्र गुर कमठ ह्वै किया सु महणा रम्भ ।
रज्जब बीते बहुत जुग अकल न आतम अम्ब ॥३ ॥

गुर बिन गम्य न पाइये प्यंड प्राण परवेस ।
रज्जब गुर गोव्यन्द बिन कौन दिखावे देस ॥३१॥

गुर बिन गम्य न पाइये समुझि न उपजै आइ ।
रज्जब पथी पंथ बिन कौन दिसावर जाइ ॥३२॥

ब्रह्म प्यंड की येक गति पावे खोजी प्रान ।
उभय ठौर सब बस है समझावे गुर ग्यान ॥३३॥

बिबिधि भाँति बूटी बिथा बैद सु जाणे भेद ।
त्यों आसंक्या अनत बिधि समझावे गुरदेव ॥३४॥

रज्जब अगनि अनंत है येक आतमा माँहि ।
सतगुर सीतल सर्व बिधि यहु दहनी बुझ जाँहि ॥३५॥

सतगुर बिन संन्हेह को रज्जब भाने कौन ।
सकल लोक फिरि देखिया तिरखे तीनू भौन ॥३६॥

गुरू दिखावें सबद मैं रमिता रामति और ।
देखन कौं दरपन इहै जग रज्जब निज ठौर ॥३७॥

सतगुर बाइक बीज है प्राण पहम मैं वाइ ।
रज्जब राखै जतन करि मन बछल फल होइ ॥३८॥

जो प्राणी रुचि सौं गहै उर अन्तरि गुर बैन ।
जन रज्जब जुगि जुगि सुखी सदा सु पावै चैन ॥३९॥

सतगुर सबद अनंत दल जुगि जुगि काटै कर्म ।
जन रज्जब उस पुन्नि परि और न दीसै धर्म ॥४ ॥

सतगुर के सब्दौं सुण्यौं बहुत होइ उपगार ।
जन रज्जब जगपति मिलै छूटै सकल बिकार ॥४१॥

सुखदाता दुख भंजता जन रज्जब गुर साध ।
सबद मांहि सांई मिलै दीरघ दस सु अगाध ॥४२॥

जेते जिव सुकृत करैं इह सार संसार ।
तेते रज्जब ग्याम सुणि साधू के उपगार ॥४३॥

कबीर नामदेव कहि गये परम पुन्य उपगार ।
जन रज्जब जिव ऊभरैं सबदौ इह संसार ॥४४॥

मात पिता का दान ले दिया सबनि का मंग ।
जन रज्जब जिव मैं अइया जुगि जुगि गुरवत संग ॥४५॥

गुर तरुवर अग डाल बहु पत्र बैन फल राम ।
रज्जब छाया मैं सुखी भाख्यू सरैं सु काम ॥४६॥

रज्जब नर नारी जुगल चकवा चकवी जोड ।
गुरू बैन बिचि रनि मैं कियन दुहू भर फोड़ ॥४७॥

गोबिन्द गिरा सुरिज किरनि गुर दरपन अनन्त तेज ।
जन रज्जब सुरता बनी लग तिहाइस हेज ॥४८॥

गुर दरजी सूई सबद डोरा डोरी साइ ।
रज्जब आतम राम सों सतगुर सीवै कोइ ॥४९॥

रज्जब आतम राम बिच गुर ग्याता सु दलास ।
ज्यों चकवा चकवी मिलै सूरज काटे सास ॥५०॥

सतगुर मेले सूर ज्यू आतम बोले गालि ।
जन रज्जब जस ह्व गये सके न आपौ टालि ॥५१॥

रठा सतगुर सूर सुभाइ सबद ससिस रसना रसनि ।
जन कन उदै उपाइ जन रज्जब उनकी घसनि ॥५२॥

खी जन रज्जब गुर की दया दृष्टि परापति होइ ।
परगट गुपत पिछानिये जिसहि न देखै कोइ ॥५३॥

मरजीवै की मजई, माती आवै हाथ ।
त्यू रज्जब गुर की दया मिले सु अगति माथ ॥५४॥

गुर गोबिन्दहि सेवतौ सब भगहि सिद्ध पूरि ।
जन रज्जब ऊँणति उठ दुख दासिह सु दूरि ॥५५॥

सतगुर सून्य समान है सिख आमे तिन माहि ।
मनसि मन्द तिनमैं ममित रज्जब टोटा नाहि ॥५६॥

रज्जब वप बनराइ विधि मधि मन मधु सभि सान ।
बलिहारी गुर मखिका मधु छानी गति बान ॥५७॥
माया पाणी दूध मन मिले सु मुहकम संधि ।
जन रज्जब बसि हंस गुर सोधि सई सब सन्धि ॥५८॥
मरक अब का नास करि स्वाद रग तें काढि ।
रज्जब रचना हस की क्षीर नीर परि बाढि ॥५९॥
*संसार सार स विभूति महमी मनसा अगनि मिलाय ।*
सीत रूप ह्व सतगुर काढै मिश्रत मुक्त सुताप ॥६ ॥
प्राण प्याज मै सानया पंच पचीसौ घोलि ।
जन रज्जब गुर ग्यान बनि हरिहि मिलावै खोलि ॥६१॥
जीव रच्या जगदीस ने बांध्या काया माहि ।
जन रज्जब मुकता किया तौ गुर समि कोई नाहि ॥६२॥

अरिस सक्ती मुख मर सीत मर्माहि तन हेम ज्यूं ।
मातम मह सुकज बंसे वप बारि यूं ॥६३॥
सतगुर सूरज तेज विरह वैसाप रे ।
बहै नैन नहिं पूरि मिलहिं सुत मात रे ॥६४॥

साखी सकल करम तासा मये जीव जड्या ता माहि ।
रज्जब गुर कूची बिना कबहू छूटै नाहि ॥६५॥
त्रिगुण रहित कूची गुरु तासा त्रिगुण सरीर ।
जन रज्जब जिव तौ छुटै जे जोगि मिलै गुर पीर ॥६६॥
सतगुर रहिता सकल सौ सब गुन रहिता बैन ।
रज्जब मानी सांमि सौं उस दायक मे चैन ॥६७॥
गोमि गामि गुर गात मुख छोरै गुर समरत्थ ।
रज्जब इम विन और का तहा न पहुचै हत्थ ॥६८॥

*अरिल रज्जब बांध्या ब्रह्म का गुर देव छुडावै ।*
औरन की यहि गमि नही कोइ जीव न आवै ॥६९॥

साखी रज्जब नीचे क ऊंचा करै भगवंत भाखा फोडि ।
सा मद्धिम उत्तिम किये सतगुर मही मु पाडि ॥७ ॥
इमाइ बावनै पारसि सतगुर कृत करतहि अधिकार ।
जगदीम ईस ह्व जनम दूसरै इम सौ अब की बार ॥७१॥

गुर भृङ्गी के कृत्य कौं कृत्य न पूजै कोइ ।
रज्जब रचना राम की राई पलटै दोइ ॥७२॥

रज्जब प्राण पषाण जड गुर गराब किय देव ।
पेखौ प्यंड पलटै प्रथमि सिष्टि सु मागी सेव ॥७३॥

षट दरसन ससिसहु पहप् आतम सौटी होइ ।
गुरुराज मूरति गई सा वन्दै सब कोइ ॥७४॥

सोरठा देही दरिया माँहि गुर देव मसाई ह्यारिका ।
औरयु होइ सु नाहिं ना कोई उन सारिखा ॥७५॥

साखी बाहरि बैठे बहिर मुख गुर मुखि भीतर जाइ ।
रज्जब रीता क्यों पड खोलि खजाना खाइ ॥७६॥

गुर मुख बासा प्यंड में मन मुखि ह्वै ब्रह्मण्ड ।
रज्जब भीतर भै नहीं बाहर खण्डहु खण्ड ॥७७॥

सतगुर काढ़ सकल सौं तन मन परि ले जाइ ।
मन रज्जब रासै तहाँ जहाँ निरंजन राइ ॥७८॥

तन मन सकति समंद गति निरमल नांव जिहाज ।
बादवान बुधि थंभ थकि गुर सारै सिख काज ॥७९॥

गुर दीरघ गोव्यद सैं सार सिखहु सुकाज ।
त्यौं रज्जब मक्का बखा परि पहुचै बैठि जिहाज ॥८०॥

साई सुखि समीर समि बाम बदन गुर ठाट ।
परि गाम खाल के मारतहु रज्जब निपजैं घाट ॥८१॥

बसुधा माहै बीज हैं त्यू आतम अंकर ।
पै गगन मुक्ख बरिया बिना प्रगट न ह्वै भासूर ॥८२॥

अंकूर अगनि सिख सार मैं प घाट भइपा नहिं जाइ ।
ब्रह्म अगनि गुर बक्त्र ह्वै कद सग परै न आइ ॥८३॥

ब्रह्म अगनि गुर उर रहै तहाँ परै सिख सार ।
माट काट मकटाइ करि पुनि पावक मुनि यार ॥८४॥

तथा तग अंकुस कुस आतम पारस है प्रभु पाइ ।
रज्जब पलटे तिनहु मिलि पै गुर सीनी बंध जाइ ॥८५॥

रज्जब सरग नसेणी सतगुर साबधान सिख जाँहि ।
मुक्ति माहैं पतनि है तामै सहज समाँहि ॥८६॥

गुर अगस्त गगनहि रहै, सिष समुद्र घर वास ।
रज्जब ऊंचहु कै मिल्यू सहज गये आकास ॥८७॥
सतगुर सूरज मे चढ़ै सिष सति ससिस सुभाइ ।
जन रज्जब नर नीर ज्यू नीचा आपैं जाइ ॥८८॥
रज्जब तांब लाहु सौं बहुत भांति के पंग ।
महा पुरिष पारस मिले कुलि कंचन के अंग ॥८९॥
गुर चंदन चंन्न किये वृक्ष अठारह भार ।
डाल पात फल फूल का रज्जब नहीं विचार ॥९०॥
गुर पारस पग मैं परसि सिष कंचन करि लीन ।
सो रज्जब मंहगे सदा कुल कालंबा सु छीन ॥९१॥
रज्जब निपजहि यंत्र गुर अदभू आतम ऐन ।
पुहुप पत्र फल पूजिये सुर नर पावैं चैन ॥९२॥
सिस तासिब गुल पीर मिलि सोहबति सौंधा होइ ।
जन रज्जब गुंबस बिना, दूंजव बास न कोइ ॥९३॥

चौपई देही दरिया नाउं सुनाव बुधि बवधान विचार सुपाव ।
रज्जब कीमा गुर सब साथ इह बिधि उतरै पार जिहाज ॥९४॥

साखी मन समुद्र के बुदबुदे मनहु मनोरथ मांहि ।
रज्जब गुरू अगस्त बिन कहौ गगन क्यू जांहि ॥९५॥
प्रान कीट गुर भृङ्ग बिन बहा कंवलि क्यूं जाइ ।
जन रज्जब या जुगति बिन बिष्टा रहे समाइ ॥९६॥
रज्जब सतगुर बाहिरा स्वाति न ह्वै सिष भास ।
ज्यू पंखी पंखहु बिना कैसे जाइ अकास ॥९७॥
गुरमुख मारिग ना गहैं मनमुख चाल्या जाइ ।
रज्जब नर निबहै नहीं बातें कहौ बनाइ ॥९८॥
मनमुख मिनषा भूत पसु गुरमुख मानवा देव ।
रज्जब पाया प्रान मे पचवाम का भेव ॥९९॥
उरग मद दामणि दुणित पावक दीप जगंनि ।
रज्जब राम न सूझई बिन गुर ज्ञान सु अंखि ॥१००॥
दीपक रूपी भगति ह्वै सूरिज मे माभास ।
जन रज्जब गुर ज्ञान बिन हिरदै नहीं उजास ॥१०१॥

सिष सरीर मंधी मवनि गुरू नयन निज ठाट ।
रज्जब चेले चरन चलि इष्ट दृष्टि संगि बाट ॥१०२॥

जे सतगुर की दृष्टि में तौ दूरि निकट से पास ।
जन रज्जब दृष्टांत कौं कूज अंड लै न्हास ॥१०३॥

जे सतगुर की दृष्टि हीं तौ गंदा क्यों होइ ।
जन रज्जब दृष्टांत कौं कच्छिप अंडहि जोइ ॥१०४॥

कच्छी चलि ज्यू जिव मुरति अनर्पनी पस वाव ।
त्रिबिधि अड ज्यू गुर सियहु रज्जब निपजैं भाव ॥१०५॥

रज्जब कूंजी काम इस तौ उस मंडे गलि बाहि ।
त्यू सतगुर त्यागै मुरत सौं तो सिष निपजै नाहिं ॥१०६॥

चंचल मन निहचल भया सतगुरु पकड़या बांह ।
रज्जब रहि गया सबद मैं ध्यान कूप मन छांह ॥१०७॥

मन मनसा पंचौ प्रकृति गुन ग्रासे गुर ग्यान ।
जन रज्जब सरवरि लहरि, सोखि लिये स मान ॥१०८॥

आकिल गुरू अगस्त है सिष समद मन मीन ।
जन रज्जब गुन गन सहत मुये मनोरथ मीन ॥१०९॥

सिष सदा अस्थिर रहै सुणि सतगुर की सीख ।
रज्जब बिषय बिकार दिसि कबहू भरै न मीख ॥११०॥

जन रज्जब गुर बैन सुणि बिले होत बप बीज ।
जथा हाक हणमंत की सुणत होत नर हींज ॥१११॥

सोरठा मन अहि लहै न माग रोक्या मार महंत मुनि ।
रज्जब रहिगे पाग फनि श्रवननि सुनि नाद धुनि ॥११२॥

साखी रज्जब रहै कपूर मन मिरच सुसबदौं माहिं ।
नहींत जाब डीस मैं बूडयौ लहिये नाहिं ॥११३॥

ब्याली माहि बालकै बांधे बिया के बलिबावी ।
गुर परसाद रहै इंद्रिहू मैं पाया मत्र भुमादी ॥११४॥

मन मनसा इन्द्री गुणमाली हरि सुमिरण हरताल ।
गुर की दया दिमाई पाई दुखवायों का काल ॥११५॥

नाहि यंत्रिपू के गमम को गरुड़ गुरू उर आन ।
मारत्मक ऐसे मरै जन रज्जब पहिचान ॥११६॥

पंच मिले गुरमुख भमे तौ माया मेघ डर नाहिं ।
जन रज्जब सो जल इसा जु निकसैं परबत माहिं ॥११७॥

माया पाणी पुहमि घट निकस सकल मझारि ।
रज्जब रहै सु कुंभ मैं जु भडया गुरु कै बारि ॥११८॥

सतगुर साध सबित है बैरागर की खानि ।
रज्जब खोदि बमेक सौ तहां नहीं कछू हानि ॥११९॥

सतगुर पारस पोरसा अखै अभै भंडार ।
रज्जब बचन बमेक मन सहिये बारंबार ॥१२ ॥

ज्यूं बहु रतन समुद्र मैं त्यूं सतगुर सबद घनाहि ।
मरजीवा ह्वै माहिं मिलि जन रज्जब लित काढि ॥१२१॥

मन बच्छा ह्वै पूचिये सतगुर सुरही जोय ।
रज्जब पीवै दूध दे धीरज दरवै गोम ॥१२२॥

ससम बेद गुर ग्यान मैं सिष सिख्या पढि लेइ ।
जैसे दरपन देखतैं दरस दिखाइहु देइ ॥१२३॥

गुर घर माहीं धन घणा सिख संप्रापा न जाइ ।
जब लग लवण न लेण के जुगत न उपजै आइ ॥१२४॥

बहुत बार बेटे भये पर पिता न पाया आप ।
जन रज्जब जनमे नहीं जै गुर मिल्या न बाप ॥१२५॥

माता पिता असख ह्वै चौरासी के माहिं ।
रज्जब बहु सौदा घणा परि सतगुर मेला नाहिं ॥१२६॥

जुबती आतम जोनि बहु चौरासी के बास ।
जन रज्जब जिव कौ नहीं सतगुर चरम निवास ॥१२७॥

मात पिता सुत नारि सौं विष फल आवै हाथ ।
जन रज्जब गुर की दया सदा सु साईं साथ ॥१२८॥

सतगुर साध न छांडिये जे तू स्याणा दास ।
रज्जब रहट कहां रहै जब भावन ह्वै मास ॥१२९॥

सतगुर साध जिहाज तजि बिरचै मूरख बास ।
जन रज्जब हैराम है कहां करैगा बास ॥१३ ॥

जन रज्जब गुर सांप परि मूठी [illegible] नरनारि ।
तौ तीखी फन [illegible]मिये रे मिन [illegible] ॥१३१॥

जे पच रात अतर पखंघा सिष तरवर गुर मेह ।
जन रज्जब ओल्यो नहीं तऊ हरे उस तेह ॥१३२॥
रज्जब सींचे सतगुरू हरि लग हरे सु प्राण ।
सदा सुकी सुमरण न करै सूकै नहीं सुजान ॥१३३॥
सबद सुरति परस नहीं तब लग बांझ जोइ ।
रज्जब परसी जानिये जब बालिक बिरहा होइ ॥१३४॥
घन बावस बरषा भई सीपहि सरषा नाहिं ।
रज्जब उपज्यो ऊपजै स्वाति बूंद पड़ि माहिं ॥१३५॥
घटा गुरू आसोज की स्वाति बूंद सति बैन ।
सीप सुरति सरधा सहत तहाँ मुक्ता मन ऐन ॥१३६॥
आतम आरतिवंत ह्वै सतगुर सबद समाइ ।
रज्जब रुचि क रावण फल माहै रहि आइ ॥१३७॥
सतगुर बरषै मेघ ज्यूं रज्जब रति सिर आइ ।
सिष बसुधा ह्वै लेइ जल उग अगम अथाइ ॥१३८॥
रज्जब रवै मुसार के पम्मक सग सु धाइ ।
त्यूं अंकूरी आतमा सतगुर मेलै आइ ॥१३९॥
चेला तबहीं जानिये चित्त रहै चित लाइ ।
रज्जब दूजा देखिये जब मग आवै जाइ ॥१४०॥
सिष सही सोई भया रहै सीख मैं सोइ ।
रज्जब सरधा सीख सा दूजा कदे न होइ ॥१४१॥
तालिबत वाही जानिये रहै तलब सन पूरि ।
रज्जब मो सहज मिलै नाहीं मुरसिद दूरि ॥१४२॥
मुरीद मता तब जानिये मन मुरीद जब होइ ।
रज्जब पावै पीर कौं ता सम और न कोइ ॥१४३॥
चेला चित चाहै नहीं सम्य सरूपी बोल ।
रज्जब गुर गाफिल भया म ता द दे गोल ॥१४४॥
गुर बायक सब गोइ पर सिष श्रवना नलि हठि ।
रज्जब अणमिल ममिय क न निपजै मेठि ॥१४५॥
सिष माहैं सिष सुरति है गुर माहैं गुर बैन ।
रज्जब य राजी नहीं तब मग मूढ पैन ॥१४६॥

गुर परसिष पारस मिला सिष ही खोटा जोइ ।
रज्जब पलटै लोह सब कंकर का क्या होइ ॥१४७॥

सतगुर चंदन बावना परस्यों पलटै काठ ।
रज्जब वेधा बृक्ष में रह्या बांस के ठाठ ॥१४८॥

सतगुर चिंतामणि मिल्या सिष में च्यंता नांहि ।
तौ रज्जब कहु क्या मिलै जे मांग नांहि मांहि ॥१४९॥

कलपबृक्ष गुर कौं कहा जे कलपै नहिं दास ।
जन रज्जब रवि प्यास बिन निहचै जाइ निरास ॥१५०॥

कामधेन गुर क्या करै जे सिष निहकामी होइ ।
रज्जब मिलि रीता रह्या मंद भागी सिष जोइ ॥१५१॥

रज्जब बरण अठारह भार बिधि सतगुर चंदन मांहि ।
सबद वास भिदि सो सबै अरंड बास लस नांहि ॥१५२॥

विण षड़ि मास रहट की मरम जल आवै कछु नांहि ।
त्यू रज्जब चंदन बिन वेधा रीता संगति मांहि ॥१५३॥

रज्जब मरु तरु बिस क मिलि रीते सु अयान ।
मंगल गोटा मुक्ति फल मरकट मुगध न जान ॥१५४॥

चौपई कामधेन अरु कल्पतरोवर विना कामना सुभग सरोवर ।
चाह बिना चिंतामणि क्या दे त्यू सेवक स्वामी कन क्या से ॥१५५॥

साखी अरंड बंस मांगै नहीं गुर चंदन की वास ।
रीते रहे मठीले पोले रज्जब परमल पास ॥१५६॥

गुर सिमटै गोव्यंद भजि सिष सतगुर कौ सेइ ।
रज्जब बिमुखा खेत में चरै न चरसै देइ ॥१५७॥

देही दप्या देत है दिल दप्या कोइ नांहि ।
रज्जब सतगुर सा सही जु दप्या दे दिल मांहि ॥१५८॥

जीव ब्रह्म सौं जा गुर बांधै सो गुर सेइ दलाली ।
जन रज्जब क्सी गुर दपिना ज सिष का दिल खाली ॥१५९॥

पर कारिज किरपन करै अपनै काम उदार ।
जन रज्जब गुर स्वारथी सिष सब कीमे ख्वार ॥१६ ॥

चणे चुटायो चौगुणे चूटण् ह्वै नकिहाल ।
यौ रज्जब सिष मीपजै गुर ग्याता पहिचान ॥१६१॥

गुरू गंग ठौरें रहैं, सबद सलिल छै जाहि ।
मन रज्जब जग भाव यों मन मल मज्जहि माहि ॥१६२॥

प्रान पत्र गुरतर तजहि विपति बात की बात ।
सो रज्जब नौ खड मैं ओर न जाति कहात ॥१६३॥

चीनी चूड़ी ठीकरी चोपे आतम अंग ।
रज्जब रेजे रजगे प पलटया रूप न रंग ॥१६४॥

षट दरसन के गुरहु का आदि गुरू गोब्यंद ।
सो रज्जब समझै नहीं तो सबै जीव मतिमंद ॥१६५॥

सतगुर कू पूजै नहीं जदपि स्याण दास ।
रज्जब आभ बहु चढ़ तो भी तल आकास ॥१६६॥

रज्जब दीपक साज पर, कोड़ि धजा आनंद ।
सो गुर की कर आरती जामै है गोब्यंद ॥१६७॥

रज्जब छत्र धरं चौंरीं ढरे जहां नृपति भर होइ ।
तो गुर उर गोब्यद है नख सख आरति जोइ ॥१६८॥

जथा गोद परधाम कै खालिक राजकवार ।
ताकौं रज्जब सब नवै मस खालिग के प्यार ॥१६९॥

रज्जब कागद पूजिय वेद बचन विधि आधि ।
सो गुरु कौं किन पूजिये जाके गोब्यंद साधि ॥१७०॥

जड़ मूरति उर नाव बिन तापरि मंगलचार ।
सौ रज्जब करि आरती गुर परि बारंबार ॥१७१॥

सिमा संवारी राजनै ताहि नवै सब कोइ ।
रज्जब सिख सतगुर घटे सो पूजा किन होइ ॥१७२॥

## गुर सिष निगुरा का अंग

चौपई गुर सिष भूख मिल अभागी दरया माहि मनो दौ लागी ।
संतोष नीर माहीं सो नीरा ज त्रिष्णा अगिनि बुझावै बीरा ॥१॥

साखी भूख गुर सिष यौं मिले ज्यू सालै मस डार ।
जन रज्जब बोमत बंसत दाऊ जरि बरि छार ॥२॥

चौपई पेसा चकमक गुर गति गार गाफ्नी ठुमका अगनि अपार ।
मिलत महातम पलभि मु होइ एसे दई न मनी दोइ ॥३॥

साखी सतगुर सीख्या पोरसा सिष सार्षौं सिर भाग ।
रज्जब। पूरे पीरे बिन ठाहुर उभै अभाग ॥४॥

रज्जब। ऐसा पथिहु बिन गुरू मिल्या आचंभ।
कूप भई यहु कामनी क्यू पावहि प्रभु पंथ ॥५॥

गुर के मगहु गुर नहीं सिष न लेई सीस ।
रज्जब। सौदा ना बखर्या पेट। भरहु करि भीख ॥६॥

रज्जब। राम न रहीम करि, आखिर लिखे न भाल।
तार्थ। सतगुर ना मिल्या। गुर सिष रहे कंगाल ॥७॥

गुर भगि मन हुं। पाइये सिष सु सपणे लेहि ।
उभै अभागी एक है कहा लेइ कहु देहि ॥८॥

बइयर। सौं बइयर मिलीं कहौ पूत क्यूं होइ ।
त्यूं रज्जब सतगुर बिना सब खोजहु की जोइ ॥९॥

मधा कंठ कुप मै नहीं क्या पीवेहि पुत्र ग्वाल ।
त्यूं रज्जब सिष सूम गति गुर भूपा बेहाल ॥१०॥

घरि घरि दप्या दहि गुर सिष न सुलक्षणा कोइ ।
जन रज्जब सब सासपी तार्थ भला न होइ ॥११॥

सिष सारे गुर कौं गिलै गुर सेवक सब खाइ ।
रज्जब ज्यूं यूं मिले हरि मै कौण समाइ ॥१२॥

हुसि पेग्या पीया भय गुर की यहु गमि नाहि ।
रज्जब पैठा प्रीति सौं बूडि मुवा यू माहि ॥१३॥

## गुर सिष मिलाप निरनै का अंग

अरिल सतगुर साधिर कीजिय साहिब सौ सांचा ।
रज्जब परमे पार है मुनि मनसा बाचा ॥१॥

सतगुर साधिर कीजिय साहिब सा सूरा ।
रज्जब रहना शागि मे गुरजीवनि पूरा ॥२॥

सोरठा मनजन सुमिरन हिरद माय सा सतगुर सिप हूं मन राच ।
रज्जब परग कही गुरज्ञ मचर है बीज तहं सब ॥३॥

साखी सतगुर सूतर सिद्धान गति सिष सब जीवनि माहि ।
जन रज्जब साग्यू गर्भ भोजनि बूडी माहि ॥४॥

रज्जब काचा सूत सिष, लपट्या सतगुर हाथि।
काल। कसौटी देह दिष उलझै न सांच साथि ॥५॥
महापुरष मुहरे। बंधे सासिब कांच तारि।
रज्जब चलहि न जुगल सौं अंतक अगनि मझारि ॥६॥
कोयल अंडे काग गृह, सुत नर निपजै परसेव।
त्यूं रज्जब सिष भाव कौं प्रतिपालै गुरदेव ॥७॥
गुर सतोषी ससि मई सिष नक्षत्र निरिहाइ।
जन रज्जब सहि सभा कौं देखि दृष्टि बसि जाइ ॥८॥
चंद उदै जिउं चाहि बिन कवल खिलै अपभाइ।
त्यूं रज्जब गुर सिष ह्वै तौ दोस न दीया जाइ ॥९॥
चंदन करि बदल बनी पारस पलटै लोह।
त्यूं रज्जब सिख काज करि, गुर ज्ञाता निरमोह ॥१०॥
सतगुर सूरज ससि हर संदस पुनि पेख तौ हमाइ।
रज्जब पंषहु प्रान पोषियं स्वारथ रहति सुमाइ ॥११॥
जिहि छाया ह्वै छत्रपति सोहत रहत हुमाइ।
त्यूं रज्जब गुर सिष गति दुह मैं कौन कमाइ ॥१२॥
लोहा सिष पारस गुरू मेम मेसष हार।
सौंप सूं महरम भये अपना वस्वित व्योहार ॥१३॥
महतम एक उदीप तौं मेर्ले सब ससार।
रज्जब रारघ रस परै उनहि न आस्यूं प्यार ॥१४॥
सतगुर सरिता ज्यूं बहै हित हरि सागर माँहि।
रज्जब समदी सवगा सहज संग मिल जाँहि ॥१५॥
रज्जब काया काट मैं प्रगटी माया मागि।
*मनसिष निकस्या धूम ज्यूं गया गगन गुर लागि ॥१६॥*
बोल अंड मातियहु परै मंझारी मौन।
त्यूं रज्जब सिष नीपजै मन वच क्रम गुर मौन ॥१७॥
रज्जब सतगुर स्वाति मति बैन बूंद निज वारि।
मन मुक्ता निपजै तहा नर सिरखी सु निहारि ॥१८॥
सतगुर चवक रूप ह्वै सिष सार्द संसार।
अवन चर्म उनक मिम्म नाम फेर न सार ॥१९॥

पावक रूपी परम गुर, साध मई सब लोह।
रज्जब दरसन तिनहु के कठिन सकोमल होइ ॥२०॥

कांसी कणजा कांच सग वधै सताई माहिं।
त्यूं रज्जब सीतल समै अस्थल छोडै नाहिं ॥२१॥

जिव जल हिमगिरि होत है, सकति सीत क संग।
सो पषान पानी भया गुर ग्रीसम कै अंग ॥२२॥

ज्यूं सावणि सीगणि फिरहिं त्यूं सठ सूरति संसारि।
रज्जब सूधी होइ सो कवणीगर गुरद्वारि ॥२३॥

हाथा जोड़ी गुरुह सौं मूसल मन सु मिलाहिं।
ए एकठे एई करै औरो किय न जाहिं ॥२४॥

सिवाण नैन मटकी मुकर सबल सूर प्रतिब्यंब।
रज्जब कफ करुना किये जोग सहां बिलंब ॥२५॥

अनिल आगि अनेत पै गरी न कषन वान।
रज्जब सोनी सतगुरू वज्र वारि बिधि वान ॥२६॥

सब गुर तीरंदाज है सेवक मन मीसाण।
रज्जब गुर कमणैत सा आका बैठा वाण ॥२७॥

सेवक मन महरी भया मरद मिले गुर आइ।
रज्जब स्यावत सा सही जासौं फल रहि जाइ ॥२८॥

तन मन सिष रोगी भये बैद मिले गुर आइ।
जग रज्जब सुहकी महर जासौं बिथा बिलाइ ॥२९॥

रोगी बैद पिछाणि मे बूटी सत्य सुजाणि।
बिथा बिलै ह्वै परस तै रज्जब सो परवाणि ॥३०॥

तिण तो ये रस तनहु मिल तनै तनैया होत।
रज्जब जंगम जगमगे थावर गसि मै गोत ॥३१॥

बिबिधि माति बूटी बनहु बरवा स्यावहिं आय।
रज्जब रोग तिनहु हरै पै बेद बंदगा होय ॥३२॥

सबहु मर ससार के किनहु किये करि याद।
सो रज्जब किस काम के अब द सो उस्ताद ॥३३॥

सब सबहु क सति सबद जिनमै मसल अभेव।
सब समझावै जो जिसहिं, सो तिसका गुरुदेव ॥३४॥

तुपक पावक दारू गोली कहीं कहीं सो होइ ।
पै रज्जब निरदोष सब मारै बैरी सोइ ॥३५॥

घट दरसन के रंग रंगी, आतम जल ज्यूं जाइ ।
रज्जब सतगुर सूर ज्यूं किरणि किरणि लै जाइ ॥३६॥

कूये बाय तलाव के पणियौं कछू न होइ ।
घन रज्जब जल माहि सूरमैं त्यूं सतगुर सब कोइ ॥३७॥

गुर गाफिल देखत रहैं, सतगुर सिष ले जाइ ।
रज्जब पहुचे गीत ज्यूं अति चलते के पाइ ॥३८॥

मन कपूर नाहीं रहै, बिन चीर क बंधि ।
सतगुर लेहि समीर ज्यूं, गठिबंध परै न संधि ॥३९॥

बिबिध बास बहु बंदगी चलै पवन संग सीर ।
रज्जब सिक सो रंग ज्यूं बिरला पहुंचै बीर ॥४०॥

सरगुण निरगुण गुण गरट गाहक सिषी अनेक ।
रज्जब गुर गोब्यंद से सा चसा कोई एक ॥४१॥

विधि विसाकि बहु सपिणा गाहक गुणहु अपार ।
रज्जब सुधा चकोर से जिहिं बसि गिलै अंगार ॥४२॥

चंद चकारहिं प्रीति है देखै सब संसार ।
वे सौदा औरै कछू, जिहिं बसि गिलै अंगार ॥४३॥

रज्जब महंत मयंक के चेला होइ चकोर ।
इंद्री गिरै अंगार ज्यूं अगनि करै नहिं जोर ॥४४॥

एक गुरू है आरसी सिष चलि जटकै बार ।
जन रज्जब चसमा गुरु काढै अपनै पार ॥४५॥

सबद सीत गुर जल जमहिं अति गति निरमल माहिं ।
तिनमें दीस परै का ढेला दीस नाहिं ॥४६॥

चित बोहित सब साह का सतगुर खेवणहार ।
धन्य धणी कै आयया रज्जब उतरै पार ॥४७॥

जे काजी काइन पढ़ै तो कछू असम न हाइ ।
रज्जब ब्याह कराइ करि बामण बीर न कोइ ॥४८॥

घट भंडार भगवंत का आतम बित तेहि थान ।
भंडारी भंडार मे जन रज्जब गुर ग्यान ॥४९॥

अंकुर खजाना असह् का वार अंदरे भरवाहि ।
रज्जब पीर खजानची दस्त न सकई वाहि ॥५०॥
सिरिया सक्ति सरीज पीव सौं बसत पराई बीर ।
जिसकी तिसहिं चढ़ावता कुण मांगे क्या सीर ॥५१॥
सरीर सरीरहु ऊपजहिं सुरति सीप के माहिं ।
पै रज्जब गुर मंत्र बिन मन मुकता ह्वै नाहिं ॥५२॥
आदम करि आत्म उवै सीपहि निपजहि सीप ।
पै मन मुकता गुर मंत्र करि सतगुर स्वाति समीप ॥५३॥
सतगुर सावण की कला तामैं मौज सु स्वाति ।
तब मोती मन नीपजै जन रज्जब इहि भांति ॥५४॥
जन रज्जब गुर धरणि परि, सिष सारे बनराइ ।
घट प्रमाण रस सब पीवै अपणै अपणै भाइ ॥५५॥
जन रज्जब गुर ग्यान जल सींचे सिष बनराइ ।
सग दीरघ अरु ग्याद बिधि ह्वै अंकूर सुभाइ ॥५६॥
पान फूल फल तरु लगै त्यूं त्रिबिधि भांति गुर सिष ।
फूल बास सतगुर सिषे रज्जब सब बिधि पिष ॥५७॥
बास पात छाया सिषे ग्यान सुगुण समि बास ।
करणी फल गुर तरु महैं त्रिबिधि भांति परगास ॥५८॥
गुर तरु सिष लागै सु यूं ज्यूं बास पात फल फूल ।
बात घात एक झड़ि पड़ै येक न बाड़े मूल ॥५९॥
रज्जब गृह गृह गुर दीपक दसा तिनहु न पूरै आस ।
गुर तारै भ्रम सीत का सतगुर सूरिज नास ॥६ ॥
रज्जब बिकत रूप गुर बहु मिलै सिष भाग वो तम कोइ ।
एकै सतगुर सूर सम तिमिर हरै सिष सोइ ॥६१॥
गुर अनत सिष हू बणे पै सतगुर भेटै भाग ।
रज्जब रागी बहु मिलहिं पै बिरलहु दीपक जाग ॥६२॥
बहुतै स्वामी सेल सुत के पारस गुर ग्यान ।
रज्जब पलटै सोह सिष तिनका होइ बखान ॥६३॥
बेद दिया मैं आपही रोमी चीन्है नाहिं ।
रज्जब इन्यू दृष्टि बिन पवन भये गलि माहिं ॥६४॥

रोगी कौं भावैं उभै वैदहि दीसै दीन ।
रज्जब वैसे गुर सिषहु कही सु क्या मिलि कीन ॥६५॥

बद बिया बूझै नहीं पीर न पावै पीर ।
रज्जब मिलै न राम गुण क्यू बंदे बे पीर ॥६६॥

सोरठा आसंक्या अरु भाव मन मरकट सु दिखावहीं ।
असगे बुधि बिन बांदरे रज्जब ठौर उठावहीं ॥६७॥

## गुरमुख कसौटी का अंग

गुर ग्याता परजापती सेवक माटी रूप ।
रज्जब रज सौं फेरि करि घडि ले कुंभ अनूप ॥१॥

सेवक कुंभ कुमार गुर, घडि घडि काढै खोट ।
रज्जब माहिं सहाइ करि तब बाहेर दे चोट ॥२॥

क्रोध न करहि कुलाल गुर दीसै बहु विधि मार ।
रज्जब निपजै पात्र क्यू बिन कसणी ब्योहार ॥३॥

सतगुर संक्या ना करै जैसे लोहि लुहार ।
रज्जब मारै मिहरि करि ताइ करै ततसार ॥४॥

कामबूत कसणी भई सेवक साठी पाणि ।
रज्जब साधै सीरगर स्यू सतगुर की बाणि ॥५॥

प्राण पटहु उरतू करहि मूठ सोध सासाद ।
बिब सारे न दबावहीं घमिघमि गुर उस्ताद ॥६॥

काया कद उरतूं किया गुर उस्तादहु ताइ ।
संकट मैं सोभा भई नर रम्भी निरताइ ॥७॥

मन रूपा निरमल भया सतगुर सोनी हाट ।
रज्जब सीसे सबद सौं कटै करमकी काट ॥८॥

ज्यू धावी की धमस सहि, ऊजल ह्वै सु चीर ।
त्यू सिष तालिब निरमल मार सहैं गुर पीर ॥९॥

जन रज्जब गुर गुरज सहि करहु न साच बिचार ।
काया पलटै कीट ज्यू बिन भृंगी की मार ॥१०॥

सर्प डंक ज्यूं सतगुरू गुण ह्वै अजब अनूप ।
रज्जब तप त बरष ही सीतल सुधा सरूप ॥११॥

सतगुर सतगुरु की अगनि ताव तेज अधिकार ।
सिष सोना ह्वै सोलहा, रज्जब कसमी सार ॥१२॥

सिष संकट मैं नीपजै गुरहु सु बंधे गंठि ।
मन मनि मन छेदे विना रज्जब बधै न कंठि ॥१३॥

कठिन कसौटी नीपज्या तिसहिं कसौटी नाहिं ।
बासण डरै न बासदेव पाका पावक माहिं ॥१४॥

मन हस्ती मैंमंत सिरि गुरू महावत होइ ।
रज्जब रज डारै नहीं करै अनीत न काइ ॥१५॥

मन मारुतभख सूधा किया सोधी शून्यं जाहि ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह की चारयू डाढ़ उपाड़ि ॥१६॥

मन भवंग गुर गारडी राखै कीलि करंड ।
जन रज्जब निरबिष करै दुष्ट दसन करि खंड ॥१७॥

मन भवंग गुर गरुड़ गहि किया गगन कौ गौन ।
जन रज्जब जिव की पड़ी मूसा गटकै कौन ॥१८॥

अनल पंखि गुर लै लिये पंचतत्त्व अरु प्रान ।
ज्यू गै गैणा मसेउडै छूटा बित अस्थान ॥१९॥

मन मैमंतु लै गये गुरु अनल आकास ।
सो न छूटाय छूटहीं नख सख किये गरास ॥२ ॥

सतगुर सींगण हाथ लै मारै मरम बिचारि ।
जन रज्जब जाके बगै सो बैठे तन हारि ॥२१॥

ग्यान पड़ग गुरदेव गहि, दे सेवग सिर आणि ।
मारत ही मोहन मिलै पै खोटै जिव जाणि ॥२२॥

सतगुर साग सु सबद की रसन सुहावनि देइ ।
जन रज्जब जगपति मिलै बे उर सर्वसु लेइ ॥२३॥

ग्यान गुरज गुरदेव गहि गरद किया रण माहिं ।
जो रज्जब सनमुख गया सो फिर आवै नाहिं ॥२४॥

ग्यान धमक गहि सतगुरू मारै बाइक बाण ।
रज्जब ग्यावज सर सहित पड़े परसिपर आणि ॥२५॥

रज्जब भल का भाव का साठी सबद समाइ ।
क़ाबिज गुरू कमाण गहि, मारया तीर चलाइ ॥२६॥

सतगुर सबद सुमार सर जो फोड़ै तिरलोक ।
रज्जब छेदे सकल गुण अइया पैनी नोक ॥२७॥

रज्जब रचै सुरोस रस सतगुर पारस बैन ।
प्राणी पलटै लोह ज्यूं लागे कंचन ऐन ॥२८॥

सिष लोहा पारस गुरू ज्यू त्यू राम मिलाव ।
रज्जब माबै रोस रस परसें कंचन भाव ॥२९॥

## आज्ञाकारी आज्ञाभंगी का अंग

आज्ञा गुर गोव्यंद की चलै सु चेला चार ।
रज्जब रमतौं मनमुखी पगि पगि पूरी मार ॥१॥

आज्ञा में आतम रहै, आज्ञा माने भंग ।
रज्जब सतगुर सीप मैं निगुरा अपण रंग ॥२॥

पिता पूति नर नारि कै गुर सिष आज्ञा रंग ।
रज्जब राजा चाकरहु हुकम हुते मन भंग ॥३॥

सतगुर सरवर क्या करै जे सिष सफरी मन खोट ।
रज्जब धनसी धाम मिमि खैंच लई जम चोट ॥४॥

रज्जब रमणी रासिबा कपट सुकण्ठ गढ़ माँहि ।
सिष सिंह सात बुलाइ मे गुर गिर दूसण माँहि ॥५॥

गुर अगस्त उर चढ़त ही सिप समंद नमि जांहि ।
जन रज्जब उतरे तहां सो खारे खिन माँहि ॥६॥

आज्ञाभंगी मनमुखी बिभिचारी व्रत नास ।
रज्जब रीता रहौ घिन माही चरन निवास ॥७॥

आज्ञा में आये रहै गुर गोव्यंद हजूर ।
जन रज्जब दिल दूसरै ह्वै ठाहर तैं दूर ॥८॥

आज्ञा में अणमोल है अण आज्ञा अड आप ।
रज्जब रंग सु रजामैं बिरच्यू कीन्हे बाप ॥९॥

गुर की आज्ञा में रहै सो सिष कोई एक ।
रज्जब रहु बिन गोम मन आज्ञा भंग अनेक ॥१०॥

असमी आज्ञा म चलै बाहर घर न पाव ।
रज्जब कपटी चम असनि गलै अपणा डाव ॥११॥

रज्जब रहिये रजा मैं गुर गोब्यंद हजूर ।
हुकमी आज्ञा मेटतैं देखत परियै दूर ॥१२॥

गुर धरती गोब्यंद जल सिष तरुवर मधि पोष ।
रज्जब सरवै ठौर तैं देखि बहु बिधि दोष ॥१३॥

सिष गुडी सुरती डोरि मैं गुर खिलार हित हाथि ।
तस्यू तूटे तें गई स्याबति साँई साथि ॥१४॥

ज्यूं घोडा असवार बस चलै पराये भाइ ।
रज्जब अड अपनी गहै तबै मार भी खाइ ॥१५॥

अपी आगि अहि सौं असह, गुर आज्ञा महि गौन ।
मन रज्जब तनि बास तुस, मनहि मरावै कौन ॥१६॥

सीता सुरति उलंघिया राम लीक गुर बैन ।
रज्जब रावण काल कर पडया न पावै चैन ॥१७॥

रज्जब रजा रजानिकरि अजा जीम सैतान ।
दूवा फजीहत फिरस्ता मटि ममह फरमान ॥१८॥

रज्जब गुरु गोब्यंद की मया मेघ प्रतिपाल ।
इन विरच्यूं राचै बिमन केवल आतम काल ॥१९॥

## आज्ञाकारी का अंग

गुर आज्ञा मैं सिष सु ज्यूं अदभू इक पाइ ।
रज्जब सेवक सो सही सरबस सेवा भाइ ॥१॥

गुर आज्ञा अंगुरी बधि चले चकरी होय ।
आवै जाइ रजा मैं रज्जब दूजा नाही कोय ॥२॥

सतगुर सूरज सिष सलिल आज्ञा आवै जाइ ।
रज्जब रहतौं इहि बे सुगति सेवग स्वामी भाइ ॥३॥

घोम बास वनिबाइ क संग समीर सुजाहि ।
तैसे रज्जब गुर सिषहु सदा आज्ञा माहि ॥४॥

हरि आज्ञा मैं मणसरे गुर दिनकर इक तार ।
रज्जब सिष सो किरणि सम सदा सु तिनकी लार ॥५॥

चंद सूर पाणी पवन धरती अरु आकास ।
ए साँई के कहे मैं त्यू रज्जब गुर दास ॥६॥

चौपई पाणी पवन सूर ससि सोखै धरणि धनी जिन ए परमोधे ।
पूर्हि थकहि न सीप मझारी जन रज्जब तापरि बलिहारी ॥७॥

साखी ज्यूं हलवाइ कि हाटि तजि माखी कहीं न जाइ ।
त्यूं रज्जब गुर सिष बंधे उडहि न रहे चढाइ ॥८॥
मांड मिठाई बिबिधि परि जहां भरे हिरदे हाट ।
रज्जब सिषिहि उडाव ज्यूं मनिषा माखी ठाट ॥९॥
रज्जब आज्ञा में ऊभा रहै, आज्ञा बैठै आइ ।
आज्ञा में आज्ञा हुआ आज्ञा उठै जाइ ॥१०॥
आज्ञा में पसबरस है आज्ञा में धरम नेम ।
रज्जब आज्ञा उड़ चढ़ै आज्ञा कूसल षेम ॥११॥
आज्ञा में आतम अरस आज्ञा ऊरण होइ ।
आज्ञा चले सु ऊबरे साधक है सब कोइ ॥१२॥
आज्ञा में ऊभा रहै यक मनाइ करतार ।
रज्जब ऊजम अनन नहै नहि उतरैगा पार ॥१३॥
आज्ञा में अघ ऊतरै आज्ञा पावन प्रान ।
सो आज्ञा आठौ पहर, जन रज्जब उर आन ॥१४॥
आज्ञा में ऊंची दसा आज्ञा उत्तिम ठौर ।
उभय यक आज्ञा चल्यू सो आज्ञा सिरमौर ॥१५॥
सिष सरधा यूं चाहिये ज्यूं बसुधा रितवंत ।
रज्जब बरिया गुर बंन लिया बसी दिसि कंत ॥१६॥
ऐसा चेतन चाहिये ज्यूं आपिर सबर्दहि लेइ ।
रज्जब सिष सरधा रहै यु गुर मत ज्ञान न देइ ॥१७॥
बावन अच्छर सुबगा सतगुर सबद सुमानि ।
रज्जब दहु सौं एक है सो गुर सिष परवानि ॥१८॥
सिष सरधा अन्तर भरी सतगुर अरक आणि ।
रज्जब हिये बंध बधि सुकल बसा उर गाणि ॥१९॥
तेल लूंण आफूर गुड़ पै पाणी मू मेल ।
त्यूं रज्जब गुर ज्ञान मैं सिष सुमती का मेल ॥२०॥
अंबमबेल मुई मिलि येर्ये त्यूं सिष सतगुर संग ।
रज्जब दुती भाव महि दरम अंग समाये अंग ॥२१॥

आदि तिर्ण रस नीपजी अंति तिणा बिस माहिं ।
रज्जब सिष सितिया मतै सु गुर गुन लोपै नाहिं ॥२२॥

मिसरी मन बिसरी नहीं आवू जो उपगार ।
मीठी सौं मीठी भई तऊ तिणा उर धार ॥२३॥

गुर बूंद सिप समुद्र का मिलत महातम जोइ ।
पर फूलत सायर सुगुण उठत बुदबुदे होइ ॥२४॥

गुर सनमुख सिप रहु सदा करें करी मति और ।
त्यूं रज्जब बसुधा बिरछ सुखी सु एकै ठौर ॥२५॥

ज्यूं सतगुर के सबद म त्यूं चल सिप सुजाण ।
जन रज्जब रहु इस मतै छांडहु खेंचा ताण ॥२६॥

हीर हम सोई खरे धु लाम मार्णे भिति ।
रज्जब बिछुटे गुर सबद सो नेला चोखे चिति ॥२७॥

गुर आज्ञा इंद्री दवन आज्ञा परिहरि काम ।
रज्जब आज्ञा आप हुति आज्ञा भजिय राम ॥२८॥

गुर आज्ञा भंजन तजौ आज्ञा अंतरि मेटि ।
रज्जब आज्ञा उर बसौ आज्ञा अवगति भेंटि ॥२९॥

गुर आज्ञा औतार तजि आज्ञा सन मम सब ।
आज्ञा अठ्यठि त्यागिये रज्जब आज्ञा येव ॥३०॥

मात वार एकादसी आस उपास उतारि ।
रज्जब भजिय राम को तेतीसौ तसकारि ॥३१॥

गुर आज्ञा दुनिया तजहु आज्ञा दरसन त्यागि ।
रज्जब आज्ञा मैन महु पाखंड परपंच भागि ॥३२॥

सिप मन मत मवद मथि गुर धिर गोव्यंद माहिं ।
उभै उमरि टाहरीं बढी तहिं मब सघर बछ माहिं ॥३३॥

सिप मोती मनि सीप मैं गुर मोई ज्ञान गरकर ।
मन धन त्रम रज्जब करौ सुगम सु पावहि जबर ॥३४॥

## गुर संजोग वियोग महातम का अंग

सतगुर परसवि परसतै सिष की संपदा आहि ।
ज्यू दिनकर मा दिस द्रुम त्यू निस मूर्मे माहि ॥१॥

गुर चंदन जीवन सुखी बचन बास बिधि होइ ।
नर तरु निपजैं परसपर, त्यूं पीछैं नहिं कोइ ॥२॥

सबद डंक गुर भृंग परि, मारत तन मैं अंत ।
उभै अउरघू उभय अंग सु कला न कीटिक मंत ॥३॥

गुर हुमाइ संजोग सबद पर परस्यूं पलटै प्रान ।
रज्जब बिछुरे बल घटै समझै संत सुजान ॥४॥

संत स्यंघ समानि है, सबद डंक नक्र ठौर ।
बिबस जाइ गहै जोरवर उतरे बल कछु और ॥५॥

बाराह बारनहु बक्त्र बल देखहु दुहु के दंत ।
वैसैं गुर मुख सबद सयाणा मनहु मनावैं मंत ॥६॥

रज्जब जेहि पार पैदा भये पारवती मधिपूत ।
सो पारा अजहु चणा पै पीन होत सुत मूत ॥७॥

निम्याणवै कोडि नराधिपति निपजै गोरख ग्यानि ।
अब रज्जब येकौ नहीं सो सबद सता घटि मानि ॥८॥

जन रज्जब गोदावरी गोरख गिरा सुगाम ।
मूये सिष रूप सिला देखहु ये ततकाल ॥९॥

वही सबद आनन अनंत कहै सुनै सब कोइ ।
पै रज्जब वहि सक्ति बिन सिद्धि सिखा नहिं होइ ॥१०॥

रज्जब मुये जिलावतां मंत्र अनंतर बेद ।
वह बिद्या बादी अजहु परि हु नुक्ता नहिं कैद ॥११॥

रसन रसातल पैं पड़ी ग्यान गजा भू अपार ।
रज्जब जड़ गड़ मानते भये उठावन हार ॥१२॥

भूत बात सुण भूस की भूत होत क्या बार ।
सोई बात बहु बचन सुणि सा न होत तौ फेर ॥१३॥

रज्जब जप तापन निमित फहम करी बहु फेर ।
मनसा बाचा करमना हाजर हुक्का हेर ॥१४॥

साध स्यंघ के सबद सुसबित बरस दुखी परसि नास ।
रज्जब कही बिचार करि, बिधिबि भांति की त्रास ॥१५॥

गुरू अगनि सेवा बिबिधि देखि तापि सत माहिं ।
जन रज्जब गुर मामले येक बंदगी माहिं ॥१६॥

हुणवंत हाक हुणवंत मुखि सोव हींग अब होइ ।
मैं रज्जब ता सबद का मरुता औरै कोइ ॥१७॥

चौपदा कम्यक चरचा गहि गुण गाढ़ि सुरति सुई रजरिचि सुकाढ़ि ।
पारस गुरु मिलत गति जोइ वह सोना वह साधू होइ ॥१८॥

साखी रज्जब सतगुर जोति जिव सबद सही परगास ।
सिष सो मैं कृमि काट का कहि मिलि होइ सुवास ॥१९॥

चौपदा गुर नराधिपति सिष उमराव बचन बीच प्रतिहार सुभाव ।
घटि बधि घटा करै नरनाथ सो निधि नहीं सबद के हाथ ॥२०॥

ओमुकार आतम औतार, ता सुत सबद सवा प्रतिहार ।
दृष्टी भगि पौरिष परवेस आगे रज्जब दाता देस ॥२१॥

साखी वमेक बीच बस्ती जहां ब्रह्म बासदेव माहिं ।
सबद भाम व्योमहि गहै, चूमि चकोर सुनाहिं ॥२२॥

मति सुमुकर जड़ मैं दरस चेतनि कौं मुख दोष ।
सोई साज आतम करै रज्जब ह्वै संतोष ॥२३॥

गुर चंदन सिष बनी विधि पेखौ पलटैं पास ।
रज्जब दूर न मूर ह्वै सबद सकल मर बास ॥२४॥

रज्जब पावैं मूर सौं सबद बास मर माग ।
पै गुर चंदन पासैं गये सीतल ह्वै हंसि माग ॥२५॥

रज्जब केसर खेत गुर, बीज बचन तहं चोर ।
आन अवनि उर विपुल अति पै सो कण करहिं न फोर ॥२६॥

रज्जब सतगुर सीप सम सिष ह्वै स्वाति सु नीर ।
मन मुक्ता मधि नीपजहिं, जुवे न निपजै बीर ॥२७॥

सतगुर सुंदर सुक्ति मधि सिष सुत मुक्ता खेत ।
देखौ निपजै ठौर नग अन रज्जब कहि देत ॥२८॥

केसरि कनक कपूर मुक्त भन इह पैदा इस जोइ ।
खेत नही है केलि सुकत गुर ठाहर उतपति होइ ॥२९॥

प्यंड प्राण बिन कछु नही सूकी काया काठ ।
त्यू अनमै बिन अनमई त्यू पंडित बिन पाठ ॥३ ॥

रज्जब बप बायक चलैं परस्यूं पूरा पीर ।
परकास्या परवेस गुर, निरतग सबद सरीर ॥३१॥

गुर पंडित आयिर सबद आदम अपढ़ न मेस ।
रज्जब पैठे पीर संगि पर ठाहर परवेस ॥३२॥

जैसें राग अकण धव उस्तादहु बिन प्रेम ।
त्यू रज्जब गुर बिन गिरा मनसा वाचा नेम ॥३३॥

रज्जब पाणी बिना न पग कढ़ै देखौ घर गिर नीर ।
सबद खोज सत पंथ परि, सु क्यूं निकसै बिन पीर ॥३४॥

नाव सबद निज माव है सबद रूप संसार ।
रज्जब गुर केवट बिना चढ़े न पहुचे पार ॥३५॥

पुरष विना नाणा निकछु, वैद विना औषद् ।
त्यू रज्जब सतगुर विमुख सबद मिले ज्यू रद् ॥३६॥

बचन बाट बहुतै चली जीव खड़ा तहं आइ ।
रज्जब गुर भेदी विना प्राण पथिक कहिं जाइ ॥३७॥

रज्जब राजा बिन कटक बणिजारहु बिन बैल ।
त्यू सतगुर बिन सबद दल हूं न काज की सैल ॥३८॥

रज्जब आतम बाज बिन गामा नाखि न काज ।
वैसी विधि गुर बिन गिरा ज्यूं नर बिन गज बाज ॥३९॥

गदा पुस्तक पैगह बचन सु बाज अरथ असवार गुरू गति राज ।
चढ़ें चढ़ाये नहीं त नाहिं, रज्जब रचना यहु दल माहिं ॥४०॥

सी बैन बाज निज नाव की कहत सुनत जग माहिं ।
पै रज्जब गुर असवार बिन कारज आवैं नाहिं ॥४१॥

पावुक अंकुस सबद सति है गी मन परिवारि ।
रज्जब गुर असवार बिन को काढ़ै पसु मारि ॥४२॥

सबद पुराणी क्या करै जे गुर काढ़ैती नाहिं ।
रज्जब चल न वैस रथ समज देखि मन माहिं ॥४३॥

बिचार नाथ बाहक दिया सिया सु चैतनि माथ ।
रज्जब निपज देखतौं चेला हाथौं हाथ ॥४४॥

रिल सतगुर सूरिज कांति सूर ससि है बणी ।
सबद ससिल कफ काग मुरु सिष अति बणी ॥४५॥

आदम असम असंखि तहां महि यहु कसा ।
परिहा रज्जब जोग कुसम माग कहिये भसा ॥४६॥

साखी चिदानन्द चंद सकसा चंद्रमणी गुर संत ।
उभै मिलत अमृत सबै पीवहि जीवनि जंत ॥४७॥
सबद बीज करसा गुरू जैसा चाहहु सरूप ।
माव नाज मों नीपज मिहरि मेघ हरि भूप ॥४८॥

चौपदा सबद आरसी अरथ सुभागि सतगुर सविता सनमुख आगि ।
आरत बिच आहार अनूप प्रीतम पावक प्रगटहि रूप ॥४९॥

साखी गुर सिष नर नारय मिल्यू ब्रह्म बास बिधि होइ ।
सबद सुकस श्रुति सुदरिउं फल पावै नहिं कोइ ॥५०॥
त्रिविधि भांति तरुनिव तपै तिमिर हुत समि भाइ ।
सविता सतगुर आठवें ताला अघ न गराइ ॥५१॥
रज्जब साध सबद सुरखी सुर्ये कीये पलट अशुद्ध ।
अंब अरथ घृत काढ़े बिना दीपक बरै न बुध ॥५२॥
काष्ठ लोह पाषान सबद सत अगनि अरथ परकास ।
कौन काम कासों सरै सुमहु वमेकी दास ॥५३॥
रज्जब सबद समंद मधि मनमुक्ता निज ठौर ।
सौ गुर मरजीवे बिना आन न सकई और ॥५४॥
सबद साख तामा जडघा अरथ दरब धरि माहिं ।
गुर दृष्टी कूची बिना हसत सु आवै नाहिं ॥५५॥
बाढक बावस अरथ जस गुर आज्ञा सु निकास ।
बिन संजोग बरिया बिना बसे चाकहु निरास ॥५६॥
महापुरुष पारस परसि पलटहि प्रान सु धात ।
मिलतौ संगम मौन मैं रज्जब तहां न बात ॥५७॥
काया सु माया सिष कन अकह राया गुर माहिं ।
रज्जब वहि कहि बोर है जो सबद समावै नाहिं ॥५८॥
गुर बकील निज ब्रह्म कन सबद रहै संसार ।
बहु बचनों बहुती मिलै बिरला सतगुर भार ॥५९॥

चौपदा ओंकार आतमा पीरं ताहि समाहि मथै घृत बीरं ।
बाणी तक जुदे जिव जाणी उलटि मिलै जीवन पै प्राणी ॥६ ॥
सीकी साखि बिसाख्या बरा भाष बोलै खोटा न खरा ॥६१॥

कबीर सोई आपिर साई वणि जन जु जुवा यवंति ।
कोइ जु मेल केलवणि अमीर साइण अति ॥६२॥ *
दादू कहाँ आसिक अलाह के मारे अपण हाथ ।
कह आलम औजूद सा कहाँ जवा की बात ॥६३॥
दर्वेस का दरद का टूटा जोड़ै तार ।
दादू साधै सुरति कौं सो गुर पीर हमार ॥६४॥
साँचे सतगुर की कथा जैसे दीपक राज ।
रज्जब माणी सुर सुणत जट दिल दीपक जाग ॥६५॥

## बिरह का अंग

कबहू सो दिन होय गा पिव मेलै गा आइ ।
रज्जब आनंद आतमा त्रिविधि ताप तनि जाइ ॥१॥
प्राण प्यंड रग रोम सब हूर दिस रहे निहार ।
ज्यू बसुधा बनराइ सौं विरही चाहै वारि ॥२॥
साध सबद श्रवनौ सुनै बिरह बियोगी जन ।
तब तैं वेधी आतमा रज्जब परै न चैन ॥३॥
बादल बिरह बियाग के दरद दामिनी माँहि ।
रज्जब घटि ऐसी घटा मैं झड़ लागै नाँहि ॥४॥
बिरहिणि बिहरै रैन दिन बिन देखे दीदार ।
मन रज्जब जलती रहै, जाम्या बिरह अपार ॥५॥
रज्जब कहिये कौन सौं इस बिरहे की बात ।
मानहु रावन की चिता मह निस नहीं बुझात ॥६॥
बिरहा पावक उर बसै नख सिख जारै देहि ।
रज्जब ऊपरि रहम करि बरसहि मोहन मेहि ॥७॥
बिरहिन बसुधा की अगनि बहु ब्योम क्यूं जाहि ।
रज्जब घन बरिषा बिना उरवर क्यूं सु सिराहि ॥८॥
बिरही बालक गूग पसु, काहि कहै दुख सुख ।
रज्जब मन की मन रही कहै न मारग मुख ॥९॥
अंतरि ही अंतर घणा बिच ही बीच अपार ।
माँहैं माहि न मिलि सकू दीरघ दुख करतार ॥१०॥

---

* ६२ वें पद का शुद्ध पाठ प्राप्त नहीं हुआ ।

रज्जब बसि पुख पिहुर की नैनहु काढ़ै नीर ।
साँई सुरति सुमेर सभि सु नैनहु अड़कै बीर ॥११॥

रज्जब बारहु बाहिरा बिरहु तेरहीं मेघ ।
बहु सौतिन कन बन सुरत्रहि करै कौन कहु सेघ ॥१२॥

दसवें कुल का भाग है, दरद सु देही माँहि ।
जन रज्जब ताके बसे मंदर मूसी नाँहि ॥१३॥

रज्जब बिरहु भुअंग परि, औषद हरि दीदार ।
बिन देखै बीरच दुखी तन मन नहीं करार ॥१४॥

मसका भागा भाव का सेवग हुआ सुमार ।
रज्जब समकै तब सगे मिलै न मारन हार ॥१५॥

ज्यूं बिरहन बर बीछुर्‍यें बिहरि गई तेहि काल ।
त्यूं रज्जब तुम कारनै बिपति माँहि बेहाल ॥१६॥

जैसे नारी नाह बिन भूसी सकल सिंगार ।
त्यूं रज्जब भूसा सकल सुनि सनेह बिसबार ॥१७॥

अरिल सखी सुख ससि सीर सुधा रस बरषहीं ।
पीवत प्रान पियूष सबै मन हरषहीं ॥१८॥

सो मम बाज असेष बिरहु बप बाँदिया ।
परिहाँ रज्जब रस बस होइ, उभ मुख बाँदिया ॥१९॥

साखी रज्जब रचै न राम बिन सकल भाँति के सुख ।
भगवंत सहित भावे भाना बिधि के दुख ॥२०॥

जन रज्जब जगदीस बिन रुति भली कोइ नाँहि ।
सीतउस्न बरिषा बुरी बिरहु बिथा मम माँहि ॥२१॥

सोरठा दृग भ्रम भंबारी एम चित चुस्है पावक जरै ।
परी मगनि उत पैम तो रज्जब रस इत झरै ॥२२॥

साखी रज्जब बहनी बिरह की गुण गण औटै बीर ।
काया काठ मस र जरहि सु नैनउ निकसै नीर ॥२३॥

राम रेम मीज बड़हु तन मन माँषी पोसि ।
जन रज्जब जा पीजइ सु कहां जाँहि कहु गासि ॥२४॥

रज्जब बाड़ दुग दुग माथि माकनी माप ।
हरि सामी ता जन सु क्यू निकसै मम माख ॥२५॥

रज्जब मैं भी भाकसी करणी पूर्वं पाइ ।
हाथ हथकडी हेत की सरक्या रती न जाइ ॥२६॥

इंद्री अनगन ऊसरै जे आंस्यूं आंसू आंहि ।
रज्जब मन मारा भये महापुरिस मन मांहि ॥२७॥

इंद्री आभै पंच मिलि घट सु घटा धुरि आइ ।
रज्जब विषै न बरषहीं विरह बाइ ले जाइ ॥२८॥

बिरहा बोहित बैठ करि तिरिये सुकल समन्द ।
इहि ठाहर पौहुण इहै, पार पहूंचण बन्द ॥२९॥

दुख दिनकर की दृष्टि करि नेह नीर नभ आंहि ।
रज्जब रमिये सुष्टि मैं इह जुगती जग मांहि ॥३०॥

रज्जब झाला अगनि मधि आतिम अभ निकास ।
उलटि समावै सुन्नि मैं पंथी पंथ सुवास ॥३१॥

बिरह सूर अति गति तपैं तन मन माझ मंझार ।
रज्जब निपसै राम जल बिरहै के उपगार ॥३२॥

तन मन थोले ज्यूं गलहिं, बिरह सूर की ताप ।
रज्जब निपजैं देखतौ यूं आया गलि आप ॥३३॥

चौपई काया काष्ठ सु ममता धोम इसक आगि मिलि आंहि सु व्योम ।
आदि अंति मधि मुकति सुमाग रज्जब सहिये पूरन भाग ॥३४॥

सोरठा नर नारी सब भाज बिरहा बाल्म भार की ।
रज्जब अज्जब साज कांधे पाके परसतैं ॥३५॥

साखी दासत नाहीं दरद समि जे दिल अंदर होय ।
जीव सीव येकै करै ज बसुदा हूते दोय ॥३६॥

बिरह अगिन ह्र जुगति सा आतम सार मंझार ।
कपट कीट कुलि काटि दे सामैं फेर न सार ॥३७॥

सतपात अगनिह मिलै अंगनिह निकसै काट ।
रज्जब अज्जब ठौड़ सौं बहनी बिमल सुबाट ॥३८॥

तन मन काष्ठ ज्यू जरहि इत हुतासन लागि ।
रज्जब रंग भंग बंब बम जहां बिरह की आगि ॥३ ॥

बिरहा जोगी पठि परि सुग सबस गुन देह ।
पन रज्जब बम बादि ले ज्यू बम्बक तजि गेह ॥४०॥

विरहा विहूरे विगति सौ फाटै प्यंड पराण ।
रज्जब रजमा काढि ने विरहा मतुर सुजाण ॥४१॥

कमाण कसौनी विरह सर प्राण <चलावन हार ।
रज्जब छूटे सकल गुण यू अरि हाहि सुमार ॥४२॥

ज्यू चुम्बक सिर नाम जटि अस कुम्भार है चाइ ।
त्यू रज्जब मन की विरह जे वेस्या निरताइ ॥४३॥

विरह केसकी पैठि करि मन मधुकर ह्वै नास ।
रज्जब भुमरै कुसुम बहु मरे न तिनकी बास ॥४४॥

रज्जब बसी विरह की देही दरिया झारि ।
यूं अगस्त आरंभ विन मन मच्छा मै मारि ॥४५॥

विरही प्राण चकार है विरह अगिन अंगार ।
रज्जब जारे और को उनकै प्राण अधार ॥४६॥

विरही विहूरे विरह बिन ज उर पावक नाहि ।
रज्जब जथा समद बिन जीवै ज्वाला माहि ॥४७॥

विरही स्यावति बिरह मैं विरह बिना मरि जाइ ।
ज्यू चूने का काकरा रज्जब जल मिलि राइ ॥४८॥

इसक मसाह मसग मन दिस दारुन बिष चौक ।
रज्जब मंजिस आसिका असव बिनासन सौक ॥४९॥

रज्जब ज्वाला विरह की कबहु प्रगटै माहि ।
तौ सीधौ भूत साथ सौ करम काष्ठ जरि जाहि ॥५०॥

अठार भार विधि आदमी बिरही बंस विसेखि ।
हरेव तात न हरि प्रगट रज्जब अचरज देखि ॥५१॥

पय पटंबर प्यंड परि माहि पपीहै प्राग ।
जन रज्जब दोऊ वहै, दिस दोसत दिन जान ॥५२॥

साधू सारस साग की स्वांग रहत सति सूम ।
जन रज्जब जगि जुगस विन स्यामे जीव सुमूस ॥५३॥

सूर सती का जुष जमण येकहि समै सु नास ।
ता ऊपर चारयू पहर, पहलै किय विनास ॥५४॥

रज्जब कायर कामनी रही विपति कै रंग ।
सती सती सम बड़म की पहिर पटंबर अंग ॥५५॥

रे प्राणी पति परहरया बिहुरि बारि क्यूं नाहिं ।
जन रज्जब ज्यू जल भ्रमे पंक तिकी सर माहिं ॥५६॥

चकई ज्यूं चकुत भई रैन परी बिच आइ ।
जन रज्जब हरि पीव कौं क्यूं करि परसौं जाइ ॥५७॥

चकई कौं चकवा मिले बीतें जामिनि जाम ।
रज्जब रजनी आव बिहाई मिले न आतम राम ॥५८॥

विरह अगिन येकै सबहु हुद हाडी सु अनेक ।
भाव भिन्न भोजन बिबिध रज्जब रचहिं बमेक ॥५९॥

एक बिरह बहु भांति का भाव भिन्न बिच होइ ।
रज्जब रोवै राम कौं सो जन बिरला कोइ ॥६०॥

सकल बोल बिकुल भये गुर वाइक मन लाग ।
रज्जब रोवें दरस कौं यहु सांचा बैराग ॥६१॥

बेपरवाही अप सौं ता ऊपरि बैरागि ।
रज्जब रोवै इस मतै मा सिरि मोटे भागि ॥६२॥

माहि बहै बाहेर कहै सो सुनि रीझै राम ।
रज्जब मातहु के बिरह करे न सीझै काम ॥६३॥

## प्रीति इकंग का अंग

प्रीति इकंग महा बुरी दुख धीरज दिसि होइ ।
काहि पुकारै किस कहै, बेड़ी नाहीं कोइ ॥१॥

प्रीति इकंगी लागते प्रान परै दुख दंद ।
मरकट मूवा ज्यूं अधि बिन बंधन दुइ फंद ॥२॥

अरिल चात्रिग मोर पुकार सुनि कछू मेघ न आवै ।
तैसें रज्जब रटत हैं, पिव पीर न पावै ॥३॥

साखी चकोर चाहि चन्दन उदे जीव ब्रह्म त्यूं चाहि ।
माठी एकहि ओर कौं यहु दुख कहिये काहि ॥४॥

देखौ बिरह बमेक बिन उपज्या अहमक अंग ।
दीपक कै दिल ही नहीं रज्जब पचन पतंग ॥५॥

रज्जब माया ब्रह्म बिच जीव आपसौं जाइ ।
उभै सु बेपरवाह है नर देखौ निरताइ ॥६॥

रज्जब असणा मद्दे संगि त्यूं इक अंगी प्रीति ।
दुख सुख भी पूछे नहीं मह देखी बिपरीति ॥७॥
औषधि कीजै आन बिन सा लागै कोइ माहिं ।
त्यूं इक अंगी प्रीति है समझि देखि मन माहिं ॥८॥
आतम औषधि क्या करै भागै राग असाध ।
बहु बिधि बूटी बंध की लागै नहीं अराध ॥९॥
मध्य न वेधै औषधी ब्रह्म बदगी तेम ।
रज्जब करुना करि भक्त रीझ नहीं सु नेम ॥१०॥
अकल कलहु कलिय नहीं सब मागै जिम ओर ।
रज्जब रही सु एक ही दरस दया प्रभु वोर ॥११॥

## ब्रह्म अगिनि का अंग

ब्रह्म अगिनि सु विचार है मैंस दहै मन माहिं ।
रज्जब रज यू उनरै अभिअंतर अघ आहिं ॥१॥
दरद बिना क्यू दखिय दरसन दीनदयाल ।
रज्जब बिरह वियोग बिन कहां मिलै सो लाल ॥२॥
काया काष्ठ करम जरै ब्रह्म अगिनि बिच आन ।
पावक प्राण तुलै पावक सों रज्जब सुन्य समान ॥३॥
चौपई काया काष्ठ गुण घुण करम प्राणी पावक पाया मरम ।
गुरमुख अगनी ब्रह्म ध्यान रज्जब बहुती दहुम सुमान ॥४॥
साखी प्रभू प्रभाकर अंस है आतम तनतनु आगि ।
रज्जब संकट सो मटै साईं मुकुन जब जागि ॥५॥
मन मनसा ततपत्र के पुनि रज्जब रग रोम ।
दहै ओमि अगि जगमगे ब्रह्म अगिनि मधि होम ॥६॥
बिरह अगिनि की हद है ब्रह्म अगिनि बेहद ।
रज्जब गये सीस न्यु ज्ञान अखंडित गद ॥७॥
ब्रह्म अगिनि बड़वा अनल मन तार्यं उमाहिं ।
इसक आगि काची कहै जा थप बारि बुझाहिं ॥८॥
तपति कुंड ब्रह्म अगिनि ज्यूअज सबा गरम्म ।
बासुदेव बमहिण बिरह की उभै सीत मरम्म ॥९॥

ब्रह्म अगिनि भुत सार मैं ताव सहैं गुन दोइ ।
रज्जब रज तज नीकसैं वस्त अनूपम होइ ॥१०॥
पंच एक बच्चीस उभै कौं माया माखी खाहि ।
ब्रह्म अगिनि संजोग ताप कौं भमरी तहां न जाहि ॥११॥

## विरह बिभग का अंग

दरद नहीं दीदार का तालिब नाहीं जीव ।
रज्जब विरह बियोग बिन कहा मिलै सो पीव ॥१॥
अबनी सुरति न पीव की पेम न लेहि समाइ ।
रज्जब रुचि माहै नहीं कहा मिलै सो आइ ॥२॥
नैनो नेह न नाह का बहि विसि दृष्टि न जाहि ।
रज्जब रामहि क्यू मिलै तालिब माही माहि ॥३॥
रसना रसहु न माइये हिरदै नाहीं हेत ।
रज्जब रामहि क्या कहै, हम ही भये अचेत ॥४॥
प्याइ प्राण रोगी नहीं औषदि नांव न लेहि ।
तौ बैद विधाता क्या करै वाकू दरस न देहि ॥५॥
वाकू चाहै दरदबंद निरोगी सून लेइ ।
औषदि अरथी आतमा जो मांगै सो देइ ॥६॥

## भैमीत भयानक का अंग

भै मिलि आतम यूं बधै ज्यूं बल सीतम लागि ।
रज्जब अबरज देखिया कुम काया दे त्यागि ॥१॥
समझि सीत मामे बर्जहि प्राणी पाणी दोइ ।
फूले महि सारे रहैं रज्जब ऐसी जोइ ॥२॥
जमे जीव जम ठाहरै राइम काया कुम्भ ।
रज्जब पघलें बहि चलै देखी आतम अंभ ॥३॥
भैमीत बिना भूलैं नही देह बिदेह न होइ ।
जन रज्जब दृष्टान्त कौं कीट भृङ्ग लै जोइ ॥४॥
चंदन संगति चंदनि पारस कंचन होइ ।
कीट भृङ्ग भै मिलि भये तो कर समि और न कोइ ॥५॥

पन रज्जब सातक लिये गरीबी गरकाब ।
सो प्राणी प्राणी बमै मारग हूं सिर आब ॥६॥
निरभै नटणी पुहुम परि, बरद चढ़े भैभीत ।
त्यूं रज्जब चढ़ि सुरति परि भै मिलि होहि अतीत ॥७॥
ज्यूं बिहाज के थंम सिरि रह्या काग तजि तेज ।
त्यूं रज्जब भैभीत ह्वै, करहु नाव सो हेज ॥८॥
जे सांई का सोच ह्वै तौ मन फूलै माहि ।
जन रज्जब समटया रहै, ज्यूं अजा उमैं सिंग माहि ॥९॥
रज्जब राम न भूमिये जे मीच रहै मन माहि ।
याविकरण कौं आदमी या समि और सुनाहि ॥१ ॥
रज्जब डर घर साब का मह्वापुरुष रहै माहि ।
तिनके सब कारिज सरैं जु बाहर निकसै नाहि ॥११॥
रज्जब डर डरा बड़ा बड़े रहैं बिच आइ ।
भै कू भै मागै नहीं नर देखो निरताइ ॥१२॥
भै मिलि सब कारज सरैं भै मिलि निपजै साध ।
रज्जब मज्जब ठौर डर घर अगम अगाध ॥१३॥
भै मधि मूल भसा रहै डर सौं डिगै सुनाहि ।
संसा सोच सहाइ कौ मुनी सुगुर मत माहि ॥१४॥
भाव भगति का मूल भै भै करि भजियै राम ।
रज्जब भै मिलि मुख्य ह्वै भै भै सीझै काम ॥१५॥
मिहरि कहरि सौं डरपियै करत हुरत क्या बेर ।
तामै भै मागै नही रज्जब समुझ्या फेर ॥१६॥
मिहरि कहरि सौं डरपिये ह्व बिस न्सि दलगीर ।
त्रिबिधि भांति भासै रहै, रज्जब पूरम पीर ॥१७॥
भै बे भजन मैं रहै सुकृत सांरया पम्र ।
जन रज्जब निरभै भये बहु दिसि निकसै मन्न ॥१८॥
भाव भगति भै बिन नही बिन भै भजै न राम ।
रज्जब भै बिन सिध्द ह्वे भै बिन सरै न काम ॥१९॥
रज्जब सब डरि निडर कौं निरभै कौ भै पूरि ।
निरसंस संसा भर्या परतषि प्राण हजूरि ॥२ ॥

नीडर निलज निसंक ह्वै पूरि करै अपराध ।
जन रज्जब जम सौं रचै परिहरि संगत साध ॥२१॥
मैं भाग्यू भूलै भजन सतसंगति रुचि नाहिं ।
जन रज्जब सेवा गई, संसा माहीं माहिं ॥२२॥
अदब अकलि मैं पाइये सरम साफ दिल माहिं ।
बेअदबी बेसरम मैं रज्जब रजमा नाहिं ॥२३॥
जो तन निपज्या नीति करि, तहां न मीसिग साज ।
जन रज्जब सुत पंच का करैं कौन की लाज ॥२४॥

## विरक्त का अंग

सागी साचे की दसा तहां न माया भास ।
जन रज्जब तब जाणिये ब्रह्म अयिनि परकास ॥१॥
गृह दारा सुत वित्त सौं यहु मन भया उदास ।
जन रज्जब रामहिं रत्या छूटा जगत निवास ॥२॥
त्याग तेग सौं मारिये रज्जब लंगर लोह ।
मनसा वाचा करमना तौ तिमहु लोक में सोभ ॥३॥
रज्जब रहि गया राम मैं सभि रामति का दुंद ।
मभि नीर परसै नहीं भया सीप की बुंद ॥४॥
वग वसुधा सौं बैर विधि विरच्या लगि वैकुंठ ।
रज्जब रचै न विनसती यहु उर अंतर मठ ॥५॥
माया काया मनमतैं विरच्या प्रान प्रचंड ।
रज्जब न्यारा माव बसि नजर नहीं मी खंड ॥६॥
विरच्या बरसै बरतणी तन मन प्रीतसकार ।
जन रज्जब रस नांव सौ यहु विरकत व्यौहार ॥७॥
रज्जब रूठा रिद्ध सौं सिद्धि सुहावै नाहिं ।
इन माग इनका धणी सो बैठ्य मन माहिं ॥८॥
पाई परि पाई नही रिद्धि सिद्धि निधि ऐन ।
रज्जब त्यागी त पुरिष संतधि सकति म सैन ॥९॥
चौपाई मुख की सिसक गुदा काढ़ी मां त्यागत सोच नहीं बुध ग्रीमां ।
त्यूं विभूति बरतण लै डारी यूं माया मुनिवर सौं न्यारी ॥१०॥

साखी सोनैं मुख पीला किया रूपै किया सु सेत।
जन रज्जब सु वियोग बहि, प्रो साधू किया न हेत ॥११॥
घोड़े के मुख सौं रह्या जब काटी जम माँहि।
रे रज्जब संसार मैं सो फिरि आवै नाँहि ॥१२॥
रज्जब खूंटी त्रिभुवन करसौं त्रिय तसकार।
सो जोगी जसवंत जसि जग मैं जै जै कार ॥१३॥
रज्जब आये रहसि मैं नर मनसा मनमेस।
तनि तिरिया तसकार करि बेसि भजे इक बेसि ॥१४॥
नर नारी न्यारा भये निकसि गया नौ खंड।
रज्जब राता राम सौं रही सु माया मंद ॥१५॥
रज्जब त्यागी घर भरनि परनारी न सुहाइ।
अहि अपनी तजि कांचली काकी पहिरैं आइ ॥१६॥
मनसा बाचा करमना यहु न त्यागनहार।
रज्जब सबै न उझके उर मदमारु महार ॥१७॥
रज्जब रवि के वरस तें बरषि सीक चपि नीर।
सक्ति सुन्दरी सनमुखै सो गति साधू बीर ॥१८॥
कायर काटहु सौ गिरहि कंध न लाहि करवाल।
त्यूं गजपति अवलहूं सु भर गहै गरीबी ढाल ॥१९॥
साधू सुत कै आवने हुरि सिधी माँहि हेत।
पूत नीपजै मात मरि जोटा जब्बर जेत ॥२०॥
बादल बाइ बारि रज मोती सरगुण निरगुण रासै राग।
केलि कपूर बहुरि माँहि आवै यूं रज्जब जीवा बैराग ॥२१॥
भस्म सु निकस्या घूम ज्यूं रह्या सुन्नि करि सीर।
रज्जब तीर कमान ज्यूं उलटि फिरै बहु बीर ॥२२॥
प्राणी पारे परि रमै वामा बैद न दूर।
पै उमै न पावै उभैकर जो है गयं कपूर ॥२३॥
पारे प्राण कपूर है, उभै उडै सभि साथ।
एक सु वामा बैद करि एक सु नावहि हाथ ॥२४॥
बिरकत तापहु पवन की सो सम कही न जाइ।
बीज बुहारी की पकरि मर देखी निरताइ ॥२५॥

मौ गति भूटै एक को सासरि गति सब कोइ ।
रज्जब टूटा सो भला जो फिर हरया न होइ ॥२६॥

मिहरी मूगौडी भई साधू मन भै काग ।
जन रज्जब जी यों तजे ताके मोटे भाग ॥२७॥

मूंगौडी वाइस तजी त्यू बैरागी तजि बाम ।
पंथी की पर सीजिये रज्जब सरैं सु काम ॥२८॥

नारी नैन न देखिये श्रवणौं सुनिये नाहिं ।
बइमर बचन न बोलिये रज्जब रस मंग माहिं ॥२९॥

माता मेरी सकल ही जो जममी जमि आइ ।
जन रज्जब जननी सबै कासौं बिषै कमाइ ॥३०॥

जामाता मैं हम भये सो माता सब ठौर ।
रज्जब विरच्या यू समझि नहीं भजन कोइ और ॥३१॥

सब ही माता सब बहैन सब पुत्री कर जानि ।
रज्जब के रमणी नहीं समुझ्या सतगुर बानि ॥३२॥

रज्जब रिक्से पूत ह्वै पैठे पुरिष न होइ ।
नाता माता का रह्या सो जन बिरला कोइ ॥३३॥

नारी नींद न बिलसिये सुदर सुपनै त्यागि ।
जन रज्जब जगि बहु जती बंदनीक बैरागि ॥३४॥

मनसा नारी त्यागि करि मन बैरागी होइ ।
रज्जब राखै जतन यहु जती कहावै सोइ ॥३५॥

रज्जब दारा देह ज्यौं परसै पुरुष न प्राम ।
वासिक बिसम न ऊपजै सो बैरागी जान ॥३६॥

पंच बिसै पंचौं रहित मन सु मनोरथ त्याग ।
रज्जब साइब राम की यहु उत्तिम बैराग ॥३७॥

मनसा पंच भरतार तजि ज बैरागिन होइ ।
रज्जब पावै परम घर जहां न सुख दुख दोइ ॥३८॥

जन रज्जब तनसू तरक मन की मानै नाहिं ।
सो बिरकत ब्रह्मण्ड मैं बैठा निज मत माहिं ॥३९॥

माया मोह मदन मन मारै काया कसणी दंड ।
सो रज्जब विरकत सही घर ही मैं बनखंड ॥४०॥

मूल मूल संसार महु पंथि प्राण तजि मास ।
रज्जब पत्र न फूल फल त्रिबिधि भांति सुख नास ॥४१॥

मिरतग कौं मूसी * महीं क्या फूटे बिन आगि ।
रज्जब रीते भाव बिन सो प्राणी दे त्यागि ॥४२॥

रज्जब रीते प्राण मैं हेरि धर्में क्या हाथि ।
घट न धरइ बैरागी सुप सरीरो साथि ॥४३॥

रज्जब रीती आतमा ज हिरदै हरि नाहिं ।
तहा समागम को धर सूणे मंदिर माहिं ॥४४॥

ज्यूं प्राण बिन कुछ नही त्यू आतम बिन राम ।
सूने मन्नी सोभ क्या रज्जब रीती ठाम ॥४५॥

भड़ न घाटै भड़ की सुख दुख हूं भैभीत ।
रज्जब उसी टीर तजि ले पसु की रस रीत ॥४६॥

रज्जब घाटै भड सुत जब लग सुद्ध सरीर ।
सुख सुख भरि भावनों सुख मल नहिं पीर ॥४७॥

तन मन त्रिगुणा त्यागि करि आतम उन मनि लागि ।
गा रज्जब गमहि मिल्यू पर पद अमर भागि ॥४८॥

मू अनाथ [illegible] नीरम्या तव मु मर मब काज ।
रज्जब पाया प्रान नै पर अपर का राज ॥४९॥

## सुविस त्याग का अंग

बमि अबगि [illegible] गम जन रज्जब [illegible] राज ।
पै मनर मनारथ त्यागन मरा [illegible] यदु काज ॥१॥

[illegible] गन गर त्यागिव मम मनारथ माहि ।
जन रज्जब [illegible] गा नव मगि [illegible] माहि ॥२॥

नन गा [illegible] [illegible] गर मन मा [illegible] माहि ।
रज्जब [illegible] नव मगे [illegible] [illegible] गु माहि ॥३॥

रज्जब [illegible] मारे मर पर नर मै माहि मनन ।
[illegible] मनमारथा नर्के गु [illegible] मन ॥४॥

---

* मूसी [illegible]

## मोह मरदन निरमोही का अंग

ज्यूं ससिसहु समदी मिलहिं त्यूं पंचतत परिवार ।
सो संतति मच्छु है नहीं रज्जब समझि विचार ॥१॥

ज्यूं रज्जब नर नाव मैं दह दिसि बैठहि आइ ।
पार गये पंथूं पडे मोह न बांध्या जाइ ॥२॥

महु बिहंग बैठें बिरपि पंथी बसै सराइ ।
रज्जब मोह न बंधहीं नर देखी निरताइ ॥३॥

बैरी मिलहिं सु बर विधि रणी मिले रण भाइ ।
रज्जब चूक बैर रणि पीछे रह्या न जाइ ॥४॥

सीत कोट सपने की संपति माया मोहिनि फंद ।
रज्जब रारयू देखतों कहां होइ आनंद ॥५॥

## संपति बिपति समहरन का अंग

संपति बिपति सु समहरन जामें यहु मत होइ ।
रज्जब रिधि आय गये जे रंग न पलटै कोइ ॥१॥

रज्जब संपति बिपति मैं साहस एक समान ।
आतम अकलि अतीत बह पाया पद निरबान ॥२॥

मान रहत अरमान मैं सुमन समन्दर देखि ।
संपति मिलि सो ना बंधे घटै न बिपति बसेखि ॥३॥

संपति मैं मूष द्रसे बिपति मध्य बहु बंक ।
रज्जब मन सु मयंक से नहिं ईसर नहिं रंक ॥४॥

पूजा पुष्टि सु दीन ह्व बिन पूजा बलिवंत ।
रज्जब सीनी बाम बुधि समझ्या साधू संत ॥५॥

संपति मैं सिमटी रहै बिपति बिगासै जोइ ।
साध कमी ज्यूं जाइफी गुण नहिं ब्यापै कोइ ॥६॥

आमिस अघृग हस्ति समीसहि तो तन कोमल भार ।
रज्जब रहणा उभै रस बाया कष्ट कठोर ॥७॥

बहु पूजा मन मग भय तुछ सेवा दीरघ ।
रज्जब अज्जब देखिया महत महोदधि मघ ॥८॥

## ल्यौ का अंग

रज्जब ल्यौ मधि लंघियेहि मांबे मोक अनंत ।
आतम के अंतर उठै कामणि पावै कंत ॥१॥

ल्यौ माग्य सहिय असह, ल्यौ मैं लूटि अपार ।
रज्जब ल्यौ सहिये मुक्यौ उर आननि आधार ॥२॥

ल्यौ की लाठी मारतौं मीच सु मारी जाय ।
रज्जब ल्यौ लासहि मिलै ल्यौ मैं काल न खाय ॥३॥

रज्जब ल्यौ मैं लाभ है, तीनहु वायहु मांहि ।
ल्यौ मैं सत लाग नहीं और सता मिटि जांहि ॥४॥

जन रज्जब या लोग मैं ल्यौ निस्तारनि हार ।
आदि अंत मधि मुनि मही सब दीरघ ल्यौ सार ॥५॥

रज्जब साइक और ल्यौ ल्यौ मैं रहै सुसाज ।
मधु दीरघ ह्वै लागि ल्यौ ल्यौ करणी सिरताज ॥६॥

ल्यौ मारग सटे नहीं सोभी छूटण हार ।
रज्जब पग आगें धरहि परपंची सिरदार ॥७॥

रज्जब माहा माम ल्यौ टूटे टोटा हाणि ।
सावधान सोधे रही रे जिव जीवण जाणि ॥८॥

ल्यौ सुमिरण धुन ध्यान धरि चितवि मह नर नाम ।
जन रज्जब जपि जिकर रटि सुरति संभालो राम ॥९॥

बंदे को यहु बंदगी साहिब करना यादि ।
यहि सेवा सुमिरन यहै यहै जिकरि फरियादि ॥१०॥

## सुमिरण का अंग

ग्यार राम नाम गुण मंत्र मध्य नाम निरंजनं ।
अधा धावै मधा गाव मन मरिये मंजनं ॥१॥

साखी रज्जब रटि अरि नाम सौ आठौ पहर अखंड ।
सुमिरन सम सौदा नहीं निरखि देखि नौ खंड ॥२॥

इस माया मद्दाण मधि सुमिरण सम कछु नांहि ।
सो अपार उर आणिये जन रज्जब जिव मांहि ॥३॥

मावन भापिर बार मिधि मध्य रसन रंकार ।
रज्जब लिया विलोइ चित आतम का आधार ॥४॥
रज्जब भजन भंडार मैं दीरम दौलति होइ ।
इहां सुखी संसार मधि आगे आनंद होइ ॥५॥
रैणाइर रंकार मधि मुक्ता रिधि सिधि माहिं ।
जन रज्जब मति आप करि रतनहु टोटा माहिं ॥६॥
साहिब के घरि सौंज बहु सुमिरन सम कोइ नाहिं ।
रज्जब भजि भगवन्त हूं सकल घोसता माहिं ॥७॥
रज्जब धंन्य बंदगी कियूं सरै सब काम ।
सेवक सबा करि लहै सिरी सहित सिरताज ॥८॥
अकसि उजास अनंत बसि रिधि सिधि निधि मधि नाम ।
रज्जब आवहिं स्यौ सकति सति सुमिरन जेहिं ठाम ॥९॥
रज्जब अज्जब राम धन बिघन रहित यहु माल ।
चित चहद जाकौं मिलै भाग भले तहिं भाल ॥१०॥
तीन लोक चौन्ह भुवन अरु ब्रह्मण्ड इकीस ।
सब ठाहर सीझ सुमिरि रज्जब रहु जगदीस ॥११॥
च्यारिहु जुग चहु बद मुख सब वृहावहिं माउं ।
रज्जब सिधि साधिक हैं यहु सीझण की ठाउं ॥१२॥
पर दरसन मावें कहै नाव बद कुराम ।
सो रज्जब माव गह्यो पाया भद बिमाम ॥१३॥
मब ही बर बिमोय करि अत दृढ़ावहि माम ।
रज्जब जग जगदीस भजि मता ही है काम ॥१४॥
साध बद बासहिं सु यौ राम कहै मब मीन ।
जन रज्जब जग ऊधरहिं जो जिव जगपति मीन ॥१५॥
रज्जब पठ राम म मा रट डारै होइ ।
मिमिथे का मारग दहै और म दूजा काइ ॥१६॥
साध बर मार कहै मब नजि ममिरण साग ।
रज्जब रम रकार यौ मस्तगि आमा भाग ॥१७॥
रज्जब टीका नांव को बेद पुरान मु दहि ।
यू ममबेमा त्यागि मब हरि सुमिरण करि मंहि ॥१८॥

नांव मागि नर निस्तरहिं हिंदू मुसलमान ।
उभै ठौर एकै कही रज्जब बेद कुरान ॥१९॥

गगनि गुफा कुंभ कूपि मैं स्यूंम ममम मरनाथ ।
तौ तीन्यूं क्या दूरि हैं, जे रज्जब रज हाथ ॥२०॥

एक अलिफ मैं सब इलिम कुलि कतेब कुरान ।
हुआ सबि हाफिज भया जन रज्जब सब जान ॥२१॥

सब इलमौ सब अलफ है कुलि कामिल इस माहिं ।
तू तामैं पै मस्त होई और कहा कछु माहिं ॥२२॥

रंकार अलिफ यहु वेद मैं है आतम अरवाहि ।
रटि रज्जब कण सीजिये भूलि न कूकस खाहि ॥२३॥

रंकार अलिफ रोटी बड़ी रज्जब रुचि सौं खाइ ।
भूख भंग भगवंत लग यहु आपन की राह ॥२४॥

ररै रीझ्या राम जी अलिफ अलह अस नांव ।
रज्जब दून्यू एक हैं मन वच क्रम करि गाव ॥२५॥

रज्जब राम रहीम कहि मांगि पुरुष करि यादि ।
सदा सनेही सुमिरिये जनम न जाई बादि ॥२६॥

अल्लह अल्लह कहत ही अल्लह साथा सु आइ ।
रज्जब अज्जब हरफ है हूर्द हेत चित लाइ ॥२७॥

सफल नांव जिव क सग आप जिकर रट अंत ।
रज्जब राम रहीम रस सिम्या सु निरमल मंत ॥२८॥

नाव अनकौ एक है तो सब राम रहीम ।
ज्यू त्यू सुमिरै साइयां जन रज्जब सु फहीम ॥२९॥

नाव अनंत अनत क सा सब एक समान ।
रज्जब जाणै सा सुमिर मन बच क्रम उर आन ॥३०॥

नाव अनकौ एक गुन ज्यू बहु बून्द वारि ।
जन रज्जब जाणिए बही सर देखो सु निहारि ॥३१॥

ज्य आतम अरवाह एक त्य ही राम रहीम ।
उनि क नाव बहु है नहीं रज्जब समझ फहीम ॥३२॥

साहिब सबका एक है राम नांव अनेक ।
रज्जब समुझै समझ ही पूरण परम विवेक ॥३३॥

रज्जब नांव सु एक के अनतो कहै अनंत ।
कोई सुमिरो येक फल वेस्या बदति महंत ॥३४॥
सो तू साईं सुमिरिये बैठया यह्य संभाल ।
रज्जब रामहि ले उठहु ले लागा मधि चाल ॥३५॥
सोये सूता ले उठै मुखि हिरदै हरि नाम ।
जन रज्जब ज्यूं जीव सब अपणे अपणे काम ॥३६॥
ज्यू जोगी मृग सींग * सौं बिप्र जनेऊ आणि ।
त्यू रज्जब रामहि गहो सकि हारिल की वाणि ॥३७॥
तन मन ले सुमिरन करै रोम रोम रटि राम ।
यू रज्जब जगदीस मधि सरै सुधामम काम ॥३८॥
सुमिरण सुपति संभासणा अवगति या दिमराम ।
मजन रहै भूल न प्रभु, रज्जब निस मधि लाम ॥३९॥
बंदे को यहु बंन्गी साहिब करणा यादि ।
यह सुमिरण सदा रहै रहै जिकर फरियादि ॥४०॥
तुही तुही तनमै करै इक सत जिप तिहु काल ।
जन रज्जब रवि सों रटै भाग भमे तिहि भाल ॥४१॥
प्राण प्यंड ब्रह्मण्ड मधि जीव जगत गुर नांव ।
संत सजीवन सो सुमिरि तिनकी मैं बलि जांव ॥४२॥
नांव लेत निरभै भय साधू सुर नर सेस ।
जन रज्जब ले लूटि है मनिषा देही देस ॥४३॥

ारिल सदा सनेह रहै सुमिरण सू भाग भजन मैं भीगा भाव ।
जन रज्जब जपि जीवन जीया मनिषा देही पाया दाव ॥४४॥

ाखी सब ठाहर सु उपाधि है सुमिरन मैं सु समाधि ।
रज्जब गुर परसाद सूं सो ठाहर सुख साधि ॥४५॥
सुमिरण सतिया दीजिये तौ नख सख सीतल होइ ।
दूजी ठाहर दहण सब रज्जब देखा जोइ ॥४६॥
सुमिरण महद सु दीजिये प्राण प्यंड कूं पोप ।
रज्जब दोप कहां रहै भाग मसर दोप ॥४७॥
सुख अनंत हरि नांव मैं जाका वार न पार ।
जन रज्जब आनंद है सुमिरण सिरजनहार ॥४८॥

---

* यह पाठ भी मिलता है ।

सबस सुखी हरि सुमिरि तौं मनसा बाचा मानि ।
जन रज्जब रुचि सौं रटी यहु चित जीवन जानि ॥४९॥

रज्जब अज्जब काम है, राम नाम रुचि लेव ।
आठौ पहर अखंड रटि मानिष सौं ह्वै देव ॥५०॥

साँई सुमिरन सति है, सदगति सुमिरन हार ।
जन रज्जब जुगि जुगि सुखी बकता सुरता पार ॥५१॥

सुरति माहिं साँई सुमिरि नाउं निरति मधि राखि ।
जन रज्जब जग ऊभरे, सतगुर साधू साखि ॥५२॥

रज्जब अज्जब यहु मता निस दिन नाउं न भूल ।
मनसा बाचा करमना सुमिरन सब सुख मूल ॥५३॥

सुमिरण समि संपति नहीं धन नहिं ध्यान समान ।
चित यहु बारंबार लै रज्जब रिधि रट जान ॥५४॥

निमिष महूरत नाम लै तिल पल सुमिरम होइ ।
जन रज्जब इस उमरि मैं बरियां साफिल सोइ ॥५५॥

सोई बेला सो घड़ी सो छिन मात्र रसंति ।
रज्जब रहिये राम मैं और अकारथ जंति ॥५६॥

सुमिरण मैं सुकृत सबै जे मन बच क्रम होइ ।
जन रज्जब जगपति मिलै भेद न भ्यास कोइ ॥५७॥

सब सुकृत सेवग किये जब चित जगपति लीन ।
रज्जब राम बिसारतौं बिबिधि बुराई कीन ॥५८॥

नांव लेत नेकी उदै बिसरति बदी होइ ।
जन रज्जब जाणी जुगति परतषि दीसै दोइ ॥५९॥

रज्जब तिरिये राम भजि बूड़ै राम बिसारि ।
जगपति जाण्यों जीति है हिरदै नहीं हितहारि ॥६ ॥

निरभै प्राणी नाव मैं सा मूलै भै पूरि ।
त्यू रज्जब मुनि मीन जन दुख दीरघ भव दूरि ॥६१॥

नाउ निरंजन नीर है महा मुनी मन मीन ।
सुख सागर माहै सुखी दुख दीरघ जब भीन ॥६२॥

नाव मेह सेती मनै तौ कोइ गुण व्यापै नांहि ।
यै हरि सुमिरन हेत बिन तौ दूवर दगधै मांहि ॥६३॥

नाव नांव की एक मति पाणी पेम सु पोष ।
इन दोन्यूं के दोइ बिन रज्जब रवि गुन दोष ॥६४॥

रज्जब नांव नराधिपति सकल अंग उमराव ।
मेले कारिज सिधि ह्वै अमिल भले नहिं पाव ॥६५॥

अज्ञान कष्ट अटसट सहित भरत सु रोमै कीन ।
जम रज्जब हरि नांव मैं मन वच क्रम जो लीन ॥६६॥

सुमिरण कर सु सास्तर, बुधि उपजै सो वेद ।
विधिया तब सो व्याकरण रज्जब पाया भेद ॥६७॥

अस्थूल सु आखिर अर्थ हरि कार्य पवित प्राण ।
रज्जब भाखा गुणी सो समुझा सोई सुजाण ॥६८॥

अर्थ किया तिम प्राण न तन मन माया ठौर ।
रज्जब रहि गया राम मैं भूलि न भ्यासै और ॥६९॥

कोड़ी कोडि न चाहिये कहसीं केवल राम ।
रज्जब दम दम सुमिरिये नही दामों सू काम ॥७०॥

दया रूप नर तरु मई पै गुन स्वाद न आहि ।
ब्रह्म अगनि मिल जाय बिन रज्जब सो धन माहि ॥७१॥

सप्त धात तन धुख ह्वै पड़ि पावक प्रभु नांव ।
रज्जब रसमत ऊतरै बासदेव बलि जांव ॥७२॥

सप्त धात पलटै सु तन परसे पारस नांव ।
रज्जब व्है कलंक धूल प्रभु प्रभुता बलि जांव ॥७३॥

हरि सुमिरन ससा हरै पाप आप सौं जांहि ।
जन रज्जब जगदीस भजि नौ निधि है जामांहि ॥७४॥

करमहु करम सु नांव निज अमका जम हरि जाप ।
रज्जब रटतौं ना रहै प्राण प्यंड के पाप ॥७५॥

रज्जब नीरज नांव निज रिधि सिधि दाम बतीस ।
पहुपपन प्रभुता अनंत राम नाम फल सीस ॥७६॥

घट दीपक बाती पवन ज्ञान जाति सु जासि ।
रज्जब सींचि तेल ले प्रभुता पुष्टि प्रकासि ॥७७॥

नांव निरंजन नीर है सब सुकृत बनराइ ।
जन रज्जब फूलै फलै सुमिरन सलिल सहाइ ॥७८॥

सुमिरन सेवा मूल है सब सुकृत सिंगार ।
रज्जब सोभा सकल की देखहु सुमिरन हार ॥७९॥

नांव नाक बिन कछू नहीं सुकृत सबै सिंगार ।
रज्जब रुचै न राम बर तामैं फेर न सार ॥८०॥

सब सुकृत है सुन्नि सभि एकाएक सुभाव ।
दृष्टि मांभि दस गुन सबै नहीं त मांहीं ठांव ॥८१॥

भौ समुद्र सिर पै धरी नांव निरञ्जन नांव ।
काया चाहै पार कौं सो प्राणी चढ़ि जाव ॥८२॥

जपि जिहाज मनमिधि अगम जीव चढ़ौ कोइ आइ ।
रज्जब पारस परम गुरु सो पग परसै जाइ ॥८३॥

रज्जब अज्जब देखिये जपि जगदीस जिहाज ।
प्राणी पहुंचै पार चढ़ि सर सु आतम काज ॥८४॥

बोहित बिन क्यूं समंद लंघिये औषदि बिन क्यूं रोग ।
त्यौं रज्जब निज नांव बिहूना कदे न निपजै जोग ॥८५॥

ब्रह्म बिरह की सहस जड़ सबही औषधि आदि ।
रज्जब सोग कहां रहै पाइर खीज्यो बादि ॥८६॥

चौपई देख्या दह दिस नाही माम रज्जब उलटा उनमन लाग ।
सुमिरन सांभ उतरिबा पार भौ सलिल कार्वर येक दुवार ॥८७॥

सोरठा समभि सुहागा रूप सांच सहित सुमिरन करै ।
रज्जब कुमति मनूप जेहि कंचन करता गरै ॥८८॥

साखी निहचै परि नावै नहीं करणी बड़ा करार ।
जन रज्जब सब सोधि करि काढ़या सुमिरन सार ॥८९॥

रज्जब निहचै नीव करि भाव भगति की भीति ।
सा सुदिढ निहचल रहौ और सबै भै भीति ॥९०॥

भगति भावसी ठाहरै चपल चावली जाइ ।
रज्जब समभि असमभि का भजन भेवि निरताइ ॥९१॥

रज्जब रत रखुार सु मम्मै मनसा नांहि ।
सदा सुखी सुमिरन करै महा मगन मन मांहि ॥९२॥

सिख्या पढ़्या सीख्या सुण्या जीव कह्या जब राम ।
मनसा बाचा करमणा येता ही है काम ॥९३॥

चौपई पाव नांव छाडै संसारा अरधै नांव सरीर विसारा ।
पौण नाम जीव व्रत त्यागी सेर नाम सोइ सूरत लागी ॥९४॥
नींद लागि होई निरमूल तौ सुमिरन संगि क्यूं न सब भूले ।
पांसि पसारा परसै नाही यूं रज्जब न्यारा है माहीं ॥९५॥

## भजन भेद का अंग

सब करणी साधन किये त्यागी सूर सुजाण ।
जो रज्जब रामहिं भजै मन मनसा करि आण ॥१॥
जन रज्जब जंजाल तजि मन मनसा करि ठाई ।
करनें कौ कछु क्या रह्या यू लागा जब नाई ॥२॥
रज्जब राखो नाव मैं पंच पचीसौ मस्त ।
सब सुमेटि सुमिरस करै सोई साधू जस्त ॥३॥
रज्जब सुमिरै राम कौ रोकि दसौ दिसि द्वार ।
नख सख राखै मांव मैं यों ही पैला पार ॥४॥
जन रज्जब जगदीस भजि आतम के अस्थान ।
सुख सागर सबूह की अंतर उमडै आनि ॥५॥
रज्जब भजि भगवत कौं तम मन भीतरि पैठ ।
निरमल नैनौ निरखि भवि मांभि निरंतर बैठ ॥६॥
नाभि निरंतर नाव बिन राखै भावै नाहिं ।
रज्जव सब पड़दे उठ जाक मधु मन माहिं ॥७॥
नाउ निरंजन लीजिये तम मन आपो गालि ।
तौ रज्जब रामहिं मिलै बैठें सासहि सालि ॥८॥
नाउं निरंजन लीजिय तम मम आतम माहिं ।
जन रज्जब यू सुमिरिसौं परमपुरिप मिमि जाहिं ॥९॥
अस्थिर आसम एक पल रज्जब भजई राम ।
मन मोती ज्यूं सीपज स्वाति नक्षत्री नाम ॥१ ॥
नहीं सु निकसे आरसी सती सु गामब होइ ।
रज्जब दरपन सती के परतपि दीस दोइ ॥११॥
साज सती रामै कहै, परिहर तम भन प्रीति ।
इष्ट अभ्यासै उभै को तज भवणी रस रीति ॥१२॥

एक बंदगी बिस्व में एकै ब्रह्म सु होइ ।
रज्जब सावण स्वाति की बारि बद गुण दोइ ॥१३॥

तन सुमिरन ढेकूं चड़स रहट रूप उनहार ।
रज्जब सुमिरन सुभि मन भरया विपुल अपार ॥१४॥

अराध अराधहु अतरा भजनि भजनि बहु भेद ।
रज्जब पावै एक को नर निज नांव न बेद ॥१५॥

भगवंत भजन सब बिधि भला पायें मनिया चूनि ।
रज्जब सुमिरन सो सही आपरि सरबै सूनि ॥१६॥

सुमिरन लागे लोक बहु परि सहै न ठांबी ठौर ।
रज्जब मिलिये राम सौ बहु अराध कोई और ॥१७॥

औषधि अकल अराध है सब सन्तन की साखि ।
रज्जब रोग न तनि रहै कोई स्यौ पथ राखि ॥१८॥

नांव नेह बिन कीजिये ज्यू रूखा खाया नाज ।
रज्जब प्रान न पुष्ट ह्वै मरै न जीवन साज ॥१९॥

काचे पाके रूखे सूखे नाव नाज महि दोष ।
पै छप्पन भोग सहत अघीजै सो कछु औरै पोष ॥२ ॥

रज्जब मैं भगवंत कै रोम कहै उठ राम ।
अहुठ कोड़ि रटि एक फल एकहि एकहि भाम ॥२१॥

ऊंचा नीचा होइ जग करि डंडोत निमाज ।
सु रोम रोम रज्जब भया गुर गोव्यंद के काज ॥२२॥

अठार भार ऊभी भई आइम अबगति नांव ।
रज्जब जीये राम रस सो बेला बलि जांव ॥२३॥

रज्जब माया ब्रह्म का रोम रोम रस पीन ।
सो बिहड़ै तिन बिछुड़ ते जैसे जल बिन मीन ॥२४॥

मन रज्जब बिछड़त मरहिं जिनके अमल अराध ।
मनसा बाचा करमना साखी सतगुर साध ॥२५॥

नीत निवृति प्रभुता प्रभू, चतुर प्रस्थानि गौन ।
रज्जब पावै प्राणपति भुनि भगवंत सु भौन ॥२६॥

सरियत सेब सरीर की तरीकत दिल राह ।
माहि मारफत कीजिये हकीकत मिल जाह ॥२७॥

भरम जोग ब्रह्मण्ड मधि करम जोग प्यंड माहिं ।
भगति जोग सो प्राण धरि, अगम जोग ठहराहिं ॥२८॥

मणिये मोहन नाव सब सूत समीरन मेरु ।
जन रज्जब हित हाथि मे आठो पहर सुफेर ॥२९॥

अकल कष्ट सेती घड मणिये नाव अनंत ।
रज्जब माला माहिली सुमिर साधू संत ॥३०॥

पंच पचीसी त्रिगुण मन ये मणिये जिन फेर ।
रज्जब माला माहिली जोगेस्वर जप हेर ॥३१॥

मारुत मोज सु माला मणियें मनहु उचारण मंत ।
रज्जब सूना जाप यहु जोगेस्वर सुमरंत ॥३२॥

माला घटि मणियें सबै सुमिरै सांई साध ।
रज्जब भुव तसबीर ही माला मिली अगाध ॥३३॥

रज्जब माला माहिली पायौं सतगुर दइ ।
सो सुणि बांधे काठ का कयहु भार न लइ ॥३४॥

रज्जब सुमिरन माहिला माला रहित सु होइ ।
पंच पचीसी त्रिगुण मनहि बिरला फेरै कोइ ॥३५॥

बिन हाथहि बाहन बरन छूटहि सांस सगीर ।
तब काष्ट घर कौन के सुमिरण सुरति सधीर ॥३६॥

रज्जब उर करि कै भजनि कछु पाठा पढि आइ ।
जथा रूपथा ठौर बिन गैगी माउ कहाइ ॥३७॥

रज्जब उर करि कै भजनि अतर हैं दै हाथ ।
आतम अबला धाम म घर बाहर निज नाथ ॥३८॥

ग्रहमहल ग्वार मधि रहै सु आतम राम ।
सा गुन सुन माहि कहि सबै सुरति सहै बिश्राम ॥३९॥

रज्जब सुमिरन सबद मधि घर बाहर क सुग ।
ज बारै पठे प्राणिया घर न पाव दुग ॥४०॥

सब आदिर मारै सुमिर दे दिब दृष्टी दाम ।
रज्जब रूम रहैं सबै स्य हि प्राण पचास ॥४१॥

बावन आदिर करि भज बेस्वा बावन बीर ।
जन रज्जब सुध सढ मा रहै सबै मैं सीर ॥४२॥

रज्जब रहै न नाव बलि नेह बिना मन नीर।
ज्यूं भूमि बिन पाषाण रोक्या रहै न नीर ॥४१॥

## अजपा जाप का अंग

सरीर सबद अरु सांस करि हरि सुमिरण तिहु ठांव।
जन रज्जब आतम अगम अजपा इसका नांव ॥१॥

मुख सौं भजै सु मानवी दिल सौं भजै सु देव।
जिव सौं जपै सु जोति मैं रज्जब सांची सेव ॥२॥

मुख भाषिर मुखि सप्त सुर मुखि माया सु छतीस।
य तौं ऊपरि उर भजन मण माषिर जगदीस ॥३॥

नेह निन्यानवे सू किया ध्यान धरया बिन अंक।
रज्जब मनहु जिहाज बिन हणवंत पहुंच्या लंक ॥४॥

रज्जब सहस नांव पखो सुपरि आतम जाहि अकास।
एक प्राण पारा मई उडहि नाव परनास ॥५॥

नर नग गुटिका सिद्ध तन पंखौ बिना उडंत।
तैसे रज्जब नांव बिन नेह माग तहं जंत ॥६॥

रज्जब हित पर हृद हुई निरख्या नेह निराठ।
पै पाया पाषाण मुख करी सु ऊबट वाठ ॥७॥

नांव सुई पट प्राणपति सुरत सनेही ताग।
रज्जब रज तज काढतौं कौन बसत बिच लाग ॥८॥

रज्जब रटतौं जीव ही चित चातिग समि आप।
गक बक्त्र बोलै नहीं आप हरत हरि आप ॥९॥

रज्जब रसना रहत रस पीवै प्राण प्रबीन।
बक्र बिना ज्यू वारि सुख राम रोम रै मीन ॥१०॥

रज्जब रसना बोलई बहु मंत्री चुपचाप।
पै पधू का रज सम्रथ यूस अयोध्या आप ॥११॥

मुख भारत सेती अगम सुमिरन सुरति मंझार।
रज्जब करसी एक को अजपा जप ब्यौहार ॥१२॥

बकत्र बैन बाई रहत होइ सु अजपा जाप।
रज्जब मन उनमनि लगी प्रगटै आपै आप ॥१३॥

मिहुरी पतिव्रत मीन मत दून्यू नांव न सेह ।
पै होते इष्ट मसाहिते नेह मांग जिव देह ॥१४॥

कच्छी पंछी हेत सेहु अडे क्यूं उपजंत ।
रज्जब राम कहै विन ऐसे अजपा आप करंत ॥१५॥

हरिकी गाहक हेत के नारायण से नेह ।
तो मनसा वाचा करमना संतहु करहु सनेह ॥१६॥

रज्जब जपि जपि मन थके अजप जप्या नहिं जाइ ।
अगह अंब ज्यू आरसी आस्यूं सो न गहाइ ॥१७॥

सुपिनैं मन सुमिरण करै सगै नहीं तन ताप ।
अचेत उदर अरभक बंधै यों ह्वै अजपा जाप ॥१८॥

मन पवन अरु सुरति कौ आतम पकडै आप ।
रज्जब साबै तत सौं यौं ही अजपा जाप ॥१९॥

सुमिरन सुंभि समानि है आतम आम अनेक ।
रज्जब बाइ बिचार मिल वाट बटाऊ एक ॥२२॥

ब्रह्मण्ड प्याइ मन प्राण तजि सुन मैं सुरति समाइ ।
रज्जब अजपा जाप यहु नर देखौ निरखाइ ॥२ ॥

मुरता सुई समानि है रज्जव वैद बमेक ।
मनमनेत आराध मैं उम बस्त ह्वै एक ॥२१॥

नाउं सिहारी नापगा नदी नाम निज नाव ।
पथ पथिक मिमि एक ह्व यहु अजपा बसि जाव ॥२३॥

जिस नुक्ते साहिब सर्वाहि सही सु अजपा जाप ।
रज्जब पावै प्राण सों जा जीवहि दे आप ॥२४॥

चौपई प्रेम प्रीति हित नेह सु मारी राम मुहब्बति सुरति समारी ।
रज्जब रत रुचि घूमि सु आगे द्वादस कला लगनि की सागे ॥२५॥

## ध्यान का अंग

विभूति भूत भगवंत सगि होई सोई ध्यान ।
जथा धोम पावक सहित रज्जब सुभि समान ॥१॥

ध्यान रुधिर खीरी भया ध्यान सु सोहू काम ।
तैसे रज्जब ध्यान मैं प्राण पलटि ह्वै राम ॥२॥

सकल धरम हरि नांव मधि जप तप तीरथ दान ।
ज्यू रज्जब वृक्ष बीज मैं बाहर दसै न पान ॥४॥
निहफल ह्वै नामहि भजै एक महूरत मन ।
ता समि कृतिम न सब कहै वेन्र वेत्या जन ॥५॥
महत मुखी सेती सुणया रज्जब भजन प्रताप ।
ज्यू माया सू माया टव त्यू नार्उ निरजन आप ॥६॥
बहु विद्या हू नर बहुत सुमिरन समि नहिं कोय ।
रज्जब गुण गुण सौं मिलै नाइं सु नर हरि होय ॥७॥
अज्ञान कष्ट सब शक्ति मैं सो सेवा हरि नांव ।
ज्यू मृग भामिन राज घर, सुख संपति द्वै ठांव ॥८॥
नांव धणी सा नाव का दीसै तेज अनंत ।
तीनौ घर सौंखा भया साखी साधू संत ॥९॥
नांव धणी सूं नांव की महिमा अधिक बखाण ।
निज वप चरतो बूडि गये नाइं तिरे पाषाण ॥१०॥
फाटै धमर मुरति पीव मंदिर मुख दिस आन ।
रज्जब धनि धनि नांव बल पानी तिरै पषान ॥११॥
नांवहि राखे प्रानपति अपणी ठौरउठाइ ।
तौ रज्जब सा नाव की महिमा कही न जाइ ॥१२॥
नर नाराइन सौं यहा प्रकट नांव परगास ।
दून्यू आगे नांव कै सेवग स्वामी दास ॥१३॥
रज्जब नाव नराधिपति अंग अनंग उमराव ।
दल बल महिमा का कहू देख्या बिपुल बणाव ॥१४॥
जुगि जुगि राखी नांव की संकटि करी समाल ।
रज्जब महिमा का कहै बद न जाणै ब्यास ॥१५॥
रज्जब महिमा नाव की नर पै कही न जाइ ।
जाकै बसि दोउ देखिये सुदरति सहित खुदाइ ॥१६॥
सक्ल सिब सूरति मुकल मधि मनसा बाचा मानि ।
जैसे रज्जब नांव मैं नाव धनी परवानि ॥१७॥
मूल डाल तरु बीज मधि त्यू जन जगपति नाउं ।
रज्जब रीझ्या देखि करि बड़हु बडी निज ठाउं ॥१८॥

रज्जब एकहि नाव मधि देखी हीरज ठौर ।
संत अनंत समावहीं अस्थल इसा न और ॥१९॥

बचहु बड़ी सांई सही ताहि बड़े ससि साध ।
दून्यू आये नांव मैं रज्जब मोल अगाध ॥२ ॥

ससि सांई तारे सुजन ध्रू रूपी निज नांव ।
परदछिन देहि साम सूं जन रज्जब बलि जांव ॥२१॥

साधू सांई सीस पर नाउं सदा सिरमौर ।
रज्जब रीझ्या देखि कर अकल कले जेहि ठौर ॥२२॥

रज्जब सुमिरन की सिफत मो पै कही न जाइ ।
जाके बसि दून्यू भये सुवरति सहज सुभाइ ॥२३॥

नमो नाव सभि कछु नहीं धरे अथर बिच और ।
जन रज्जब तासौं बंधे ज्यौं ससी एक ठौर ॥२४॥

नमो नाव महिमा अनंत वाच न बानी माइ ।
रज्जब कहिये कौन विधि अकल कह्या नहि जाइ ॥२५॥

रज्जब रंचक भजन की महिमा कही न जाइ ।
अरज नांव पसू ऊधरे नर देखौ निरताइ ॥२६॥

आदम ईदम औलिया रहिये अगह अगाहि ।
सिफति नांव की क्या कहू बस अवंधू वाहि ॥२७॥

सारग धप सिस सुर सुगल भगत होत मु॰ मानि ।
त्यू जगदीस ग्याय बसि जन रज्जब जिव जानि ॥२८॥

नाहर नरप सुमंत्र मधि सबला ह्वै असवार ।
त्यौ नाव सेत नर मेहु सु त्यू नावै करतार ॥२९॥

जन जगपति के मध्य मन ह्वै विसि जिव इक नांव ।
रज्जब राखै नाव मन तिनकी मैं बलि जांव ॥३ ॥

नांव निरंजन जीव है सा साधू मधि सासि ।
तौ रज्जब हरि क्यू रहै बिन आये उन पासि ॥३१॥

नांव मात्र जीवन सबहु आदम की औलादि ।
औरहु और अहार है शिर रीझ्या वादि ॥३२॥

काया काष्ठ मैं बंधी देखौ माया आगि ।
मा मुकती ह्वै रज्जबा नांव अगारे लागि ॥३३॥

करम काष्ठ कहु क्या करै जब प्रगटै पावक नांव ।
अठार भार यय बहम ह्वै बासदेव बसि जांव ॥५४॥
प्रतिमा पूजा नांव धरि नाहये तिरे पषान ।
सोई नाव नर उर बस्या सीर्झे क्यू न सुजान ॥५५॥

## नांव निरूप आदम अकलि का अंग

नांव नाव आदम गढ़ी भरघा सु आदम भार ।
आदम खेवहिं अकलि सू आदम उतरहिं पार ॥१॥
धनि धनि आदम आकिले अकल कल्या धरि नांव ।
रज्जब रीझ्या देखि करि बुधि बधन बलि जांव ॥२॥
नांव नेह नरक बध्या निराकार निरबंध ।
रज्जब धनि आदम अकलि अकलहि बाह्या फंद ॥३॥
अकलि मझीवी आदमहि नांव निनावें दीन ।
अगहु गह्या जिहि बुद्धि सूं असग सलय कर मीन ॥४॥
आदम तै अचरज किया नांव सु दीपक राग ।
तिमिर हंत सो उर धरहु रज्जब जागहि भाग ॥५॥
सांकल आतम राम कू नांव कूप निज जान ।
देखि अबधू बधना जन रज्जब हैरान ॥६॥
मन उनमन मूसल उभै हाथो जोड़ी नांव ।
दद अबंधू बंदगी हिकमति पर बलि जांव ॥७॥
नांव सबहि संगी धरे गहि गहि गुन उनमान ।
यहु रज्जब इस ओर तैं सुमिरन का अस्थान ॥८॥
सबही नाव सुभाव के काढे अकलि बिचार ।
जन रज्जब गुण गूंथि करि, जोड़े सहुस हजार ॥९॥
जती हिकमति हुकम मैं ये सब तिसके नांव ।
सब साहिब जिस नाव मैं ताकी मैं बलि जांव ॥१ ॥
नांव निनावें के धरे संतौ सोधि सुभाय ।
रज्जब माने राम जी सुमिरिउं करी सहाय ॥११॥
निराकार का नांव तनु, असिफ अलह मौजूद ।
जन रज्जब यहु यहम गति मासक है मौजूद ॥१२॥

आकास अनंत आपमें गही, त्यू अबमति रस नांव ।
रज्जब आवै तहां ते मबनि सु आतम ठांव ॥१३॥
निकुल निनावां सुनि मैं आभा रूपी नांव ।
जन रज्जब मिल बाणिगा जल जीवन जिस ठांव ॥१४॥
मही महादेव तै गये नीर नांव आकास ।
सो सहस गुन ह्वै सबै समा किया फिरि तास ॥१५॥
जे कछु उपज्या मांड मैं नांव सबहु के नांहि ।
रज्जब काढे गाम सूं जो सम्भिन उनमांहि ॥१६॥
नांव निनावैं परि धरया तापरि नरका नेहु ।
या परि और न सूझई रज्जब देखै येहु ॥१७॥

## भजन प्रताप का अंग

सुरग रसातल सेस सग जहां तहां सब ठाम ।
जन रज्जब बंदै सबै जा हिरद हरि नांव ॥१॥
देहि घटि नौबति नांव की सो परगट संसार ।
जन रज्जब जगि ममि रह्या सेये सिरजनहार ॥२॥
रज्जब सुरत नांव की नित नौबति जहं बाज ।
सो सुनिये सब लोक में ऊंची मगम अवाज ॥३॥
जाके सुमिरत सुकृति के दिल सु दमामा साज ।
रज्जब खिपि सु बजाइये ह्वै सब लोक अवाज ॥४॥
अति गति सौंधा नांव था सो लीया निज दास ।
रज्जब छाना क्यू रहै बाणी सुजस सुबास ॥५॥
तन मन तिली समान है नांव निरंजन फूल ।
जन रज्जब सूंधे भये मिलि सूंधे के मूल ॥६॥
अठार भार बिधि आदमी चंदन ब्यस्तन नाम ।
रज्जब सकल सुगंध ह्वै धनि संतनि विश्राम ॥७॥
मन इन्द्री पति आतमा तरवर मीव सरूप ।
हरि चिनवन चदन परस रज्जब पलटि अनूप ॥८॥
तन मन आतम लोह थी मिल्या गु पारस नांव ।
तिनि नीव्यू कंचन किये गति गुमिरन बलि जाव ॥९॥

नाई प्रताप पषान तिरे जल तौ प्रान तिरै क्यूं नाहिं ।
रज्जब रारपू देखिय भजन करहु मन माहिं ॥१०॥

देवल फेरचा भक्त ज्यूं प्रतिमा पीवा माहिं ।
भृत्य भाइ भंजन गढ़चा कुलाल सु चीन्हें नाहिं ॥११॥

मंदिर मूरति सुई धमि चंबक ज्यूंतम नांव ।
अचल चले येको मिल्यूं बघे कौन की मांव ॥१२॥

मंदिर सु मूरति फिरी मुई जिसाई गाइ ।
तौ नामदेव के भजन की जन रज्जब बलि जाइ ॥१३॥

नामदेव बिन साचे देखौ मरघर सूली घना सु खेत ।
धारघू पतन पूजिय रज्जब बड़ौं न हेत ॥१४॥

दास मांब निज दास का दीप राम ब्यौहार ।
असम देव तमहर जग धन्य जगावनहार ॥१५॥

जे दिन बीजहिं खेती भई, तौ खेतहिं क्या अधिकार ।
जन रज्जब धनि धनि धना कहै सकल संसार ॥१६॥

सूकी सूली सौं हरी भई भरतरी भाइ ।
जन रज्जब या जुगल मैं परे कौन कै पाइ ॥१७॥

जल पसि महिषस संग बगि विष बहनी भहिलाइ ।
रज्जब इष्ट न भ्रष्ट मैं बंदहि चंदै भाइ ॥१८॥

सिला तिराई धमंद खिरि बंधी बरन परि काज ।
पै रज्जब बंदन सबै रामचंद सौ काज ॥१९॥

मोह देम विष ना दहै सतवाणी सु सरीर ।
तौ रज्जब तिहु तत मैं कौन बंदिये बीर ॥२०॥

पैसेरी पिछले पले अगले बिल ब्यौहार ।
हड़का माहैहि कौन विधि बेस्या करी विचार ॥२१॥

रज्जब भले भाव के पंथी प्रान सु दीन ।
सेवा कै बसि सुत भये ठाहर कछू न कीन ॥२२॥

तिन तरु बैसी आगि बिन बहनी तापै ब्यास ।
पावक प्रगटै सकल मधि सो पनिम परगास ॥२३॥

साधू सबिता की कला सबद सदा परगास ।
बहि सुणतौं बहि देखतौं उर मांस्यूं तम नास ॥२४॥

रज्जब अज्जब काम है, जे सुमिरै कोइ संत ।
सकल लोक सिरि कीजिये उर सेवग भगवंत ॥२५॥
सब विधि नर के काम कौं नांव निरंजन सक्ति ।
जन रज्जब जो यू भजै ताकी मोटी मस्ति ॥२६॥

चौपाई पति परमेस्वर बीरज नांव अग्रमा आतम रति रुचि ठांव ।
मेला या सम कोई नाहिं, बिगति बाल ब्रह्म उपजै माहिं ॥२७॥

साखी नांव निवारे भार बहु काटै सांकल कोड़ि ।
रज्जब हृद हथियार महु हथियारहु की बाड़ि ॥२८॥
रज्जब एकहि जाप मैं जल ज्वाला गुण दोइ ।
अठार भार आतम उवें जम सु जवासा जोइ ॥२९॥
रज्जब भागे भजन सुणि अब इंद्री गुण चोर ।
ज्यू भुजग चवन तजै तरुसिरि बोलै मोर ॥३ ॥
जन रज्जब रामहि भजै पाप रहै नहिं संग ।
ज्यू तुपक की त्रास सुणि तरवर तजै बिहंग ॥३१॥
पाले के परवत गलहि देखि सूर की ताप ।
ऐसी बिधि अघ ऊतरैं जन रज्जब हरि जाप ॥३२॥
गुण तारे माया तिमर सीत भरम मन चंद ।
रज्जब सुमिरण सूर सौ साजि पड़े सब मद ॥३३॥
भजन भान उर उदित ही अस्त होई गुन भारि ।
तम तारे ससि सीत गत मर देखो सु निहारि ॥३४॥
नांव निरंजन उर बसे तौ कोइ गुण व्यापै नाहिं ।
जन रज्जब ज्यूं सर्प विष गरुड़ द्वार मुख माहिं ॥३५॥
अहि यही आतम डसी विष नख सब रह्यो छाइ ।
रज्जब मत्र सु राम रटि तबही ऊतरि जाइ ॥३६॥
दूजी दिस व्यापै नहीं जे हिरदै हरि भाण ।
ज्यू रज्जब रजनी गई देखो देमत भाण ॥३७॥
भाव भान व्यापत समै तम तारे गुन नास ।
जन रज्जब रजनी पड़या फेरि करै परगास ॥३८॥
रज्जब उर गिरि की गुफा ज्ञान दीप तम दूरि ।
बिन चेतन सु चिराक बिन तहां तिमिरि भरपूरि ॥३९॥

पाप पुंज कुल कालिमा सकल नाँव सौं जांहि ।
ज्यू रज्जब मद भंजना पूरा गंगा मांहि ॥४०॥
जाति पाँति कुल सब गये राम नाम के रंग ।
रज्जब लागा लोह ज्यू पारस का परसंग ॥४१॥
ताँबे के पातर घणे लोहे के हथियार ।
रज्जब पारस परस तैं कुल कंचन ब्योहार ॥४२॥
संगत साधू सूर की आतम अंग समान ।
कुल कालिमा कुर्औौर कसि सुमिरन सुम्य बिमान ॥४३॥
रज्जब कागत टाट के मसि माहैं ब्योहार ।
बेद पुरान सु बंदिये जे बिच आया करतार ॥४४॥
पहले चंब सु चूमिये जे बाम्यन बीचि मुसाफ ।
तौ जाति पांति क्या पूछिये सोहबति देखौ साफ ॥४५॥
ग्वाल भीलणी सूं मिलि खेले संख बजाया कौनें काज ।
साग अरोग्या कौनें के घरि नीच ऊंच की रही न लाज ॥४६॥
मांयहि भये सु निरमले नीच ऊंच राव रंक ।
मन रज्जब रस लीजिये ईष बंक निकलंक ॥४७॥
साधू चंदन बंद का बंक बरण कोइ नांहि ।
बहु सीतल सुगंध बहु बहिकै गोबिंद मांहि ॥४८॥
कडुवी मीठी तुमिका अंग मीच की नांव ।
रज्जब तिरिये चढ़ि चढ़ि तौ कुल की वोर न आव ॥४९॥
रज्जब नीच न नीच कुल जे मन उत्तम भाव ।
पारसमंद सुधा रस निकसै तौ कुल का कौन कहाव ॥५०॥
जे मम उत्तिम भाव ह्वै तौ कुल का क्या भेद ।
मन रज्जब दृष्टांत कौं मथा मजारी भेद ॥५१॥
नीम धतूरे आक बिष मधु निकसै उन मांहि ।
रज्जब बिष अमृत भया तौ कुल कारण कोइ नांहि ॥५२॥
क्या पदमिनी नीच कुल केसरि बिष्टा हीद ।
रज्जब भुगतै राजवी कुल कारण नहि कोइ ॥५३॥
कुल परवत नहिं पूजिये सुत प्रतिमा की मान ।
त्यूं रज्जब रामहिं भजे गई सकल कुल कान ॥५४॥

धीरज कुल सु अतेक बूडे लघु कुल तारिक तारे ।
सो रज्जब गुण कैसे मेटै आसौं जलमिधि पारै ॥५५॥

प्रतिमा नई पुराने परवत परतषि देखौ जोइ ।
रज्जब मरम दिनौं का मागा पूजा किसकी होइ ॥५६॥

भजन जोर भगवंत सग जाति जोर सब देह ।
जत रज्जब सामौं कह्या आप सो करि नेह ॥५७॥

प्रथमैं कडवा बीज का पुनि पाके सोइ होइ ।
मधि मीठा तमि तोरई, रज्जब मौजै जोइ ॥५८॥

रज्जब दादा दोमगी पोता पापी होइ ।
पूत्यू बिच साधू भया नाही अचरज कोइ ॥५९॥

आगा खार समंद मैं पीछे मासा मूल ।
जल रज्जब विधि बंदिये, गंगा का अस्थूल ॥६ ॥

कुल सांकल काया कडी लोहा मैं जु विसेषि ।
रज्जब प्रभु पारस परसि कंचन होत सु देखि ॥६१॥

राम नाम की गरज सुणि बैठे बंस ज्यू भाव ।
रज्जब रीझ्या देखि करि अति आतुर गति चाव ॥६२॥

आतम फल आतुर उदै जथा आंवली राति ।
रज्जब अज्जब देखिये इस अंकुर की जाति ॥६३॥

एक आदमी आंबमणि फल पावै ततकाल ।
मनिसु अठारह भार नर, सहज सुफल सुनि साल ॥६४॥

रज्जब हरिरिधि तिनहु की जो जपि जीवन जाल ।
मास न मूवौ की मिलै न ज खाये क्रम काल ॥६५॥

सोरठा रज्जब मागी भूख भजन करत भगवंत की ।
गये सु यासिद भूख आपइ फिरि आवै नहीं ॥६६॥

साखी माया छाया पांव तमि जब सांई सुन्न सीस ।
रज्जब कही बिचारि करि दीसै बिसमा बीस ॥६७॥

रंगार असफ भीतर सिखे नागव कंवल कलूब ।
मतुग तुमा कैस तुले दिव बैठा महबूब ॥६८॥

नर नारायन मांय मैं सुमिरण समये सास ।
भूखे भूप विभूति मैं रज्जब बिना बिमास ॥६९॥

तिती बार माया मुकत मरछूरि मांव समाइ ।
रज्जब छूटे कैमकस लच्छी मैं ह्वै आइ ॥७०॥

रज्जब आप सिकरि करि, तिती बार जिव जाग ।
सुमिरन भूळे सांस जेहिं, सब सूता पल भाग ॥७१॥

नांव बिसारन नींद निज जागण जपि जगदीस ।
मन बच क्रम रज्जब कहै, सोवत बेहद दीस ॥७२॥

निहकाम नाम सौ नरनारायन सुमिरत सकति सकाम ।
रज्जब रज तज काढ़तौं भजन भेद गति प्राम ॥७३॥

नांव बिसारे नीद है गृह बैराग सुहाणि ।
रज्जब रटै सु रैणि बिन सोई जागणा जाणि ॥७४॥

झूठ सांच के संगि सदा ज्यूं दीपक अंधियार ।
रज्जब सांई से बुझत तिमिर न आवत बार ॥७५॥

रज्जब रीता राम बिन भरया भजे भगवान ।
मनसा वाचा करमना नीकै किया निदान ॥७६॥

माया' काया मसि मिली प्राण सु पाणी माहिं ।
रज्जब सुमिरण सूर बिन जिव जल निरमल नाहिं ॥७७॥

रज्जब स्याही सुकल करि सब जापिर अस्पृस ।
मासैं निरमल ठौर पुहु बाकी मैल मूस ॥७८॥

कुमछिन ह्वै केसौं भरी काया रीठ समान ।
नाम अगिन उज्जल उभै और उपाव न आन ॥७९॥

अंग आतमा घटा घटि तबै बीज बस संग ।
भाण भवन मिलतौ रजम उभै अनूपम अंग ॥८०॥

धप वसुधा जिव जल पड़े पंच स्वाद क्रम बीच ।
रज्जब माउं निहग चढ़ि तब सतेन तिम बीच ॥८१॥

काया कूमभी पैठतौ जिव जल स्वाद अनेक ।
रज्जब भगवंत भाण मिलि उभै रूप रस एक ॥८२॥

सूद्र बैस छत्री ब्रह्म चतुर बरन बेकाम ।
जन रज्जब मधिम सबै जो सुमिरै नहिं राम ॥८३॥

मुक्ति मुज उपजे पेटि पग पड़ि परतीचर होइ ।
दंत केस विष्टाइ मल रज्जब बिछुटे जोइ ॥८४॥

आधे अवनि सु देखिये त्यूं साधू संसार ।
एक समाये मुक्ति मैं एक रहे आकार ॥६॥

पाणी अरु पाषाण के परबत पिरथी माहि ।
एक समाये सूर फिरि, एक अवनि सु छाहें माहि ॥७॥

पाणी पिरथी परि पड़्या पिरथी पाणी माहिं ।
ज्यूं सलिल समाना मुक्ति मैं त्यूं अवनि अकास न जाहिं ॥८॥

रज्जब सोना सेत सुत तुले बराबर तौलि ।
तौ कछु आप न एक ह्वै सहै न समसरि मौलि ॥९॥

दाइ माव कं ह्वै पसे तुला हाथि हरि माहिं ।
जड़ चेतनि सु तहां चढ़ै मोल एक सौं माहिं ॥१०॥

बस्त बाट दोऊ तुलहिं लिपैं छिपै सो नाहिं ।
रज्जब कही बिचारि करि ताको तुला सु माहिं ॥११॥

प्रान पलै है प्रानपति प्यांड पलै सुख खानि ।
भाव भार भेस तुला बिगता बस्त बखानि ॥१२॥

साधू सोने मैं जड़्या खोटा पीतल प्रान ।
जन रज्जब मोलें बिकैं परख्यूं भिन्न बिनान ॥१३॥

रज्जब रतनौ मैं कनक रूप रंग मिलि जाइ ।
आगें आप न एक ह्व बिकै न सो समि माइ ॥१४॥

खेचर पैठे बंस ह्वै साधू सिमरी माहिं ।
जन रज्जब जस मिलि चुवे भिन्न भिन्न ह्वै जाहिं ॥१५॥

अरिल संतहु माहिं असंत न मुक्ति समावई कपटी बीजें काढ़ि कपट नहिं भावई ।
ज्यूं पानहु म पान पुलौती मान रे रज्जब दीजें डारि सगे सब खान रे ॥१६॥

साखी ऊपरि मत असंत समि अंतरि अंतर होइ ।
रज्जब पानी ईख का रूप एक रस दोइ ॥१७॥

साधू मिसरी मधुर मत फोकट फक्क पषाण ।
जन रज्जब रंग एक स चाख्यू भिन्न बिनान ॥१८॥

साधू पारस परस बिधि और सिला संसार ।
जन रज्जब बपि एक से गुन गति भिन्न बिचार ॥१९॥

साधू काइन नाग अग बरन एक उनमान ।
जन रज्जब बोल बिगति अरु गाम पाम पहिचान ॥२ ॥

निरमोल नगनि मैं साग ज्यूं ईख चढ़ै विष वेलि ।
रज्जब अहू चंदन मिलैं गुन गति औरै खेलि ॥२१॥
उल्टा चलै सुओसिया सूधी गति संसार ।
जन रज्जब यू जाणि लै इनका इहै विचार ॥२२॥
विषै वाइ वसि ह्वै वहै, वपु बादल वित नास ।
जन रज्जब उलटे चढ़ैं तिनकी उर धरि आस ॥२३॥
संसारी अरु साध का पाया भेद विनास ।
रज्जब पारस जल तिर, बूडै सोइ पाषाण ॥२४॥
साधू हिरदा सुम्नि सम मुक्त मल न रहाइ ।
और सकल उर धर मई बहु विधि विषम उपाइ ॥२५॥
ससारी राकेस उर झांई दरसै माहिं ।
साधू दल सूरिज मई प्रतिबिम्ब पड़ सुनाहिं ॥२६॥
दरपन मैं दीपक दरसै दीवै दरपन नाहिं ।
यूं संसारी अरु साध क ब्योरा उरहु सुमाहिं ॥२७॥
अगहु अंग मिलै नहीं गुण सविन गत गात ।
तौ रज्जब क्यू होइगा साधू समि कथि बात ॥२८॥
बादल बंदे सीस परि सूकै सबल अपार ।
रज्जब रस रीतौ नहीं धनि जु बरसनहार ॥२९॥
आंखि उदर ठाहर उभ एक समान सु माहिं ।
एक रज्जब न समावही उगल गर्भ एक माहिं ॥३ ॥

## साध महिमा का अग

रज्जब साध अगाध हैं कहिये कौन समान ।
देखी स्यौ सती सहुत सेवग ह्वै तहं मान ॥१॥
सकल धरे ऊपरि धरया सांई अपना साध ।
रज्जब महिमा क्या कहै मसधस अगम अगाध ॥२॥
कीय मैं नहीं किया साधू समि कोइ और ।
माप समाना इनहु मैं इनको दी उर ठौर ॥३॥
साधू दिल सांई रहै हरि हिरदै मैं साथ ।
रज्जब महिमा क्या कहै ठाहर उभै अगाध ॥४॥

पारस मैं● मूरति प्रभू बसुर बरन सोहू माइ ।
रज्जब कंचन होत है ठाहर कहीं समाइ ॥८५॥

## साध परीक्षा का अंग

रज्जब नर नग सो सही सम श्वास भर उभास ।
जग जल मैं बूडै नही सो हीरा हरिदास ॥१॥
महापुरष पारस परस महूवा रूप न रंग ।
प्राण पषाण सु मानिये रज्जब पलटै अंग ॥२॥
तन मन तेल कडाहू विधि तपता सीतल होइ ।
सो साधू पृक बावना रज्जब लीजै जोइ ॥३॥
रज्जब रचना रहित की दरस परस दरसंत ।
अपि संजम बाणी बिमल बदन जोति झलकंत ॥४॥
नर नक्षत्र दाऊ दिपहि नांव धजा जिन सीस ।
सो रज्जब कैसे छिपहि प्रगट किये जगदीस ॥५॥
हरि हीरा हिरदै रहै सो घट छाना नांहि ।
रज्जब दीसैं दूरि सौ ज्यू दीवा भूहलि मांहि ॥६॥
दुरलभ देही दीन मत रहै राम कै रंग ।
जम रज्जब जग सूं जुदे ये दुरलभ के अंग ॥७॥
सकल धरे सौं धूत गति कहीं न बांधै मन्न ।
जन रज्जब जग सूं जुदे सोई साधू जन्न ॥८॥
आतम कही न बंधहीं बिन साँई अरु साध ।
जन रज्जब ता संत की पूरन बुद्धि अगाध ॥९॥
ज्यूं मुक्त दोष लहै दरपन मैं फूटा मोती मोती माहिं ।
त्यूं रज्जब साधू मूं साधू, मनसा बाचा छाना नाहिं ॥१ ॥
सब घटि मैं साँई बसै बोलै भला बिनाण ।
रज्जब साधू परखिये कहि सुणि कहा बखाण ॥११॥
मोल दमामा माल सिर डांका एकै होइ ।
त्यूं बाइक बहु गुण भरया बूझे बिरला कोइ ॥१२॥
रज्जब परखै प्रान कौं तिस मैं देखै जोइ ।
जैसी हुं तैसी कहै पूरा पारिष सोइ ॥१३॥

मल सुख काढ़े नजर मैं ममगत से मिरखाइ ।
मन रज्जब दे हाथ मैं खोटी खरी मताइ ॥१४॥
जिव की बाणी जौहड़ी परखै धीज सराफ ।
मन रज्जब आणिए कहै, सौ कहणा सब माफ ॥१५॥
रज्जब मन मंडाण कौं बिरला परखणहार ।
नग मामे अग अग अनंत बहु बिधि वित विस्तार ॥१६॥
अचेत अवस्या नींद नर, यहु चूकण की ठौर ।
पै सूतौं स्यावति रहै सो रज्जब सिरमौर ॥१७॥
ज्यू जागत त्यू सोवतें सुपनें माँहि सु होइ ।
रज्जब पारिख प्रीत की सगण कहावैं सोइ ॥१८॥
तन त्यागी त्रिभुवन भरे मन त्यागी काइ एक ।
रज्जब रैनी सुपन मैं लहिये बिगति अनेक ॥१९॥
तन जोगी मन भोगिया रहति रसैये खोट ।
सुपनें के सूसाक मैं उबडी पत्री ओट ॥२०॥
मन मुकता काचे बुरे माहिं मनोरथ मीर ।
रज्जब राम सु जौहरी पाड़ा माग बीर ॥२१॥
मन की मिटी न सासता तन करि परसे नाहु ।
रहति रसैया खोट है तुक मति सावा माहिं ॥२२॥

## साध असाध परीक्षा का अंग

सब गुण सम हित साध है जनसधि सोइ असध ।
रज्जब पाई प्राण नै पूरी पारिख सध ॥१॥
भगवत न मूलै सो भला बुरा बिसारै सोइ ।
रज्जब काढ़े मांड मैं भले बुरे बुधि दोइ ॥२॥
त्रिगुण तुला ऊपर तुलैं कंकर पुष्प कपूरि ।
एक समाने सुम्नि मैं एक धरा मधि धूरि ॥३॥
भरे माँहि सु भरया ऊपजे सो बरसी ह्वै आइ ।
रज्जब साध कपूर सुम्नि सुत सुमिह माँहि समाइ ॥४॥
आकार भार धून्यू प्रसहि कांकर पुनह कपूर ।
उभै चढ़ें आकास दिस उभै अवनि महि धूर ॥५॥

साध अगाध अगस्त है, साँई सुद्ध समुंद ।
उमैं समाने उभै उर, रज्जब रही न बुंद ॥५॥

विरिछ बीज मिश्रित सदा सेवक स्वामी तेम ।
पाला पाणी होत है पुनि पाणी ते हेम ॥६॥

माया ब्रह्म नै जो किया सो उस बाहेर माहि ।
रज्जब साध अगाध दिल, उभ समाने माहि ॥७॥

साधू सकति कपूर मति अकल कला इहि मौन ।
सरगुन निरगुन होत हैं, मिलि परमारथ पौन ॥८॥

चौपई अठार भार छाया अरु बास बन कपूर के कारण नास ।
अंजन पलटि निरंजन ह्वाइ यहु मति बूझ बिरला कोइ ॥९॥

साखी साहिब सौं साधू बड़े साधू बड़ा न कोइ ।
रज्जब देख्या गुर दृष्टि सब मीके करि जोरि ॥१०॥

सेवग स्वामी एक हैं सा ऊपर अधिकार ।
जथा बुदबुदा बारि सिरि देखे सब संसार ॥११॥

स्वामी सेवग सिर धरया आह्यू अदभुत बंध ।
रज्जब पेख्या पहम परि पुत्र पिता के कंध ॥१२॥

स्वामी करि सेवग बड़ नाहीं अपरख कोइ ।
रज्जब तरु फल सीस पर परतषि देखो सोइ ॥१३॥

भगवंत भीम ऊपरि दुवै बंदे बिरख सुभास ।
सो रज्जब परमारथी सब प्राणहु प्रतिपास ॥१४॥

मार्ग सुमि समान है बंदे बावस जूमि ।
तिनमाही है ऐहि प्रभु चौरासी की चूनि ॥१५॥

आतम माहै ऊपजै सबन सबिता सीस ।
रज्जब गीहमा [illegible] करि त्य ही जन जगदीस ॥१६॥

साधु के [illegible] सृष्टि यहु [illegible] सिरजनहार ।
जथा पिता पुत्रिहु निमति सुरम करहि गंमार ॥१७॥

[illegible] सुमन गती करी [illegible] कमम गु साधि ।
ताम मण जण मीगम्या हरि हामी कै हाथि ॥१८॥

भजन भीम जन बम उदिम ममा धनी मैं होइ ।
यहु गेमी [illegible] बुमै बिरला कोइ ॥१९॥

भगत भेद भगवंत है, जे कछू हरि भर माहिं ।
पर बंदा पैठा बंदगी सु कछू कबूले नाहिं ॥२०॥
नांव मिनावैं के भरे करी सु सेवा ठौर ।
तार्थ रज्जब राम कै साधौ सबा न और ॥२१॥
रज्जब भगत भंडार मैं राख्या नाणा नांव ।
तो देखो भगवंत धरि साध सरोवनि ठांव ॥२२॥
व्योम विराजै ध्रू धरे पाताल पनिगपति संत ।
रज्जब मंडण माड के मन बच क्रम सु महंत ॥२३॥
माति मही मधि पैठि करि सुमिरै सुखदेव सेस ।
रज्जब छिप्यूं न चित छिपै प्रगट भये सब देस ॥२४॥
रज्जब सांई साध की महिमा कही न जाइ ।
मकसि असप उनमान तुम्ह जे कछु कहै बनाइ ॥२५॥
रज्जब महिमा साध की मो पै कही न जाइ ।
आदि अंत मधि माड मैं जो निबहै इक भाइ ॥२६॥
एक रगि राता रहै दूजे रंग रुचि नाहिं ।
जन रज्जब ता संत समि को कहिये कलि माहिं ॥२७॥
बंदे एक खुदाइ के आदि अंति मधि अब ।
जन रज्जब मस्तक धरे मन बच क्रम सो सब ॥२८॥
सुक सूर बिधु ब्रहस्पति पंचमि ध्रू दिस देख ।
बंदनीक सब देखिय अबला चलन बसेख ॥२९॥
साधू सूरज सारिखे द्रष्टि इष्ट संग देस ।
रज्जब रारणू रावती जहां करहि परवेस ॥३०॥
समूझे सोम सारिखे सो महि गे महिमाहि ।
रज्जब प्यारे पहम पर जहां जगत मैं जाहिं ॥३१॥
साधु उदै सूरिज जसा गुण तारे तम नास ।
रज्जब रारि खुले सब चषि चेतनि परकास ॥३२॥
मेर्ले मैं सब आइया जे कछू उपज्या आइ ।
रज्जब राम असेख है जब साधू लख्या न जाइ ॥३३॥
रज्जब अगह अगाध अंग सांई साधू दोइ ।
और सु बंधे बदि मैं चौरासी मल जोइ ॥३४॥

बृछ बीज बसुधा पर्डहिं बीज रहै बप जाइ ।
त्यूं सत साधू गति सकति नर देखौं निरताइ ॥३५॥

अनेकौं मिलि एक की सरभरि करी न जाइ ।
रज्जब साधू सूर समि नर नछित्र निरताइ ॥३६॥

स्वर्ग लोक साधू धन्न बेस्या बैकुंठ थान ।
रज्जब अज्जब ठौर ये जहां भजन भगवान ॥३७॥

हरि मंदिर साधू हृदै जहां रहै निज अंग ।
सोलह चित्रसाला बनी कवि कहि सकै न रंग ॥३८॥

चौदह विद्या चतुराई बहुणा रच ले भाइ ।
साधन कष्ट सबै करै, परि साध न हूआ जाइ ॥३९॥

## तीरथ सतसंग का अंग

साधू सरिता सबद जल इहं गुण कोई न्हांहि ।
रज्जब रजमल उतरैं मन भागीरथ न्हांहि ॥१॥

साधू तीरथ ग्यान जल बिरला पावै कोइ ।
रज्जब मजु अठिसठ अगम भागि परापत होइ ॥२॥

महंत मुखौं मंदाकनी बाणी बारि प्रवाह ।
गगन गंग निरमल बहै मन मंजन करि न्हाह ॥३॥

चिदानंद के चरन निज साधू के उर मांहि ।
पेखौ पठि के पगनि कूं ठहर और सुनांहि ॥४॥

ग्यान गंग तहां तैं चली प्रान प्रवीन सु न्हांहि ।
रज्जब पाप सु जुगन के जीव बडे सु जांहि ॥५॥

ग्यान गंग पर वेही देवल मो रति आतम राम ।
इहां सांपड़ौं सेइ प्रानपति सरहिं सिरोमणि काम ॥६॥

सति तीरथ सतसंग है बाणि बिमल बिधि तोय ।
रज्जब रजमल उतरैं बेस्या बदन सु धोय ॥७॥

सति तीरथ सतसंग है जग जगदीसुर मांव ।
दान पुन्नि कौं बहु किये रज्जब अठसठि ठांव ॥८॥

तीरथ आतम राम है परसै पावन होइ ।
जन रज्जब पहुंचे बिना भव उतरै नहि कोइ ॥९॥

चरनारविंद तें प्रकटि साधू हुवे संसार ।
रज्जब गंगा ग्यान की मन मल मंजनहार ॥१०॥
साधू सलिता ग्याब जल मन मल मंजन होइ ।
रज्जब रज यू ऊतरें, उर अंतरि अघ धोइ ॥११॥

## साध संगति परम लाभ का अंग

साधू संगति सुठि भली, भले माहि भलि भेद ।
रज्जब सौंज संवार करि, जिव माहीं जिव देइ ॥१॥
जैसे चंदन बावना बेधि गया बनराइ ।
त्यू रज्जब पलटै सबै साधू संगत आइ ॥२॥
लोहा पारस परसतें कछ रूप ह्वै जाइ ।
रज्जब गति ग्याता भया साधू संगति माइ ॥३॥
सोरठा पारस परसत लोह सोंवें सू महंगा भया ।
ती क्यू न करीजै मोह रज्जब सांचे साध सू ॥४॥
साखी रज्जब पारस परसतें लोहा पलटया गोत ।
त्यू निरधन धनवंत मिलि अवित सविता होत ॥५॥
रज्जब सधु तीरथ मिलत मानि महातम थोह ।
पया तक पै परसतौं जांवण ह्व दधि होइ ॥६॥
रीते संगति भरिहु की जे होंहि भूरि सुभागि ।
देखि दसगुना होत हैं सुन्न सु एकहि भागि ॥७॥
भौसागर संसार यहु साधू सुद्ध जिहाज ।
राजब परसे पार ह्वै कठिन सरें यहु काज ॥८॥
रज्जव निमषे राम जी साधू जन सु जिहाज ।
काढ़िहि सकति समंद तें प्रभु प्रगटे परकाज ॥९॥
ज्यू नाले मिलि नापिगा त्यंभ समापित नीर ।
त्यू रज्जब रामहि मिले सतसंगत बहु बीर ॥१०॥
पारस चंदन मोह मिलि पुनि पदम बनराइ ।
जड़ पलटै मिरतग चलहि, त्यू सतसंगति माइ ॥११॥
ज्यूं विस मूली नदी मैं जटी तुंबिरा बेन ।
सो रज्जब सहजैं तिरै, त्यूं सतसंगति मेल ॥१२॥

तन मन सिमटै सहज ही जे सतसंगति होइ ।
जन रज्जब दृष्टान्त कौं वेसि मवालू जोइ ॥१३॥

साधू चंदन बैन बासतैं कुल काष्ठ भये रोम ।
रज्जब देखो देखतैं भये देव गति जोग ॥१४॥

रज्जब पलटैं जीव गुण साधू संगति आइ ।
पारस लोहा पहुप तिल सिफ चंदन बनराइ ॥१५॥

चौपई सरग नसेड़ी जगत जिहाज दीरघ दुरभिष माहि ज्यूं नाज ।
दुख की दारू जीवन जड़ी रज्जब संत समागम घड़ी ॥१६॥

साखी रज्जब साधू बरसते साहिब आवै यादि ।
भाव न पूर्जाहि उस पर्साहि वैसर दीज्यो दादि ॥१७॥

साधू के दति मित नहीं सांई आवै हाथि ।
रज्जब और न देखिये देती ऐसी आथि ॥१८॥

सदा अमूसी भूलिये भूल्या आवै मादि ।
यहु रज्जब सतसंग फल ग्वाहिर दीज्यो दादि ॥१९॥

रज्जब साधू ग्यान समि दिया किनी की नांहि ।
मनसा वाचा करमना समझ देखि मन मांहि ॥२०॥

जो दत जीवहि जीव द तेहि पसाइ प्रभु दूर ।
रज्जब साधू मांव दे मुनि मु मरहरि करै हजूर ॥२१॥

चिदानंद का चितवन चौरासी मैं नाहि ।
जन रज्जब सो पाइये साधू संगति मांहि ॥२२॥

नाम नाव साधू कनै बूड़त लेहि चढ़ाइ ।
महिमा उस उपगारि की रज्जब कही न जाइ ॥२३॥

सबद सदेसा ना लहत साधन गुन जा जीव ।
तौ रज्जब रह भगति नहि प्राण न परसत पीव ॥२४॥

परम पुरुष पारस परसि साधू साना होइ ।
तौ रज्जब सतसंग सौं मिलत न बरजो कोइ ॥२५॥

चौपई साधू बाणी छांह हमाइ मागहु पग्हि सीस पर आइ ।
देखत दुम्यूं पावहि राज रज्जब हाहिं सकल सिरताज ॥२६॥

साखी साधू संदम पारस पारा भृङ्गी छांह हमाइ ।
रज्जब मन तन पलटही भागहु मिला सु आइ ॥२७॥

हृद मेहद की बीचि है, साधू संत वसास ।
सौदा आतम राम सौं तिन करि ह्वै दरहास ॥२८॥
रज्जब अज्जब काम है साधू जन संसार ।
जिन मेलत मोहन मिलै प्रान परस ह्वै पार ॥२९॥
सोरठा रज्जब अज्जब रूप साधू जन संसार मधि ।
जेहि मिलि मिलै अनूप सकल बोल कारज सिधि ॥३०॥
साखी असंख साक आतम फिरै, तौ भी साध न होइ ।
जन रज्जब सतसंग बिन सीझ्या सुणा न कोइ ॥३१॥
भाउ भगति सतजत जुदे अंग न आवहि अंग ।
रज्जब रीती आतमा एक बिना सतसंग ॥३२॥
मजनीक मव ज्यूं दे गये उरगारि मैं लै सात ।
रज्जब सेझै म्यान यस पगि पगि तीरथ जात ॥३३॥
मैन बूद ज्यूं बरषहीं साधू घट घन घोरि ।
रज्जब उर धर मीपजहि म्योसावहि कुल कोरि ॥३४॥
साधू ससि बरिखै सुधा पीवहि प्रान पियूप ।
रज्जब सुख सुसतान है निकसैं बासिद वूप ॥३५॥
अंब न चढ़हि अकास विसि बिन आदीत अगस्त ।
त्यू रज्जब सतसंग बिन हरि आवै क्यूं हस्त ॥३६॥
मुक्त महोदधि बारि बादलहु पारस सहियै पथरी माहि ।
त्यू साधू मैं साई दीसै मनठाहुरी ऐन बित नाहि ॥३७॥

## साध का अंग

वान्स बंदे एक गति सुभि सुधा रस मेहि ।
जन रज्जब जग उमग करि, सरवि सबनि सुख देहि ॥१॥
सुभि ससिस सो लेत है बादल बेला बीर ।
पीछे परमारथ करहि देहि सबौं मू नीर ॥२॥
साधू जन संसार मैं आमै का औतार ।
सीधि समावै सुधि मैं आवै पर उपगार ॥३॥
मनिषा देही खेत खित माहै प्राम कसाम ।
रज्जब साधू घटि घटा बरप्यूं मेपै जाम ॥४॥

बादल बंदे एक मति, बाणी बरषा होइ।
जन रज्जब संसार मैं पीवै सु गये कोइ ॥५॥
बादल बिधि बन्दे किये सुमि सुधा रस माइ।
कुल कुलाल के पात्र ज्यूं अगह न अंग गहाइ ॥६॥
बादल बंदे एक गति सकल सबर ब्योहार।
जन रज्जब जग सूं जुरे परसैं नहीं बिकार ॥७॥
साधू आभे सारिखा सदा सुन्नि मैं बास।
रज्जब भावैंहि पहुम परि, निहकामीर निरास ॥८॥
ब्रह्म ब्यंब सु मीक्से आभै आतम होइ।
सदा समाने सुन्नि मैं बादल बंदे दोइ ॥९॥
साध सुधा के कूप हैं अवलोकहु निसि माहिं।
तिह अमृत आतम अमर सो पीवहु क्यूं नाहिं ॥१०॥
साईं सौंपी साध को मापदि अमर अराम।
जीया चाहै माय त्यौं सत सजीवन साध ॥११॥
रज्जब सुरही सिष्टि मैं सिस साधू पै पान।
तिण जण कौं ठाहर इहै करी सु अमृत पान ॥१२॥
स्वारथ पैठ सांवड़े चौरासी लख प्रान।
परमारथ कौ एक कौं रज्जब साधु सुजान ॥१३॥
साधू घन मानहु घटा सरवहि तहां सुकाल।
रज्जब ये बरषैं नहीं परतपि तहां दुकाल ॥१४॥
जीव ब्रह्म साधू करैं ज्यू पारस साना होइ।
प्राण पषाण अर्मसि है पै तिनहु न पलटै कोइ ॥१५॥
बावन सौं न बराबरी है न अठारह भार।
बहु सुगंध सब कूं करै त्यूं साधू संसार ॥१६॥
मनि मुखात्र मन उन्कि मरि तन त्रिष्टै मैं राखि।
रज्जब ताना हम है सारा साधू साखि ॥१७॥
साधू सीतल परसतें अपना सीतल होइ।
जन रज्जब दृष्टान्त कौं चंदन सरपहि जोइ ॥१८॥
साधू सूरिज सोखि स प्रगट गुन हरि नीर।
रज्जब पीवै जीव सुधि सबद सरोवर तीर ॥१९॥

ऊपरि साधक ठौर गति जैसी बिधि नालेरि ।
अंतरगति कोमल मतैं जन रज्जब बिच हेरि ॥२०॥
बाहर साधू बिषन गति ज्यू चंदन तरु भुजंग ।
जन रज्जब बिधि बोइ लै सीतल बास सुगंध ॥२१॥
बाहरि साधू सीप गति जैसी तन खोसी ।
जन रज्जब बिधि आइ छ मुक्ताहल मोती ॥२२॥
साधू सवणा माहि मन ज्यू मक्के की ज्वारि ।
जन रज्जब खोस्यूं गई पयी सकै न प्यारि ॥२३॥
ऊपरि कोमल बेर विधि तै पयी भूमि मे जाहि ।
रज्जब रहु मालेर गति कुन्दन कोमल माहि ॥२४॥
संत सिंघाड़ा नालियरि कोमल कठिन सु देख ।
रज्जब राख्या विसका मावै किया वसेख ॥२५॥
पाणी पीया पौन मुख त्रिपा तरुपि गुण होइ ।
माई कृत माई किया माही अपरज कोइ ॥२६॥
सत्व सत्व के काम कौं पंथी प्रीति अपार ।
प्याड ब्रह्माण्ड मिलोक तैं ब्योरा महै विचार ॥२७॥
जब दीवै दीवा द्रसै तब तलकै तम नाहि ।
यूं साधू साधू मिलत अगम नर्सक्या जाहि ॥२८॥
पार पार सौहै सही ज्यू हार्यांहि धोवै हाथ ।
मुख मोहन परसै मल साफ होइ करि साथ ॥२९॥
आतम निपजै अंड ज्यू बैठ साधि विहंग ।
रमतूं पयै परि रमैं तपछि निवारन अंग ॥३०॥
बैठे साध विहंग बिध आतम अंड सुदान ।
रज्जब रमतौं मुख ग्रर्वाहि पंची प्रान मुजाम ॥३१॥
परम पुरिष पंपी सुपरि, सुमिरत प्रबल समीर ।
रज्जब प्रगटै जो जहां और न निकसै बीर ॥३२॥
काया काठ सु कूं उठहि मपतौं गोप्ठी आगि ।
रज्जब सरसै ग्यान जल अर्माहि नहीं सो जागि ॥३३॥
साध गुसा जम चोट ज्यू, मारत ही मिलि जाइ ।
रज्जब परसै परसपर रहै नहीं ठहराइ ॥३४॥

साधू मन के सुरति करि, अपना गासी देइ ।
रज्जब सहि रिसि मारने रस माहै करि लेइ ॥१५॥
सब भग जागे पलक मैं जे साध करै कछू और ।
ज्यूं रज्जब सूरिजगहण सब समाई सब ठौर ॥१६॥
जो मन सदा अडोल था सोई है जक जाल ।
तो रज्जब जागे जगत ज्यूं जाया मौजाल ॥३७॥
भगति भाव बैठे फिरहिं, साधू सरवणि कंध ।
दुनिया दिसि देख नहीं, रज्जब अंधी अंध ॥३८॥

## मन मिहरि महूरति का अंग

मिहरि महूरति मैं सखी जब साँई सिरजे साध ।
प्रानहु सेती प्रीति अति रज्जब रहम अगाध ॥१॥
मिहरि मेदनी सौं सही जे महि परि बरिसै मेह ।
त्यू मेह निसानी मरहरिह, पे मेले साध सनेह ॥२॥
मिहरि मौज ऐसा दिया जबहि मिलाये साध ।
रज्जब संगति तिनहु की जीव जनम फल लाध ॥३॥
मिहरि महूरति जाणिये जब साँई मेले साध ।
रारि श्रवन रस मा रचै कोटि कटे अपराध ॥४॥
मिहरि महूरति जाणिये जब साँई मेलै साध ।
नाम सुधा रस पाइये किरिपा अमम अगाध ॥५॥
साध संगति सुमिरन सुकृत मिहरि महूरति होइ ।
रज्जब जगजब मुक्ति फल पावै विरला कोइ ॥६॥
जब जगदीस दया करै तब साधु समागम होइ ।
जग रज्जब अप उत्तरै करम न लागै कोइ ॥७॥
मिहरि महूरति माह मैं काया कुम्भजु होइ ।
कुम्भू मैं है ठाहरै जिन जस देखी जोइ ॥८॥
मिहरि महूरति आत्मी माह महूरति कुम्भ ।
पल रज्जब सीतल उभै देखी आतम थंभ ॥९॥
रज्जब मिहरि महूरति उपजै महपति मही महंत ।
ज्यूं मुक्ता हाइ म स्वाति बिन समझ्यो साधू मत ॥१ ॥

किरिपा कहर समीप मे अब सिरिवि संघारी सिप्टि ।
रज्जब अगम सुगमि भया गुर दादू की दृष्टि ॥११॥

## परसिध साध का अंग

सकल प्राण परवत चलैं आपा अगनि सु लागि ।
रज्जब साधू हेम गिरि, तहां न प्रगटै आगि ॥१॥
रज्जब जग जमता मिले साधू सीतल अंग ।
चंदन बिष व्यापै नहीं जे कोटिक मिल भुवंग ॥२॥
ताकौं कछू व्यापै नहीं जो समुझै मन मांहि ।
रज्जब रज परसै नहीं जे कंचन परि जुग जांहि ॥३॥
ज्यूं सलिता समुदहि मिलै मिटै न खारा साव ।
जैसे रज्जब साध गति क्यूं भानै कोइ भाव ॥४॥
साधू संदल बावना नर तरु मार्वाहि बास ।
आतम भार अठार की तिनहिं न परसै पास ॥५॥
प्रसिध साध पारस मई, लोहा रूपी लोग ।
रज्जब आप न पलटही औरहु पलटण जोग ॥६॥
चंन्न सरप मिले अमल मणि भुजंग पणि तेम ।
ज्यूं रज्जब साधू असध लक्षिण मलै न मेम ॥७॥
जोक * न लागहिं पोरसहिं घुण नहिं भषै अंगार ।
त्यूं रज्जब साधू सकति लिपहि न लिसन बिकार ॥८॥
दीपक हीरे लाल का द्रुम चित्राम सुवेसि ।
रज्जब तैसे साध हैं मारुत माया पेसि ॥९॥
मोमी लोहा चल मिले भइ चंचक चित्राम ।
निरदाई कंचन मई नर निहचल निहकाम ॥१०॥
बीज बाय बादल चपल पै मुनि न चंचल होइ ।
त्योंही जगपति मैं जगत अहरहू सार्वे कोइ ॥११॥
रज्जब साई मुनि सभि कोई बिरला साध ।
सो सब मैं न्यारा अकल पूरण बुद्धि अगाध ॥१२॥

---

* जौक पाठ भी मिलता है ।

सुभि सरूपी साध हैं पंच तत्त तिन माहिं ।
रज्जब रहैं सु एकठे सिपैं छिपैं सो नाहिं ॥१३॥

रज्जब मनसा बीज सों करहिं न साधू सेस ।
अकलि अवनि सिर पर सदम पिसण नहीं परवेस ॥१४॥

अष्ट धात काया कुल पर्वत मनसा मही सु माहिं ।
रज्जब साधू अनल समि उस कंटिक कोइ माहिं ॥१५॥

तारहु परि तोरा नहीं दामिनि का लवलेस ।
चपला करि चमकै नहीं रज्जब रवि राकेस ॥१६॥

मंद्री अहि सु अंगार हैं, साधू मोर चकोर ।
यहु अहार येई करहिं, और चकित इहि ठोर ॥१७॥

आतम अंम अवनि अस्थूल परि उवे प्रकीरत प्रान ।
रे रज्जब रज तमि तततोये तहां न कोइ निसान ॥१८॥

तन मन भभका वेत हैं पुनि भभका पंचभूत ।
रज्जब इसमैं ठाहरै सो आतम अवधूत ॥१९॥

मनहु मनोरथ मेटि करि, दिस रासै सु दुरस ।
रज्जब काल कुभाव कू पूरा प्रान पुरस ॥२०॥

सन माहै तन तैं जुगा मन माहै मन दूरि ।
इंद्रघू माहिं मसाहिदा रज्जब साधू सूरि ॥२१॥

ब्रह्मण्ड प्यंड मनपा मुकत सोइ सिरोमन साध ।
जन रज्जब मर नीपज्या अपगति भाव अगाध ॥२२॥

मीच माहिं साबत रहै मर नारायण हेत ।
जन रज्जब ता संत का हरि बलिहारी लेत ॥२३॥

जेहिं ठाहरि बोलै सबद तहां भरै तन मन ।
रज्जब रहतिहिं कहत मिमि निपज्या साधू जन ॥२४॥

आतम कण मु पताइय ब्रह्म अगनि कै माहिं ।
अवगनि आत्म मुनि पड़ै सो फिरि आवै नाहिं ॥२५॥

बालपणी बैसे नही जोवन जुवती त्याग ।
रज्जब बिरस न बृद्धपणि उरनि अवस्या लाग ॥२६॥

देखो मुख प्रगमा दिसि समकारिक मुक्तेव ।
रज्जब रहै सु एक रस आदि अंत मधि सेव ॥२७॥

गरम न व्यापी गरम की प्यंड सु परस्या प्राण ।
ग्यान घटी उरझ्या नहीं सुखदेव संत सुजाण ॥२८॥
आप छपाये अगम अन तहां न माया मेल ।
रज्जब रज परस नहीं जैसे सोवन तेल ॥२९॥
सकल चतुर परि चमकवे करै न व्यंग्ता राख ।
रज्जब रोटी रज मैं, अति अग्निपति दुख साख ॥३०॥

## माया मधि मुक्ति का अंग

मणि भुवंग ज्यूं एकठे गुण मति भिन्न विचार ।
जन रज्जब ऐसे रहैं साधू इह संसार ॥१॥
जन रज्जब रवि ससि सदा रहैं सुधि अस्थान ।
एक महलि एका नहीं देखी मति मति आन ॥२॥
कोई रंग रांचै नहीं सूत सदा मधि सेत ।
जन रज्जब जन यूं जुदे नहीं धरे सूं हेत ॥३॥
दरपन मैं सब देखिये गहिवे कूं कछु नांहि ।
त्यूं रज्जब साधू जुदे माया काया मांहि ॥४॥
जिते चित्र चंदवै महलि तिते छांह मैं मांहि ।
त्यूं माया सब साध परि, सो उनहीं उर मांहि ॥५॥
रज्जब रिधि थोड़ी बहुत साधू मगनि न होइ ।
ज्यूं बालम मूक सजनि बीज बूझे नहि कोइ ॥६॥
सोवें पोंवें सूर ज्यूं संकट आवें मांहि ।
त्यूं रज्जब साधू जुदे माया काया मांहि ॥७॥
सूर न मला अन गहे तजि नांहि निरमल होइ ।
बरतणि बरतें साध यूं रंग न पलटै कोइ ॥८॥
साधू सूरिज सारिखा भाग्य अंग मधि लास ।
रज्जब रहै त येक रस तिमिर न परसै तास ॥९॥
रज्जब बेला बीजली घट सु घटा कै मांहि ।
सकति ससिम न्यारे मिलनि लिपैं छिपैं सो नांहि ॥१०॥
बड़वानल अउ बन्ध की पानी परसै नांहि ।
त्यूं रज्जब रहते पुरुष मिले न माया मांहि ॥११॥

पुरिय पहुम पहुरैं सदा अम्बर भार अठार ।
बाहर देखै माहसे माहि निगम व्योहार ॥१२॥
आमे अंबर सुमि मैं थोड़े केती बार ।
बागौं मैं बाहर सही, रज्जब समझि विचार ॥१३॥
साधू सिरटा मक्कई दस बागे तन मारि ।
ब्रह्म भूमि रस पीजिये मन कन निपजि अपारि ॥१४॥
असन तजै दुरबासना असन तजै उर भास ।
यूं भूखे मांगे रहै जन रज्जब निज दास ॥१५॥
रिधि सिधि मैं न्यारे रहै मुगता भगवंत हाथि ।
रज्जब मुकते राम मिलि सब संपति तिनि साथि ॥१६॥
मिलती मिलहि न संत जन पाई परसै नाहिं ।
रज्जब रुचै न रासि परि सो विरकत मन माहिं ॥१७॥
नर नारी रोटी द्रुपद ग्यान घीव घट माहिं ।
रज्जब रीझे एकठ लिपै छिपै सो नाहिं ॥१८॥
सक्ति सलिल माहै रहै, विरकत बीज समान ।
जन रज्जब माहै मुकति एकमेक अरु आन ॥१९॥
अबके बोले अंब मधि अंबुज के आनद ।
रज्जब रवि ससि सनमुखा विमन नहीं व्रत बंद ॥२०॥
अंबुह सुरूप सकतिहु मुकत पाया साधू खोज ।
भौरे रज्जब बारि मधि ससि सु सुरति सरोज ॥२१॥
रज्जब रचै न रिधि सौं बिधु जन बिरचै माहिं ।
महापुरुष माया मुक्त बैठे हरिपद माहिं ॥२२॥
ऊणति ऊंची भूमी संपति बप बाती बरसाहिं ।
रज्जब प्रीति मिली पावक ससि ब्रह्म व्योम दिसि जाहिं ॥२३॥
अंकूर भगनि सारंग अहूर सुरमुख निसि आकास ।
यूं रज्जब साधू सुरति सकति तजै सिव पास ॥२४॥
ज्यू है फहैम फरास का त्यू ही साब सुजान ।
उभै अवनि उकरी रुचै वर्ष सु दिस असमान ॥२५॥
मुदित न माया आवतै जाती सकति न सोग ।
रज्जब रिधि मधि यूं मुकति माखी करहि सु भोग ॥२६॥

सक्ति रूप आमे गमे, साधू रस रंग येक ।
सो रज्जब माया मुकत पाया परम बमेक ॥२७॥
माया काया मैं मुकत आतम गुणहु मतीत ।
सो भगता ममर्वत समि जन रज्जब सत बीत ॥२८॥
रज्जब तन में मन मुकते रहैं बरतणि बंधे सु माहिं ।
पै धर्म दृष्टी देखे उन्हैं, माया काया माहिं ॥२९॥
रज्जब काढ़े देह दधि मन माखण सु विलोम ।
खावन मोजन खाधि मैं उभै न एकठ होय ॥३०॥
रज्जब माया मैं मुकति सांई साधू दोइ ।
बथा सिप गुर ध्यान मे गति मति एक होइ ॥३१॥
बाहर माबै बरणि मधि पायरि मिद न देह ।
त्यू रज्जब माया मुकति नाहीं सकति सनेह ॥३२॥
भरि बाहरि माया मुकति जे सक्ति सुरति मैं नाहिं ।
रज्जब रूसौ चौपड़ू तेल न केसौ माहिं ॥३३॥
रज्जब एक विचार विधि माया मधि मुकति ।
मिले अमिल ज्यूं तेल जल ऐसे साध सकति ॥३४॥
सलिल सकति उलटे चले मीन मुनेस्वर माग ।
रज्जब माया मैं मुकति यहु उत्तम बैराग ॥३५॥
परवनि पानी पुहुप दिल उभै अंब निधि माहिं ।
रज्जब मधि सांई सुरति सलिल सकति यूं नाहिं ॥३६॥

सोरठा समझि सुरति सू सीप सकति समुंदर में रहै ।
रज्जब स्वाति समीप उदधि उदिक सो ना गहै ॥३७॥

साखी साध सकति मधि यू रहै ज्यूं अंकुम अंभ थान ।
मिले अमस रज्जब कहै साखी ससिहर भान ॥३८॥
रज्जब माया मे मुकत ज्यूं बांगर के तार ।
सकल राम माहैं नहीं दल्ला करो बिचार ॥३९॥
साधू दोइम चंद परि सबकी आवै आंखि ।
मन मयंक सों मोह दिन दई दृष्टि नहिं नांखि ॥४०॥
रिधि रहति अथवा सहति मर निस्तारा नाईं ।
साखि सुकदेव जन कहै, देखो कून्यू ठाई ॥४१॥

जन पद पाया जनक मे माया मधि मुकति ।
रज्जब कहै विदेह विरुद साखी साधू संति ॥४२॥

माया मधि मुकति का भूत न जानै भेव ।
रज्जब राजा जनक गुर, सिष भया सुखदेव ॥४३॥

रज्जब बारि विभूत मैं बासण मन गरकाव ।
माक भाव उमर ब्रसे सो बूड़ा वपहु न जाय ॥४४॥

सुरति सीप संजम प्रभा देही दरिया माँहि ।
यूं रज्जब मिश्रत मुकति माहै माहै माँहि ॥४५॥

सारंग सीप ब्रह्म्म का गुन्नि सलिल सूं सीर ।
त्यूं रज्जब तीजे सती द्वै द्वै निपजै नीर ॥४६॥

मर नमनी द्वै द्वै गुणी सम्पति सलिल समि गेह ।
परमारथ स्वारथ इनहु सांई सूर सनेह ॥४७॥

इन्द्रही अव किरत करहिं, माया मध्य उदास ।
जन रज्जब रामहिं मिले कोटि कुटतर दास ॥४८॥

एक जोग मैं भोग है, एक भोग मैं जोग ।
एक बूडहि बैराग मैं एक तिरहि सु गिरही लोग ॥४९॥

मनस पंषि की आंखि अवनि परि सीप सरोज सुरति आकास ।
ऊंचे नीचे का भ्रम भागा रज्जब सोधत सासा सास ॥५ ॥

जम साखी दीसे उर रज्जब पिरथी पास ।
सपति सिधुर मे उडे मनस पंषि आकास ॥५१॥

सिलहू सहत मसिलहूं माग पैठे पहुच्या जाय ।
जन रज्जब है हद नहीं, महंगे मोल बिकाय ॥५२॥

सकल सिष्टि सिरि सेस कै माया मुद्रा माँहि ।
रज्जब मारी के भजन हलक पूजै नाँहि ॥५३॥

माञ्जभस पनि मरविमहू होइ न है नरमीष ।
मही महोदधि उन सिरहु बोझ मात मनमीष ॥५४॥

मोर चकोर महंत भस बिष बहुनीर बिभूति ।
मभि कटै मद आवकव तिहू होत मुत सुति ॥५५॥

सम्प सकति बिष मा भखै गवड हार मुख नांव ।
दुई की दोष न दोष का दुनी मरै जिह ठांव ॥५६॥

रैणाइर रिधि मधि धंसि, मोहन मुक्ता लेहि ।
मरजीवा मुनि सहज कृत, और तहाँ जिव देहि ॥५७॥
संपापाती मरि जिवै पैठी दरिया माँहि ।
इक मुक्ता ले माहुई एक मरि मधि आवहिं नाहिं ॥५८॥
बीज बारि माहै अबुझ सनि सहती बुझि आँहि ।
त्यूं रज्जब ताकू अतिर वीसैं जग अस माँहि ॥५९॥
तीरू अणतीरू परै सकति सु सलितै हैरि ।
उमै अभ्यासैं अभ मैं पै तिरण बूझमै फेरि ॥६०॥
सूर सती संसार मैं असग सलग दरसंत ।
त्यूं रज्जब साधू सकति नमो निरतर मंत ॥६१॥
एक कामिनिह काम हूं सकल साधना येह ।
रज्जब सो सीख्या सही वह बन रह्यो कि गेह ॥६२॥
जड़ बिहूण बस मैंडली जीवै पानी माँहि ।
त्यू अतीत आसा रहत परि आलम न्यारे नाँहि ॥६३॥
अमरबेलि जड़ बीहूणीं भरी बीस सो पान ।
त्यू रज्जब माया मुकति संतति सकति सु पान ॥६४॥

अरिल बेवाने की बेलि फूल फल है सदा
त्यूं निरिहाई मरपास सकल पाया मुदा ।
बीज गये मुर ग्यान न सा ठाहर रही
परिहां रज्जब रहते रिधि रिध मैं यूं सही ॥६५॥

साखी रज्जब रिधिहि बुहाग दे दीया भगति सुहाग ।
उभै एक घर मैं रहैं, अभगा सहत सभाग ॥६६॥
रज्जब सतिमहु पोषिये नर निरखो निरबाहु ।
फूटो सारे ऊबरैं औझोकडू सु अथाहु ॥६७॥
ररा अषर मामहु मरचा मम्मी मात्रा माँहि ।
रज्जब मज्जब राम संगि बंधनीक जग माँहि ॥६८॥
आलम आपिर माया माया अरप लगैं परवाणि ।
रज्जब बिमुखे ब अरप उभै सु मिथ्या आणि ॥६९॥
रज्जब अरप लगी आपिर सतर, केवल माया संग ।
त्यू रिधि रहत अथवा सहत भगति भाव भंग ॥७० ॥

मानहु माया संगि सदा आथिर अरथ असूलि ।
रज्जब छिकि छूटै बिना उभै न बिनसै मूलि ॥७१॥

रज्जब धाम न देह निज चमक मनोरथ माँहि ।
सो बीजल बपि गिरे छिन अगनि सु लागै नाँहि ॥७२॥

ज्यूं सेस नाग सुखदेव गति अवनि उदर के माँहि ।
त्यूं रज्जब रिषि मधि सबै भजन ब्रह्म लौं जाँहि ॥७३॥

भवर धरे मैं है सदा बप बरतन दृढ़ बंध ।
रज्जब रिधि रहता भजन सो समुझै नहिं अंध ॥७४॥

अंबर आभौं की मिलहिं बन रज्जब रज रूप ।
बसुधा बस्तर एक ह्वै परि बादल अमल अनूप ॥७५॥

माया पाणी मीन जग मरै नीर के बाप ।
जन रज्जब अहि आडि गति जल थल महि संताप ॥७६॥

अतीत अडूबै सारिखा सपता खेत समान ।
रज्जब विमुका बणि रहै नाहीं खैंचातान ॥७७॥

पंषी उड़हिं अकास कौ आभे अवनि मिलाहिं ।
रज्जब रहै न सो तहाँ बहुरि घरि घरि जाहिं ॥७८॥

सत्ति सबद मरनम सही रहति सु माता तास ।
कंत कलित बिन क्यूं रहै समये सुन्दर पास ॥७९॥

जुरा जीव को ले चली अहंमति आवै आइ ।
मारग गृह बैराग के मर देखौ निरताइ ॥८०॥

एकहु कौ दासी भई एकहु कौ मया धेन ।
बहु दिन दहु यह आइगी बहि पछि मरमा ऐन ॥८१॥

रज्जब पंचलग्रा द्वै भांति की देख्यूं उग्धि दमेक ।
तब निकसे चौदह रतन अब निकसै नहिं एक ॥८२॥

एक सांच मैं झूठ है एक झूठ मैं साचि ।
रज्जब सीजै माहिली तजि मुहड़ै की बांचि ॥८३॥

एक रंग मैं रोस है एक रोस मैं रंग ।
रज्जब समुझी भावना भातम भंग अभंग ॥८४॥

## बिचार का अंग

रज्जब सत्य बिचार सौं पारंगति ह्वै प्रान ।
सो समुझाया सतगुरू समझ्या सिष सुजान ॥१॥

रज्जब इह संसार में मोहिप बड़ा बमेक ।
यो बैठे सो ऊभरे जुगि जुगि प्रान अनेक ॥२॥

काया माया माड यूं काढ़ै झकसि बिकार ।
रज्जब राखै जीव कौं सनमुख सिरजनहार ॥३॥

देखो सूषिम धूल को ब्यौरे बुद्धि बिचार ।
रज्जब रसतज काटहीं नमो झकसि ब्यौहार ॥४॥

सपत धात धरती मैं सानी ज्यूं आतम आकार ।
रज्जब अष्टौं रजरली काटण कौ सुबिचार ॥५॥

रज्जब रिधि विधि त्यागिये सकति समझ सुलझंत ।
बसि बिभूति बिहूरी सुकिन पूछौ साधू पंत ॥६॥

चौपई काया काठ बधि दरिया बस्त्र ब्रह्म अगनि धृत काढ़ि रतन्न ।
मधु मुक्ति सो जुगतिहु होइ रज्जब बसि छूटै नहिं कोइ ॥७॥

साखी समझ बिना सुरझै नहीं सुरति सूत उर थान ।
चैन न उपजै सुरझि बिन रज्जब समझि सुजान ॥८॥

जीव पड़या य मुणहू मैं ज्यूं गोरख धंधा ।
जन रज्जब कोइ कोटि मैं सुरझावैं फंधा ॥९॥

रज्जब सेरी समझ की सन्त सुरति मैं होइ ।
तौ मुकता तिहु लोक मैं बंधन माहीं कोइ ॥१०॥

समझि सुखों की रासि है सब संतन आधार ।
रज्जब ज्वाला जम करै सीतल बड़ा बिचार ॥११॥

रज्जब बिमल बिचार सौं विष अमृत ह्वै जाइ ।
सदा सुखी आनन्द मैं हिरदै दुख न समाइ ॥१२॥

काया माया मांस सौं मुकता करै बमेक ।
सास सीम्यू मोष कै रज्जब मूर्ख एक ॥१३॥

रज्जब बादक बाज परि, आमराइ असवार ।
ताकै बस अगुधा मर्द तामैं फेर न सार ॥१४॥

चित चेतनि छाया अगमि बैठे ग्यान बिचार ।
रज्जब रामति राम का सो देखे दीदार ॥१५॥

रज्जब ज्ञान बिचार ग्रह, आप जिकरि ठहराइ ।
जैसे भौंरा के भुवनि कीया कृमि महि जाइ ॥१६॥

समझि समावै सबद में परख प्रान प्रवीन ।
आखिर पैठे ओसि मैं रज्जब ह्वै लैलीन ॥१७॥

अकलि इलाहत अकल की प्राणी जो पावै ।
सो काया माया मांड सौं गंज्या नहिं जावै ॥१८॥

बिचार बगतरी टामिये जो टले कुबाइक चोट ।
रज्जब उवरै आतमा बैठि अकल की ओट ॥१९॥

पाखांण बाण बाइक बुरे ज्ञान सु गैब ढाल ।
रज्जब बांह बमेक मिलि चेतनि चोटैं टाल ॥२० ॥

वप बसुधा मैं बिघन बहु सो टालै एक बिचार ।
रज्जब पड़ै न प्राणपति इस माया की मार ॥२१॥

बन रज्जब भट साध के साधन सूमती बात ।
ह्वै निकसे बहु अग्नि मैं चोट न लागै गात ॥२२॥

ज्यों भट निकसे अग्नि मैं अंगहि लावै नाहि ।
त्यों रज्जब कहमा कठिन महुंत मसंदो माहि ॥२३॥

सबद बोलणा सभा मैं सतरंज का सा खेल ।
रज्जब कीया मात मत दुर्लभ दुर्जन पेल ॥२४॥

सोरठा सबद गहै समसेर प्राणी पाइक की मसा ।
टालै घालै हेर, सकल सिनारी मैं भला ॥२५॥

साखी रज्जब बाइक बाण परि चढ़ै सो बावन वीर ।
संसार समुंन्द्र परि चलै ले पहुचावे तीर ॥२६॥

मनसा नटणी वैन वरत चढ़ि खेलै कला अनूप ।
रज्जब चलतौं भूरि गगन बिच रीझे देखा भूप ॥२७॥

मित्त सबित्ती केसवण साध बेद संसार ।
साँधी सौं महुगी खरी ममो केसवण हार ॥२८॥

सबद कलवणि कसिकसे गिरा मुष्ति गति बानी ।
रज्जब माहै राम की मुनि मैलहु की बानी ॥२९॥

छोटे मोटे सबद सुनि समझ्या बहु महि जाइ ।
सबद सोर ज्यूं श्रवण लगि अरथ विचार समाइ ॥३०॥
भली बुरी संसार की साधु दिल न समाइ ।
पारी छेको नीर ज्यूं जन रज्जब चलि जाइ ॥३१॥
जब गाफिल गुफतार है तब हांजी तैय्यार ।
और कहाव न कीजिये रज्जब इहै विचार ॥३२॥
चंचल वाणी श्रवन सुनि मुनि मन पकड़ै मौन ।
साधू सांइ सुमेर की रज्जब डिगै न पौन ॥३३॥
जांप पड़े का बीज है, जे छूटे बकवाद ।
समझि समावे सुनि मैं ज्ञान गुरु परसाद ॥३४॥
जथा नगारे चोट सुनि हिमगिरि करै उपाधि ।
जन रज्जब यों जानिये वहां मौन व्रत साधि ॥३५॥
अरिल जहां मौले मीरेवेंत वहाके सेल सबीसौं मांडया ।
जन रज्जब तिनमैं तम बावे तब बालिक जप छांडया ॥३६॥
साखी सबै विसावर उठि गया जबै वृष्टि उठि जाहि ।
त्यूं रज्जब पलको मिल्यू बिन बीसे कछु नाहि ॥३७॥
भला न आवै भलेहि लगि बुरा बुरी बसि जाल ।
जन रज्जब जग जीव सों आइ कहै क्यू बात ॥३८॥
साव चोर माई उभै छांड़ि एक घर जाहि ।
रज्जब सुख दुख बस पड़े सो फिरि आवै नाहि ॥३९॥
अग्यान उदर माहै पड्या लहै न ग्याम निकास ।
रज्जब अरभक अवध की कहु क्या कीजै आस ॥४ ॥
पंपि अंक पावै नहीं तौ जीवन पद नास ।
रज्जब बिना वमेक यूं ताकी कसी आस ॥४१॥
सम मन सुधि समझि बिन साईं साधन मेक ।
रज्जब ऊजड़ मनसि बिन बस्ती मही बमेक ॥४२॥
सकति रूप संसार सब समझ्या कोई येक ।
रज्जब भूति बिभूति मैं बिरलौं मिल्या बमेक ॥४३॥
जन रज्जब मन सुधि की अग्यान गु आभू घेर ।
तौ आतम आदित सहत बप ब्रह्माण्ड अंधेर ॥४४॥

तहां औपदी अकसि है, समझ समीर सु हेर ।
मनसा बाचा करमना और न छूटन फेर ॥४१॥

## पिरथी पुस्तक का अंग

रज्जब बसुधा बेद सब कुलि आलम सु कुरान ।
पंडित काजी मैं पढ़े दुनिया दफ्तर जान ॥१॥
सिष्टि सास्तर है सही बेत्ता करै बखान ।
रज्जब कागद क्या पढ़ै पिरथी पुस्तग जान ॥२॥
ब्रह्म बेद ब्रह्माण्ड यहु कीया सबम कुरान ।
रज्जब मौज मुसाफ को बाचै जान सुजान ॥३॥
रज्जब कागद कुम्भनी आतम आखिर रूप ।
ब्रह्म बेद बेत्ता पढ़ै अकलि सु अजब अनूप ॥४॥
चतुर पानि की काया कागद आतम आखिर माहिं ।
यहु पुस्तक कोई विरला बाचै घटि घटि समझि सु नाहिं ॥५॥
कागद काया कुम्भनी दफ्तर दुनी दिवान ।
रज्जब आलम इलम यहु समझै कोई जान ॥६॥
प्रान प्यंड ब्रह्माण्ड मैं उपजे चारयू बेद ।
पै रज्जब मुर मूल है, भेदी पावै भेद ॥७॥
पंच तत्व पुस्तक मई, जिनमैं नाना भेद ।
रज्जब पंडित प्रान सो जो बाचै यहु बेद ॥८॥
कारण पंचो तत्त है कारज चारयू बेद ।
जन रज्जब जगि जान सों जो पावै यहु भेद ॥९॥

चौपई
बपु मैं बारह सकंद बेद प्राण पवनि मधि पाया भेद ।
पंच पचीस सिपारे साह, काया एन कला मुस्लाह ॥१० ॥

अरिल
रुग रुधि चलै जु जरचपि आये स्याँम श्रवन सूंघै साधा भेद ।
उदर अथरवण सब मैं ड़ आवै रज्जब रचे वपु सु चतुर वेद ॥११॥

साखी
अठार भार औषधि सबै बेत्ता बैद सहेत ।
त्यू पिरथी पुस्तगमई मुनि मुक्ति बाणि महत ॥१२॥
बिष अमृत आकार आतमा उभै उभै सु मंझार ।
रज्जब बसुधा भेद सु बैदक बेत्ता बेद बिचार ॥१३॥

पाने पुस्तग एक के हिन्दू मुसलमान ।
सब मैं विद्या एक ही पढ़ैं सु पंडित प्रान ॥१४॥
तन मन मथि खोजिग किया गरग सु गहरे ग्यान ।
गहण सहित गैभागि गमि रज्जब किया निदान ॥१५॥
कागद मसि के आपिरौं पाठिक प्रान अनेक ।
रज्जब पुस्तग प्यंड का कोई पढ़ैगा एक ॥१६॥

## सद्गति सेभे का अंग

सरीर सरोवर बुद्धि जल सबद मीन ह्वै मांहि ।
रज्जब पहुत ये नही पीछै मेलै नांहि ॥१॥
बहुतै सर सरिता भरै बादल बारंबार ।
तसे रज्जब साध गति बेद भेद तिन भार ॥२॥
जल अनंत आकास मैं पिरथी पर परिवाणि ।
साध बेद यू अंतरा जन रज्जब पहिचाणि ॥३॥
साधू सेभे कूप जल निगम कलस है बारि ।
जन रज्जब सा नीर की कुमि पंडित पणिहारि ॥४॥
मासिक सेर समंद है मसक कुरान कतेब ।
कुमि काजी सबके फिरैं रज्जब समझहु सेब ॥५॥
साधू सागर सबद के बुधि बमेक की खानि ।
जन रज्जब बाणी विविधि सब सतन सौं जानि ॥६॥
साध मौसि निज ग्यान की कुरान अठारह भार ।
रज्जब ज्यूं थी त्यूं कही तामैं फेर न सार ॥७॥
चित चेतनि की बात है चारयू बेद कुरान ।
जन रज्जब सो मानिये तजिये तिनका मान ॥८॥
वारि बुद्धि माहै उदै सफरी सबद समान ।
यह प्रकार बाणी बिबिध समुझै साधु सुजान ॥९॥
परवत प्रायहु सो चलै सलिल सास्तर सघ ।
अंब अफसि मधापि यू यू ही रज्जब मध ॥१०॥
सैलहु सौं सरिता चली गुर पीरहु सौं प्रान ।
उपमि सु भवगति कौं मिलहिं दसा दरसन निदान ॥११॥

माहक बादल ज्यूं उठहिं, आतम सुषि मझार ।
बेद पुरान घटा मिलहिं अरथ सु मंघ अपार ॥१२॥

ज्यूं दीप राग रज्जब करैं त्यू तम सेती ग्यान ।
तहां बहु बहुनी बैन लेहि, होहिं नर एक समान ॥१३॥

गैले गोला ना चले गोले गैला होइ ।
जन रज्जब सांची कही देखौ रे सब कोइ ॥१४॥

तुरकी तेग कुरान है श्रुति हिन्दू हथियार ।
जन रज्जब अनभै गुरज जाके दहू दिस धार ॥१५॥

रज्जब बेद पुरान गहि जूझण आये सूर ।
ग्यानी अनभै गुरज गहि, मारि किये चक चूर ॥१६॥

रज्जब तुरकी तीर है, बेद बाणि की बार ।
अनभै बाणी गैब गज ज्यू त्यूं करै सुमार ॥१७॥

रज्जब रहता गढ़पती बहुतौं माड्या घेर ।
उकत अनेकौं गज चले बहुत मुये इस फेर ॥१८॥

## साध मिलाप मगल उछाह का अंग

राम सनेही जब मिलैं तबहीं आनंद होइ ।
जन रज्जब सो दिन भला ता समि और न कोइ ॥१॥

साध समागम होत ही जीव अलणि सब जाइ ।
जन रज्जब जुग जुग सुखी दुख नहिं लागै आइ ॥२॥

सलिल सैल अडहू उडै पाये ईंद्र अवाज ।
तौ सनमुख किन चालिये आवत सुणि सिरताज ॥३॥

अति उछाह आनंद अति मन मंगल सु कल्यान ।
रज्जब मिलतौं संत जन सुखि सागर वरसान ॥४॥

साधू सदनि पधारतैं सकल होहिं कल्यान ।
रज्जब मघ उडगन दुरहिं, पुनि प्रगटैं ज्यूं भान ॥५॥

भाग भोमि मस्थल उदै आवहिं साधू संत ।
जन रज्जब मगि ऊधरैं जपि जीवनि भगवंत ॥६॥

जिन देखे दुख दूर हैं मिलतौ मंगलचार ।
रज्जब रहिये संगि तिन विदिधि बहाणौ तार ॥७॥

मांझ्यू आनन्द अवल-सुख मन-मंगल सु अगाध ।
जन रज्जब रस रंग-ह्वै मिलतौं साधू साध ॥८॥
साध दरसनै नाठरै, सबद परस सुनि कान ।
रज्जब मेला मन, मिल्यूं सब ठाहर सुख सान ॥९॥
रज्जब आंखि कान अठवी मिटी सुण्या सु देख्या नैंन ।
उभ ठौर आनद भै थारपू पाया चैन ॥१०॥
मंगल सकति समाम सब स्यो मंगल सु अगाध ।
रज्जब सो तब पाइये जब घरि आवहिं साध ॥११॥
भौर सकल सूख सुगम हैं, यहु सुख अगम अगाध ।
रज्जब रसन न कहि सकै जो सुख मिलतौं साध ॥१२॥
साध समागम सुख कौं कहिबे कौं समरथ ।
रज्जब सब उनमान की जो कहिये कथ कथ ॥१३॥
परम पुरिष पारस परस मन मोहै ह्न फेर ।
रैन दिवस बेला मबल रज्जब रारपू हेर ॥१४॥
जन रज्जब अज्जब दसा राजा परजा रूख ।
आनंद परि आवहिं सब परवनि पासर पुरूख ॥१५॥
अदभू मैं आवम उडैं देखि औ वसा देस ।
रज्जब परवनि परि पुरिष सुभ ठाहर परवेस ॥१६॥

## चरणोदिक प्रसाद का अंग

चरणोदिक परसाद कन मुखि न पड़ै मति मंद ।
तौ रज्जब अंतर रह्या कहिये गुर गोब्यंद ॥१॥
चरणोदिक परसाद यू जे को ले सत भाइ ।
स्यूं रज्जब मुख मेलतौं दुख दारद तैं जाइ ॥२॥
परसादी गुरदेव दे पसु फरवा * पुनि पीर ।
तौ रज्जब किरिया करम सुखी सौंप इहिं सीर ॥३॥
कुमति काट ऊपर फिरै भये अवनि औलाद ।
सो रज्जब पलटै नहीं पारस मैं परसाद ॥४॥

* 'पसु फरवा' के स्थान पर 'विमुख रह्या' पाठ भी मिलता है ।

सोरठा उड़हिं जो बातहिं बात सो ममिया माटी निकण ।
तामें परम न बास बिये बाइ बसि हु नहीं ॥५॥

साखी ज्यू न्यारा नर धोवतें, कंचन किरची मेम ।
तैसे रज्जब साध के अलौकिक मैं खेम ॥६॥

कंचन किरची पाइये मर न्यारे कू धोइ ।
रज्जब पूर्णिग पहाड़ कै बित्त न सामैं कोइ ॥७॥

सरवी सोवम सैल तैं तिन ससितौं रज हेम ।
रज्जब सहैं न भौर नदि मनसा बाचा नेम ॥८॥

बेन्या बैरागर भई निकसैं लाल अनूप ।
रज्जब मुगद मुरस्वली क्या पावैं पणि कूप ॥९॥

सतगुर के परसाद मैं भाव भगति करतार ।
रज्जब बामा बंद से ब्रालिक होत न मार ॥१०॥

सतगुर के परसाद मै रज्जब दोष न कोइ ।
जथा कामिनी बांझ क बालक कदे न होइ ॥११॥

## दास दीरघ का अग

रज्जब भारी मुरसुरह मुरतरु सीषणहार ।
पूजहिं साधू प्रसिध कौ सु दातारु दातार ॥१॥

साधू पारस पोरसा च्यंतामणि दातार ।
यहु रज्जब मूत भीख बिन सो गति अगम अपार ॥२॥

सती जती सों है बड़ा सुखदाई सब संत ।
रज्जब सीर्थ इंद्र ज्यू निहकामी मिज मत ॥३॥

सेवक साईं सारिखा आस बिना जो दास ।
बैरागर बैराग बस रज्जब रहे निरास ॥४॥

सिष्ट सहुत साईं किया साधू नै उर माहिं ।
उभै समाने दास बिन तौ सेवक सम कोइ नाहिं ॥५॥

धन रज्जब जन बिन निमित जती सती कै जाइ ।
भगवत सहुत भोजन किया बड़भागी मुत माइ ॥६॥

मसे बुरे भूमै मही मालम वृष्टी दास ।
रज्जब नाते नांव के सबकी देइ गरास ॥७॥

रज्जब उपजे दया दिल मन में साच न चोर ।
ज्यू चंद्र उधारन देखई सर ऊसर की ठौर ॥८॥
सरवर तरवर सती के मुर ठाहर मत एक ।
रज्जब अमदल सम दृष्टि, यू ही धजा अमेक ॥९॥

## लघुता का अंग

चित्त बडाई मैं नही बड़ा न हूं जो कोइ ।
आप मही लघु आंगुरी रज्जब देखौ जोइ ॥१॥
लघु का बदे लोग सब लघु को लेहि सु गोद ।
जन रज्जब ओमा मजरि, देखौ सिसु की कोद ॥२॥
अनल पंथ पावै नहीं सो मधुमाखी लहि ।
रज्जब रस गय ना सहै सु मीठा मखि यहि देहि ॥३॥
मातहि मुस्कल मध अल पूत करत पै पान ।
रज्जब यूं लघुता लई शक्ति बई का दान ॥४॥
लघुतै बसि दीरघ सदा देखौ पणि पपि माखि ।
रज्जब अज्जद साखिमहु मन बच क्रम उर राखि ॥५॥
सकित समंद उलघि करि दीरघ गया न कोइ ।
पवन पूत पहुंचा तहां जन रज्जब लघु होइ ॥६॥
मोटा महल न मावई राम राज दरि जोइ ।
रज्जब पैठ लघु तहां तिसहि न वरजै कोइ ॥७॥
मोटे हल फूटे सही मान भैब सलि माइ ।
रज्जब रज का क्या करै, ऊपर ह्वै फिरि जाइ ॥८॥
गुरु बीज बडसारिसा सिप साखा विस्तार ।
रज्जब अज्जब देखिया लघु दीर्घ ब्योहार ॥९॥
बारि बूंद रूपी गुरु सिष समंद उनहार ।
रज्जब रचना राम की लघु दीरघ सु विचार ॥१०॥
गुरु ब्रहस्पति सुक्र से सिप सब देव दमंत ।
ज्यू मदिरा परि बमस लघु मति सुवर सोमंत ॥११॥
सब औताक के गुरु देखौ माव अतीत ।
रज्जब पाई प्रान मै लघु दीरघ परतीत ॥१२॥

सोरठा उपहिं जो वासहिं मात, सो ममिया माटी निकण ।
तामें परम न पास दिये बाइ बसि प्र वहै ॥५॥

साखी ज्यू न्यारा नर धोवर्वे, कंचन किरची मेल ।
तैसे रज्जब साध के परतोविक मैं खेल ॥६॥

कंचन किरची पाइये नर न्यारे कू धोइ ।
रज्जब पूर्णिग पहाड़ के वित्त न साभ कोइ ॥७॥

सरवी सोवन सैम थैं तिन सलितौं रज हेम ।
रज्जब सहुँ न और मदि मनसा बाचा नेम ॥८॥

बेला बैरागर मई निकसै लाल अनूप ।
रज्जब मुगद मुरस्वमी क्या पावै पणि कूप ॥९॥

सतगुर के परसाद मैं भाव भगति करतार ।
रज्जब बामा ब्यंद मे वालिक हात न बार ॥१०॥

सतगुर के परसाद मैं रज्जब दोष न कोइ ।
बधा कामिनी मांझ कै बालक क्वे न होइ ॥११॥

## दास धीरज का अंग

रज्जब बारी सुरसुरह सुरतरु सीषणहार ।
पूर्वहिं साधू प्रसिध कौं सु दाताह दातार ॥१॥

साधू पारस पोरसा च्यंतामणि दातार ।
तहं रज्जब भूत भीख बिन सो गति अगम अपार ॥२॥

सती जती सौं है बड़ा सुखदाई सब जंत ।
रज्जब सीचै इंद्र ज्यू सिहकामी निज मत ॥३॥

सेवक साँई सारिखा भास बिमा वा दास ।
बैरागर बैराग बस रज्जब खे मिरास ॥४॥

सिष्ट सहत साँई सिया साधू नै उर माहि ।
उभै समाने गास बिस तौ सेवक सम कोइ नाहि ॥५॥

मन रज्जब अस बिस निमति जती सती कै थाइ ।
भगवंत सहत भाजन किया बड़भागी भूत भाइ ॥६॥

भले बुरे भूमै नहीं मातम दृष्टी दास ।
रज्जब नातें नांव कै सबकौ देइ गरास ॥७॥

रज्जब ताकि तराजु वहै पुसि पसे नर ताइ ।
भारी नीचे कू झुके हलुके ऊंचे जाइ ॥२८॥

अरिल तरुवर सुफल सबल अति आमे मानस सगुन नवै निज दास ।
पन रज्जब फल भग गुन छूटै तीय्यूं ऊंचे जाहिं अकास ॥२९॥

साखी रज्जब डरते धुकि भरती मिलहिं, अडर सु ऊंचे जाहिं ।
उभै अग आभ सिये क्रिमन कृपालहु माहिं ॥३०॥

जब नीचहु ऊंचे गये रज्जब नर तरु साखि ।
मनसा वाचा करमना तातैं नभुता राखि ॥३१॥

आपैं चढ़ै नीचा गया उतरयू ऊंचा जाइ ।
ज्यूं रज्जब कर केस परि निरख नांद निरताइ ॥३२॥

परमारथी पनिग पति सिष्टि भार सिर लीन ।
सौ रज्जब प्रभु पहुम परि नाम तिनहु के कीन ॥३३॥

गुण डारी नीची चलत ब्याम दीप आकास ।
रज्जब उसटे पैंचकीं समुझ समुझ्या दास ॥३४॥

नीचहु ऊंचे थाल परि बैठल भारी मोल ।
फूस फण सो समंद सिरि, पग तलि मग निरमोल ॥३५॥

मीठी मही महंत मति कण कण निपजै माहिं ।
फोकट फूले खारवै रज्जब नेपैं नाहिं ॥३६॥

झुकमि फली हरि तरु सगग असग सु फूलमि फूल ।
तौ रज्जब सिमटया रह्या त्यूं छूटै नहिं मूल ॥३७॥

मातंग महोदधि नीपजैं मुकती उभै मंझार ।
रैनाइर गरवै नही गरवै गज सु मंझार ॥३८॥

साधू मन दीपक बुझै बह्या बड़ाई बाव ।
रज्जब राखहु जोति कौ तौ नभुता जतन उपाव ॥३९॥

चौपई अधपति आमे अवनि अतीत झुकि झुकि मिलहिं अजब रस रीत ।
गरीब गरद जा जाइ अकास तौ सब मांझ धरैं सुधि तास ॥४०॥

साखी रज्जब राम उमंग मरि, आप सहित दे सरब ।
तऊ दास दिल दीन मत ध्याता होइ न गरब ॥४१॥

सलिल संठ रस गुण मदी बांइ तरी भई ताइ ।
मिसरी ह्वै मति तिम मिया रज्जब कही न जाइ ॥४२॥

रज्जब सौंजहु आवरहिं, तिन समि बड़ा न कोइ ।
बूंदहु उठे समंद जी देखि बुदबुदा होइ ॥४३॥
नीचै ऊंचे आवहीं वासि माति विस जोइ ।
जन रज्जब अज्जब कही, हलै सु ऊपरि होइ ॥४४॥
गरीब निवाज गुसाइयाँ, पुनि निवाज मरपत्ति ।
रज्जब सीप मजेन्द्र कौ मुकता देइ सु सत्ति ॥४५॥

## गरब गंजन का अंग

आदित आगि यंग अइ उडगन दामनि दमक सु भूदि ।
रज्जब जगत जोति सब मागे साई जींगनि पूथि ॥१॥
रे रे केसरि अमर तू मत करि मान गुमान ।
गहरी बास सु मुदा मैं मैल मजारी जान ॥२॥
ब्रह्मा सारद मंदिर धर, मान न करियो कोइ ।
मुये स्वान के पूद तैं बारि बेद धुनि होइ ॥३॥
गिरवर गरब म कीजियो सप्त धात घन ओर ।
तांबा निकसै पंक मैं सागी पूदनि मोर ॥४॥
बिस हरै निरबिस करै अति गति मोल बिकाहिं ।
बड़े पाड़ की बात सब मोर बात समि नाहिं ॥५॥
गांकर जडहु सुगंध मिटाइ को बावन बस छाड़ि ।
सबु को वीरज दीन दल पद यूं परई माड़ि ॥६॥
मधुतमिके मधि माज कीमे दीरघ द्रुमहु सु और ।
गरम गंजन गोब्यंद की ताल वसमि किस ठौर ॥७॥
इंद्र धनुष रंग काढि न गरबी जैसो काई किरकांट ।
रज्जब गाम रूप विमे सरभरि बंसी कौन की ओट ॥८॥
तेज तस को दीप समाई सो बुदबी भ्रम मान ।
रज्जब रक्त बरन सब रायें काम रूप नहं छान ॥९॥
ससि समुंद्र गरबैं कहा ज मधु माखी माहिं ।
तुममैं सुधा सहत मजुरी मैं गरब रह्या कछु नाहिं ॥१ ॥
अमी कुंड बैकुंठ मैं ससि मैं सुधा सु ठौर ।
सोई सरजा सरप मुख अलप विखाया और ॥११॥

रज्जब मन पुस्तग किया जोतिग ठौर उठाइ ।
अगम कह्या ये बात नै, सह्या न जातिगराइ ॥१२॥

जोतिग जुगति न जाणहीं खांडर बारसि रेत ।
सो कीडी की मत सही चूंचि कणींका सेत ॥१३॥

कीरी को कुंजर डरै, खोवै सूंडि समेटि ।
मद गुमान तब का गया मान मकोड़ै मेटि ॥१४॥

सिंधुर डरपै स्यंघ सौं ताहि सु माछर खाहि ।
पौरस राख्या न पंचमुख मान सु मरह्या माहिं ॥१५॥

मोटी काया मुगल जिव मावम छोटा साज ।
दीरघ देह दरपहर, लघु ऐही सिरताज ॥१६॥

दर्प हरह्या दरियाव का उदगि ऊदिध आरोग ।
रज्जब रब सु कहां रही पड्या अभोगी भोग ॥१७॥

नाल खाल जैसे सिंधू नदी माप गरजाइ ।
सो अगस्त अचवनि किया सो मति कोइ गरबाइ ॥१८॥

एक सूर तारे अनंत देखि दरस छवि जाहि ।
रज्जब गरब न कीजिये बैठि सु बिधु घण माहिं ॥१९॥

परिवार पूर तारे अनंत चंद रहै तिन माहिं ।
रज्जब पकड्या राहु जब सगौ सरया कछु नाहिं ॥२०॥

चौपाई गरीब निवाज गरब गंजन सांई उभै बिरद परि साखी आई ।
राखहि रंक रंक तें राजा समरथ सब बिधि पूरवन काजा ॥२१॥

साखी गरब गंजन गोब्यंद जी सदा गरीब निवाज ।
उभै अंग अविगत कनै बहैं बिड़द की लाज ॥२२॥

ब्रह्मा बिष्नु महेस सूर ससि इंद्र गनेस्वर गौरी देव ।
पै असवार उमह नहि उतरैं सावधान सांई की सेव ॥२३॥

ब्रह्मा बिष्नु महेस सूर ससि चन्द्र सरी असवार ।
रज्जब रथ परि पुरुष न सकट गरब चढै भै स्वार ॥२४॥

अरिल हंस गरुड़ वृष बाज मिरिग मन ये रथ सुर असवार ।
रज्जब तिनकौं बिपन न ब्यापा गरब गावह परिमार ॥२५॥

साखी च्यंट चढे माखहु चढे चढ सु दिस दीवानि ।
रज्जब पाल पीटिये चढे जु गरब गुमानि ॥२६॥

चौरासी किस परि चढ़ी पसु पासे दिन रात ।
रज्जब रामहु ना मिली हम रीझे इस बात ॥२७॥
न्याव नीति सब ठौर सु प्यारी रज्जब दीसै तीन्यूं भौन ।
प्यादे चढ़ चाकरी पूरे तिनके पटे उतारे कौन ॥२८॥

चौपई बैठे रथौं देवता सारे सो सब कहौ कहा थै हारे ।
रज्जब सेवग सेवा माहीं तिनके पैड उतारे नाहीं ॥२९॥

छप्पय ब्रह्मा वाहन हंस बिस्न कै बाहन खगपति ।
संकर बाहन बैल मूस पर मंडे सु गनपति ॥
कार्तिक स्वामी मोर सकति सति स्यंघ विराजै ।
है गै सूरिज यँद्र ससि रथ सारंग छाजै ॥
सुर सबहिन प्यारे पुहुप तिनके काज न बीगड़ै ।
जे रज्जब आपै चढ़ै ते परलै या मुख पड़ै ॥३०॥

साखी रज्जब रीझी बंदगी जब लग आपा माहिं ।
मनसा बाचा करमना साहिब मानै नाहिं ॥३१॥
चप छांडी बाराह की करहु न गरब गुमान ।
रे रज्जब मूं आनि लै जे तू चतुर सुजान ॥३२॥

## करुना का अंग

आदि अंत मधि हम बुरे हमसूं भला न होइ ।
रज्जब ज्यूं साहिब खुसी सा लछिन नहिं कोइ ॥१॥
रज्जब हमसूं हम दुखी तो राम सुखी क्यू होइ ।
भजन अजुगि है कंठि कुचि कसम न पावै धोइ ॥२॥
बंदे मैं सो बंदगी जामे सुख नहिं लेस ।
रज्जब सिर की ठौर थी तहां दीजिये केस ॥३॥
रज्जब सभि अधमै नहीं तुम प्रभु अधम उधार ।
उभै अंग मैं फर क्या कीज क्रिया बिचार ॥४॥
रज्जब पापी पहुम पर राम रोम रुचि पाप ।
क्रिया करो तो ऊधरै सेवग सुत हरि बाप ॥५॥
साध साध सब को कहै, मै स्याधा कछु माहिं ।
पंच पचीसौ मिथुन घन मनर मनोरथ माहिं ॥६॥

तुम जोये सेवक नहीं, मैं मंद भागी करतार ।
रज्जब गुनही बाप जी, बहुत किये बिभचार ॥७॥

गुनहु माहि गलि रह्या, गाफिल भया गंवार ।
रज्जब सठ समझै नहीं साहिब सुनहु पुकार ॥८॥

तन मन सेज्या पाप का अरि इंद्री अघ खानि ।
रज्जब पूछ राम की सजा सु कौन समानि ॥९॥

राम कसौटी सब सुखप रज्जब पाप अपार ।
सजा सु सूझै साइयां मो समि हो दरबार ॥१०॥

उदरि उदरि ऊंधे रहे सहि संकट सब भौन ।
रज्जब जग जामे मुये सजा देहुगे कौन ॥११॥

बिपति नहीं प्रभु बिमुखि समि सो सिरजी मम सीस ।
अब रज्जब सौं रोस करि करिस्यूं क्या जगदीस ॥१२॥

अरिल बदअमली क्या बदन दिखावै बंदे का मुंह काला ।
प्रभु की दरस न उज्जल दीजै क्या बैठ है लाला ॥१३॥

साखी करुनामै करुना करौ देखहु दीनदयाल ।
रज्जब रीता रहम बिन तुम पूरन प्रतिपाल ॥१४॥

झुठि सेवग बिनती करै चेरौ चवै पुकार ।
रज्जब दहु मैं एक है समरथ सिरजनहार ॥१५॥

चोर जार बट पार ह्वै पापी करै पुकार ।
रज्जब राम दयाल है सो अघ मटपहार ॥१६॥

एक मार परि मौज ह्वै इक मारि मिहरि सौं जाइ ।
रज्जब सौं करि रोस रस भगवंत भावी भाइ ॥१७॥

कायर सूर पग लहै न्यारी निपट निवाज ।
पै रिजक न मेटै राम जी जीव की है लाज ॥१८॥

रज्जब सनमुखि बिमुख कौं बरा बिसंभर देइ ।
जीव की सज्या बहु गुन औगुन महिं लेइ ॥१९॥

सुकृति सुकृति भनि सीप सापुले जल जलनिधि इक माइ ।
मंछग सूप रज्जबा ह्व मंजूर सुभाइ ॥२०॥

गुनही को मारो धणी अपण हाथ सु माइ ।
अतिकाम मानंद ह्वै दरस सु रेम्या जाइ ॥२१॥

बिड़द बिहारी बाहुड़ी बाहुड़ि बहिये बाजि ।
रज्जब के रिपु मारिये, पै साँई सिरताज ॥२२॥

भव भंजन मोख्यंद की पुणि अनाथ के नाथ ।
रज्जब के रिपु मटिये पै व्यापक भरि बाथ ॥२३॥

तन मन पंचौ चोर हैं, बसि आवें नहिं बाज ।
इनके धुनह न धारिये पै साँई सिरताज ॥२४॥

दीनदयाल दयामई सदा दीन के पास ।
रज्जब की फिरियाद सुणि मेटहु मेरी त्रास ॥२५॥

कमा अनंत अनंत कन आतम कन महिं येक ।
रज्जब राम रिझावणा सहिये नहीं अनेक ॥२६॥

रज्जब अज्जब राम है कहे सुणे मैं नाहिं ।
यहु असुद्ध अंतकरण यहु देखो चित माँहि ॥२७॥

गरीब नेवाज गोसाइयाँ गुरु गरीबौ दास ।
रज्जब चूक सु हमहु मैं नहिं गरीब गुन पास ॥२८॥

रज्जब बिनती परब्रह्म करुनामै सु बिरद ।
पुकार सुन्यूं प्रभु बाहरू पै मैं मुरखौ कू रद ॥२९॥

घर मैं पारस लोह था परसै नाया नाहिं ।
मनसा बाचा करमना चूक पड़ी मुझ माँहि ॥३०॥

अरिल　निहचा आया नांव का, परि नांव न आया ।
रज्जब रज तज काढ़ताँ प्राणी पछिताया ॥३१॥

## बीनती का अंग

सकल पतित पावनि किये अधम उधारणहार ।
बिरद बिचारो आप कौ अब रज्जब की बार ॥१॥

रज्जब ऊपरि रहम करि हरिजी दीजै हाथ ।
नाता राखो नांव का नरक निवारण नाथ ॥२॥

मालो माहैं सो नहीं जाका लीजै नांव ।
तौ रज्जब सुणि नांव है देखौं मैं बलि जांव ॥३॥

रज्जब टेरै रैन दिन क्यूं बोलौ नहिं कंत ।
कै तुम अब मौनी भये कै तुम चाहो अंत ॥४॥

जे तुम राम बुलाइ ल्यो, तौ रज्जब मिलसी माइ ।
यथा पवन परसंग ह्वै गुड़ी गगन कूं जाइ ॥५॥
बिन आधार अकास कौं कहो बलि क्यूं जाइ ।
त्यूं रज्जब निरधार है साहिब करौ सहाइ ॥६॥
देही दूतर मन अतिर मौज ममोरथ माहि ।
विषम बार निधि राम बिन रज्जब तिरिये नाहि ॥७॥
इंद्री अनंग अंगार है काया कपड़ माहि ।
वप वस्तर राखै बचै नहीं त ऊबौ नाहि ॥८॥
साहिब राखै मांड मैं साहिब प्यंड मझारि ।
साहिब राखै आप मैं और न राखणहार ॥९॥
सूते सुतिहिं बुलावहीं माता पिता जगाइ ।
त्यूं रज्जब सुं कीजिये भगवंत भावी भाइ ॥१०॥
बाहर कहिये कौन सौं माहैं मुसकिल काम ।
अंतरि अंतर मेटिये अंतरजामी राम ॥११॥
रज्जब कीड़ा नरक का ब्रह्म बर्वलि क्यू जाइ ।
भगवंत भ्रंगी रूप है जे गहि लेइ उठाइ ॥१२॥
भ्रंगी नै भ्रंगी करी कीट किरत कछु नाहि ।
त्यूं रज्जब सौं कीजिये क्या देखौ हम माहि ॥१३॥
बालक बिप्ता मैं पड्या सु आप न उज्जम होइ ।
जन रज्जब माता पिता ज सुत लेहिं न धोइ ॥१४॥
जंगम जिव जाडे बंधे थावर मही सु माहि ।
माया के बंधन बाबौ लास आप सूर्ल सा नाहि ॥१५॥
बालक क बस रोज का पडि मुडि कर पुकार ।
रज्जब सुत मैं सकति यहु समरथ मिरजनहार ॥१६॥
बाबा मानहु बीजमी बला बरंभू होइ ।
जा मिरलग माता पिता मा सुत धरहिं न द्राह ॥१७॥
जब तब तमतैं हाइगा जाम गाइ जिव बाज ।
रज्जब ज्यू पी त्यूं बही सुनि यवमी मिरताज ॥१८॥
रैनाइर रिधि मद्धि परि वाहिय बेला साथ ।
रज्जब पहुच पार तौं ज गेबहि अनिन अगाघ ॥१९॥

मौ मन अघ सागर सही तुम प्रभु होहु अगस्त ।
रज्जब के अपराध अति मिटैं न बिन हरि हस्त ॥२०॥

तन मन को धोवै धणी बुधि के विविध विकार ।
रज्जब की रज उतरै तुमतैं सिरजनहार ॥२१॥

पीतम प्रगटौ ताप ज्यूं प्यंड तै प्रान छुड़ाइ ।
मारि मिलावौ आप मैं जन रज्जब बलि जाइ ॥२२॥

संतहु आतम राम बिधि मामा पुन्न भरपूरि ।
रज्जब टालै कौन बिधि जे हरि करै न दूरि ॥२३॥

जो दिनकर अरु दृष्टि बिधि आमा आड़ा होइ ।
रज्जब कीजै दूरि क्यू हिकमति चलै न कोइ ॥२४॥

हरि हज्जाम मो मन मुकुर माया म्यान कर माहि ।
मुख मुलि देखहि काढ़ि करि नहीं त काढ़े नाहि ॥२५॥

जे तुम राखौ तौ रहै सेवक सदा समीप ।
रज्जब त्यागे साइयां तौ बहुत पड़े बिच दीप ॥२६॥

दासहि द्वारे राखिये, हरि हित आंख्यू हेर ।
बंदे की यहु बीनती बरि बरि बारि म फेर ॥२७॥

जीव भक्त जगदीस कम आया बवे न आइ ।
रज्जब जब लग राम जी माप न करै सहाइ ॥२८॥

कुसि कसणी करतूति करि करम फंद नहिं जाइ ।
रज्जब निबडै रहम सू भगवत आये भाइ ॥२९॥

रज्जब ब्रह्म बिहग के आतम अंड समान ।
पै वावा सेवौ नहीं तौ क्यू निपजै तन जान ॥३ ॥

चौतिस गढ़हु मांहै बडघा जन रज्जब जड प्राण ।
बदि तुम्हारी तुमतै छूटै साँई सुनहु सुजाण ॥३१॥

सवा जीव बस की वरति दसत मीषा जाइ ।
रज्जब साँई सूरि सभि ऊंचा लेहि उठाइ ॥३२॥

अरिल मजाजीस दिल माहै बैठा भली न उपजण पावै ।
साहिब अपणा कौल विचारौ तौ जिव तुम पै आवै ॥३३॥

साखी सब दिन साँई सारिखा पै हरि हिरदै की लेइ ।
टोटी बहुतो मात पित बालहि राटी देइ ॥३४॥

रज्जब बंदे बास मिष मोलहि बुध उन हार ।
मैं अंतरजामी मात पित मन की लेहि बिचार ॥३५॥

रज्जब खीरा खीर मधि मुहड़ै खारा स्वाद ।
मु खोसि न जाई सिष बिमल ताका तजि अपराध ॥३६॥

अनंत अंत लेतें अर्षी लौ न उभरते संत ।
मन रज्जब की बीनती मानहु अपना मंत ॥३७॥

भूमि चूक भगवंत की भिरतहु मंगलचार ।
रज्जब रज तज काढ़तौं ह्व सेवग सिर मार ॥३८॥

चौपई नांव असेख अनेक कहाव लेखा लेत नहीं बनि आवै ।
बाप बिरह की बहिये लाज रज्जब के सीसें सब काज ॥३९॥

साखी धर्म की को बंदगी भली बड़ी सु होइ ।
अजर बीनती ब्रह्म सौं रज्जब कहि बिधि होइ ॥४०॥

नाहीं सौं नाहीं उन है सौं है सा होइ ।
रज्जब की यहु बीनती साहिब देखो जोइ ॥४१॥

रज्जब भपि आतमा एक गति फूटे सारे गोत ।
मैं प्रभु पालहि पलक परि मंकत दुबिध न होत ॥४२॥

जोगी बटहि भगाइ के टूटा सारा केस ।
त्य रज्जब सौ राम करि इहां नही अवसेस ॥४३॥

भले बुरे छूटै न प्रभ ज लागे निज अंग ।
पट धारी हू ल बलै फूली लंगड़ी टंग ॥४४॥

मुरही मृत मिरतग तुचा मापरि सरब खीर ।
तौ त्यागहु गे कौन बिधि भगत बछल बर भीर ॥४५॥

ब्रह्म गाइ बंदा मु बच्छ, मूरा मूरति गोर ।
सकति खीर सरवहि सदा घटी कृपा नहि कोर ॥४६॥

भाव भोज की दामनी काया पड़ ल गास ।
बाबा बगड़ सौ धम्या रज्जब किय निहाल ॥४७॥

रज्जब गुनही आदि का अंत सर्मै हू सोइ ।
मधि मद्धिम इन इरष हूं कहु दूष्ण क्यू होइ ॥४८॥

मै मरा पापा मुदा मन कम बिस्वा बीस ।
रज्जब त्यागा त्यू सही तो त्यागहि जगदीस ॥४९॥

गैरी पाईं के पसहिं, विकहि वस्तन के साथ ।
रज्जब तूं खोटा सही पु हरि पकड़ै नहिं हाथ ॥५०॥

रज्जब गुनही जीव जड़ अपराधी सु अपार ।
मिहरि तुम्हारी ऊमरै सांचा सिरजनहार ॥५१॥

मीरा मुझमैं क्या बता जे तुम विसरे आप ।
अब रज्जब परि रहम करि दे अघ मोचन जाप ॥५२॥

बदी बिस्याही बहुत ही नेकी नैक न मीन ।
जन रज्जब जग आइ करि कहै कहा हम कीम ॥५३॥

जब काजी काजिर किया तब का पड्या कलंक ।
अब रज्जब सौं राम मिलि मेटी जे मन अंक ॥५४॥

जुग अनंत का रूठणा मानहु आतम राम ।
रज्जब लम्बा रोस अति नहीं भलौं का काम ॥५५॥

रज्जब आया चूकता सदा चूक ही माहि ।
पै प्रभु तुम चूकौ सु क्यूं मुझे उबारहु नाहिं ॥५६॥

क तुम कायथा गुनहु परि के हूमर परगास ।
पम परसाओं परम गुर दूर दुखी यहु दास ॥५७॥

भला बुरा जैसा किया तैसा निपज्या जीव ।
यहु तुम्हरा तुमको मिलै तुम क्यूं मिलौ न पीव ॥५८॥

बाण लिया खोटा खरा सोब भिरै नहिं साई ।
तौ रज्जब है पुत्र तुम्हारा करम्या कहा गुसांई ॥५९॥

ज्यूं साहिब सनमुख सदा बंदा बिमुख कदीम ।
तौ रज्जब सौं रोस क्या कीजै फहम फहीम ॥६०॥

मम कुकृत हैरान हरि, हौं हैरान हरि हेत ।
रज्जब से पापिष्ट को ग्जिकरि रहम करि देत ॥६१॥

हम समान गुनही नही तुम समि बकसन हार ।
उभै भग मैं फेर क्या कीज कृपा विचार ॥६२॥

रज्जब रूठा राम सौ मिलि रामति के रंगि ।
गुनग्राही गोपाल जी तऊ गये नहिं भंगि ॥६३॥

पीड़ा पचो तत्त को रोगी रवि राकेस ।
तौ आदम की एव क्या रज्जब विसम अंदेस ॥६४॥

सब सुखदाई सुभ स्रवै सोई कलंकी चंद्र ।
तौ आतम मैं ऐब क्या अचरज क्या गोब्यंद ॥६५॥

ऐबदार आकार सब औगुन सहित भरवाहि ।
ससि सूरज औगुन भरे इंद्र उदधि दिसि माहि ॥६६॥

त्रिविधि भांति तरच्यूं तपै रोस जनम निसि नास ।
रज्जब रवि राम्यूं निरखि इक रस भये निरास ॥६७॥

पन्द्रह तिथि सोलह कला घटतैं ससि सु सरीर ।
सौ रज्जब आतम एक रंग रहै कौन विधि वीर ॥६८॥

रज्जब सब दिन एक सु रवै न आवै कोइ ।
त्रिविधि भांति तरयू तपै लघु दीरघ ससि होइ ॥६९॥

तुम पूरन प्रतिपाल की औगुन दिसा न देख ।
रज्जब सूझै राम की सीज काढि असेख ॥७०॥

सुत मैं सत अपराध ह्वै परि पिता न पूछ बात ।
त्यूं रज्जब औगुन भरया क्यूं त्यागहुगे तात ॥७१॥

सरिता साधू स्यध हरि उभै उभै दिसि माहि ।
रज्जब रिधि रहता सहित इष्ट सु बिरचै माहि ॥७२॥

नदिया भर भनै वहै भरि जोबन मैं मंत ।
रज्जब रज देखें नहीं देखी उदधि अनंत ॥७३॥

नदी बहत भर नीकसैं तिना गह्यू बहै भाग ।
सो रज्जब क्यू बूडसी जु बैठा नाव जिहाज ॥७४॥

माटं बिना नग नीपजै हीरा मोती लाल ।
तौ रज्जब सुमिरन सहज सो किन हात निहाल ॥७५॥

नीब घर गल भरि पडै पाणी भरिय आइ ।
तौ रज्जब तन क्यू रहै, जागौं दह दिसि राइ ॥७६॥

जथा कटोरी पही की बूडि जाइ तुष टेक ।
सौ रज्जब तन क्यू रहै जु दह निसि भरै असेव ॥७७॥

जत सत सुमिरन करन का हरिनाता हैनाम ।
रज्जब बीयहु बीमनी सुसन्नि करन असान ॥७८॥

प्रभु परिपूरन मौज तै सन जत सुमिरन होइ ।
रज्जब पावै रहम सौं और न दाता कोइ ॥७९॥

रोइ रोइ उज्जल किये द्रग देखन हरि हेत ।
अब रज्जब की रहम करि काहे न दरसन देत ॥८०॥
जैसे मनिषा देह दी त्यूं प्रभु दे दीदार ।
यहु रज्जब की बीनती कीजै फेर न सार ॥८१॥
मनषा देही मौज दी मेहरि मिल्या पे साध ।
अब रज्जब कौं दरस द दीरघ दत्त अगाध ॥८२॥
तुम्हौ जोगि तुम क्या करी हमैं बताओ पीव ।
सेवग सावैं सोधि करि, मेट तुम्हारी जीव ॥८३॥
तुम लाइक तुम ना करी हम मैं बसत अनूप ।
तौ मेट भली त्यावैं सु क्या जग माहन जग भूप ॥८४॥
छाया भूत सरीस की आतम भूत समान ।
सो तुम्हें भजत भगवंत जी जीव रहैं की बान ॥८५॥
पड़त मधूड़ी झाड़ जड़ मार्ई कुचिल सु अंग ।
तौ रज्जब किन पलटिहै सागत राम सुरंग ॥८६॥
मन की मार्ई मनि करी सूमि आतम अरदास ।
सब तुमकौ मालूम है, जो है जाके पास ॥८७॥
जिव की भार्ये जगत गुर तनि मनि विष विकार ।
यहु मदर्वा आठौ पहर, मदहु सिरजनहार ॥८८॥
कै मन की कुरमति हरौ कै मन कौ प्रभु मारि ।
जन रज्जब की बीनती हरि हमकौ निस्तारि ॥८९॥
तन मन कूं दीजे सजा रहै रजा मैं नाहिं ।
रज्जब रोवैं कौन बिधि आप आपकौ आहि ॥९०॥
ज तुम रागी तौ रहै साजै सुनहु सुजान ।
आतम आभै मैं रहै मनवा बीज समान ॥९१॥
दलित मसा जिम मैं रहै बहुत जुगौं का बास ।
रज्जब मौज महंत बिन हूं न रौर का नास ॥९२॥
सर अंगी मन मग दे तौ सुग सब विधि हास ।
रज्जब मौज महन कं बिरला पावै कास ॥९३॥
कण मागमा आदर दिया त्यूं प्रभु बहु अहार ।
रज्जब पड़ै न दद मैं कीये की करि सार ॥९४॥

बाधा कब की बीनती, हमकूं करि करतार ।
मूत उपाया मुख दे तौ कीये की करि सार ॥९५॥
कीये परि करि मा सबै, पर परिवरती साज ।
मूत भये भगवंत सूं तौ मूलौं की लाज ॥९६॥
पल पल अंतर होत है, पगि पगि पड़िये दूर ।
बचन बचन बीच पडै रज्जब कहां हजूर ॥९७॥
सुबन अनहु इच्छा सु यू जु रहिये सदा हजूर ।
पै कठिन करम पिछले प्रबल सु पगि पगि पाइत दूर ॥९८॥
अंतर ही अंतर भर्या माइ लोक अनंत ।
रज्जब आवै कौन बिधि प्रभु पावन लग अंत ॥९९॥
अंतकरण अनंत रिपु, बैरी बहु बलिवंत ।
रज्जब छूटै कौन बिधि बिन सहाय भगवंत ॥१००॥
आरतहर हरि नांव तू रज्जब हर न हिराइ ।
कै विरद बिसारया बाप जी कै हरि कह्या न जाइ ॥१०१॥
रज्जब रोग सु ना कटै बिन दारू दीदार ।
मुख दिखलाऊ मिहरि करि ज्यू जिव होइ करार ॥१०२॥
सारंग बूंद समंद है सुझि सलिल उस छंट ।
रज्जब टेरै हेर हरि येते परि क्या अंट ॥१०३॥
मनिपा वही देत ही पै परि आणी सारि ।
भव दाव माव करि माव दे रज्जव उतरै पारि ॥१०४॥
मंदिर मनिषा दहू दी तौ कलस कवल दिखलाइ ।
प्रभु परिपूरन मीज परि, जब रज्जब बसि जाइ ॥१०५॥
सब संतनि के काम कौं साहिब सदा सकज्ज ।
तौ रज्जब परि रहम करि राखौ जन पद लज्ज ॥१०६॥
पंच तत्त कौं पेट दै प्रभु पूरी सब आस ।
रज्जब रचि दे मिलनि की क्यूं कीजै सु निरास ॥१०७॥
रज्जब कौं दीजै रजा तेरा नाव सिवाइ ।
मौज मया करि कीजिये बंदा बसि बसि जाइ ॥१०८॥
करतौं यादि अनंत कौ भनवे मावै यादि ।
सांई करी सहाय यहु जनम न जाई बादि ॥१०९॥

रज्जब रंक निवाजिये पूरण करो पसाव ।
और कछू मांगो नहीं आपण दरस दिखाव ॥११०॥

रज्जब की अरदास यहु और कहै कछु नांहि ।
मो मन लीजै हेरि हरि मिल न माया मांहि ॥१११॥

नाव बिना जो आर है, सो मांग्या मति देहु ।
रज्जब चरनौ राखिये हरि अपना करि लेहु ॥११२॥

रवि मांहि रहता रहौ जाता जिव तैं आव ।
आदि अंति मधि यू सदा यहु रज्जब के भाव ॥११३॥

चिदानंद चित मैं रहौ मन मोहन मन मांहि ।
रज्जब ऊपरि रहम करि, अरि उर आवै नांहि ॥११४॥

भाव इहै उर मं बसौ परम पुरिष सिरमौर ।
रज्जब क मुख ऊपजै सत्र न पावै ठौर ॥११५॥

सुरति मांहि सांई रहौ सकति सु आवहु आव ।
मनसा वाचा करमना यहु रज्जब के भाव ॥११६॥

रज्जब की यहु बीनती सांई सुणि दे दादि ।
दिल बैठो दीवाण जो और न आवै यादि ॥११७॥

मवला यादि न आवई अविगति कीजे सोइ ।
रज्जब की यहु बीनती तुम त सब कछु होइ ॥११८॥

आदि याग्नि आवै नहीं अंतरि रहै अनाग्नि ।
रज्जब सौ यहु कीजिये जनम न जाई बाग्नि ॥११९॥

साहिब सौ यहु बीनती पड़दा सकल उठाइ ।
तौ रज्जब तुमकौं मिलै बनि आया नहिं जाइ ॥१२ ॥

रज्जब की दीजै रखा तेरा नाव लिवाइ ।
बाबा मानौ बीनती बंदा बलि बलि जाइ ॥१२१॥

सतगुर सांई साध बिधि पड़ना करी न पीव ।
रज्जब सहसी और सब यह दुख सहै न जीव ॥१२२॥

राम राम मैं रमि रह्या रमिता राम बिचारि ।
दीप मुगति मनाम दब कहा पुरिष कहं मारि ॥१२३॥

मा मन मोर सु मीड़ का चाहै माहु न मेहु ।
रज्जब रत्यि मुगुध मनि इन उन कौन सनेहु ॥१२४॥

जन रज्जब के जीव कन, सो न कराई माप ।
या ऊपर तुम रोस करि छांड्हु सेवग साप ॥१२५॥
जे तुमको भावहिं भली जे तुम जानहु जान ।
रज्जब पावै रहम सौं दया करहु दीवान ॥१२६॥

## सत सहाइ रक्षा का अंग

सब ठाहर रक्षा करै गुरु गोब्यंद सहाइ ।
जन रज्जब कोस्यू नहीं बिघन बिलै होइ जाइ ॥१॥
सबद सुरति आसन अगम घर दर उर अस्थान ।
रज्जब की रक्षा करौ सब ठाहर रहमान ॥२॥
रज्जब की रक्षा करौ कबे न होइ अकाज ।
जो तैं राखै सो रहै, मै सांई सिरताज ॥३॥
पंचभूत मन देस का धक्का टालि दयाल ।
रज्जब ऊपरि रहम करि राखि लेहु रखपाल ॥४॥
तन मन मतै मनोरथो भूत भंजन ये भानि ।
रज्जब की अरदासि यहि हरि की हरिये हानि ॥५॥
जन रज्जब अगि जीव का रक्षा हू मूर बैन ।
विविधि भांति टालै बिघन सदा सु पावै चैन ॥६॥
रज्जब की रक्षा करौ मात निरखि उर माहिं ।
पारस राखी दास की सु जादी पूरै माहिं ॥७॥
मनिष मीच देहि मंगिलौ केवल कीरति काजि ।
तौ रज्जब जस जगदीस करि उनहिं न इन समि भाजि ॥८॥
प्रभु पाके सब ठौर हैं काबे सेवग भाइ ।
जन रज्जब आनरि कही साथ भेद निरताइ ॥९॥
मारुत मोडि महाबली काइपा भौरहिं भाग ।
रज्जब ऊपरि रहम करि, अबिगति टाली आगि ॥१०॥
बिषम बार बाहर पड़े धाये आये धाम ।
मन माहै जन रूप ह्वै रज्जब राखे राम ॥११॥
अंतकि के उर माहिं सूं काढ़ो अबकी बार ।
रज्जब सौं अरजब करी काल हरन करतार ॥१२॥

ब्रह्म बाहुरू देखि कर मीच गई मुंह मोडि ।
रज्जब संतू आव का कोई सकै न तोडि ॥१३॥

रज्जब बपु बनखंड मैं बैरी उठे अपार ।
सहाँ राम रक्षा करी मुये सु मारनहार ॥१४॥

अरि उर मैं पोरस पिसंण बिघन रहै मुरझाइ ।
ब्रह्म बाहरू आवतां बैरी गये बिलाइ ॥१५॥

चौपई गुर गोब्यंद नै करी सहाय अब यहु जीव न मारा जाय ।
दोइ दया देखी दिस माँहि रे रज्जब कोई डर नाँहि ॥१६॥

साखी पारब्रह्म पूरी करी हित करि पकड्या हाथ ।
रज्जब रक्षा रहम करि मीच मिटाई नाथ ॥१७॥

जो तैं राखै सा रहै जुगि जुगि साधू संत ।
सोई रज्जब यूं करी मालिक मौज महंत ॥१८॥

महापुरष की मौज का कहिये कहा बखान ।
रज्जब दति की मति नहीं जो दे प्यंड परान ॥१९॥

चौपई पोडस षोस करण नै पाये सा रज्जब कूं बहुत बधाये ।
रोम रोम उपज्या अति मौज सभु सेवा परि दीरघ मौज ॥२ ॥

साखी दया मिहर किरपा करन बरंभू भय दयाल ।
बंदे कन बंदगी कराई मेटे मेरे साल ॥२१॥

## पीव पिछाण का अंग

रज्जब साँई सुनि मै माया को ओंकार ।
सो माया उपजै खपै पाया भेद बिचार ॥१॥

औतार सु आमो की कथा सरगुन निरगुन माँहि ।
मादिनराइन सुनि समि छिपै छिपै सा नाँहि ॥२॥

आदि निरंजन सत्य है, अंत निरंजन सोइ ।
बिचि अंजन वप बमि मिलै रज्जब पीव न कोइ ॥३॥

औतारौं भटकै मही ज्यूं ह्रू त्याणा बास ।
ज्यूं रज्जब आकास बिच भामू का आकास ॥४॥

चातग चित भटकै उरै तजि आभे आकास ।
मीमोवहि मसि आदिनराइन जिनहि पियूष प्यास ॥५॥

जे ससि कीया से मइहु, राख्या ऊंची कोर ।
तो बारिज विगस नहीं चाहि न मिटै चकोर ॥६॥

सप्त अष्ट आगे मखे रज्जब समझे साध ।
सरगुन निरगुन मेह न न्यारे पूरन बुद्धि अगाध ॥७॥

देखौ सीप सरोज बिस कौन भांति की भूख ।
यह नदी नाव तज नीर मे यह पीवै सु पियूष ॥८॥

चौपाई एक ब्रह्म दूसरी माया ताहि परै गुर तत्व बताया ।
स्यापें सिपौं तहां मन लाया ज्ञान अकलि का अंत सु आया ॥९॥

साखी सब कारन आदि नरायन कारज मैं औतार ।
रज्जब कही विचार करि तामे फेर न सार ॥१०॥

उदै अस्त नहि कारन कहिये कारज आवै जाइ ।
यहु भी अगम सुगम सतगुर की ज्यूं भी त्यूं समुझाइ ॥११॥

चौपाई कारण अमर कारिज मरई तार्थ बेत्या अंतर करई ।
प्राण प्यंड नहि एक समान सत्य असत्य उभै पहिचानि ॥१२॥

अरिल जाती माहि सफाती न्यारे सिजदे सो पहिचाई ।
ज्यूं हुनर राग जीव मैं जोल करत असापत जाई ॥१३॥

साखी निरगुण सरगुण सौं परै जोति अजोत्यूं दूरि ।
जाण अजाण न जाणई सकल रह्या भरपूरि ॥१४॥

ज्यू द्वै दरपन मैं दस मुख दीसे त्यू दुविधा दस राम ।
जन रज्जब दस मैं नहि दोसत एक सर सब काम ॥१५॥

परसराम अरु रामचन्द्र हुये सु एकहि बार ।
तो रज्जब द्वै देखि करि को कहिये करतार ॥१६॥

नाव अनंत अनंत के बसत एक उर जानि ।
रज्जब दस दूणे चतुर, सु उर बैठी नहि आनि ॥१७॥

चौपई कर सकुटी फुरती सु डासा नर निरस्यंध भये एक बासा ।
रज्जब भोमे भरम नेसा पूजहि चार्वाहि नहि तसबसा ॥१८॥

साखी अनघ जुगल मन मे किय पैठिर नीद निवास ।
पैठि कुटीर न प्रानपति मुनहु चमकी दाम ॥१९॥

पंच तत्त सब ठौर हैं सब घटि सबही माहि ।
रज्जब माया विस्तरी ब्रह्म सु कहिये नाहि ॥२०॥

यह सब बाबी भट्ट की करि लेल्या घट अंग ।
रज्जब मार्नी बगस पड़, सुतन कहै पित भंग ॥२१॥

रज्जब घट अंग समक कस परि सालिक कह्या न जाय ।
चंद सूर पाणी पवन घर अंबर निरताइ ॥२२॥

रज्जब जीव जोति मधि औतरे जीवै माया माँहि ।
बैठे ऊठे आतमा हूबै चलै सु नाँहि ॥२३॥

रज्जब माया ब्रह्म मैं आतम ले औतार ।
भूत भेद जामै नहीं सिर दे सिरजनहार ॥२४॥

सरगुन सब कछु देखिये निरगुन सुणि अस्थाम ।
रज्जब उभै अगम तत समझौ संत सुजान ॥२५॥

जोति उदै तम नास ह्वै त्यूं तम आये जोति ।
तौ रज्जब क्यूं बरनिये अकल सु इनकै पोति ॥२६॥

तिमिर उजाले सौं परे है कछु कह्या न जाइ ।
रज्जब रीझ्या बस्त तेहि जो नहिं सबद समाइ ॥२७॥

ओंकार एक आतमा ब्रह्मण्ड प्यंड परदेस ।
रज्जब बसि बहु ठौर सौं आगे अबिगत देस ॥२८॥

दीपक होहिं न घर धनी बासण ह्वै न कुम्हार ।
ससि सूरिज साहिब नहीं यूं आतम ब्रह्म बिचार ॥२९॥

सोरठा सोहा ह्वै न सुहार, साना सोमी होइ नम ।
त्यू ही आतम राम चित्र चितेरहिं देखि अब ॥३०॥

साखी घट घट माहीं पंच है पंच पंच मैं प्राण ।
पै इनकौ ब्रह्म न बोलिये गुर गाब्यंद की आण ॥३१॥

सब औनाक आकार तजि मय निरंजन रूप ।
सो हम सबै पंडितहु निरगुन तरव अनूप ॥३२॥

सरगुण निरगुण एक है सा झगड़ा कछु नाहिं ।
पै हम मना कर दाहिनै देखी ब्याह सु माहिं ॥३३॥

आदि नरायन सति है निगम पुकारहिं चारि ।
सौ साधू की कथा कही पंडित पढ़ि सु बिचारि ॥३४॥

कामा कम जीव जम दर्स ससि सूरज प्रतिब्यंब ।
घट फूटे दिनकर भये अभ्यासन अरबंब ॥३५॥

अरक आरसी उर धरै अगनि अपरबल अंग ।
रवि रेख रवि ही मिलै जन रज्जब जब भंग ॥३६॥

व्यापक बहनी व्योम की अंबुप अगनि औतार ।
मिलहि सु अंतरध्यान ह्वै तो है माही उरधार ॥३७॥

कुसन सु काढ़े अंब कौं उन्हि सु काढ़े प्रान ।
त्यूं औतारू आटे कढ़ मन बच क्रम करि मान ॥३८॥

अनेक रोग जीवहु लगे ता औषधि औतार ।
ब्रह्म बैद न्यारा रहै, बिधा भेषसण हार ॥३९॥

अनेक रोग करि मृत्यु उपावै अनेक औषधीं सारा ।
विधा सु बूटी के सिर दीजै हरै करै सूं न्यारा ॥४०॥

साखी काम वसीले सूं करै, अलख लखावै नांहि ।
पड़दे सूं प्रभु जी कहै, जीव न समझै मांहि ॥४१॥

पंच तत्त आड़े दिये काम करै किरपाल ।
अलख वसीला लख्या न जाई लोक लोइणों पड़ै न मास ॥४२॥

चौपाई चेतन नै जड़ जीव जगाया लोग कहैं परमेस्वर आया ।
रज्जब देखि कला यहु उरै अकल पुरिष याहू से परै ॥४३॥

सुर नराव के जीव जगाये जगत कहै जगदीसर आये ।
अगम अगाध साध कोइ जानै सो रज्जब उर यहां न आनै ॥४४॥

साखी पियूष न पावक पावई ससि सूरज प्रतिब्यंब ।
आपि आरसी ना लहै अवलोकति मधि अंब ॥४५॥

औतार आतमा आरसी आदि नरायण दीप ।
रज्जब एक अनेक मधि पै दीपक दीप उदीप ॥४६॥

आतम दीपक जोति हरि, भाव तेल लहै पूरि ।
रज्जब पूजि प्रकास कौं भूलि न पड़िये दूरि ॥४७॥

चौपाई प्रतिब्यंब परब्रह्म सु जाना दरपन अंब आतम अस्थाना ।
तबै ठीकरी देखै देसा रज्जब लहै न सो सबमेसा ॥४८॥

साखी जड़ जाइ गहै चेतन नहीं समझे समझो बीर ।
ज्यूं मुरछी क पणहु बिन सब ठाहर नहि सीर ॥४९॥

देखौ अविगति उदधि त औतार सु मासे मीर ।
रज्जब रतन न पाइये मुक्तनि मुकता बीर ॥५०॥

साँई सोवन मेर ज्यौं औतार नापिगा भार ।
सिव सबहु का तिनहु मैं रज्जब पोवे संसार ॥५१॥
अविगत ओंकार बिचि अतर रहै सो जोइ ।
रज्जब जीवहु ज्वाव यहु पै ज्वायहु जीवन होइ ॥५२॥
एक अविगत तै किये पैदा प्रान अनेक ।
रज्जब जीवहु जोर घटि सबतैं होइ न येक ॥५३॥
सबद न समझैं आतमहि आतम राम अगम ।
रज्जब कही बिचार करि मेतौं कहै निगम ॥५४॥
सबद समाना एक गुन आतम कला अनेक ।
वचन न पूजै बोलतैं रज्जब समझि अमेक ॥५५॥
अनम अजन्मे के कहै अपड़ै जान नाहिं ।
रज्जब समझ न सबद की तर्कै बिकल बुधि माहिं ॥५६॥
जीव ब्रह्म करि बोलिये गुण लषिण सो नाहिं ।
रज्जब बाइक बादि यहु समझि देखि मन माहिं ॥५७॥
रज्जब वेस्या अमर मर अविरज एकहिं अंग ।
विनिसैं बोलत बुदबुदे साहिब सबद अभंग ॥५८॥
है नाहीं कै माहि है, देखौ अचिरज अंग ।
जन रज्जब हैरान यूं भेले भंग अभंग ॥५९॥
सबद सु सारा प्यारा लागै पै असप्या जीव न होइ ।
कैसे आतम राम अभ्यासैं फेर सार नहिं कोइ ॥६०॥
दिनकर दरपन इ मनि मैं अगनि सु माहीं यक ।
एक निरहार अहार एक एक वपि मंहि अनेक ॥६१॥
साँई सूरज की अगनि सब प्राण्हु प्रतिपाल ।
दिल दरपन औतार आतम्न तिनि तम तिनुका जाल ॥६२॥
साँई सूरज चिराग है पै क्रम काजर नाहिं ।
रज्जब जिव ज्वाला भई ममनसि निकसे माहिं ॥६३॥
आदि नरायन आदित रूपी दीपक देई देव ।
अंगव थ भी सुग ते विमर्स रज्जब पाया भेव ॥६४॥

चौपई

औतार अगनि औजूद अहार संजोग सहज सो करहि विहार ।
असम उठैं अंतर बसि होइ, ताकी कथा न दीसै कोइ ॥६५॥

संजोग सहृत मानै मढ़ै तेता सब औतार ।
रज्जब रचै विजोग वप नह कहिये निरकार ॥६६॥
आदि नरायन अकल है, कला रूप औतार ।
आदिम आतम बंधि बिधि मेल्या करौ विचार ॥६७॥
अकल कला कारिज हूं सो सिर सिरजनहार ।
रज्जब जीव घट धरि करै सो कछु भिन्न बिचार ॥६८॥
देवल मूरति गाइ असि करि पाइ शिव सेव ।
रज्जब रज तज काढ़तों निरखि सु निरगुन देव ॥६९॥
सूकी सूली सौं हरी बीज चना कै खेत ।
रज्जब दिव तें देखिये निपट निरंजन हेत ॥७०॥
गुर सुत मारि जिलाइये नर सुत होहिं पषान ।
रज्जब औतारू रहित गोरख गिरा बखान ॥७१॥
जोगेसुर जम कंस हित सकल निरंजनदास ।
रज्जब परचै प्रानपति औतारौं सु निरास ॥७२॥
पुकार लगे प्रगटे प्रभू, रज्जब भये तजि रुठि ।
सो समसरि सब ठौर वे मानय जाना झूठि ॥७३॥
बाम्या बांधे कू भजै मुक्त होन की आस ।
सो रज्जब कैसे खुलै इहिं झूठे बेसास ॥७४॥
रज्जब जो जामै मरै, ताका तजिये बास ।
हमहिं अमर सो क्या करै जो आप फिरै भ्रम त्रास ॥७५॥
उपरधा कहिय जीव सो पहि आमण मृत माहिं ।
तौ रज्जब आवै ब्रह्म क्यू उतपत परलै माहिं ॥७६॥
एक कहै औतार दस एक कहै चौबीस ।
रज्जब सुमिरै सो धनी सो सबही मैं सीस ॥७७॥
अबिचल अमर अलेख गति सकल लोक सिरताज ।
जन रज्जब सो सिर धरया जा सिरि और न राज ॥७८॥
चंद सूर पानी पवन धरती अरु आकास ।
जिन साहिब सब कुछ किया रज्जब ताका दास ॥७९॥
जा घर माहिं असंमि घर भजौं तु भूपती ठौर ।
रज्जब सेवग तिहु सदनि जा समसरि नहिं और ॥८०॥

उर्दे मगस्त्र त्रिगुणी भगति इनका इहै सुभाइ ।
निरगुण निहचल एक रस नर देखौ निरताइ ॥८१॥

त्रिगुण रहत त्योरी चढ्या निरगुण निरख्या नैन ।
राज्जब राता ठौर तिहि चदे न होइ अचैन ॥८२॥

आकार इष्ट जिमि आतमहु पै निहचै निरकार ।
कहतौं कर ऊंचे करहिं रज्जब सेवणहार ॥८३॥

निराकार सा नरहु के मन बच करम सनेह ।
सब कोइ देख सुनि दिस रज्जब गये सु मेह ॥८४॥

रज्जब प्राण अजाण का निराकार सौं हेत ।
प्राण चले च्यंतहिं तजत देखौ बारि सु देत ॥८५॥

निराकार ऊपरि चरचा पंच तत्त आकार ।
उडमन इंद अकास तसि माया भेद बिचार ॥८६॥

सुभि स्वाति सचअसहिं सौं निपजहिं मोती मम ।
बाधी बारि न दोइ ह्वै समुझौ साधू जम ॥८७॥

संखि सांकुले सीप सु कौड़ी कामा कुम्हनी नीर ।
पै मन मुकता बिन सीप स्वाति जल रज्जब होहिं न बीर ॥८८॥

अबर अम्ब मे मोरकी होइ सपूछा मोर ।
सोइ मवन मे मही सौं सो सुत होइ चकोर ॥८९॥

अधरे अंब सारंग मे सारै सामि संतोप ।
अनि पंखी पीवहिं पहुम त्रिया न मावै दोष ॥९ ॥

धरचा ऊमम्या धरै सा धरै सु पाव पोप ।
आतम उपजी अधर सू अधरै मिलै संतोष ॥९१॥

चौरासी मैं बप बिबिध ओंकार जिव येक ।
सिन्या सरीरौ मिलि चल्या जगपति जुवा अमेक ॥९२॥

सीगी पूंगी बासुली बाजहिं कुम सु मौन ।
सहनाई संखि भेरि नफीरी नाद जुवा एक पौन ॥९३॥

बिहंग बाम बड़ियाल सु नौबति सहनाई मुनि बात ।
सरीर सुभाव सिगारौ समझे सप्त भाग परमात ॥९४॥

षट दरसन षटपंथ सास्तर, गैबी माग सु माहिं ।
सपतौ चलता देखिये सांई सहज सु जाहिं ॥९५॥

कोई आया कूद करि कोई बंधि करि पाज।
रे रज्जब लंका लई, कीया अपणा राज ॥९६॥
स्वयंसिद्धि तत पंच हैं, ब्रह्म बिना ब्रह्माण्ड।
तौ रज्जब यहु को करै बंध मुकुत जिव प्यण्ड ॥९७॥
नीचा नीचा है धणी ऊंचौ ऊंचा सोइ।
बल रज्जब बिधि सव धरया उर बाहरि नांहि कोइ ॥९८॥
सरबंगी सब गुण लिये अणभंग अंग अनेक।
जन रज्जब जीवहु रख्या अपणै काजि न येक ॥९९॥
सोवन मिरिग न मैं रच्या सौ किन मारन जांहि।
तै तै मैं सीता हरी खबरि नहीं यहु मांहि ॥१००॥
सीता सीस सुसाकिया बिन दे भाणी बब।
रज्जब जाणी राम की सकलाई तब सब ॥१०१॥

## बस अमेक का अंग

बे अकल्यू बस देख कर, जीव किया जगदीस।
जो रज्जब जामैं मरै सो हम धरै न सीस ॥१॥
सौंपी सिध कारज करै, सोमा सिरि औतार।
रज्जब भूले भेद बिन ताहि कहैं करतार ॥२॥
सकति सिद्धि अरु रिद्धि का जोर मिलै जिव मांहि।
बस बिलोकि कहिये बरम्ह पै परम तत्त ये नांहि ॥३॥
एकू कौ बस बहु दिया एक किये बस हीन।
रज्जब दून्यू जीव हैं जगपति के आधीन ॥४॥
गोबरधन धारया किसनि द्रोणागिर हणवंत।
सेस सिष्ट सिर पर धरी को कहिये भगवंत ॥५॥
पिरथी भार अपार अति सदा सेस के सीस।
रज्जब कहता ना सुण्यां नर नागहि जगदीस ॥६॥
सपत सीपुरों ले उड़े अनम पंच आकास।
रज्जब सो भी जीव है देख्या करौ बिमास ॥७॥
देखौ बसी बिभूति बस गड़ गोलै सु उड़ाव।
तौ माया यहां जीवती जोरहि कहा कहाव ॥८॥

जीव जोर जड़ है न कछु, से चालै सु अकार ।
बर्नहि देखि बहकै जगत ताहि कहैं करतार ॥९॥
चौरासी लख थान उभैसे बंधहु विपुल सु वल्ल ।
रज्जब रजमल ना सम्या धन्य धूधली मल्ल ॥१०॥
ममसा मुई जिलावहीं प्रागहु देइ पै पान ।
विल द्वारहु की फेरई सबसौं सबल सुजान ॥११॥
समीर सेस मनसा मही मनुवा मेरु सु माहिं ।
साधू उठावै ये सकल औरहु मैं बल नाहिं ॥१२॥

चौपई पिरथी आप तेज वाइ आकास पंचो तत्त उभेसे दास ।
मोड तसें सो ऊमर आवें तिनके बलिबर काहि बतावें ॥१३॥

साखी रज्जब माहिं बल सु महाबली बाहरि बल बलवंत ।
बाहरि देखें बाहिले भीतर साधू संत ॥१४॥
सकल सिद्धि मानहु भुजा औतार आतमा सीस ।
रज्जब अज्जब देखिये जहां धरे जगदीस ॥१५॥
बाहर नेत भुजंग मणि हीरा औगण जोइ ।
रज्जब रैणी जगमगी सो बल चोस न होइ ॥१६॥

## औतार अतीत महातम का अंग

औतार कुंभ प्रतिबिंब परि आदि नराइन मान ।
रज्जब दरपन वास विल अगनि उदै पहिचान ॥१॥
औतार इवं उभ्यस उभै आपा ऐब सु होइ ।
रज्जब उडगन अमित जन कष्ट कलंक न कोइ ॥२॥
मरक ईंद औतार विधि सूखै पोषै प्रान ।
रज्जब उडग अतीत गति साखी भूत सुजान ॥३॥
अरक ईद औतार तमि ऊमर चडग अतीत ।
रज्जब मधु दीरघ लखे प्र यूं पर परतीत ॥४॥
रज्जब सुख्या न सूर ससि अंचमा सोज अगस्त ।
यूं औतार अतीत का लख्या भेद बलबस्त ॥५॥
रज्जब अंदहि बहस्पति ससि सूरिज सुर और ।
यूं औतार अतीत विच लघु दीरघ मधु ठौर ॥६॥

रज्जब माया ब्रह्म बिधि बलवंत ठौर अतीत ।
ताके बसि यू यू सदा रह्या सकल तत जीत ॥७॥

चौपई
दत गोरष हणवंत प्रहलाद सास्तरी पढ़े न सुणियें साद ।
मारे मरहि न सिद्ध सरीर, कृष्ण काल बसि एकहि तीर ॥८॥

## साखी भूत का अंग

माया मैं माया मुकति साखी भूत सुजाण ।
है माहीं मम्या रहति रज्जब पद निरवाण ॥१॥
अठार भार मिश्रत अगनि स्वादहु परसै माहिं ।
ऐसे आतम राम हैं, मिल्या अमल सब माहिं ॥२॥
अठार भार अगनी अलिप, सदा सु स्वादौ माहिं ।
परम तत्त तत पंच मधि पूरण परसै नाहिं ॥३॥
अमिल मिल्या सब ठौर है, अकल सकल सब माहिं ।
रज्जब अज्जब अगह गति काहू न्यारा नाहिं ॥४॥
सरबंगी सब बिधि मिले सन परसंगहु पूरि ।
रज्जब साई सकल मैं अर सबहिन तैं दूरि ॥५॥
सुन्नि तरोवर उडग फल काम झ्पटंतिहु नाहिं ।
असग ससग यूं आतमा रज्जब अवगति माहिं ॥६॥
एक अनीकू मै मुकत अनेक एक मधि थान ।
जन रज्जब इस पंथ कौं हेरि हुये हैरान ॥७॥
सुन्नि समानी पंच मैं, पुनि पंचौ सु मुकत ।
रज्जब आतम राम सूं असग असग सूं मत ॥८॥
ज्यू सुन्नि सकल माहै जुदे त्यूं साई साखी भूत ।
यूं रज्जब मिश्रत मुकत सो समझ्या औधूत ॥९॥
रज्जब साई सुन्नि मैं आतम आभौ रंग ।
पंच भांति दरसै इनहु निरमल निर्गुन निहंग ॥१०॥
रमिता राम जु रमि रह्या सकल आतमौ माहिं ।
अरस परस न्यारा रहै कोइ गुण ब्यापै नाहिं ॥११॥
अठार भार बहु भांति के ता मधि स्वाद अभेद ।
रज्जब अज्जब ता बनी हरि हरिजन मु भेक ॥१२॥

सब नाहीं सब पाइये दरपन हरि दीदार ।
रज्जब ऐसा अंग मिल सामे फेर न सार ॥१३॥

प्रतिबिंब मढे न ऊबरैं देखौ दरपन माँहि ।
त्यूं रज्जब माया ब्रह्म है सु जीव मैं नाँहि ॥१४॥

दरपन रूपी राम है, निरदोषी निरधार ।
सकल मांड बिंब देखिये रज्जब रती न भार ॥१५॥

सकल अंग उर आरसी तहं न्यारे भाव सु मुख ।
रज्जब देखि सु आपकौं दिल पावै दुख सुख ॥१६॥

मजलिस का मोती ब्रह्म मुकता मांड सु माँहि ।
रज्जब दीसै दिल सकल सिपै छिपै सो नाँहि ॥१७॥

दरपन मैं दरिया प्रभू देव दृष्टि पनिहारि ।
रज्जब रुचि कलसौं भरै सुख सुख सलिल बिचारि ॥१८॥

सकल मांड सौं भूष गति सुटके गति गोपाल ।
रज्जब पी मारी नहीं उगलि न हलका लाल ॥१९॥

रुचि नाहीं अरु सब भवै रुचि है कछू न खाइ ।
रज्जब ऐसा राम है जैसा अगनि सुभाइ ॥२ ॥

काठिहि टोरै काठ पर अगनि चोट मैं नाँहि ।
रज्जब गुण सौं गुण मिलै निरगुण न्यारा माँहि ॥२१॥

आतम लोहा कूटिये गुण देही घण मार ।
रज्जब रमिता अगनि मैं ताकौं दुख न लगार ॥२२॥

प्यंड प्राण दून्यू तपहिं जथा कड़ाही तेल ।
रज्जब हर ससि ज्यूं रहै, अगनि मद्धि नहिं मेल ॥२३॥

रज्जब आतम आम के किसण सु अंतक पौन ।
परि भुमि सरूपी साइयां तिसहि छिकावै कौन ॥२४॥

## समरथाई का अंग

सूरज रूपी साइयां साधू सूरज कांति ।
उभै अकरता करहिं भी जन रज्जब बिनि तांति ॥१॥

बादल बदलै बनी बपु, नरपति छांह हुमाइ ।
रज्जब जतिम कला ये न्यारौ यूं मद लखी न जाइ ॥२॥

ससि मंडल सूरज परै, पोषै भार अठार ।
कृतिम उन ऐसी कला करता घटि न बिचारे ॥३॥
मृक सविता सु असाहिंदे पलटै अदभू आंखि ।
रज्जब नर नरपति भये यांह हुमाइ सु पांखि ॥४॥
तन कन बाइक हू बिना माया करै सु काम ।
रज्जब सिरजी सिष्टि यू सब गुण रहती राम ॥५॥
ससि सूरज सु हुमाइ सेवतहिं सति समरथ गति पीन ।
सो रज्जब दातार न टोटै कौन कला सु हीन ॥६॥

सोरठा
महल मसाले बिना उपाये ब्रह्मण्ड प्यण्ड ठाहर उभै ।
याही तै समरथ गति जानि साहिब सेती हूं सब ॥७॥

साखी
माया सूं काया भई, पर काया का क्या अंस ।
तैसे रज्जब देखिये पारब्रह्म सू हंस ॥८॥
परमाकर प्रतिब्यंब परि, ब्रह्म जीव पहिचान ।
कहा सु कर सांई भई, समझी संत सुजान ॥९॥
सब पिरथी प्रतिब्यंब परि, प्रभू प्रभाकर जानि ।
तो रज्जब हरि हंस मैं हेरि हुई कछु हानि ॥१०॥
अचल चलावे सबनि कू आप न चंचल होइ ।
रज्जब लपै न खेवटा बोहिथ बिचरे जाइ ॥११॥
करता हरता दुहनि का अर घून्यूं तै दूरि ।
निरालंभ न्यारा मही, सब ठाहर भरपूरि ॥१२॥
प्यंड सरोवर प्रान बस सांई मूर सरीर ।
रज्जब काई कैद फिरत बिच बिस राखे बीर ॥१३॥
निराकार करि न्यारा राखे निज अंग माहिं न मेलै ।
अगम अगाध अवगति आपे अकल अगोचर खेलै ॥१४॥
काया करम काष्ठ मैं घुण बसहिं जलचरें जोइ ।
रज्जा कियो सु कौन बिधि सो समुझै नहिं कोइ ॥१५॥
जड़ तत्तौं मैं जीव जड़ि तन मन साज्या साम ।
यहु बिद्या बाबा कम आवै न आतम पाम ॥१६॥
नर नाराइन मे रहै सदा सुकाल दुकाल ।
कबहीं सिष्ट उपावहीं कबहूं सबके काल ॥१७॥

रज्जब राम रसाइंणी सेवग सरबस भेद ।
पै श्री सिरजि सिधारनी विद्या किसहि न देह ॥१८॥

धन रज्जब बामण मरण घरि करि भाथि अगाधि ।
आदम कौं सौंपावने राखी अपणे हाथि ॥१९॥

पंच तत मैं बाहि करि बांधे आतम राम ।
रज्जब दिया न और कौ घट घड़ने का क्या काम ॥२०॥

घड़े बिनासे सकल मैं अनंत लोक अवगति ।
थापि उथापे साइयां जन रज्जब सब सति ॥२१॥

ब्रह्मण्ड प्यंड आदम मई करि न बिनासति बेर ।
रज्जब हुनर हुए हुई, करन हुरम दिसि हेर ॥२२॥

अकल अकल परि सब बरषा ओंकार आकार ।
रज्जब रचना अगनि गति नमो निपावनहार ॥२३॥

हिकमति की घड़ियाल घट दिया धरी सौं देह ।
तीन्यू आलम की अकल रज्जब अचरज येह ॥२४॥

अरिल धौंस दमामा अंतर साज नाल बजावहि आतसबाज ।
जब चेतनहु पुकारहिमाये त्यूं आदम अल्लाह बनाये ॥२५॥

साखी बिसियर मैं बिस रूप है, मुख अमृत मणि नाग ।
रज्जब रचना बनि गया कौण बसत केहि ठाग ॥२६॥

देखौ सोणित सीर हूं सीर पलटि सोणित ।
रज्जब रीझ्या देखि करि नमो नियंता मति ॥२७॥

तिणमैं कण कण मन सुतिण करता कुदरत पख ।
रज्जब रचना अगह मति कहिको समुझै मख ॥२८॥

अंडि सु पंषी ऊपजै पुनि पंषी मधि अंड ।
ब्रह्म बुधि देख्या विधक क्यू जोइ क्यू प्यंड ॥२९॥

पाणी माहि अगनि राखिये अगिन मधि जो पानी ।
रज्जब रचना अगह की धारि बीजुरी सानी ॥३०॥

सावन मास करै उन्हालो उन्हालै बरसालो ।
रज्जब कहै सुणो रे जीवहु अकरन करन सम्भालो ॥३१॥

पाणी मैं तौ पावक निकसै पावक मैं तौ पाणी ।
रज्जब रचना अगह गति काहू जाइ न जाणी ॥३२॥

ज्यूं दिनकर ससि दीप करि, सकल दृष्टि आधार ।
तैसें रज्जब राम बिन तन मन घोर अंधार ॥३३॥
रज्जब गुड़ी अनंत के एक पवन आधार ।
त्यूं तन मन आतम राम बसि झूलै फूलै संसार ॥३४॥
ज्यूं जल के बल मीन सब मगन मुदिता माहिं ।
तैसें रज्जब प्रानपति प्यारे जीवहिं नाहिं ॥३५॥
परम तत्त प्रान मैं बठा पचौ तत्त चलावै ।
असमझ अगम सुगम समझै को गुर प्रसाद सौं पावै ॥३६॥
आदि किया सो भी भया भवि करै सो होइ ।
अंति करै सो होइगा रज्जब समरथ सोइ ॥३७॥
रज्जब रच्या सु ना भया राम रचै सो होइ ।
य अविगति पहिचानिये करता और कोइ ॥३८॥
साईं समरथ सब करै स्याम सेत सब होइ ।
जन रज्जब दृष्टान्त कौं विरध बाल लै जोइ ॥३९॥

## मूलारम का अंग

ज्यूं अस वीरज असपरहु अवनि अठारह भार ।
पीछै वीरज बीज तैं यहु मत मूल बिचार ॥१॥
ज्यूं मोमे सब अंग मैं त्य पाणी करि प्यंड ।
रज्जब उपज आप सौं अजौं सलिन के मंड ॥२॥
जन रज्जब आतम अवनि यहु बित अबगति बीज ।
और तत्त तत्तौं भये करनहार यूं कीन ॥३॥
ओंकार सौं आतमा पंचै तत्त करि प्यण्ड ।
यहु भ्रामक भागा सु यूं इहु बिधि सब ब्रह्मण्ड ॥४॥
ब्रह्म मूल बाइक का बाइक परिये तत्त ।
तत्तौं करि अम्बूल अंग यहु बावै का मंत्त ॥५॥
आकास अविपति तैं उरै आतम औ उंकार ।
पंच तत्त बरिया बिपुल सक्ति समंद तन धार ॥६॥
बप बुदबुदा तामैं बहु उतपति अनंत अपार ।
अकल अकलि आदित किरन आतम बिधि ब्योहार ॥७॥

## चौरासी निवाम निरन का अंग

बिरख बीज फिर आवई पत्र प्यंड सूं जाइ ।
तौ चौरासी क्यूं मिटै नर देखौ निरताइ ॥१॥

तन सु तुरवर जीव फनि फिर ऊगै धरमाहि ।
तौ चौरासी रज्जबा मिटती दीसै नाहि ॥२॥

चौपई पंख जाइ अंडा फिरि आवै तौ चौरासी कौन मिटावै ।
एक चंद माहै गुण पून्यू परतष देखि अमावस पून्यू ॥३॥
बारि जाइ बीरज फिरि आवै मूल मदन के मद्धि समावै ।
प्यंड सु पाणी प्राण अभंग तौ आवण जाना संग अभंग ॥४॥

साखी दोजक माहि दुरीं का बासा भले भिस्त कौं जाहि ।
नरग सरग स्यावति हुये सब चौरासी माहि ॥५॥

काचा कण उगलै इसा पाका पिरथी खाइ ।
त्यूं ही आतम राम रुचि नर देखौ निरताइ ॥६॥

सूरज हू आमै मरै, उवै अस्त दुख होइ ।
जग चषि से चौरासी भुगतै रज्जब रारखू जोइ ॥७॥

चंद सूर तारे फिरैं तौ आतम क्यूं न फिराहि ।
इनकौं मंबसै देखि करि रज्जब घरे डराहि ॥८॥

ताएहु की गति देखिये कुल आतम अरवाहि ।
सांई फेरे ये फिरैं रज्जब डरपे जाहि ॥९॥

चौपई बादल बिजली पाणी पौन निसि बासर इनहू को गौन ।
पल पल माहि सु आमै मरैं ये चौरासी धारघ फिरैं ॥१ ॥
आवण जाना किसी न भावै परि साहिब कहि को समुझावै ।
अरज दीन की सुणिये सांई जीव जगत म फेरो नाहीं ॥११॥

साखी पै मरदी सु पराये सारे खुद मरदी कछ माहि ।
बंदा बंदी बान है हाजिर हुक्म सु माहि ॥१२॥

जे कुछ खुसी खुदाइ की बंदौ करी कबूल ।
गाफिल मौर बिचार ही सो रज्जब सब भूल ॥१३॥

चौपई भेज्या जाइ बुलाया आवै सो सेवग साहिब मन भावै ।
अपणी खुसी मडेगा दूरि, हुकम माहि हाजिर सु हजूरि ॥१४॥

साखी एक परगनौ भेजिये एक राखिये पास ।
रज्जब बंदे हुकम मैं कहां जायं सो नास ॥१५॥

चौपई भेज्या जाइ बुलाया आवै चाकर चकरी चित्त सु भावै ।
गस मै डोरि पराये सारै बिन जड़ काठ सु कहा बिचारै ॥१६॥

## आज्ञा साहिबी का अंग

आप खुसी आया नहीं अपणी खुसी न जाइ ।
तौ सब सारै और कै रज्जब रवू रजाइ ॥१॥
फरधा चौरासी फिरै राख्या कहीं न जाइ ।
यहु इनकै सारै नहीं जे कछु खुसी खुदाइ ॥२॥
जीव न गोई चपल मति परबस दहु दिसि जाइ ।
रयू रज्जब मन मोइ है जे कछु राम रजाइ ॥३॥
रज्जब राखे राम की सु मन रहै ठहराइ ।
पै चिदानंद बिन चित्त की चंचलता नहिं जाइ ॥४॥
सक्ति सीत ज्यूं जल बंधै मुकत सु आदित देखि ।
बंधमुकति हम दिसि नहीं करमै सु हस्त अलेखि ॥५॥
चतुर थान घोड़े सु यह जीव अमर असवार ।
बार गीर बाजहु चढ़े हुकम सु हरि ब्योहार ॥६॥
पवन पतन पुमि पावहीं बार गीर असवार ।
उतरे चढ़े सु हरि हुकम घोड़े मरदु हजार ॥७॥
साहिब सौ धरि बसत यहु सासण का बस नाहिं ।
रज्जब बाहै घर धणी पड़े सु पातुर माहिं ॥८॥
पंच पानि के प्रान सु पातुर याही बसत करै परगास ।
भीतर होइ सु बाहरि आवै फर सार नाही कर आस ॥९॥
है मैं राखिव चित्त यहु पुमि प्याद असवार ।
रज्जब मन म मनोरथों मारै सिरजनहार ॥१०॥

चौपई इंद्री माभ अवनि अकार आतम अंभ सु इनहु मझार ।
राखे रहै सुनाय आवै ज्यू अविगति मान्ति मन भावै ॥११॥

साखी आज्ञा आतम मैं धरया पंच तत्त आगार ।
याई सौंप म सेवक छाडै छाड़ा के बग्गार ॥१२॥

होतब आज्ञा भावी मौषित सोई होती आइ ।
ता ऊपर कहणा न कछु नर देखौ निरताइ ॥१३॥

पत्थर मैं पैदा किये पारस हीरा लाल ।
त्यूं आतम सू अबसिया साहिब किये निहाल ॥१४॥

मरिल संपति बिपति आव लघु दीरघ रज्जब रहै हुकम हरि माहिं ।
दाता देइ सु मंगित पावै यहु इसका सारा कछु नाहिं ॥१५॥

साखी सिरज्या सरजनहार का सोई जीव कौ होइ ।
सुख संपति दुख बिपति क्यं मेटि न सकई कोइ ॥१६॥

हुकम हुआ सो होइगा पै तुम भी कबूल ।
तेरा किया न होइ कछु, भोला भरम न भूल ॥१७॥

माया अलख अलेख की आतम लखै न कोइ ।
ज्यू आणा यूं ही रहै, साहिब करै सो होइ ॥१८॥

सब घटा घटा समानि है, ब्रह्म बीमुखी माहिं ।
रज्जब चमकै कौन मैं सो समुझै कोइ नाहिं ॥१९॥

अकल गाइ दहै दिसि अनत सरगुण निरगुण थान ।
दया दुहावै और की दुहै न जान अजान ॥२०॥

सकति सलिल रहु सुधि मैं जाण अजाण न लेइ ।
जगदाता देषे मतै तब जल माहि करि देइ ॥२१॥

जा जिव सों जगपति सुखी सुखी तासों जात दयाल ।
रज्जब रुचै न राम कौ तासो सबही काल ॥२२॥

आकार सबै औषद भई जु बाबा हूं बैद ।
रज्जब नहीं त दीस बिसि करम मतै ना पैद ॥२३॥

सकल सिधि नौ निधि सहत मिली अमिल हूं जाहिं ।
काजल सबै अकाज की जे प्रभु आज्ञा माहिं ॥२४॥

सबद गहै अरथौं लहै, करणी करत अभूल ।
पै रज्जन रस तौं पवै जु हरि करै कबूल ॥२५॥

राम रिजक इकठौर दे मिलि इकठौरहि जाहिं ।
रज्जब सबस है जुदा आप आपकी माहिं ॥२६॥

गात गोठि के रूप हैं बाजीगर मिजनाथ ।
फेरि मेलतौं बेरि क्या ये सब उनके हाथ ॥२७॥

बिन मद्धिम ससि संग बिय बिन बीया सूरज एक ।
यहु रज्जब सब रजा परि समुझो बड़ा बमेक ॥२८॥
आशा थी तो ही हुआ आशा होगा आइ ।
ज्यू आशा त्यूं होइगा ज कछु मुखी गुनाइ ॥२९॥
नति मति निगमो कहै अगम अगाहि जु बस्त ।
किया उनहु कीब मिलै छलि बलि चढ़ै न हस्त ॥३०॥
प्यंड प्राण के गुणों न गहिये अगम अगोचर बस्त ।
केवल दया दरसन पाइय छलि बलि चढ़ै न हस्त ॥३१॥

## गर्बो का अंग

गहरी बात सु गब मैं गुर सिष टोटा लाभ ।
रज्जब अलग अनेगा फल ऐगहु गामर आप ॥१॥
क्या पारस परमारथी क्या माहै मैं लाभ ।
अमिन मिलाये रामजी इनकौं माई सोभ ॥२॥
मनिषा के मन मैं नहीं नाहीं हाथि हुमाइ ।
सब माहि छाया पड़ै मर भरपति ह्वै जाइ ॥३॥
जीव दनिष्मी जुगहुं मा चनाति याप म भाप ।
मान मिल्या यहु गब मैं भाग पाकित मंनाप ॥४॥

## अनभै अगोचर का अंग

पंषी उगता पग तै प्रम प्रगट परि पान ।
रज्जब गिर तर गिर बग्या गिरनि उ मन मान ॥१॥
बसुधा बीज बीज मा बसुधा इहि बिधि किरनि मो होइ ।
रज्जब गनत गवरि नहि पावै बूझ बिरला कोइ ॥२॥

## मध्य मारग निज थान निरन का अंग

मन मन मैं मारग मिल्या सतगुर दिया दिखाइ ।
मन रज्जब रम गाइ उस परम पुरिष मन जाइ ॥१॥
रज्जब भरजब पाट है मनिषा देही माहि ।
गुरनि निरनि मधि ऊतरै पलिटावै मा माहि ॥२॥

सुरति सांस मधि ऊतरै नजरि सूझै मधि आन।
सो आतम देखै ब्रह्म परचै पहुच्या प्रान ॥३॥
बाट कहूं ब्रह्मंड की बटाएऊ सु अनेक।
रज्जब प्राणी प्यंड मैं पथ चलै कोइ एक ॥४॥
पंच पीव का प्यंड मैं प्राण प्रबी पथ जाहिं।
रज्जब रामहिं क्यूं मिलै ढूंढै बन बिस माहिं ॥५॥
बाहर ढूंढै बावरै भीतर भेदी प्रान।
रज्जब आतम राम कन समझौ संत सुजान ॥६॥
अंतर जो भी उर बसै साधू बिमा बिसाइ।
रज्जब ढूंढै माहिले बाहरि चीधौं जाइ ॥७॥
माहै सोधौ माहिसौ आतम अंतर जोइ।
रज्जब तन मन मेर मैं सु भीतर कहिये सोइ ॥८॥
इक अठ्सठ तीरथ फिरै इक दहुणा रथ देत।
रज्जब भ्रमि भव में पड़े समझ्या नहीं सकेत ॥९॥
उणचास कोटि अहू निसि फिरहिं चतुर महर ससि भान।
रज्जब उमै बलाक मति अविगति नाथ न जान ॥१ ॥
महुट हाथ रमिबा अगम सुगम रमण उणचास।
रज्जब भीतर भरि लहै बाहर ब्रह्म बुभि मास ॥११॥
बन रज्जब उणचास फिरि अंतरि है उर बार।
नाभि नासिका हाथ इक निरखि नैन नर पार ॥१२॥
सप्त दीप नौ खंड फिरि हाथ चढै कछु माहिं।
रज्जब रजमा पाइये आमे उर पर माहिं ॥१३॥
स्थल उर आच्छया अगमु नाभि निरासी ठौर।
यहु इकान्त रज्जब रहो साकहु गुफा न और ॥१४॥
रज्जब रस एकान्त का एकांकी को होइ।
प्राण पसारा मैं पड्या सा सुख महै न कोइ ॥१५॥
नाभ नासिका बीच ब्रह्म मला मनिया देह।
सब तीरथ मधे सहत रज्जब रमि करि नेह ॥१६॥
नभि अस्मानक नाभि है पंथी प्राण सु चाहिं।
मनम मातमा ठाहरै सुमि सु मंडल माहिं ॥१७॥

मनस अतीत चलै अति आतुर ता समि गवन न होइ ।
मन रज्जब यू जगत उलंघै बूझै बिरला कोइ ॥१८॥

अंतरि लंघै लोक सब अंतरि औघट घाट ।
अंतरजामी कौ मिलै जन रज्जब उर बाट ॥१९॥

रज्जब रहणा सुन्नि मैं, सबद सदन मैं आइ ।
मनसा बाचा करमना नर देखौ निरताइ ॥२०॥

आतम सीप समान है देही दरिया माँहि ।
मुक्ति मोहन मुक्ता तहाँ मन मरजीवे जाँहि ॥२१॥

रज्जब बप बसुधा बिरखि निकसे नाम बिहंग ।
आगे अबिगति नाथ है, सत सुरति सुख संग ॥२२॥

मन सुरंग चेतनि चढ़ै पावन पंथि सो जाइ ।
रज्जब पैठै सुन्नि मैं माहैं मिलै गुसाइ ॥२३॥

सुरति समावै प्यंड मैं पीछे मन मैं जाइ ।
आतम अंतरि ह्व रमै आगे मिलै खुदाइ ॥२४॥

आतम थान मुकाम सु मक्का मदीना मा धूद परे ।
जिकरि जिहाज बठि सिरि जग जल रज्जब हाजी हज करै ॥२५॥

रज्जब राह रसूल का पैदा पंजर माँहि ।
उमटे चलि औजूद मैं मरद मुसाफर जाँहि ॥२६॥

बेजर्या जिकरि थान जमीर मैं पीर की पंदियति पाइय माँहि ।
रज्जब सगाइ वानूमि यहु बंन्गी मगीगत राह तजरीन कोइ जाँहि ॥२७॥

बिन रसना रामहि रटै आतम अंमर आइ ।
रज्जब पैड़े पीव के बिन चेतनि काइ जाइ ॥२८॥

रिख मक्के मुहमद गया महादेव किस थान ।
रज्जब थमिय पथ उग पयी भान गुमान ॥२९॥

पंथी माहै पंथ मा बाट बटाऊ माँहि ।
रज्जब रज मय माहिन बिरम बोर्ण जाँहि ॥३०॥

रज्जब बन बनावै बाहमी मिट मगीगी माँहि ।
ह बिधि मथा गन की य दामहु बगनी माँहि ॥३१॥

रज्जब साधू गेह सरीर मैं संसारी बार ।
अंतरि पगुपा ब्योम ममि यहु भन दिखावै ॥३२॥

ज्यूं सिसन स्वाद नाके मवहु स्यू सरव स्वाद नमि बान ।
रज्जब रस बिसकौस पर समझी संत सुजान ॥२१॥

रज्जब मन पवन ससि सूर समि आतम बसहिं अकास ।
तन सोर्य प्रतिविंब परि बीच नहीं अभ्यास ॥२४॥

साधू बग मम सुभि मैं दौरे विसि गोपास ।
मन रज्जब देखे जगत चले पवम महु चाल ॥२५॥

## आतम निरनै का अंग

रुई तार ततपंच है, बिगति बिनौला प्राग ।
जन रज्जब यहु जुगल यू अंकूर आतमा सान ॥१॥

पंच पचीसौ सुई जड चतन चंबक प्रान ।
जग रज्जब जाणी जुगति समुझी संत सुजान ॥२॥

सिभी मारि बहनी सहुत बाइ व्योम जड अंग ।
जन रज्जब जाणी जुदी आतम अकलि सुरंग ॥३॥

जैसे मामे अंम है आपिर सबद समान ।
तैसे रज्जब सोधतैं सहिये प्यंडहि प्राम ॥४॥

आतम परखी अकलि मधि पंच पचीसहु धाम ।
बह्म बिचार न मावई वेत्ता बेद बखान ॥५॥

अवनिहि असन आप अंम चाहै तेजहिं तेज अहार ।
बाइहं बाइ गमम हित गगनहि आतम अकलि मधार ॥६॥

तत तत मिमि जीवई तत तत विन मास ।
रज्जब आतम राम यू जोग बिजोग बिमास ॥७॥

रज्जब प्यंड पले ब्रह्मंड मैं ततहि तत्त अहार ।
प्राण पोपिये भजन ग्यान सूं बिरसा पोपणहार ॥८॥

रज्जब रचना अगह गति अदभुत भाव अगम ।
पर दीसै बरपा बंदमी ईंग्र मनम आतम ॥९॥

गाहु खेत राख्यू ऊपर है रवि राकेस प्रकास ।
त्यू रज्जब बिच बंन्धी आतम राम अभ्यास ॥१ ॥

मम बच क्रम रज्जब कहै सुनहु बमेकी दास ।
मकति सूर जब आथवै तब आतम उडग प्रकास ॥११॥

पिंड म पिरखी पेखिये, प्रभू प्रभाकर अंग ।
रज्जब उभै अभ्यासही आतम अंम सु संग ॥१२॥
छह् दरसन मत छिद्र हैं, माया मंदिर माहिं ।
तहं सूषिम सुण कण दरसहिं नहीं त दीसैं नाहिं ॥१३॥
हरि मारग मन मैं अलह ज्यूं निसभन हरि अकास ।
यहु दरसै साधू सबद वह दामनि परकास ॥१४॥
आदित आगि आरसी लहिये सुधा सुचंद चकोर ।
यूं अमल मलावै आप सू रज्जब सीमहु चोर ॥१५॥
सिकलीगर अरु हंस साधक्न देख्या भ्योर न अंग ।
सार सुनीर सरीर मधि काढ़ै सूषिम अंग ॥१६॥
जुरे जीव जुव रहैं मुनि सु साईं माहिं ।
सबिता सतगुर सा द्रसै मिलै छिपै सो नाहिं ॥१७॥
पंच तत के पंच रंग प्रान रूप कछु और ।
रज्जब बहुमी एक की जाबा पहुच्या ठौर ॥१८॥
स्याम गगन माईं हरी तेज रकत सौं अंग ।
जल ऊजल पिरथी असद आतम औरै रंग ॥१९॥
रज्जब आतम राम का बरणत बन न रंग ।
वे अविनासी और गति कहिये सा सब भंग ॥२०॥
पंच तत आकार है परम तत निरंकार ।
रज्जब ऊमा उभ बिधि आतमहु ओंकार ॥२१॥
आतम आकार मैं सरगुण निरगुण अंग ।
रज्जब प्रगटै प्यंड हैं गुपुत गात सा भंग ॥२२॥
काया केलि मति जुगति मिलि निराकार आकार ।
आतम गनि कपूर गति ताम फेर न सार ॥२३॥
आदिर आभै चढ़ि रम आतम अंभ अकास ।
और दरंग अकार मैं गमनै गगन निवास ॥२४॥
गाली गाले ठौर के थन लागै नहिं ठांव ।
त्यूं रज्जब प्रान प्यंड मधि हरि हिरमनि बनि जाव ॥२५॥

चौपाई प्राणहि पवन मीन की पाणी रज्जब जीवन बहेज पिछाणी ।
समझ्या समुझै सुमाकी बात जड़ जिव का जानी नहिं जात ॥२६॥

काया कपूर इंद्री आमें प्राणी पावन त्रिगुन गुन सामें ।
रज्जब रचना अगह अपार बिरला बूझहिं बूझण हार ॥२७॥

साखी निरगुण सरगुण होत है, पंच तत्त अरु प्रान ।
जन रज्जब इस पेच को समझै साध सुजान ॥२८॥

## ग्यान परचै का अंग

नैनौ अंजन न्यान निज सब मागे संधि साल ।
ज्यूं रज्जब सिर माल धरि सब दिसि देखै माल ॥१॥

पीत वाइ जब दृष्टि ह्वै तब पीला संसार ।
त्यूं रज्जब रामहिं मिल्यूं सब दिसि सिरजनहार ॥२॥

जे पाइन पैजाइ ह्वै तौ बसुधा भरि चाम ।
त्यूं रज्जब रामहिं मिल्यू बाहरि भीतर राम ॥३॥

ज्यूं सैल सुवामा गत भये ह्वै दामिन कै माहिं ।
त्यूं रज्जब रामहिं मिल्यूं देही दीसै नाहिं ॥४॥

नाइ निहंग चढ़ै महि दीस प्राण सु पंषी जोइ ।
रज्जब साई सूर समाई, काया छाया होइ ॥५॥

अरिल ज्यूं लोहा ह्वै लाल सु पावक परसतै ।
त्यूं रज्जब मिलि राम सु सांचे दरसतै ॥ ॥
उभ एक उनहार नहीं कछु भेद रे ।
मिले बसन यल होइ सु किया नसेद रे ॥७॥

साखी परचा भीतरि राग बसि तिमिर हुन जिव जोति ।
रज्जब प्रगटै मस्त बस सेवग स्वामी पोति ॥८॥

परसै आतम राम गति मिस बमन बम होइ ।
रज्जब पाई पारिस्या फर सार नहिं कोइ ॥९॥

ब्रह्म मिल्या तब जाणिये जब तन मन छिन माहिं ।
रज्जब आतम राम बिच और न भासै माहिं ॥१०॥

मनसा बाचा करमसा ज जिन पीव सु होइ ।
रज्जब आतम राम गति दृष्टि न भीमै दोइ ॥११॥

साम मोह मार्गै नहीं पाप न जागै काम ।
रज्जब मही सु जीव गति प्राणी परसति राम ॥१२॥

पारिख पूरण उतरै सो परचा परवाणि ।
गुण गति गाति न पाइये तो बाद बक्या सो जाणि ॥१३॥

पंच पचीसनि त्रिगुण मन सच्छी गुण गत दोइ ।
सो रज्जब माया मुकति ब्रह्म समाना सोइ ॥१४॥

शक्ति कदूव कायम रहै मूर माया अस्थान ।
तिरगुण तजे तते रहैं महु परचा परवान ॥१५॥

हंस लौह पारस प्रभू मिलत महातम ज्योइ ।
रज्जब पलटै परसतैं, सौंधा महगा होइ ॥१६॥

प्राण प्रीव पाम्या रहै हरि हित हिरद माहिं ।
कलित अंध कंतहि मिली यद्यपि देख्या नाहिं ॥१७॥

बिदा बिधिबि बिदेस बहु बचन न ब्यौरा संस ।
रज्जब पावै प्रान सब अर्चहि करै परवेस ॥१८॥

थवन मुनी सांचे सबद रारि रूप सति जोइ ।
रज्जब परचा प्रानपति मिलत यस्त बस होइ ॥१९॥

कीट भृङ्ग भृङ्गी परस दीमे दीया जोइ ।
तौ रज्जब रामहि मिलन क्यों न बस्त बस होइ ॥२०॥

प्रथमैं पवन प्रकासई दूजै देगै बैन ।
तीजै मन मनसा बस चौथे आतम गन ।
गौर पांचई प्रानपति बिरमा दगै नैन ॥२१॥

बिन परच सब वार है परच प्राणी पार ।
जन रज्जब सांची कही तामैं फर न सार ॥२२॥

लौह काठ काठ घुणहूं आरोग बिष आगि ।
त्यू रज्जब धास्या गुणहूं ज्वाला जाति न जागि ॥२३॥

रज्जब रहै न सुधि यस चेतन चलनि जाइ ।
सबद मार ज्यू थवन मग अम्प बिचार समाइ ॥२४॥

गोरा करणा सुमि मैं नहं कछ सूझै माहिं ।
रज्जब बिन चिन जे नहां बइ ब्यापारी माहिं ॥२५॥

रज्जब निकसे मातमहि गुन बीड़ी बग्ग बाज ।
सा पायूं पैठे पदम गुपन भय सब ताज ॥२६॥

रज्जब बूंद समन्द का किठ सरकैं कहूं थाहिं ।
साझा सकल समुन्द सौं त्यूं आतम राम समाइ ॥२७॥

रज्जब रैन अचेत मैं दीपग ग्यान प्रकास ।
पै आदित अबिगति उवै इनका कहा उजास ॥२८॥

उर आंगण आरम्भ किया ग्यान बुहारी फेरि ।
रज्जब प्रभु आवन धर्म इहौ इकति अमेरि ॥२९॥

बुधि बिचार की चालनी बिगुणी तुस सब छानै ।
आटा अंतह करन भया सुष करी चालनी सानै ॥३०॥

चौपई अबिगति अंग आतम फल लागे नीच ऊंच अंतर भ्रम भागे ।
मुख मुख पेट पाइ गति येकै पारस प्यंड न भिन्न अनेकै ॥३१॥

साखी सब ठाहरि समसरि प्रभु, ज्यूं मिसरी का गात ।
ता माहैं दुबिधा कहै सो सब झूठी बात ॥३२॥

मिक सुगंध सीतल सब ठाहर बिपन बिभेद न काया कोइ ।
तौ रज्जब ओ सदा एक रस चतुर भांति कैसे तन होइ ॥३३॥

## परचा भोले भाव का अंग

भोलैं सू भोले प्रभू स्याणहू सौं स्याणे ।
जन रज्जब साधौ सिधौ इहि भांति बखाणे ॥१॥

स्याणहु सू स्याणे प्रभू, भालौ सू भोले ।
बालिम बुधि बिन बाल है अंतरिपट खोले ॥२॥

स्याणें भाणे होत हैं, बाप पूत की लार ।
बाणी बोलैं तोतरी उस बालिक कै प्यार ॥३॥

प्रचंड प्रीति बुधि बालि के पितहि नचावहि नांच ।
जन रज्जब ज्यूं जीव कूं खेल खिलावहि पांच ॥४॥

चौपई देखौ धू नामा प्रहलाद बाल समें पाई तिन दादि ।
भोले भाव लिया सब मादी बेद भेद में नजर न राखी ॥५॥

परचा भोले भाव का परचा करै सहाइ ।
परचा परस बिना दरस परचा रहै समाइ ॥६॥

कीम गुणहु सौं नांव संवारे, कहि बिधि भई मिठाई ।
सो समझे बिन सकति घटी कछु, जिनि प्राणहु ले खाई ॥७॥

नाँव भेद गुण कछू ना जाणि, भोले भाइ सु लीन ।
तिनसौं बाव बैर न साई सो मांग्या सो दीन ॥८॥
पात्रों मैं पाणी बम्या पात्रा के उणहार ।
तस रज्जब प्राणपति भाव भजन मप धार ॥९॥

## हैरान का अंग

नींव सीव बिन भूमि पर स्यो सकती अस्थान ।
रज्जब मुकता मिति बिना हेरि हुये हैरान ॥१॥
सुम्नि सरूपी साइयां रज्जब आभा माँहि ।
प्रगट गुपत दहू दिस फिरचा पार सु पाव नाँहि ॥२॥
इक साँई अरु सुम्नि के आदि अंति मधि नाँहि ।
सो धन हार सब थके जन रज्जब ता माँहि ॥३॥
प्रथमि सुम्नि को सम्रहै को सोधै ता माँहि ।
को पावै धा बस्त कौं जा रज्जब है माँहि ॥४॥
सकल न मावै अकलि मैं सकल न सबद समाइ ।
ज्यूं रज्जब कुम कुमार क मुम्नि वस लीया न जाइ ॥५॥
अंग न लहै अनन्त का आतम भावहि जाहि ।
ज्यु रज्जब मुम्न मुकर मैं पाणी पावै नाँहि ॥६॥
पंच तत्त सौं प्यंड करि प्राण बणाया माँहि ।
रज्जब रचना अगह गति समसे समुझै नाँहि ॥७॥
पंच तत्त सौं प्यंड करि, माँहि समोया प्रान ।
रज्जब रचना राम की सिष साधन हैरान ॥८॥
रज्जब रचना राम की रामति अनंत अपार ।
जांण जांण जांण महीं मम मति ह्न न बिचार ॥९॥
कहीं भांति यहु कछ किया सो कोई न जानैं जान ।
रज्जब रहि गये देखि करि, हरि हिकमति हैरान ॥१०॥
मनमाने जाने कहै ग्यान गु कहै अग्यान ।
रज्जब साधू बद सब हेरि हुय हैरान ॥११॥
अर्मगि शास्त्र बाणी बहुत निगम बहुत मम मौन ।
तौ रज्जब को कहैगा बहुत मरीगा बार ॥१२॥

ब्रह्म न समावै बुद्धि मैं बरण्या बैन न जाइ ।
ज्ञान गिरा गहमे हुये ठग के लाडू खाइ ॥१३॥
जिन जिन जाण्या जगतपति सो जाणिर भये जाण ।
रज्जब दीप उदीप क्या जब प्रगट्या निज भाण ॥१४॥
काया उपजी करम करि बुधि वेद बषाणै ।
पै आतम की उतपति कूं जिव ज्वाब न जानैं ॥१५॥
जिव कीया किस वस्त का सो जीव न जानैं ।
सब समुझे समुझै नहीं करतारै जानैं ॥१६॥
जीव जड मांहा भेद न जानैं काहे का कीना आकार ।
रज्जब अगम आसमी आगे यहु जाने करतार कंभार ॥१७॥
जीव न जानैं जीव कौ कहै कहू कौ कीन्ह ।
तौ रज्जब इस बुद्धि सौं ब्रह्म कौन विधि चीन्ह ॥१८॥
जीवहि पूछें ब्रह्म गति यहु अचरज हैरान ।
जो आपुहि जानै नहीं तिन अविगति क्या जान ॥१९॥
जब लग जीव जाना कहै तब लग कछू न जान ।
जन रज्जब जांन्या तबै जाणिर भये अजान ॥२०॥
जे तौ जान्या जगत गुर ते सब भये अजान ।
रज्जब वेदहु देखतौं बदहु नेति बखान ॥२१॥
रज्जब तब सब जानिया जाणिर भये अजाण ।
मनसा वाचा करमना गुर गोबिन्द की आण ॥२२॥
चौपई अकलि अनंत रहै ह्व भोला ता लगि सिष्टि नहीं निरमोला ।
रज्जब अज्जब कहिये वाहि साख वेद वोले अवगाहि ॥२३॥
साखी कृतिम करतहि क्या कहै आतम राम अगम ।
रज्जब बाणी बल मिटया जे मेतहु कहि निगम ॥२४॥
धरया पर्वहि विचारि करि तामे हुं नादान ।
वेद पुराण न कीमति पावहि रज्जब है हैरान ॥२५॥
करतहि काया कला नहिं कोइ निरगुणि गुणि न गहावै ।
रज्जब जिव जन वपू सब पाके मिहरि आपणी आवै ॥२६॥
करतार अगाध करणी असम असग आतमा देव ।
रज्जब असपर्शों मैं पडया वपू लगि भीजै सेव ॥२७॥

अलख अलख सब कोइ कहै, सो लहिये क्यूं पीव ।
पै रज्जब यहु पुछि अगम जु कौन तत्त है जीव ॥२८॥

अवगति ने अविगत किया जे देख्या निरखाइ ।
रज्जब अकीया को कहै, किया न समझ्या जाइ ॥२९॥

आतम आतम की अकलि औसोकी नहिं जाइ ।
तो रज्जब यहु विषम है, करणी खबरि खुदाइ ॥३०॥

जीव न जामें जीव को तो जगपति जाण कौन ।
अकलहिं ठौर कहना न कछू, रज्जब पकरहु मौन ॥३१॥

ज्यूं घुण काष्ठ माझ मैं नरवर मैं फल जोइ ।
रज्जब कीट पषाण मैं कुदरत लखै न कोइ ॥३२॥

अण देख्या तो क्या कहै दस्यू कह्या न जाइ ।
रज्जब हरि हैरान है, माहीं सबद समाइ ॥३३॥

रज्जब रसना रहति रस प्यंड परै की बात ।
सो सुख कहै न प्राण पति जीम किसी एक मात ॥३४॥

जीव ब्रह्म के बस की मुख सख करनहिं बैन ।
बन रज्जब जु भया जुगति सु आमन उदै न एन ॥३५॥

अकल न कलिये आतमा मनमत मधि समाइ ।
रज्जब मुख सख बोलिये सो नहिं सबद समाइ ॥३६॥

रज्जब सिरि सहनाण क सिशु ससि दिया दिखाइ ।
ऐसे साईं सबद मैं मुख सख बरनी जाइ ॥३७॥

आतम पै कछु ऊचरै सब अपणा उनमान ।
रज्जब अज्जब अकल गति सो दिसहु नहिं जान ॥३८॥

रज्जब आदम मुत सबद हूं आदम उनहार ।
मरहू कहै मैं आणिय सु निपट न होइ करार ॥३९॥

बंदे उपजै बंदगी बासक बामा माहिं ।
रज्जब माम भमाग की आंस्यूं चीन्है नाहिं ॥४०॥

मति मृत्तिका अनन्त है, बहुतै काबि कुमार ।
सब पात्र बहु घड़ि गये घड़िसी और अपार ॥४१॥

## पारं अपार का अंग

फटगसिलाहू मुख बिन महल ता माहैं वहु वस्त ।
मांख्यूं कौ आसान है मुस्किल चढ़ैं तौ हस्त ॥१॥
वप विलौर पाषान घर मुख मुक्ति मधि राम ।
ज्ञान दृष्टि सुलभ दरस दुरलभ परसन काम ॥२॥
खालिक खीर समंद है, पीकरि हाइ न पार ।
रज्जब रंचक चाखतौ सेवग रह्या न मार ॥३॥
वप त्रिमार मैं प्रानपति ज्ञान दृष्टि दरसाइ ।
सेवक कौं संताप दे पै ग्रह्य न बसि ह्वै जाइ ॥४॥

## थकित निश्चल का अंग

रज्जब निहचल वन्यि देखौ ध्रू दिसि जाइ ।
मृय हिंदू तुरक का माथा वहि दिसि हाइ ॥१॥
ध्रू का थहि प्रदछिना उडग यद अर मान ।
रज्जब निहचल बंदियं अरथ इलाही जान ॥२॥
जन रज्जब चंचल सबै उडग आरमा जाइ ।
नौमधि नछित्र नौलंड मधि ध्रुव ज्यौ निहचल काइ ॥ ॥
नौ लखिछत्र चंचल सब ससि सूरज तिन माहिं ।
रज्जब ध्रू निहचल किये और किये म नाहिं ॥४॥
रज्जब मनी चपलता निहचल निरमल प्रान ।
हलचल जम लागे न मुन अस्थिर सब दरसान ॥५॥
अस्थिर अमम चपलता मला आतम अंभ समान ।
रज्जब आप जीव जगि नीक रिया निदान ॥६॥
जब लग इन्यु चपलता मल मगि मला प्रान ।
रज्जब पनौ थिर रहै निरमल मन गुजान ॥७॥
निरमल निज मू निपट है चंचल वस्तू दूरि ।
जन रज्जब जाना तुरा रहता राम हजूरि ॥८॥
मप उतरै अस्थिर भय आतम रामहि सीम ।
रज्जब रहता राम मैं धरता बस्न गुभीत ॥९॥

निहचल मैं निहचल रहै, चपल चंचल माहिं ।
जन रज्जब जाणी जुगति यामैं मिथ्या नाहिं ॥१०॥
थिर माहीं चित थिर रहै, चपल, होता जाइ ।
रज्जब दरिया देह की एकै गति निरताइ ॥११॥
आरंभ करता अम चढ़े चंचलता फल चीन्ह ।
थकित होत याकहिं करम रहै कमाई कीन्ह ॥१२॥
बिन सेवा सेवा करी अब जिव निहचल होइ ।
जन रज्जब इस पेच कूं बूझै बिरला कोइ ॥१३॥
चत्रक चित्र न चपल ह्वै उभै थकित इह बिधि ।
सुई सुरति सरकै नहीं मिलि पारस परसिद्धि ॥१४॥

चौपई लोहा पारस औषदि सार, सो सरक नहिं चंवक प्यार ।
त्यूं रज्जब आतम रामहिं मेल सकति थकित माया भ्रम खेल ॥१५॥

साखी रज्जब राम समुद्र मधि फिरै सुरीसे कुंभ ।
दोसचाल बाई बिचक भरे सु अविगत अंभ ॥१६॥
धर गिर तर निहचल बहुत निहचल कोई नांव ।
जन रज्जब ता संत की मैं बलिहारी जांव ॥१७॥
माया मैं निहचल सब चौरासी लगि आइ ।
रज्जब अस्थिर ब्रह्म मैं सो जन बिरला काइ ॥१८॥
नांव रहै हरि नांव मैं जीव जगपतिहिं माहिं ।
रज्जब द्वै ठाहर सु थिर तीजी दीसै नाहिं ॥१९॥
बाइस बैठि जहाज सिरि बारिनिधि मधि जाइ ।
रे रज्जब तहं तैं उड़ बन्या कहां माइ ॥२०॥
रज्जब बाइस बाम बिन बाहिथ बैठे आइ ।
सो जिहाज निधि मधि चल्या काग कहा उड़ि जाइ ॥२१॥

## आसै आसण का अंग

जहां प्रीति तहं बाइ जिव संग भये अम्भूम ।
जन रज्जब दृष्टांत कीं धर्मी कइ ज्यूं फून ॥१॥
नीर न रहै सुमेरु सिर नीचे निकसै माइ ।
त्यूं रज्जब इस जीव की जहां प्रीति तहं जाइ ॥२॥

प्रीति प्राण कौ ले गई काल काया से जाइ ।
जन रज्जब गति आगिली सु अब देखी निरताइ ॥३॥

साध सरीरहि छोडई पर जीव न छाडा आप ।
रज्जब रट ऐसे रही ज्यूं मिरतग तिन ताप ॥४॥

मन मोती मरकी कना बिगसि बंधै निरसंध ।
गलि निकसै कलि कष्ट मुखि भगति भामनी बंध ॥५॥

चौपई मन पारा मोती मर अंग निकसत होहिं सबा सुर भंग ।
पुनि धारे साबति होहिं सोइ, तीयू माहिं न बिनस्या कोइ ॥६॥

साखी पेसखाना पावक का धोम ध्योम दिसि जाइ ।
ऐसे मनि उममनि लगे तौ जीव रहै सह आइ ॥७॥

जहां सुहब्बति मन की पवन प्राण तहं जाहिं ।
रज्जब तीन्यूं एकठे कबहू बिछुटे नाहिं ॥८॥

आसे आसण होत है जहां रचे हित माइ ।
देखौ दीपक राग की अगनि सु दीवे जाइ ॥९॥

रज्जब मत कौं मत मिले ज्यूं जड़ टूटी आम ।
दीन्हौ पड़ि दूजै नहीं जे बीतै बहु काम ॥१०॥

सरीरहि सूंघे नहीं औषदि रोगहि जाइ ।
त्यूं आसै आसण होत है, नर देखौ निरताइ ॥११॥

ब्रह्म सुमिरतौ माया सहिये माया सरधत राम ।
रज्जब समझ्या ध्यान मैं भाव भेद का काम ॥१२॥

माया माहै ब्रह्म पाइये ब्रह्म मधि तैं माया ।
फलै सुमन की कामना रज्जब भेद सु पाया ॥१३॥

सब ज्यूं माया ब्रह्म मधि उभै आतमा पूरि ।
रज्जब दूरि जु दिस नहीं हिरदै हित सु हजूरि ॥१४॥

माया मिलि माया भये ब्रह्म माहिं तै अन्त ।
यू जीव सीव सब सक्ति मधि प्राण पसटूण मन्त ॥१५॥

स्यौं कौ मिमतं सक्ति मधि सक्ति मिसति स्यौ माहिं ।
आसै आमण जीवका जुगल सु बिछुटै नाहिं ॥१६॥

भावै भूति बिभूति है भाइ भूति भगवान ।
रज्जब समझी जीव मनि भासै भासण जान ॥१७॥

हरि हरि सिद्धी होत शिव, मेला हित चित भाग ।
उभै एक संदेह बिन, रज्जब जासों राग ॥१८॥

इति विभूति अनभूत उत भूत भाव बिच भेद ।
रज्जब मला भास विसि नीके किया न खेद ॥१९॥

ब्रह्मण्ड प्यंड प्राणी विविधि उभै अस्त हूं नास ।
रज्जब रहसी प्राणपति भाव भेद संगि दास ॥२०॥

रज्जब अज्जब भावना, करतै दीपक राग ।
तन तिन पीर न पाखई सो दीपग ही लाग ॥२१॥

मांगे मिलिहि न स्यो सकति मोल न लीये जाहि ।
रज्जब राखी सालसा भाखण भास मांहि ॥२२॥

जो मति सो गति होइमी साध बेद सब साखि ।
मनसा वाचा करमना जन रज्जब रुचि राखि ॥२३॥

सोरठा सबद सुधि सब ठौर सकति सहित साई रहै ।
रज्जब रुचि सिरमौर, गाहन करि गाहक गहै ॥२४॥

साखी कमठि काछिला माहि अहि मरजीवार मुरास ।
रज्जब जल निधि दै डुबी लेहि जिनहि जो प्यास ॥२५॥

अहार ओपधी आसिरम आवै भार अठार ।
मधु मंगिचर मसा मनहु रज्जब रुचि व्योहार ॥२६॥

पहुप पत्र समदी सहस ओपद फल अरु मागि ।
गू दूध गुगेसी छाया भाव भूप तहि मागि ॥२७॥

अपणी अपणी भूणि की चौरासी चेतनि ।
रज्जब मेमे मांड मीं जो है जाके मनि ॥२८॥

इस ब्रह्मंड बजार मैं बहुते वसत बणाव ।
जन रज्जब मे जीव सौं जाके जासौं भाव ॥२९॥

रज्जब रामति राम मैं बहुते भरे भंडार ।
पै मामें भासन भणमरे तामै फेर न मार ॥३०॥

नाम माखण होइगा जाका जहां करार ।
जन रज्जब जाणी जुगति तामै फेर न मार ॥३१॥

रज्जब पुरी न बेद धम औखधि अकलि मझार ।
पै रोगी राखै नाम की जामैं नै उपगार ॥३२॥

मनवा निकस्या धोम ज्यूं सांई सुन्नि समान ।
अंस अंस कन जाइया प्राणी पावक जान ॥३३॥

रतन रिधि निधि सिधि सु पदारथ मुकति भगति हरि राज ।
रज्जब सबै सु भेद मधि जाके आसौं काज ॥३४॥

बहु जीव काया करम सिये सु मच्छी मांहि ।
रज्जब सबै सु भेद जिव दावै दूसण नांहि ॥३५॥

बिबिधि भांति की बंदगी दीसै मांड मझार ।
गाहक गौं की लेइगा रज्जब रचि ब्योहार ॥३६॥

देव सेव बहु मांड मैं मंडी न मेटी जांहि ।
रज्जब उपसी प्राण यहि जाके जौ मन मांहि ॥३७॥

जौ दिल मैं सौदागरी दुनी सौ सौदा होइ ।
रज्जब बिधि ब्योपार बिन बाहरि बणिज न कोइ ॥३८॥

सक्तिवण लोक असंखि कुल घटि घटि नगर बसंत ।
उभै एक अग मिलि रमहिं जन रज्जब जय मंत ॥३९॥

जाति पांति सब को करै सगौ सगाई होइ ।
ज्यूं सुकृत सुकृत मिलै कुकृत कुकृत जोइ ॥४०॥

चौपई मैलूं मैले मिलि रस रंगा मैले ऊजल बनै न संगा ।
कान्ह माइ के कनै न आवै पसुहू पेखि माहिली पावै ॥४१॥

साखी बकत्र बारि ह्वै नीकसैं पैठे श्रवन सु द्वार ।
रज्जब मिलियहि समीं सौं बाकी फिरहु हुवार ॥४२॥

नीरच प्रीत सु मीन ह्वै मूरति कीट पषाण ।
हेत हुतासन समद जिव आवै आसन बाण ॥४३॥

बगुगा हुवहुव मोर तन साखा सुकम सु स्वान ।
रज्जब पाई प्राम नै मन बच क्रम जो मान ॥४४॥

वोक बकन डाढ़ी बढ़ी रीछ सु डाढ़ी रूप ।
रज्जब रट बिन रोम मस परस न तत्त मनूप ॥४५॥

निरगुण सरगुण बीज है अवनि आतमा मांहि ।
नाव नीर सौं पुष्ट ह्वै आसै आसण जांहि ॥४६॥

नाद नीर बरिया बिपुल प्राण पहुम भरपूर ।
रज्जब काढ़िहि जाति के प्रकृति प्राण अंकूर ॥४७॥

लिखे फटकड़ी फहेम सो कागद कमस सु माहिं ।
नीर नाद सौं भीजते आखिर ऊपहिहू जाहिं ॥४८॥

फैम फटकड़ी सौं लिख काया कागद माहिं ।
रज्जब भीगैं जुगति जल आखिर देखे जाहिं ॥४९॥

रज्जब दस दिसि तरसौं बसे मत मांगहु पड़ि प्रान ।
नगर माइ आये सबै मेला रुचि भरि आन ॥५०॥

मनिया देही मुक्ति मुख आसै बासा होइ ।
चौरासी बिसि बंदि सब सरकि सकै नहिं कोइ ॥५१॥

## अंतिकालि अतरा ब्योरा का अग

किसन प्र बासा के सबदि जम जमुना भइ बाट ।
यूं अंतरि अंतक समै पुनि निरसिंग सौं ठाट ॥१॥

भाव भौमि हलचल ह्वै काल कप्ट मवैं बास ।
परम घात धक्का नहीं जन रज्जब थिर भास ॥२॥

राहु केत रवि रूप लिये पै जल चल सई न जाइ ।
यू अंतक बसि वप ग्रसै आतम भाव समाइ ॥३॥

रुई बिनौलैं सोसिये ज्यूं चरखी तलि आइ ।
त्यूं प्यंड प्रान जम करि जुदे विधि बित सीया जाइ ॥४॥

वासे मणवासे पिसहिं तिल तम कोल्हू काल ।
खलहल सुसी न खस दुई तेल तुषा खुलि खाल ॥५॥

मांव माज आवै नही अंतक समये बास ।
जन रज्जब जोक्यूं नहीं जप की ठेस सुवास ॥६॥

सदा अमावस मा रहै, सदा न राहू ग्रास ।
तैसे सकट काल मुनि पुनि रज्जब परगास ॥७॥

महंत महोदधि माहिं थिर, चंचलता मनि तीर ।
रज्जब रीझ्या देखि करि दोइ सुभाव सरीर ॥८॥

रज्जब साधू झूमते मासण अधर अवास ।
तन तोयूं की लहरि मैं सेऊ चपल अभ्यास ॥९॥

प्यंड प्रान ज्यूं हालई बिपति बात की घात ।
महापुरिष मन मूल मत सो अस्थिर दरसात ॥१०॥

खंड खंड व्यंडहि करै परि प्रामहि परै माह ।
त्यूं विषम समै बाणी बिकल पै हेत हुरया नहिं आइ ॥११॥

काल नींद काया गहै, पै मन पवन बसि माहिं ।
यूं अंतर अंतक समै रज्जब समझ्या माहि ॥१२॥

सुषि समीर न फटि रहै, गोसी गोलै गौन ।
तैसै रज्जब प्रानपति तौ अंतकि अंतर कौन ॥१३॥

अंतकि पड़ै न अंतरा जासौ जिव की प्रीति ।
मीन आब जल चोट तकि मिमि आणी रस रीति ॥१४॥

देही दारा दहम छ्वै अंतकि लागहि आगि ।
प्राम पंथि सो मा बसहि, देखि चाहि डकि मागि ॥१५॥

चौपई अंतक मनहु पाहुनी आगि प्राण लोह सौं रहै न मागि ।
आरंभ उठै उथंमल आइ सु रज्जब रहै नही ठहराइ ॥१६॥

साखी फिरत फिरै त्यूंरी फिरी जथा तनै सुख सुधि ।
सा घर मिर वैसै भ्रमति भोला भोली बुधि ॥१७॥

## पतिव्रता का अंग

पतिवरता कै पीव बिन पुरिष न जानम्या कोइ ।
त्यूं रज्जब रामहि रचे तिनके दिल नहिं दोइ ॥१॥

आन पुरिष परसै नही दोस न दे भरतार ।
तौ रज्जब रामहि भजौ तैतीसौ तसकार ॥२॥

सुर नर देई देवता सब जग वेस्या जोइ ।
रज्जब नाहीं राम सा सगा सनेही कोइ ॥३॥

नछित्र रूप निरंजर सबै पै तम न मैन मर मास ।
रज्जब रवि रमता दरस जे न करहि परकास ॥४॥

जथा मापिगा मीर ने स्वंप समापति जाहि ।
त्यूं रज्जब सरबंस मै सौंपो साहिब माहि ॥५॥

रज्जब रमिता राम तजि जाइ कहां किस ठौर ।
सकल साथ एकहि धनी नहि साहिब कोइ और ॥६॥

रज्जब राजी एक न दूजा दिल न समाइ ।
देखो ऐसी एक मै है जिव रहै न माइ ॥७॥

एक आतमा राम एक, एकै हित चित होइ ।
दूजा दूसत क्यूं करै दिल दीये नहिं दोइ ॥८॥
पनिग रहै पाताल मैं, अनल पंख आकास ।
त्यू फंदे बन्ध्ताहि मनो दासा तन मे दास ॥९॥
दुनिया दिल दरपन भई, सरब रूप समि भाइ ।
मो मन भया मुदाब सिल मित्र मोर दरसाइ ॥१०॥
रज्जब माया ब्रह्म मधि, ठिक पावै हूं ठौर ।
निहचै बिन नर हरि निकट बैंठम लहै न मौर ॥११॥
एक मिल्यू सारे मिले सब मिलि मिल्या न येक ।
तामै रज्जब जगत तजि पूजौ महा अनेक ॥१२॥
दोजग भिस्ताहि क्या करै, जो अल्लह के यार ।
रज्जब राजी एक सौं ता मिलि रहै करार ॥१३॥
भिस्ति न भावै आसिकौं दीन दुनी दधि माहिं ।
रज्जब राते रब सूं एक स्याम मन माहिं ॥१४॥
बैकुंठहि दीदै नहीं सो विखिया क्यूं लेहि ।
रज्जब राते राम सौं औरहि उर क्यूं देहि ॥१५॥
स्यंध न सूंधै घासि कौं जे बहुतै होहिं उपास ।
त्यू रज्जब दीदार बिन कछू न चाहै दास ॥१६॥
दरस बिना जो दीजिये सो ले मूरख दास ।
बकुंठ सहित बसुधा मिल्यू रज्जब रह्या निरास ॥१७॥
रज्जब रिधि सिधि निधि सब लह्या गह्या कछू नाहिं ।
जब लग आतम राम सू मेला नाहीं माहिं ॥१८॥
अर्सति लोक रिधि सिधि सहित जीवहूं दे जगदीस ।
रज्जब रीती राम बिन आतम बिसवा बीस ॥१९॥
रीती रामति राम बिन रसग सु खामी खेल ।
सुरपुर नरपुर नागपुर, कदरज क्रीड़ा केल ॥२०॥
रज्जब जहिं तहिं जड़ भयी सो मूकै तरवास ।
काम उम्हालै मैं हरया एकै मूम पताल ॥२१॥
रज्जब बरषत बन हरया तिण तरवर गति दोइ ।
एक मूकै इक सकल अति उभै उम्हालै जोइ ॥२२॥

अठार भार बिधि आदमी मही सु मनसा बंधि ।
सबद सलिल बड़ भालिबा फेरि लहै सो संधि ॥२३॥
रवि ससि गहिये गगन मैं पंनिग गह्या पाताल ।
रज्जब रहिये सरणि कहि जु छूटै धूबै न्यौताल ॥२४॥
ब्रह्मा बिसन महेश क सरनै कुसल न होइ ।
तौ रज्जब तैंतीस तजि राखणहार सु जोइ ॥२५॥
ज्यों सिर गह्या सु पारमा ब्रह्मा रहै न बेद ।
राम कृष्न रमणी गमी रज्जब पाया भेद ॥२६॥
गोपी लूटी कृष्न की रावण ले गया सीत ।
रज्जब रहिये सरणि तेहि सुणि सु हुवा भैभीत ॥२७॥
सीता सीन सुमाकिया दिवदे आणी अब ।
रज्जब आणी राम की सकसाई तब सब ॥२८॥
ज्यों सिर परि ससि संग रह्या राहु केत नै आइ ।
तौ सरणै तैंतीस मैं रज्जब किसकै जाइ ॥२९॥
रइमति रमिता राम की तैंतीसहु सिरताज ।
दास बसे बलिवंस के जा सिर और न राज ॥३०॥
चाकर राम रहीम के अबिनासी का दास ।
सुर नर सौंपे सेस लग उर न और की आस ॥३१॥
पैगम्बर सब परिहरे मालिक सौं मोहीत ।
रज्जब फारिक मुल्कि सौं मखसूवी रस रीत ॥३२॥
साहिब सौं पैदा हुये साहिब सौं ना पैद ।
रज्जब तिसकी बंदगी दूजे की क्या कैद ॥३३॥
फरद खुदा की बंदगी सुन्नति किसकी होइ ।
रज्जब यू हैरान है क्यू साहिब हैं दोइ ॥३४॥
कहै निमाज खुदाइ की मरै सु मक्कै जोर ।
रज्जब यू हैरान है मल्ला पैठा गोर ॥३५॥
रज्जब सांई सुमिरतौं सिधि साधिक सब हुस्त ।
जैसे सलिता समंद सौं अचई आनि अगस्त ॥३६॥
डाल पान फल फूल कै जड़ सींचे संतोष ।
त्यू रज्जब रामहि भज्यू सुर नर करहि न दोस ॥३७॥

सब संतन की रासि हरि, सोइ पुंज उर धार ।
यू रज्जब सब सेइये गुर मुखि ज्ञान बिचार ॥३८॥
जैसी विधि पैपान करि जीव दही तक्र पीन ।
तसी विधि हरि सों मिल सा रज्जब सब लीन ॥३९॥
साँई मैं जो आइया साधू दिल सु समाइ ।
ज्यूं रज्जब आगिर पड़े मुगमी मापी जाइ ॥४०॥
पहुम पड्या पाणी पिवहिं, पवी प्रान अनेक ।
रज्जब अंम अकास का सो सारंग से येक ॥४१॥
पतन सीप सुत चाग है यू मन राखे साध ।
सलिल सकति परस नहीं पूरण बुद्धि अगाध ॥४२॥
चात्रिग का पतिबरत गहि सीर स्वाति ही माहिं ।
रज्जब सर सरिता भरे तार्को भावें नाहिं ॥४३॥
पाणी सौं पतिबरत गहि मीन रहै मन लाइ ।
रज्जब थलै बहुत बिधि बाहर कदे न जाइ ॥४४॥
गहि पतिबरत पपान का आगि रह्या उर लाइ ।
रज्जब जुग जनमै भये पै पाणी मिल्या न जाइ ॥४५॥
छाया रुपी बरत गहि रही तु पतनि लागि ।
रज्जब दुख सुख संगि सों कदे न जाई भागि ॥४६॥
ज्यू जल मीन भुअंग मणि दोऊ पतिब्रत माहिं ।
मीन मुदित मौरे बल धरप और मणि नाहिं ॥४७॥
रज्जब तारहु तोरई पहुप प्रीत धरि जोइ ।
समि सज्जन सगि जीवतं मूर सम सिर रोइ ॥४८॥
गुरिजयसी बमभनी मसि देगें कुभिसार ।
ज्यू रज्जब ग्रत राम सा दूजा दिल न समाइ ॥४९॥
सीप गमर्णहि नीर द मुग कीना हिमि भेद ।
रज्जब बिरती बार निधि स्वाति बूं नै भेद ॥५०॥
रज्जब केलि मीर मारग न स्वाति बूं आधार ।
छ छ मैं दामि न धनि पतिब्रत व्योहार ॥५१॥
मीर बभीमन का धरत धरतू पाल्या भर ।
तो स्वाति मुख उनको न्यि उर्नहि गमरपी मेर ॥५२॥

सारंग सीप सरोज कै, पतिब्रत देखहु दीठ ।
त्यं रज्जब रहि राम सूं ब्रह्मंड प्यंड दै पीठ ॥५३॥

रज्जब दीसत सीप का ससि संतोष न भाव ।
जासौं रत तासौं रज्जू लघु दीरघ नहिं जाव ॥५४॥

लघु दीरघ समुझै नहीं प्राण प्रीति तहं जाइ ।
देखि दिवाकर कौं सबै दीपग पतंग समाइ ॥५५॥

सुहागै सू ना मिलै कंचन अमिल कपूर ।
देखौ किहिं ठाहर निकट किहिं ठाहर सौं दूर ॥५६॥

चौपई आपिन सिवुक निहुचा निरसंभ अडग अडोल अविहड दिठि थंभ ।
बिक पतिव्रत अखंडित प्रीति नाम अनंत एक रस रीति ॥५७॥

साखी जिनि बातौं साहिब खुसी रज्जब राजी होइ ।
पतिबरता सो जानिये जाकै एक न दोइ ॥५८॥

तन मन की मेटै खुसी आतम आज्ञा माहिं ।
सो रज्जब रामहि मिलै उर मैं और सु नाहिं ॥५९॥

संतति बामो सुमि की तोयं तक्त अनेक ।
त्यूं रज्जब रमि रवा मैं अपणी बोइ न मेक ॥६०॥

साधू चलै सु राम रुचि अगम अगोचर माइ ।
रज्जब रत सौं रत हुं बिरतौं निकट न जाइ ॥६१॥

रज्जब मिलते सौं मिलै अनमिलते न मिलाइ ।
सांई साधू एक गति नर देखौ निरताइ ॥६२॥

अणमिलतौं सौं अणमिलै मिलतौं सेती मेल ।
यू रज्जब जन की दसा पतिबरता का खेल ॥६३॥

रज्जब एकौं एक है, अनेकौं अनेक ।
सांई सेवग एक मत यहु पतिबरत बमेक ॥६४॥

चौपई एक सौं एक दूज सौं दूजा रज्जब राम खुसी इहु पूजा ॥६५॥

साखी रोजा रावै द्वार दसि बरत करै बसि पंच ।
जन रज्जब निज नेम यहु सग महीं जम अंच ॥६६॥

बरत न छाडै राम कौं बरत न सुपनै काम ।
बरत न मद मासहिं भषै बरै न निरंजन धाम ॥६७॥

गंठजोड़ा गुर ज्ञान करि, हथलेवा हरि लेत ।
रज्जब भामणि भामणे भाँवरि भरि भरि लेत ॥६८॥

## सरबंगी पतिव्रत का अंग

सूरिज देखै सकल दिसि चसिमे कौं दिसि एक ।
त्यूं रज्जब रहि राम सूं यहु गहि बरत बमेक ॥१॥
गिरद फिरै इक दिसि गमन चितवनि चक्र की चाल ।
त्यूं रज्जब सब दिसि समझि पाया पंथ निराल ॥२॥
प्राण पवन सब दिसि फिरैं गवन गगनि कौं होइ ।
जन रज्जब चलि और यहु विगति बिरला कोइ ॥३॥
बाल बोल सब दिसि परस करी सैन दिसि सैल ।
जन रज्जब सरबंग मिलि गही गिरा गुर पैल ॥४॥
रज्जब बुधि बूटी पहुंचि प्यंड रमि रग रग सब अंग ।
यहु सरबंगी पतिबरत हरि बिछोह दुख भंग ॥५॥
रज्जब निज निज नापिगा सब दिसि फिरती जाहिं ।
बेरया बंक न बींदही फिरि घिरि दरिया माहिं ॥६॥
त्रिबिधि भांति जिव रंग धरै धनु हुर देखि अकास ।
पै एकै ठाहर एक सों अबिगति भामौं पास ॥७॥
पोसत पुहुपौं बहु बरन धमस अकारहु येक ।
सौ भेषौं बोला न कछु, बेस्या करौ बमेक ॥८॥
जन रज्जब यपि बहु बरन थल चल देखौ जोइ ।
नीर मेह अरु तिरण गति सबकी एकै होइ ॥९॥
देखौ सुरही संत जन तिन तनि रूप अनेक ।
पुनि ये प्यार असंखि के रज्जब दरसैं येक ॥१०॥
पट दरसन पंखे सुपरि, बहु बरनैं बहु बीर ।
रज्जब अज्जब यहु मता सुमिरण एक समीर ॥११॥
मधपति सावहिं अरगजा सकल सुगंधो सानि ।
त्यूं पट दरसन की गुसी भेद भजन की मानि ॥१२॥
छप्पन भोग न संपजै बिना छत्रपति भाल ।
त्यूं पट दरसन रासक सब भावहिं भावति माल ॥१३॥

सोइ लखकवै निरपती ज्ञान चक्र हुद हाथ ।
साधहु सब दिसि गमि भवन सरबंगी सब साथ ॥१४॥
पतिबरता परमारथी जो गह तह समि रूप ।
सबको सुख दे सबद कसि सदा सु दुक मौ भूप ॥१५॥
आसम भेमि सुरति अब सहा भूमि रस लेइ ।
सकल सार खेलैं बधै सोभ रसन भस वेइ ॥१६॥

## बिभचार का अंग

बिभिचारी बिन बध बिन घट मैं नहीं बमेक ।
जन रज्जब पति छांडि करि, धक्के खाहिं अनेक ॥१॥
जैसे कीला कीच का सेष्या वह बिधि जाइ ।
रज्जब रामहि क्यूं मिलै हांहि विभिचारी भाइ ॥२॥
मकरी चकरी तार परि अहु निसि आवै जाहिं ।
मन मनसा ऐसे फिरहिं, तैस पति पतिमाहिं ॥३॥
नैनहु बैन श्रवण करि जे कहहू चलि जाइ ।
तौ रज्जब नारी नाह बिन मार सरोतर खाइ ॥४॥
निहचा छांडै नांव का आन धरम उर धार ।
सीप स्वाति मधि स्वंम बस मन मुकता ह्वै क्वार ॥५॥
मुक्ति मार्गे मन मै अमन दिल दुविधा नहिं जाइ ।
रज्जब सीझै कौन बिध यह बिभिचारी माइ ॥६॥
रज्जब रही न मीत बिन पीहरि अरु ससुरारि ।
सो सु कसी माने नहीं बचन बड़हु की बारि ॥७॥

सोरठा नारी पुरष न नेह दुख सुहाग निस दिन भरै ।
रज्जब कौन सनेह, सती भई सठ भाव से ॥८॥

साखी तनि पतिबरता मनि मुखी सखै न पिव प्रसताव ।
रज्जब रूठे से रहै उभै सु सारी आव ॥९॥

## रस का अंग

रज्जब रमि रमि राम सौं पीवै प्रेम अघाइ ।
रसिया रस मैं ह्वै रह्यो सो सुख कह्या न जाइ ॥१॥

निरमल पीवै राम रस पल पल पोषै प्रान ।
जन रज्जब साक्या रहै, साधू संत सुजान ॥२॥
परमपुरिष मैं पैठि करि पीवै प्रान पियूष ।
रसिया रस मै ह्वै रह्या अब रस ही की भूष ॥३॥
रसना लागी राम रस हिली मिली ता माहिं ।
जन रज्जब सो स्वाद सौं कबहू बिछुरै नाहिं ॥४॥
अविगति अलख अनन्त रस पीवै प्रान प्रवीन ।
जन रज्जब रस मैं हुवा निकसि न होई मीन ॥५॥
हरि दरिया मैं मीन मन पीव पेम अगाध ।
महा मगन रस मैं रहै जन रज्जब सो साध ॥६॥
रज्जब रहै न देह मैं मगन मुदित ह्वै जाहि ।
लूण गूणि ज्यूं नीर मैं तामैं क्या ठहराहि ॥७॥
अमल अमोलिक नांव का साध सदा पीवंत ।
मसत दसत मैं ह्वै रह्या जुगि जुगि सो जीवंत ॥८॥
रज्जब अज्जब नांव रस पाया गुर परसाद ।
पोष्या प्राण पियूष समि छूटा वाद बिवाद ॥९॥
रज्जब दुनिया हद मैं साधू जन बेहद ।
जाति पांति देस नहीं पीया हरि रस मद ॥१०॥
गुन औषधि मिसरी सु मन सेवा सलिल मिलाइ ।
रज्जब प्याले प्रीति भरि, आतम राम पिलाइ ॥११॥
मत मिसरी जिव जलि घुली प्रान पियूष समानि ।
ममरस पीवहि आतमा कोई ल्यो तहां मानि ॥१२॥
काया कूंडा भरि लिया भावै भंग समान ।
सुरतक कूंदन ज्ञान की रज्जब रस रचि प्रान ॥१३॥

## प्रेम का अंग

सोवहि मद्दिम नीधा भगति रज्जब रजनी माहिं ।
प्रेम प्रभाकर ऊगत दृष्टि सु दीसै नाहिं ॥१॥
बिबिधि बदधी बप सु बिधि प्रेम प्रान की ठौर ।
जन रज्जब तिस जीव बिन सब गुन मिरतग और ॥२॥

मवौसड़ि मौधा भगति बसवीं दसवें द्वार ।
पेम लच्छिलै प्रभू की तिसक दिया संसार ॥३॥
रज्जब पावक पेम है, कंचन आतम राम ।
मामि मिलावै घुहुन को पेम करै ये काम ॥४॥
पेम प्रीति हित नेह के रज्जब दुविधा नाहिं ।
सेवग स्वामी एक ह्वै आये इस घर माहिं ॥५॥
पेम प्रीति हित नेह की रज्जब उलटी बाट ।
सेवग को स्वामी करहिं, स्वामी सेवग ठाट ॥६॥

चौपई अमलबेल सु औषधि पेम मो मनसार सुई सत नेम ।
पैठे माहिं सु बाहिं दिखाइ गुण है गात नहीं निरताइ ॥७॥

साखी दाव बंदगी सब भली बेदाना है पेम ।
रज्जब वेस्या बीज बिन जैसे बोसा हेम ॥८॥
प्यार प्रीति हित नेह मुहब्बति पंच नाम एक पेम ।
उभै अंग एकठे करहिं, मनसा वाचा नेम ॥९॥

## सूरातन का अंग

साईं सीति न पाइये बातों मिल्या न कोइ ।
रज्जब सौदा राम सू सिर बिन कदे न होइ ॥१॥
जब लगि सिर बारैं नहीं तजै न तन की आस ।
तब लगि राम न पाइये जन रज्जब सुमि दास ॥२॥

सोरठा जन रज्जब रण रेख राहै सो रिण में रहै ।
जुध करता जम देख सुजस साख सारे कहै ॥३॥

साखी जे साधू रण में रहै, खंड खंड करि गात ।
सो रज्जब रामहिं मिलै सुर नर आये जात ॥४॥
साहिब सनमुख पाव दे ता सभि कोई नाहिं ।
जन रज्जब जगपति मिले सिर साटै जग माहिं ॥५॥
जैसे सूरा सीस ले कोटम् माहै जाइ ।
त्यूं रज्जब हरि नांव मैं सिर दे सूर समाइ ॥६॥
महा सूर सुमिरण करै सिर की आस उतारि ।
जन रज्जब ता संत को परतषि मिलै मुरारि ॥७॥

हरि मारग मस्तग धरै कोइ एक पूरा दास ।
सो रज्जब रामहिं मिलै कदे न जाइ निरास ॥८॥
सति संयोग हाथ लै काट्या मोह ममराइ ।
जन रज्जब पिव को मिल्यो देखो देह जराइ ॥९॥
जेहि रचना मैं सीस दै सोई काम अडोल ।
जन रज्जब जुगि जुगि रहै, सूर सती संत बोल ॥१०॥
साध सराहै सो सती जती जो जुवतिर्व जान ।
रज्जब साधू सूर का धरी करै बखान ॥११॥
माया काया जाति सग भरम न छांड़हिं धीर ।
रज्जब सूरे साहसी येत्ता बावन बीर ॥१२॥
हरि के मारग चलन का जे कछु है चित चाव ।
तो रज्जब त्यागी जगत दे तन मन सिरि पाव ॥१३॥
ज्ञान खड्ग तैतीस हति होइ चक्कवै प्रान ।
जन रज्जब नौखंड परि राज सबस निसान ॥१४॥
निरति मास दारू दरद गोला बाइक ज्ञान ।
दुमति कपाटर करम गढ जन रज्जब यूं भान ॥१५॥
साधू सडै कमंद ह्वै पहलै सीस उतारि ।
जन रज्जब मारै मुवा करै मार ही मारि ॥१६॥
लड़ै पड़ै बहुरयूं चढै सूर करै संग्राम ।
जन रज्जब जोधार जिन महा भड़ीले ठाम ॥१७॥
दिनप्रति कैसौं काढ़िये बैठि रहै सो नाहिं ।
रज्जब साचा सूरमा यहु अच्छिन जा माहिं ॥१८॥
सरीर सफर तबका किया जब गाजी असवार ।
सो रज्जब कैसे फिरै खिसयाने बेजार ॥१९॥
पांच प्रान सम बसप करि सूर चढै संग्राम ।
जन रज्जब जग को तजे गृह दारा धन धाम ॥२०॥
सती सरोतरि राम कहि मारग डरै मरि जाइ ।
जन रज्जब जग देखतूं ज्वाला माहिं समाइ ॥२१॥
साहिब सनमुख पांव दे पीछा पलक न देय ।
रज्जब मुहतौं मारिये मीयहु साजै मेघ ॥२२॥

मरि आंगण बाजार मैं बांका सब कोइ होइ ।
रज्जब रण मैं बांकुड़ा सो जन बिरला कोइ ॥२३॥

अति गति सूधा देखिये सूर सहर कै मांहि ।
काम पड्यू ह्वै केसरी रण मैं मावै नांहि ॥२४॥

सीधू सुर सरबनौ सुनत सूर सनाह्न न माइ ।
रज्जब भागै बतन सब ह्वै गया औरहि भाइ ॥२५॥

मरिस राम री आणछै राम मेल्हू नहीं वसे बीजौ का सू कहीजै ।
रज्जब रामनौ छाणिनै वेगसौं कह्यौ नैवसे क कास जीजै ॥२६॥

साखी सेवग सूरा स्वंध मनि बिरच्यूं करै बिहूंड ।
जन रज्जब डरपै नहीं पड़तौं आपण प्यंड ॥२७॥

मरिबे मांझी ऊतरचा पूरा पाइक होइ ।
रज्जब रावत क्यूं टलै आड़ा आवौ कोइ ॥२८॥

सुभट सूर जेती सजै तेती बहुडि न भेइ ।
जन रज्जब पूरा पुरिष पाछा पग क्यू देइ ॥२९॥

आसंघ बिन न कमास परि सूरा साच नाम ।
जन रज्जब जब आसंघै तब छिन छिन होइ मिसाक ॥३ ॥

रोटी पोवत कर जलै सब सुन्दरि फूंक हाथ ।
जन रज्जब जब आसंघै तब मरै सत्ते सौं साथ ॥३१॥

ज्ञान खड्ग तलि सीस दे ब्रह्म अगनि मैं संत ।
मरिवा जरिवा आव भरि कौन गहै यहु मंत ॥३२॥

सूर सती साहस सुलप निबहि जांहि पल मांहि ।
साधू जुद्ध सु भाव भरि मारत छूटै मांहि ॥३३॥

सूर सती संग्राम इक पस साथ सजै भरि आव ।
रज्जब मन मनमथ सिरि पासै निस दिन घाव ॥३४॥

संग्राम सन्त मन जीव सौ अहनिसि ह्वाइ अखंड ।
रज्जब जाणै जोध जन पूरा प्राण प्रचंड ॥३५॥

अपन जुद्ध जरिबा सुगम पस मैं प्यंड प्रहार ।
पै जाग संग्रामर ब्रह्म अगनि सनि रज्जब अगम अपार ॥३६॥

सब गुरु मिरि सूरिमा जा जीतै गुण जोध ।
जन रज्जब जुमार सो ता का ऊतिम याध ॥३७॥

बहुत सूर बहु भांति के जोध बडे जग मांहिं ।
जो रज्जब मारे मदन ता समि कोई नांहिं ॥३८॥
मन मंत्री जिन बस करी मारया मदन भुवंग ।
सो रज्जब सहजै मिलै परमपुरिष के संग ॥३९॥
माहै मार गुणह्न को बाहरि जग सूं जुद्ध ।
जन रज्जब सो सूरिवां रोपि रह्या कुल सुद्ध ॥४०॥
बहु बिधि मारै बहुत गुण सोडै तीन्यूं साल ।
जन रज्जब सो अमर ह्वै जीत्या अपना काल ॥४१॥
पंच अपूठे फेरि करि घरि आणे सो सूर ।
साहिब सौं सांचा भया रहसी सदा हजूर ॥४२॥
पंचो इंद्री निरदली तिनि खाया संसार ।
जन रज्जब सो सूरिवां प्राण उबारनहार ॥४३॥
पंच पचीसौ त्रिगुण मन मैवासा भरपूरि ।
य मरि दस आई दलै सो प्राणी सति सूरि ॥४४॥
रूयो बिना रिपु क्यू टलै सूर सस्त्र करि जाइ ।
रज्जब जोधा जीतणा हांसी खेल न हाइ ॥४५॥
सूरा ह्व संग्राम चढि अरि इंद्री मदि मारि ।
जन रज्जब जुध जीतिये ज्ञान खडग कर धारि ॥४६॥
ज्ञान खडग जब कर धरै तब अरि मरै मसान ।
जन रज्जब संसार सौं यूं पग मांडै प्रान ॥४७॥
सतगुर के साथे सबद ज्ञान खड्ग कर साहि ।
रज्जब रहै सनाह क्यू पेम प्राण दे बाहि ॥४८॥
भेष पेख भावै महां भरम भुजागम भाग ।
रज्जब रनि भाग मही मरद मंडै मस्तान ॥४९॥
रज्जब मरद मडे मदान मैं सिर की आस उतारि ।
अंगि उपाडै अगम गति याना बसतर डारि ॥५०॥
टीरा साधू सूर का साच धाप सुर पाव ।
परखा खोट मनुर निसा माग भाव सु पाव ॥५१॥
जेर सूर संग्राम सिरि, साहिब सौं दे पीठ ।
तौ रज्जब सरबस गया पीछैं भसा मरीन ॥५२॥

रज्जब सती समाइ सगि जीवहि पे मार्जे ।
तौ हासा तिहु लोक मैं दोऊ कुल लाजै ॥५३॥

सूर बिमै संग्राम सिरि सती भली रास छांडि ।
तौ भट भारण बिरद तजि तबै उठै रन मांहि ॥५४॥

कायर को भरमाइये बहुरि लड़ै सो नाहि ।
रज्जब बिचलें देखता फिरका माहीं माहि ॥५५॥

सूर सती मर संत के मरणे मंगल मांहि ।
रज्जब सरमुख मोकलौं मूत मगत करै मांहि ॥५६॥

रज्जब कायर सूर नै प्रगट गुप्त की खोडि ।
एकै करि करि हाहूरै दूजै मुच्छ मरोडि ॥५७॥

सूर बिना संसार सौं बिरच्या कदे न जाइ ।
रज्जब काइर कोटि मिलि बाहर भरे न पाइ ॥५८॥

सबद सुरति पंची मिल्यूं रज्जब कटै बिकार ।
जथा बेवडी कूप जिल बिहरै बारंबार ॥५९॥

पे मन पवन मिलि लीन ह्वै तौ प्राण पिसण परहार ।
ज्यूं कणिका रेतहि मिल्यूं रज्जब काटै सार ॥६०॥

सोरठा रे रज्जब हरि संगि हारि जीति दूम्यूं भली ।
तोतै पेलि अथाइ मरि उछाह माणदी रली ॥६१॥

साखी धीरज मरना कठिन है, विषम कुहेली बार ।
रज्जब रिण मैं रुप रहै, सब मासंधि मरि मार ॥६२॥

## सिकार का अंग

चेतनि चीता हाथ ले मूठी मन परि डारि ।
रज्जब सैस सिकारि करि मन मिरगा तकि मारि ॥१॥

पंच पचीसौ मारिमे मन मनसा पुनि मार ।
रज्जब अप बनखंड मैं खेलहु सैस सिकार ॥२॥

## सबद परीक्षा का अंग

एक सबद माया मई एक ब्रह्म उनहार ।
रज्जब उभै पिछाणि उर करहु बैन ब्योहार ॥१॥

कौड़ी नास सबद है, सौंमे महुंगे मोल ।
मधि मनि गम समि बैन बहु पावहिं वित्त सु मोल ॥२॥

मुख मंदिर टकसाल मैं नाणे सबद सुजान ।
दमड़ी छुड दे मुहर लौं विकसे वित उनमान ॥३॥

कौड़ी तांबा रूपा कंचन नग नाणे नग माल ।
त्यू रज्जब वाइक विविध फेर मोल अरु माल ॥४॥

प्यंड प्राण पहुमी पवै तहां सपत इक पानि ।
रज्जब कंचन लोह समि सबद सुवित्तहिं जानि ॥५॥

एक सबद राजेन्द्र मैं एक परखा उनहार ।
बनी मैं ब्योरा बहुत परखै परखनहार ॥६॥

रज्जब काया कुम्भ कौं परखै प्रान प्रवीन ।
सार का सारा सबद फूटा बाणी हीन ॥७॥

बेस्या बीज समान है, बाणी बोध प्रकास ।
रज्जब बोल बिगास लौं श्रवन नैन तम नास ॥८॥

चंद्र भाज बोली बड़ी बाणी बीज बसन्त ।
एकहि तिमर न दूरि ह्व एकहि सब कछु देख ॥९॥

जगति प्राण जीवण जुगति बरखा बीज समान ।
जन रज्जब चमकहिं उभै मस पौरिष म समान ॥१०॥

दामिनि दमक दिसावरि दीसै जैगम चमक सु ग्वाड़ी ।
तैसे बाणी बन्हि सु बंदे बसी जिने मैं बाड़ी ॥११॥

चिड़ी चील मूंजी कुरस समि न होहिं सुर बोल ।
एक भेड़ै एक नगर मैं एक सम जोजन सुत बोल ॥१२॥

ग्वाड़ी गमि सीगी सबद संग सबद भनि सार ।
अधिक अति घर मास का त्यू कवि बाप्यू फोर ॥१३॥

आतम आमा जम सबदि निपसै निरमल नीर ।
पिरथी पडया पिछानिये रज्जब रज सौं सीर ॥१४॥

पंच तत्त परस्या सबद पिरथी पडया गु नीर ।
रज्जब तबही जाणिये सपण स्वाद सो सीर ॥१५॥

बहते रहते सबद का रज्जब इहै बिचार ।
बहता बोलै गुपत मैं रहता निरगुन सार ॥१६॥

रज्जब साहू विवासिये आप कहै मुखि येक ।
पै उनके बस्त सु पाइये उनके भात अनेक ॥१७॥
बचन बराबरि के कहै सो भी भीज न कोइ ।
रज्जब रयहु सु मारमिन सोभ एक सा होइ ॥१८॥
बावल बाइक जल भरय बरिषा सुन्नि मन मांहि ।
रज्जब गरद गुमान रज उमै ठौर छुपि यांहि ॥१९॥
रज्जब सबद समीर समि भोम बारि निज जानि ।
तहां बैन बाई चले उठै न गरद गुमानि ॥२०॥
दोष न उपजै किसी कै सुमत सबद निरदोष ।
बकता के बंधन खुले अद सुरता होइ मोष ॥२१॥
काया कंसि सुकतिहु मुकत सबद स्वाति जल पोष ।
मुर मानौ मू ऊपजै तहा दखल नहिं दोष ॥२२॥
गवन गावनै बात बल खिपै बाइ की आंधी ।
रज्जब रज सज काइनीं मारुत की गति मांधी ॥२३॥

## ज्ञान परीक्षा का अंग

सांच झूठे ज्ञान का पाया पारिख माग ।
रज्जब राग अनंत है परि दीवा दीपग जाग ॥१॥
रज्जब पनिग पतंग मर पंख ज्ञान परगास ।
एक सु रिषि दीपक पतन एक सकै सांई पास ॥२॥
रज्जब रसना कर गहै ज्ञान खड्ग पट जान ।
प्रान पईसा मे उठै सो कोइ औरै पान ॥३॥
जो मत काढे मोह सौं ले राखे हरि धाम ।
रज्जब बिधि उसमे नहीं सोई उत्तम ज्ञान ॥४॥
रज्जब रिषि रज मैं पड़े हंस अस सुत सार ।
सो मत पंचक नीरुसी ज्ञान गराय मुधार ॥५॥
सपत धात का ज्ञान तजि अगम अष्टवां लेहु ।
रज्जब राचै राम मैं तोड़ै निगुण सनेहु ॥६॥
जन रज्जब उर अष्टवा बोध बस्या मन मांहि ।
सपत धातु न ज्ञान की भरण बझुझे नांहि ॥७॥

पमिंग पतंग पपीलका तीर्थ्यं पंख प्रकास ।
इक सूक सीतल कौ मिलै एक भये तन नास ॥८॥
धाइक बादल ज्यू उठहि, सपति रँग सिरि पास ।
रज्जब परख पारस्यू मस्तग मोटे भास ॥९॥
सिष्टि विष्टि आवै नहीं परम ज्ञान परगास ।
ज्यूं रज्जब रवि के उदै तम सारे गुन नास ॥१०॥
मिरमल ज्ञान उदै भये नर नारी हित माहि ।
रज्जब रत रंकार सौं मिल न माया माहि ॥११॥
ज्ञान गुमानहि काढि दे काम क्रोध का कास ।
रज्जब काटै सकल गुण आतम करै निसास ॥१२॥
रज्जब गंगा ज्ञान की क्रम रेती मरुवाइ ।
पाप पहाड़ी फोड़ती हरि समुद कौं जाइ ॥१३॥
ज्ञान वाइ संग उडि गये करम कपूर अपार ।
रज्जब जिव हलुका भया उतरया अमित सु भार ॥१४॥
सक्ति सलिल आकास तै आया केस मैं आइ ।
वस्त एक गुन तीन ह्वै भया कपूर कहाइ ॥१५॥

चौपई मुख फानूस रसन है बाती बहनी बैन जोत तहि राती ।
कायर कपट उजासु विचार चतुर मात दीपक व्यवहार ॥१६॥

## प्राण परीक्षा का अंग

ज्यू भामीं आदीत की करी मंद गति जोति ।
त्यू रज्जब आतम भई मिलि माया कै गोति ॥१॥
जा प्रानी माया मिले सो माया का रूप ।
रज्जब राता राम सौं सो नित तत्त अनूप ॥२॥
ईश्व अफीमहि दोइ गुन प्राणी एकै आधि ।
रज्जब गुण गति ह्वै गया मिलि तोयं सिलि साधि ॥३॥
मन चंचल माया मिले मिहिचल लागे नाई ।
जन रज्जब पाया परसि दरया दून्यू ठाइ ॥४॥
माया भगनि समंद हरि आतम बूद विचार ।
रज्जब रिघि पड़नौं पवन हरि संगि भाव मपार ॥५॥

मन मैला मंदिर सुलनि तब सम है अपराध ।
आतम मस्थमि आवतें निरमल सुरति सु साध ॥६॥

रज्जब बसुधा बिय बिझौ अबिगति ईस समान ।
देखौ गुण गति होत है जिव जल धा मधि सान ॥७॥

आदि पुरष माग्गीत सौं जिव जल आवै जोइ ।
रज्जब पैठे बपु बनी स्वाद सीर सनि होइ ॥८॥

तिमर उज्याला सुन्नि मैं जैसे मिल दिन होइ ।
त्यू आतमा अचेत चेतना रज्जब देखौ जोइ ॥९॥

पंच तत्त सौं मिसरत मामा छाणै बह्म समान ।
ओंकार जिव आतमा बंध मुकत गति जान ॥१०॥

देख्या सुष्मा सु बीज है, मनसा मही मंझार ।
रज्जब उन्मी नींद जल फूले फल अपार ॥११॥

स्वांगीर सुष्मा जामै मग्न सुन्दरि मावै पीत ।
रज्जब सूतूं दिन पड़े पीछ हूं बिपरीत ॥१२॥

रज्जब मन फूलै फलै सुणि सुणि सरगुण बात ।
निरगुण सुणतौ झड़ि पड़ै डाल फूल फल पात ॥१३॥

जहि घटि सरगुण बीज ह्वै तहि निरगुण न सुहाइ ।
रज्जब बरष्यूं बन बधै जोइ जवासा जाइ ॥१४॥

चौपई घरे अमर ह्वै बातें ठाणी जिन ज्यूं सुणी सो बठि बखाणी ।
रज्जब पसू मयगा जोइ देखौ बैठि उगालै सोइ ॥१५॥

साखी सतगुर सबद सु मीबुआ प्राण पटी तरिवारि ।
जन रज्जब कसि लीजिये मंगह्व अंग बिचारि ॥१६॥

रज्जब आभे मकति कै बैन बूद बुधिवंत ।
अंकूर उर्द आतम अवनि परिपर पोवै संत ॥१७॥

सांच माहि सतजुगि बसै कलिजुगि कपट मझारि ।
मनसा बाचा करमना रज्जब कही बिचारि ॥१८॥

जब लग भूख न नाव की तब लग रोगी जानि ।
जन रज्जब या जीव की यहु पारिख पहिचानि ॥१९॥

ज्यू अहमति मैं जीव को अन्न दस रुचै सु माहि ।
त्यू रज्जब रागी बुरा सतसंगति रुचि माहि ॥२०॥

नर नाराइन मार्ते मैं सुमिरन समये सास ।
भूलें भूति विभूति मैं, रज्जब किया बिनास ॥२१॥
किती बार माया मुक्त मर हरि नांव समाइ ।
रज्जब छूटी सेलकसि सम्धी मैं ह्वै जाइ ॥२२॥
रज्जब आप जिकरि करे तिती बार जिव जाग ।
सुमिरण भूल सांस जिहु तब सूता पल लाग ॥२३॥
नांव बिसारण नींद निज जप जागण जगदीस ।
मन वच क्रम रज्जब कहैं सेंपत बेद हुनीस ॥२४॥
रज्जब रैणी आव लग सुमिरण सागै सास ।
नींद न भूसा नांव हरि सो जाग्या निज दास ॥२५॥
नांव बिसारे नींद है यूह बैराग सुहाणि ।
रज्जब रटै सु रैण दिन सोई जाग्या जाणि ॥२६॥
सब सूते सुमिरण बिन जागे की कहै बात ।
रज्जब चोरै रन मैं के मुनिनै बरकात ॥२७॥
साधहि संकट ना दिया परख्या पूरा प्रान ।
ज्यू साव तौल मूलाबन लागा तरा रुपैया जान ॥२८॥

## गुपत गोपि जीव प्रगट परीक्षा का अंग

बारि बूं मधि मिसी परि मन सल रोमर छेद ।
मुकस न महिये नीर मैं प्यांड पूरण थम भेद ॥१॥
मंड मनोरथ बात बिहंग मारि निपूसिब निरति नर मंग ।
जैसे बीती मूठि न मही गोपि न जानी परगट रही ॥२॥
उदग मातमहु कौन छिपावै जैसे पान सुरनि सनेहु ।
रज्जब प्रगटप् मिरधी जाण तम दुरे त पेहु ॥३॥
परा जु प्राण्हु सो परै परसपसंती होइ ।
बीचि बिचारै मधिमा बोलि बैगरी सोइ ॥४॥

## मत परगास परीक्षा का अंग

दसौ द्वार दस सिर सुमत एक बात सब ठौर ।
जिव की उपजी जीव मैं बरनर बर्कै न मीर ॥१॥

उर उपज्यू अहरुप उदै समझौ साषी सेस ।
यूंही माया ब्रह्म रत सो कृत केसहि केस ॥२॥
पंचतार अंतरि चढ़ै षोलह सिर मिरदंग ।
सुरमंडल सुर बहुत हैं धामत एकहि अंग ॥३॥
सुरमंडल सु सरीर है सब रग तार सु साज ।
रज्जब राग सु एक ह्वै ओ आर्प सु निवाज ॥४॥
पगर पाणि पल्लव चलहि, जीव जिम्या एक राम ।
रज्जब निरखहु निरति मैं मुतिकारी का माग ॥५॥

## अपारिख का अंग

परख बिहूणा परखूंरै परम पदारथ मन ।
जन रज्जब रीते रहै त्यागि अमोलिक धन ॥१॥
बिन पारिख आर्प नहीं कंचन कांच समानि ।
रज्जब रोटी कौर तन मख सु साम न हानि ॥२॥
महंगी सौं सौंघी करी सौंधी महंगी होइ ।
रज्जब रोस न कीजिये पारख नाहीं कोइ ॥३॥
जे मग नाख्या मूरिखौ तौ कछु घटया न मोलि ।
तैसें रज्जब साध गति कहा सुने जग बोलि ॥४॥
पार्प उपर्प परख बिन लाटा खरा सुनाहि ।
जन रज्जब ऐसें बणिज हाणि हुई घर माहि ॥५॥
लाटा खरा न जाणिये पारख नाहीं माहि ।
ज्यूं सुपिनै संपति बिपति उभै सत्य सो नाहि ॥६॥
बया कहुणा सुणि बीर सिमै भोले भूमि सुभाय ।
रज्जब बूड़ परख बिन देखी देगल साय ॥७॥
प्राण पवन ह्वै परस बिन करै अजीत अजीत ।
रज्जब दुख दे सकल कौं मिर्ण न संत असंत ॥८॥
मूरख हृदय हंस हति परतीरति हुली न जाइ ।
त्यू रज्जब साधू सुजस रहया सकल जग छाइ ॥९॥
बनक धाम हनि सैस मुन कीजै कहा बगाम ।
मिमरि न उतरया मोम तन पडया न अरमि पषान ॥१०॥

परख विना प्राणी दुखी ज्यू अंधा बिन नैन ।
रज्जब धक्के दसौं दिसि पगि पगि नाहीं चैन ॥११॥

ज्यू गोरख गोदावरी पुरषौं परख्या नाहि ।
मन रज्जब जामे बिना कोण हुई उस माहि ॥१२॥

तन मन सुर गुर गोध्यंदा पायू पायें माहि ।
रज्जब जिव न्यारा निकट पारिख नाहीं माहि ॥१३॥

कौड़ी कोई बहुत म पावैं मे मुहरूमैं बैठी ।
मुहर न उतरी मोल सों वे कौड़्यू माहै पैठी ॥१४॥

जात्यंध न जाने रंग को कोटि भांति समझाइ ।
काला पीला ऊजला उनि देख्या नहि आइ ॥१५॥

रज्जब जाणै रंग की जु दरसि हुआ है अंध ।
पै सा बूझै क्या मरण की जो जनम्या जात्यंध ॥१६॥

पहुप पगौं तलि बांधिये मार्थे महंदी मेल ।
रज्जब यहु गति जीव की बिन पारख का खेल ॥१७॥

सद हरि हृद नर सीस परि, पहुप बिराजे वास ।
सो कैसे पग बांधिये रज्जब परम सुवास ॥१८॥

जलचर जामै जलभरा तिस देख्या जल माहिं ।
ऐसे रज्जब साध गति मूरख समझै नाहिं ॥१९॥

प्रतिब्यंब ब्याइ सूरिज परि साधू सलिल सकति के माहि ।
रज्जब बंधे मु जाल जलचर त्यू गहिये ते नाहि ॥२०॥

नर पंषी पंषी कहै साधू सूरिज जोइ ।
तौ रज्जब तिस भाण मैं पसी की गति कोइ ॥२१॥

साध सबद प्रतिब्यंब सभि सूनौ सुधि न सूझ ।
अकलि अकास अभ्यासही कैव मारि जहं सूझ ॥२२॥

परख बिना पाषाण कौं पूज पामर प्रान ।
रज्जब खोटा माहि सौ सो उर अंध अजान ॥२३॥

दिष्टि बिना गोबिंद दस परख बिना पति कोढ़ि ।
बिन बागे जारहि भजै रज्जब मोटी खोड़ि ॥२४॥

## अज्ञान कसौटी का अंग

अति गति आतुर देखिये नांव विमुख बहु दौर ।
रज्जब भरम्या चाक ज्यूं अंत वार की ठौर ॥१॥

रज्जब दौरै नांव बिन चल्यूं चल्या सो नाहिं ।
मनसा वाचा करमना रह्या भुवन गति माहिं ॥२॥

नांव निरंजन छाड़ि कर गहै कसौटी रूप ।
जन रज्जब अहनिस चलै अंसि रहट बिधि कूप ॥३॥

महुतै चलैं विचारि विन ज्यू घाणी का बैल ।
जन रज्जब चारयू पहरि कटी कोस नहिं गैल ॥४॥

कोट कष्ट केवल सुजस नांव सुधा रस नीर ।
हंस अंस से सीर का समझि करहु सो सीर ॥५॥

अज्ञान कष्ट सब सक्ति मैं स्यो सेवा हरि नांव ।
ज्यूं मृत भामनि राजघरि सुत संपति हूं ठांव ॥६॥

कूकस कष्ट अज्ञान मनि नांव नाज कण ऐन ।
रज्जब भाजन भजन बिन तुसहु सु तृपति न चैन ॥७॥

अज्ञान कष्ट खोजे मिले आतम अबसहिं आइ ।
पै रज्जब भजन भरतार बिन हरि सुत जाया न जाइ ॥८॥

षट करमी साधन करम क्रम गसिता नहिं होइ ।
रज्जब सहज समाधि बिन सीझ्या सुण्या न कोइ ॥९॥

हठि अज्ञान न हरि मिलै ज्ञान गलि सर्जे माहिं ।
रज्जब कही बिचारि करि समझे समसी माहिं ॥१०॥

गुर गोम्यंदर गऊ सग माइ भरामें जाहिं ।
रज्जब साधन संकटै सो न मिलै महिं माहिं ॥११॥

मर्मद न समिनौ पुहई सीप स्वाति दिसि जात ।
स्यूं सरीर माइ्यू निकस सुमिरन सुरति बरात ॥१२॥

पमू ध्याइ मूई सुरति चरि गया बेले संगि ।
चमक माब सरीर भवन घरि, फोड़ि सु निकस्या अंगि ॥१३॥

बसुधा बसई बाहिरै स्यामहिं काढ़ै माद ।
स्यूं तन तें सुमिरन निकसि मौर भूर मवनाद ॥१४॥

अज्ञान कष्ट सूने सबन, नहिं नरहरि निरताइ ।
नांव धाम बसता सदा सुमरण करै सहाइ ॥१५॥
सांई पैठा सांकड़ै सुमरण करी सहाय ।
रज्जब रत रंकार यूं विगह्यु न मंपी वाय ॥१६॥
रज्जब मेरा नांव का नरह्यु निर्बंध्या मूलि ।
साधिम करहिं सु और कछु मूह्यु पवे सु मूलि ॥१७॥
बीरज ब्रह्म विचार है, जोग जुगति प्रतिपाल ।
रज्जब थिर चंचल पवन नांव नीर बिन काल ॥१८॥
तन मारे मन ना मुवा देखो मूत मसाणि ।
अज्ञान कष्ट आतम सु यूं जन रज्जब पहिचाणि ॥१९॥
भूपौं मारि भुजंग तन लिया अनिल आहार ।
रज्जब जोगी इह जुगति बध्या सु विष अहंकार ॥२०॥

अरिल अज्ञान कष्ट कसि देह न मन कौ मारिहै
ज्यूं संकट मधि सरप विषहिं अधिकारि है ।
तैसे सठ हठ देखि न कबहूं कीजिये
रज्जब परखौ पान प्रचंड न पीजिये ॥२१॥

साखी प्यारसि रोजे बरत बंध कणि कणि तिनका कास ।
सो रज्जब क्यूं करहिंगे प्राणहु की प्रतिपास ॥२२॥
अतर तार तत पंच तनि रचि जंत्रक सुर भौन ।
रज्जब संत उमार करि, राग बजावै कौन ॥२३॥
बाइ बिना बोहित थकित त्यूं सुमिरण बिन सांस ।
रज्जब रचना राम की समझि बमेकी दास ॥२४॥
पवन प्यंड पारस गया गिरही घाटे बीर ।
चाकी चून न पीसिये रज्जब रोके नीर ॥२५॥
जम दम निगलै पवन सां बाहरि काढ़ै पौन ।
तौ रज्जब देहा पौन था प्रानी पधैं कौन ॥२६॥

चौरा गारख ज्ञान अनंत अपार माफ्त बिन क्यूं करहिं विचार ।
प्राण प्रमाधे बाई तोड़ि तिरति मरेग निनानवे पोढ़ि ॥२७॥

साखी मागी बाई मधिये जपा मसत मैं पौन ।
गुनहगार छूटे फिरें, कारिज सरै सु कौन ॥२८॥

बाई बंधहि वेगुनहि उलटि करै मिकटंग ।
गुनहगार छूटे फिरै यू सागै जम डंग ॥२९॥
रज्जब अविगति नाथ की मिलै न बाई बंध ।
कांटा पड़ै त मीच ह्व कै कुष्टी ह्वै अंध ॥३०॥
पौन साध प्राणी चढ़हि तो पपी परि पेलि ।
बाई बद विहंग की ब्योम न मिल्या मसेलि ॥३१॥
करी पवन की साधना मन मांझहु भरपूरि ।
रज्जब रीते राम बिन वस्त रही सो दूरि ॥३२॥
रज्जब भज्जब नाव तजि साधैं सुक्म सु सांस ।
परम तत्त पावै नहीं प्राणी आइ निरास ॥३३॥
साध न पूजै साधना साध कहै समझाइ ।
जनि रज्जब निज नांव बिन मर निरफल सो जाइ ॥३४॥
रज्जब पौन मौन क साधिबै सूमे की सींगोर ।
सास सबद संकट पडै नहीं ग्यान की कोर ॥३५॥
चंद सूर पाणी पवन धरती अरु आकास ।
रज्जब अस्थिर नाहिं कहु किन साध्या सांस ॥३६॥
सुमिरण जाकी सुरति मैं सा साधन सूमै नाहिं ।
परम तत्त मन मैं बस्या पंचहि न पंचौ माहिं ॥३७॥
सूक्म सास के बंध तै सुरति बंधी ता माहिं ।
ज्यूं रज्जब जल हेम करि मीत सु न्यारा नाहिं ॥३८॥
जीव प्रकार की मणी वस्त बूं न मन मन ।
सुरति सिमै नहि दाइ सिर रज्जब समझ समक ॥३९॥
अनभ भइ बाणे उतम अम्क भेद स्यूं मग्न ।
रज्जब रहै सु ग्यान गुर, अनिल न भटकहि जग्न ॥४०॥
रज्जब आतार के आसिरे तन मन पंचौ तत्त ।
ताके पाऊ मबद मैं आदि अंति यहु मत्त ॥४१॥
रज्जब प्रथम पंच का पेट है ओंकार सो आदि ।
अजो सु मीम गुर मबद पौन साधिये बादि ॥४२॥
मक्म पसारा सबद का रहै सबद ही माहिं ।
जन रज्जब इस पेख बिन मन मम बंधन नाहिं ॥४३॥

मोंकार आतम सबद कथा नीलि निरखरति ।
रज्जब पंचौ पीठि दे पहुत जीव परवरति ॥४४॥
रज्जब अटकै पंच मैं सो परवरती ज्ञान ।
निरवरती न्यारा करै ले जाइ सुन्नि अस्थान ॥४५॥
बप बाई बस जीव कै आये न अब ये जाहिं ।
तौ रज्जब तजि भजन कौ उलझि न साधन माहिं ॥४६॥
बप बाई बस जीव कै बंध न सुलसी मूल ।
तौ रज्जब छिति आव कै साधन करै सु भूल ॥४७॥
आशा वसि याई बहै ब्रह्मंड प्यंड के पौन ।
रज्जब राख राम बब तद सु चलावै कौन ॥४८॥
सुन्नि रूप सिव मैं जुट्या पवन रूप गुरदेव ।
यहु गोपि गाठि दे खोलिवा मूत न जानै भेव ॥४९॥
रज्जब मारुत रोकिया अग्र परपंच उपाइ ।
बाबा खोलै याइ बप तब सु न बंधी जाइ ॥५०॥
नाद न छोड़ माभि कौं ब्यंद सकल बप माहिं ।
कौन चढ़ावै कहां कौ सु रज्जब समझै नाहिं ॥५१॥
नाद ब्यंद नख सख भरया ज्यूं काष्ठ मैं आगि ।
कौन चढ़ावै कहां कौ सोध्या सीसर पागि ॥५२॥
मन्न बीज मस्तग रहै कहै न ठाहर और ।
तौ रज्जब मुत अंग पै स्यू निपजै सब ठौर ॥५३॥
बीरज बीबा चित्र का अरमग्र अंबर भांति ।
रज्जब उनमैं नकस है प्रगट सोई कांनि ॥५४॥
जिस माड़ी मैं बस्त है तिस माड़ी मैं माहिं ।
रोम रोम मैं रमि रह्या रज्जब नख सख माहिं ॥५५॥
परमेहस सु सरीर यहु रज्जब रस सब तार ।
उभै राग मैं एक है माया ब्रह्म बिचार ॥५६॥
काया तरवर नीम का जिव जल जुगति सु माहिं ।
रज्जब रस हास्यू करप निरमम मीठ नाहिं ॥५७॥
बप बसुधा बनराइ ते आतम अंम निराम ।
रज्जब सुमिरण सूर सौं स्वाद रूप बिन नाम ॥५८॥

सरवर सूं सूके कमम उमधि न भौंरा मम्र ।
साधन परै बसाइया मांव निरंतर मग्न ॥५९॥
नाडी चक्र सु प्यंड मैं प्राण मध्य महिं सोधि ।
रज्जब आगा जिव परै यहु गति उत्तिम बोधि ॥६०॥
बार वेह मैं चक्र रग पावकि प्राण सु नाहिं ।
रज्जब रहति न ऊपरै साधू सुरति सु बाहि ॥६१॥
चक्रहु चित अटकै नहीं बोधि सहित घट स्थान ।
रज्जब रज हो आयंगे मन उनमन लै सान ॥६२॥
आंख्यू अंजन बाहिया सतगुर सोधि विचार ।
भरम न म्यासी साधना सूझ्या नांव अधार ॥६३॥
बोधे मुनि मुनि छाड़ि करि सोधै नाड़ी चक्र ।
रज्जब भूले नांव निधि टसतौं खाई टक्र ॥६४॥
चक्र भंवर जिव जल पड़हि वेही ससिता बान ।
रज्जब उभै न म्यासही पैठै मननि सुभान ॥६५॥
काया कोठे बवस रग चक्र सोध मन मान ।
रज्जब रहसी भमू तहां जहां नये अरथान ॥६६॥
नाड़ी चक्र न सास मन ब्रह्मंड प्यंड नहीं ठौर ।
जन रज्जब जुगि जुगि रहै सो ठाहर कोइ और ॥६७॥

चौपई अहनिसि मन उनमन मैं राखी नाडी चक्र साधि सुनि नाखी ।
साध मेर सुमिरन कहै सारा रज्जब रटै सु उतरै पारा ॥६८॥

साखी साधन मूनी साधना आतम है मन आस ।
जन रज्जब ता जीव के नाह नहीं बेसास ॥६९॥
निहचा नाहीं मांव परि जे कष्ट आवरहि और ।
सूना साधन मैं परधा सहै न ठावी ठौर ॥७०॥
दही देसी मैं पड़या करम कुसपण बास ।
मांव नाज नर घर नही प्राणहु की प्रतिपास ॥७१॥
कपट कसौटी ठग विद्या आपै भरी उपाधि ।
मायर मूरा मूम ठग भ्रमि भ्रमि कामा साधि ॥७२॥
ज्ञान कसौटी कोटि विधि काया कसहि अनक ।
रज्जब निपजै साध मन सोइ समझै कोइ येक ॥७३॥

## परम सिद्धान्त का अंग

महरि बौरि माकार के मोश्रन भवन ब्रहार ।
पुष्टि पीति पगि पति लगे तामैं फेर न सार ॥१॥
रज्जब सम पतिंग पति नख सख पीड़ा प्रान ।
तौ सुमिरण की सांइया समझे क्यूं न सुजान ॥२॥
आतम कमल कमोदनी ससि सूरिज करतार ।
बिच बादलौं सु मा यध्र प्रीति पीतमहु पार ॥३॥
सप्त खंड मधि सुनि एक त्यूं ब्रह्मंड इकीस ।
नंडो खंड सुन्नि के रज्जब बिसवा बीस ॥४॥
जब लग जिव देखे नहीं चेतनि ब्रह्म वदन ।
तौ रज्जब क्या कीजिये सूने सुन्नि सदन ॥५॥
तसी हथेली केस घर, सूने सन्न अपार ।
बिलोकि वास देखैं सु किन त्यू महु सुन्नि बिचार ॥६॥
रज्जब करता कुंज कौ असम ससग भये अंड ।
तौ संत सुरति साईं बिना अटके किस ब्रह्मंड ॥७॥
सुनि सरीर न सुरति मैं पंच तत्त सौं पीठि ।
लोकहु अवलोक नहीं परम तत्त पर दीठि ॥८॥

## उपदेस चेतावणी का अंग

रज्जब कीजै बन्गी जती जिव सौं होइ ।
सो साहिब सौंपी नहीं तासौं वस माहि काइ ॥१॥
मनिषा देही दिन उदै जन रज्जब भजि तात ।
चौरासी लख जीव की देही दीरघ रात ॥२॥
जिन ऊपर बानी पड़ी नर नारायण दहि ।
जन रज्जब जगदीस भजि जनम सुफल करि लेहि ॥३॥
रे प्राणी पासा पड़्या मनिषा देही माहिं ।
जन रज्जब जगदीस भजि यहु औसर भी नाहिं ॥४॥
आदम सेती औलिया नर नाराइन होइ ।
मुकति द्वार मनिषा जनम रज्जब बादि न गोइ ॥५॥

रज्जब इस औजूद मैं सैर सुगम है सौख ।
सब सूरति सुविहांन की छहां नहीं यहु जौख ॥२१॥

रज्जब इस औजूद मैं इस्क अलम मामूर ।
आसिक सौं असनाव है फासिक सौं सब दूर ॥२२॥

रज्जब रीता तू नहीं गुर गोम्यद सु माहि ।
भखे अभै भंडार कौं काहे बिलसै नाहि ॥२३॥

मनिष देह माया बरम्ह मे कोइ लेइ कमाइ ।
यहु वेश्या उपदेस यहु आगे कह्या न जाइ ॥२४॥

बिरचै बसुधा वह्नि तै मुकति मद्धि परवस ।
यहु वध्या दूतर तिरण यहु उत्तिम उपदेस ॥२५॥

तन धन स्याया जनम सैं मरत गया सो खोइ ।
सुकृत मात्र न मधि किया जो आगै कू होइ ॥२६॥

प्राण पाणि पूंजी सु प्यंड मूलि सु मनिषा देहि ।
रज्जब सौदा राम सौं इह औसर करि लेहि ॥२७॥

आदम नेह अलभ्य धन पाई पूरब भागि ।
तौ रज्जब भगवंत भजि हरि सुमिरण लै लागि ॥२८॥

रज्जब रतनहु सो भरी मानहु मनिषा नेह ।
रे नर निरभन होइगा चौरासी के गेह ॥२९॥

चौपई मनिषा जनम राम बिन हारा मानहु पारस पीसि पहम परि डारा ।
सेवा सोना तिनहु न हाइ, या समि हाथि नहीं कलि कोइ ॥३०॥

हीरालाल मिनष तन देहा पिसण पीस करि डारै खेहा ।
वह माटी गाही बहि मोला रज्जब चेतन देखै मोला ॥३१॥

कामधेनु कलपतर जाना मनिषा देही माहि समाना ।
सब स्याबति समही सब पावै रज्जब विमसे सौ न सचावै ॥३२॥

साखी पारस पोरस कलपतर कामोधन कहात ।
मनिष देह माधौ मिलति सु महिमा कही न जात ॥३३॥

मनिष देह माया मई परचा अमर बिच धाम ।
इह छूटयु छूटै उभै समझै समझे जाम ॥३४॥

काया कागद पर लिखा ब्रह्म बिलाइत माहि ।
रज्जब प्यंड पटै पढ्य दरसि दिसावर नाहि ॥३५॥

हाथि न मनिषा देह धमि जब जिव कम सौं थाइ ।
भजन विमुख भंजन मिलहिं, चौरासी निरताइ ॥३६॥

दलिद्र दिवाला जिव अनंत मनिषा देही खात ।
चौरासी भ्रामण मरण बहु दिसि चोटै खात ॥३७॥

रज्जब अज्जब साज यहु अज्जब सेती माइ ।
मनिष देह यहु मोख महानिधि नर देखौ निरताइ ॥३८॥

तन मन स्थावर जीव की सकति न सकता कोइ ।
जिसकी तिसकौं दीजिये तौ पल्ला स्यावति होइ ॥३९॥

मनिष देह मेहरी तज्या काइर जिव निरताइ ।
साम काम आया नहीं धून मिलो तोहि आइ ॥४०॥

रज्जब तजि ब्रह्माण्ड को प्यंडहि दीज पीठि ।
मन मनसा सौं काढ़ि करि आमे धरिये दीठि ॥४१॥

रज्जब छांडहु स्वाद सुख तन की यारी त्यागि ।
मनहि मनोरथ मेटि करि परमपुरिय सौं लागि ॥४२॥

रज्जब विरचहु रूप रंग रचहु न सप्प सरीर ।
मन की मेटहु कामना पहुचौ पैली तीर ॥४३॥

रज्जब त्यागहु त्रिगुण यू तिहू ठौर सौं सोधि ।
माया काया मनसपमा निकसै प्राण प्रमोधि ॥४४॥

तन तै त्यागहु निगुनता मनहु मनोरथ मेटि ।
रज्जब जिव व्रत छाड़ि करि परमपुरिष कौं भेटि ॥४५॥

ब्रह्माण्ड प्यण्ड मन मांडतैं कठिण सुरति के जम्म ।
आतम परे मसाह है भेमि तहां नहीं जम्म ॥४६॥

ब्रह्माण्ड प्यण्ड उसकी नहीं रहै न मूथिम देस ।
रज्जब नर निरगुण भया निरगुण मैं परबेस ॥४७॥

जब निज वपि बाई दई, तब रिधि रसनहि मीठ ।
जन रज्जब मन क्रम वचन प्राणी परतपि दीठ ॥४८॥

पड़द विधि पड़दा करै, तिसहि न पड़दा कोइ ।
जन रज्जब जगदीस का दरसण देखै सोइ ॥४९॥

हरि सिधी हरणा करै सोइ प्राण परसिधि ।
रज्जब मुकता नीपजै जे सीप रहति जलनिधि ॥५०॥

रज्जब इस औजूद मैं सैर सुगस है सौक ।
सब सूरति सुखिहांन की सहां नहीं यहु जौक ॥२१॥

रज्जब इस औजूद मैं इस्क असम मासूर ।
आसिक सौं असनाव है, फासिक सौं सब दूर ॥२२॥

रज्जब रीता सू नहीं गुर गोब्यंद सु माहिं ।
भले भभे भडार कौं काहे बिलसै माहिं ॥२३॥

मनिष देह माया बरम्ह, बे कोइ लेइ कमाइ ।
यहु देस्या उपदेस यहु आगे कह्या न जाइ ॥२४॥

विरचै बसुधा बहि ते मुकति मधि परवेस ।
यहु वध्या दूतर तिरण यहु उत्तिम उपदेस ॥२५॥

तन मन ल्याया अनम तैं गरत गया सो खोइ ।
सुकृत माल न मषि किया जो आगें कूं होइ ॥२६॥

प्राण पाणि पूंजी सु प्यंड मूलि सु मनिषा देहि ।
रज्जब सौदा राम सौ इहु औसर करि लेहि ॥२७॥

मानम देह अमम्य धन पाई पूरब भागि ।
सौ रज्जब भगवंत भजि हरि सुमिरण लै लागि ॥२८॥

रज्जब रतनहु सो भरी मानहु मनिषा देह ।
रे नर निरधन होइगा चौरासी के गेह ॥२९॥

चौपई मनिषा अनम राम बिम हारा मानहु पारस पीसि पहम परि डारा ।
ऐसा साना तिनहु न होइ या समि हाणि नही कसि कोइ ॥३ ॥

हीरालाम मिनष तन देहा पिसम पीस करि डारै खेहा ।
वह माटी माहीं बहि मोमा रज्जब चेतन चेलै मामा ॥३१॥

कामधेनु कलपतर ल्याना मनिषा देही माहि समामा ।
सब स्यावति सबही सब पावै रज्जब बिमसे सौ न लखावै ॥३२॥

साखी पारस पोरस कलपतर कामधेन कहात ।
मनिष देह माधौ मिलति सु महिमा कही न जात ॥३३॥

मनिष देह माया मई परचा अबर बिच मध्य ।
इह छूंग्यू छूटै उभै समझे समझै अध ॥३४॥

काया कागद पर लिखे ब्रह्म बिसाइन माहिं ।
रज्जब प्यंड पटै पत्र बरसि दिसावर माहिं ॥३५॥

हाथि न मनिषा देह समि, अब जिव कन सौं आइ ।
भजन विमुख भंजन मिलहिं, चौरासी निरताइ ॥३६॥
वसिष्ठ दिवासा जिव अनंत मनिषा देही जात ।
चौरासी भ्रामण मरण बहु विसि चोटैं खात ॥३७॥
रज्जब अज्जब साज यहु अज्जब सेती लाइ ।
मनिष देह यहु मौज महानिधि नर देखौ निरताइ ॥३८॥
तन मन स्थावर जीव की सकति न सकता कोइ ।
जिसकी जिसकौं दीजिये तौ पल्ला स्यावति होइ ॥३९॥
मनिष देह मेहरी तज्या काइर जिव निरताइ ।
साम काम आया नहीं द्रुम मिलौ तौहिं आइ ॥४०॥
रज्जब तजि ब्रह्माण्ड कौ प्यंडहि दीजै पीठि ।
मन मनसा सौं काढ़ि करि, आगे धरिये दीठि ॥४१॥
रज्जब छांड़हु स्वाद सुख तन की यारी त्यागि ।
मनहि मनोरथ मेटि करि परमपुरिष सौं लागि ॥४२॥
रज्जब विरचहु रूप रंग रचहु न वप्प सरीर ।
मन की मेटहु कामना पहुचौ पैली तीर ॥४३॥
रज्जब त्यागहु त्रिगुण भू तिहू ठौर सौं सोधि ।
माया काया कलपना निकसै प्राण प्रमोधि ॥४४॥
तन तैं त्यागहु त्रिगुनता मनहु मनोरथ मेटि ।
रज्जब जिव वन छांड़ि करि, परमपुरिष कौं भेटि ॥४५॥
ब्रह्माण्ड प्यण्ड मन मांहतैं कठिण सुरति के खम्भ ।
आतम परै अथाह है मेलि तहां नहीं अम्भ ॥४६॥
ब्रह्माण्ड प्यण्ड उलंघे नही रहै न भूमिम देस ।
रज्जब नर निरगुण भया निरगुण मैं परवेस ॥४७॥
जब जिव वपि वाई वई तब रिझि रसमहि मीठ ।
जन रज्जब मन कर्म बचन प्राणी परतपि दीठ ॥४८॥
पड़दे विधि पड़दा करै तिसहि न पड़दा कोइ ।
जन रज्जब जगदीस का दरसण देखै सोइ ॥४९॥
हरि सिउँ हरमा करै, सोइ प्राण परसिधि ।
रज्जब मुकता मीपजै जे सीप रहति अमनिधि ॥५०॥

ब्रह्मण्ड प्यण्ड टलि मीकसै मन इंद्री तजि जाइ।
तौ रज्जब ता जीव कौ आगे मिलै खुदाइ ॥५१॥

प्यण्ड प्राण आगे धरैं भाव सु पाव अगम।
रज्जब सुरति समाइ सुख जहां न औरा भ्रम ॥५२॥

ब्रह्मण्ड प्यण्ड प्राणी तजहु अगम अगोचर खेल।
रज्जब वैठैं सुन्नि घर सुरति सु साँई मेल ॥५३॥

वप सौं विरक्त होत ही तब त्यागे ब्रह्मण्ड।
रज्जब इसहिं उलंघते साखी माया मण्ड ॥५४॥

तन त्याग परकिरति तजि मनहु मनोरथ मेटि।
रज्जब जीवन जीव बुधि आगै अविगति भेटि ॥५५॥

तन मन आतम सौं अगम सेवा सुरति सु जाइ।
भगति बंदगी करि तहीं सुख मैं रहै समाइ ॥५६॥

संसार सरीर सुविस तजौं चौथे त्यागे जीव।
चतुर थान तजि आगे रमई, सुरति सु पावै पीव ॥५७॥

तन मन इंद्रय उग्र है, आतम आगे जाइ।
जन रज्जब सोई सुरति सुख मैं रहै समाइ ॥५८॥

मिलै नहीं मंझाण सौं तन मन न्यारा होइ।
जन रज्जब इस पेच कौ बूझै बिरला कोइ ॥५९॥

ब्रह्मण्ड प्यण्ड न्यारा रहै पच तत्त सौं पीठि।
रज्जब पाया पंच प्राण मैं परम तत्त परि दीठि ॥६ ॥

रज्जब हस्ती मन चढ़ो चलौ प्रभु दरबार।
मुजरै ढील न कीजिये समया समझि बिचार ॥६१॥

रज्जब दिन क तखत सौं और उतारौ आन।
मनसा बाचा करमना क्या बैठै दीवान ॥६२॥

एक न पावै एक बिन तू हूं रहा अनेक।
जग त्याग्यू जगपति मिलै रज्जब समझि बमेक ॥६३॥

अनेकौं एकै कही देख्या बारंबार।
रज्जब चाहै सचिध बर, तौ सबही तसकार ॥६४॥

एकहि मिल सु एक हूं तू मिलि सातहु सात।
भजौ पंच है छाणि दे ज्यूं रस भाव बात ॥६५॥

यह ब्रह्माण्डी दोष दे वदी सौं करै राग ।
यह तन तजै म विन कुटी सा आतम घड़ भाग ॥६६॥
निकसै काया काठ सौं बंदे बादल होइ ।
रज्जब पाया तौ तिनहु सुमि सुधा रस सोइ ॥६७॥
रज्जब रचिये राम सौं तौ तजिये संसार ।
देखौ तरु फल ना लहै, बिना भये पतझार ॥६८॥
जगत जिमी जनकन उदै उनमैं इनकी बोधि ।
मन रज्जब सीसण सम कुलि काढ़िये सु सोधि ॥६९॥
रज्जब तन मन माहि कै तजि कुसंग भजि राम ।
यहु दष्या उपदस यहु सरै सु आतम काम ॥७०॥
रज्जब अज्जब यहु मता तजि विषया भजि राम ।
यहु दष्या उपदेस यहु सरै सु आतम काम ॥७१॥
रज्जब निरखिपि सुरति करि सांई सनमुख राखि ।
सीसण म ससा नहीं सतगुर साधू साखि ॥७२॥
धंब अवनि आकास तैं निकस्यू करै सु कास ।
यू आतम अस्थूल नीकसी सब प्राणिहु प्रतिपास ॥७३॥
यं दूर्यू तत माहि मरहि जब रज्जब परतपि कास ।
आतम अमृतन तिनके निकसै तबहीं होइ सुकाल ॥७४॥
सरीर सैल अरु समंद तलि जीव भात नग संग ।
काढ़ि कै करि धनपती नहीं त वासिद संग ॥७५॥
व्योम विरच अहूरनि असम आतम अगनि अपार ।
रज्जब पंथनि प्रगटै पावक तबही ह्वै उजियार ॥७६॥
पट बड़ियास झालरि मुरगे संत सबद सहनाइ ।
पट बाजे पट दरसनहु पति परभात बताइ ॥७७॥
पैडी पंथ तीनि परि पड़ी सपतें अष्ट सिवाण ।
रज्जब चढ़ै सु कोटि मैं ऊंचा अगम दिवाण ॥७८॥
जन रज्जब पंथौ भजा चढ़ै सुमेर सिरि बसि ।
सिध साधक देख सबै कोई साधू आया रषि ॥७९॥
तन मन ऊपरि अमल करि, बैरी पंचम जाइ ।
रज्जब सकति सुमेर सिरि, नाव निसान बजाइ ॥८०॥

रज्जब संत गुर हैंस तैं सबद सिला आवत ।
मन समुंद सिरि पाज करि रोस राव नहिं हंत ॥८१॥
सबद सिला रंकार बटि मन समुंद सिरि पाज ।
रज्जब रावन रोस हति काया कंचनि राज ॥८२॥
आतम रथ है राम कौ आतम का रथ देह ।
मे रथ देखहु सागवी परम सयानप येह ॥८३॥
जैसी संसति सकति सौं तैसी स्यो सौं होइ ।
तौ रज्जब रामहिं मिलै, कव न दीसहिं दोइ ॥८४॥
जैसें मन माया मिलै जीव ब्रह्म यू मेल ।
रज्जब बहुरि न पाइये महु औसर यौं खेल ॥८५॥
रज्जब मनर मनोरथौं मेला अचल अभंग ।
ऐसे आतम राम हित सदा सु सांई संग ॥८६॥
रज्जब आभे अंग का देखौ सुमि सनेह ।
एस आतम राम सौं सिप्या देख्या येह ॥८७॥
ज्यू जस दम सौं जीव का मति गति स्वंत्राचार ।
त्यू रज्जब करि राम सौं सिरै सीप निज सार ॥८८॥
ज्यूं कामी काममि भर्ज त्यूं नहिं कामी राम ।
मनबंछत फल नीपजे जन रज्जब इह धाम ॥८९॥
मन पवन ससि सूर कौ राहु केत हूं लाग ।
रज्जब पकड़ न पेच महु सुमि लै सीप समाग ॥९०॥
रज्जब राहुर केत ह्वं रबि राकेसहिं लाग ।
आतम उडग मु उपहै, मस्तगि आया भाग ॥९१॥
रज्जब चमिय राह जस जेहिं पथ पहूचै साथ ।
निज मत मन उठि गगनि करि जे है बुधि अगाध ॥९२॥
रज्जब रीझ्या ठौर कहि महा जगत की मीच ।
चति बिर्माण चामहिं महा बैठि रहा क्यू मीच ॥९३॥
मरणा मुहु आमै गढा बूडे कौ तब सेग ।
अब तासौं कहु क्या कहै रे आपा कछू देग ॥९४॥
काया कम जम सौं भरया ग्यान तेल भरपूरि ।
मारग बाती सबद उग्यासा अधन तिमिर ह्वं दूरि ॥९५॥

दसौ दिसा मन फेर करि, जहां उठै तहां राखि ।
जन रज्जब जगपति मिलै, सतगुर साधू साखि ॥९६॥
जहि चाहगी सौ मन उठ तहां जसत करि बंधि ।
रज्जब रहिये राम सौं मन उनमनि लै संधि ॥९७॥
जैसे छाया कूप की फिरि करि निकस नांहि ।
जन रज्जब यूं राखिये मन मनसा हरि मांहि ॥९८॥
रज्जब सद सुणि सीखिया जे मन राख्या ठौर ।
मन वच क्रम सीख्या सही जे उर उठै न और ॥९९॥
मनसा चकमक चिनग ज्यूं उठत बुझाये सुख ।
जन रज्जब प्रगटयूं छिपै बहुत दिखावै दुख ॥१००॥
पावक यहि प्रचंड है बरी बन बप माहि ।
सो रज्जब सूते भले जाग कुसल सु नांहि ॥१०१॥
सुमिरन करै सबहि मन तनहि न सरकण देहि ।
रज्जब भज्जन काम यहु जनम सुफल करि लेहि ॥१०२॥

चौपई श्रवन नैन नासिक कर पाइ पंच सुण मन एक समाइ ।
मिलि चलणें का होइ सनेह तो इहै सीख इनहू कन लेइ ॥१०३॥

साखी अन्धौ कन उपदेस ले पंथि पीव कै आव ।
रज्जब डग मग सोधि करि पीछे धरै सु पाव ॥१०४॥
साध सबूरी स्वान की लीजै करि सु बमेक ।
वह घरि बैठा एक कै तू घरि घरि फिरहि अनेक ॥१०५॥
स्वान सबूरी मति भली आतम घरि मझधार ।
मनिषा तजि मालिक महेस मांगै मुक्ति अपार ॥१ ६॥
रज्जब अहि अहरयूं उभै देखो दे उपदेस ।
सो मति गति मांहि करि करो गुर ग्रह सिष परवेस ॥१ ७॥

चौपई देख्या मुह मुहडे की मार, रज्जब दुमुही सरप विचार ।
स्यूं सतगुर सत एक सरीर पै चलनि जहि थ्योरा बहु बीर ॥१०८॥

बैत मुरीद मुरदा पीरग साल । गुफतम बुजुरग भजब मिसाल ॥१०९॥

साखी रज्जब काढ़ो मुख्य सत पीव प्राण प्रवीन ।
दह औषदि आरोग है मल सल रोम सुभीन ॥११ ॥

अजमो बानी रसन रटि मैमो निज अंग सोध ।
मास मास हरि पद कमल रज्जब निज परमोध ॥१११॥

चौपाई सावुन सुमिरण जल सत संग सुकल कृत करि निरमल अंग ।
रज्जब रज उतरै इह रूप आतम अंबर होइ अनूप ॥११२॥

साखी अघ सागर अमीत अंभ मैं आतम अंबर मीन ।
सो सुकाइ सविता सुमिरण सौं पापी पाप सु छीन ॥११३॥

प्राण प्यंड तत पंच का मन मनसा मल धोइ ।
गाब नीर जल ग्यान कै गृह सब पावन होइ ॥११४॥

पहलै तन करि बंदगी पीछै मन गहि मूल ।
रज्जब गोबी राम सूं जैसे सूरिजफूल ॥११५॥

सपत समंदौं जो तिरै सो तेरू संसार ।
रज्जब मज्जब काम यहु प्राण पुरिस ह्वै पार ॥११६॥

रज्जब को अज्जब कह्या मेरे माइ सु लागि ।
सकल पसारा झूठ है मन बच क्रम तजि भागि ॥११७॥

रज्जब मज्जब यहु मता सब तजि भजिये राम ।
मनसा बाचा करमना इह काया यहु काम ॥११८॥

रज्जब रसना राम कहि गहि निरंतर नाव ।
औसाण लगावहु सांइयहि छांडि देहु बकवाद ॥११९॥

रज्जब मज्जब यहु मता तजि बिषया भजि राम ।
सिध साधक संसार मैं सब सीझे यहि काम ॥१२०॥

रज्जब रटिये रैन दिन राम नाम इक तार ।
फिर पीछे पछिताहुगे यहु औसर यहु बार ॥१२१॥

रज्जब मज्जब काम है, सिर सांई कौ देहु ।
मनिया जनम सु मौज निज बहुरि न औसर येहु ॥१२२॥

इहि औसर औसाण यहु सत ब्रत सुमिरण होइ ।
सा रज्जब जुगि जुगि सुखी ता समि और न कोइ ॥१२३॥

मन के जीते जीति है अद कै हारे हार ।
तौ रज्जब रामै भजौ अलप आव दिन चार ॥१२४॥

अलप आव बहु बिघन बिधि अति गति आहमक मन्न ।
रज्जब अज्जब समै मैं करै न सुकृत पन्न ॥१२५॥

आदम के सिर करि धरया अवगति करणा यादि ।
इस माया यहु काम की नहीं त निरफल यादि ॥१२६॥
रज्जब सेवहु रैन दिन कीजै सौवहू भाहि ।
राम बिसारण रोग कौं ओषदि येही आहि ॥१२७॥
राम बिसारण रोग जिव ओषदि करणा यादि ।
रज्जब यद वसाइ दी वेधिर दीज्यो दादि ॥१२८॥
खुदरति देखि खुदाय की खालिक कीये यादि ।
सांस सबद लागे अरथ जनम न आई बादि ॥१२९॥
रज्जब अज्जब अकलि यहु साहिब कीजै यादि ।
सो साइयांहि बिसारतौं विविध बुद्धि सो बादि ॥१३०॥
माया तजि ब्रह्महि भजै ऐसे कौ सब ज्ञान ।
रज्जब मूरिख चतुर ह्वै मन उनमन लै सान ॥१३१॥
मन बच क्रम तिरगुण ह्वै माया तजि भजि राम ।
जन रज्जब संसार मैं ऐसा ही है काम ॥१३२॥
रज्जब भजिये राम कौ तजिये कामर क्रोध ।
निरमल कौं निरमल मिलै यों ही निज परमोध ॥१३३॥
ओषदि अवगति नांव ले पथ्य परिहरै बिकार ।
रज्जब रोगी इहि जुगति काटै रोग अपार ॥१३४॥
रज्जब भजिये राम कौ तजिये यहु संसार ।
एसी विधि कारिज सरै भेटै सिरजनहार ॥१३५॥
चित चेतनि ह्वै देखि मन मनिषा जनम न हार ।
जन रज्जब जगदीस भजि उलटा अगम विचार ॥१३६॥
कपट परद्दू सौं डार द नेकी निरमल साहि ।
रज्जब दुविधा दूर करि ह्राय हरी कौ बाहि ॥१३७॥
भांति भांति का गरब तजि गुरमुख होइ गरीब ।
रज्जब पावै पीर कौं निरमल नेन न सीव ॥१३८॥
सन त्रिभुवन मन मैं भरया सो काढ़े सब छाणि ।
रज्जब रागी राम तहं, काम किया तहि प्राणि ॥१३९॥
भजनै कौ भगवंत है तजणे कौ परलाति ।
करणे को उपगार कछु, इहि औसर इहि गाति ॥१४०॥

मनिषा देही माया सहस पाई पूरन भागि ।
तौ रज्जब गुर साध की सेवा दृढ़ करि लागि ॥१४१॥
सेवा कन सेवा सकति धरि आई गुर साध ।
समये सुकृत लेहु करि, जे है बुधि अगाध ॥१४२॥
रज्जब दौलत जीव की साँई सतगुर साध ।
इहै सीख सुणि सेइ सो जे है बुधि अगाध ॥१४३॥
हरि भजतौ तजतौ बिषै करतौ साधू सेव ।
रज्जब इह रह चाल तौ मानिष सौ होइ देव ॥१४४॥
गुर गोब्यदर साध की होहु चरन रज रैन ।
मन वच क्रम कारिज सरै, सुनि रज्जब निज बैन ॥१४५॥
रज्जब रज हो संत की जा मुख निकसै राम ।
साधू सेती मिल रही तो सरसे सब काम ॥१४६॥
रज्जब रहिये रजा मैं साधु सबद सिरि भार ।
मन बच क्रम कारज सरै कबे न आवै हार ॥१४७॥
दास दमामे देव के बाणी बिद सु होइ ।
रज्जब बाजे हरि हुकमि भूसि पड़े मति कोइ ॥१४८॥
मन उनमनि लागा रहै, माया मधि न जाइ ।
ब्रह्म अगनि मैं जारै बीजहि फिरि ऊगै महि आइ ॥१४९॥
रज्जब राखै सीख मनि हरि की भूलै नाहि ।
यहु दया उपदेस यहु साधू के मत माहि ॥१५०॥
राम कहहु संसार सौ बलप अराधौ मन्न ।
रे रज्जब संसार मैं और न ऐसा धन्न ॥१५१॥
बहु बिचार बिभूति बहु बहु सुन्दर सु कुलीन ।
रज्जब यहु मैं चूक यहु सुमिरण सुकृत हीन ॥१५२॥
बिभूति भूति बहु बिधि बध्या चकहु चककवै राम ।
मजम बिमुख बिधा सबै सा रज्जब केहि काम ॥१५३॥
बुधि बिचार बिभूति बहु है गे हेम अपार ।
मन रज्जब बेकाम सब जे भजै न सिरजनहार ॥१५४॥
रज्जब रिधि जिन को दई राम रहेम करि राम ।
पटा सहै परि पीठ वे मस्तगि बड़े अभाग ॥१५५॥

रज्जब उल्लू आदमी रारिमई रिधि जान ।
प्रगट प्रभाकर पुनि दिसि जे पलक न खोले प्रान ॥१५६॥
रोग रहित ममिपा जनम हरि सिद्धी घरि ठाट ।
तापरि राम न सुमिरिये सो रज्जब भूलि निराट ॥१५७॥
बिनाम सकल बाजी बिहुरि भोला देखि न भूल ।
बिष काजी गर सत्ति है, सो पकड़ी मन मूल ॥१५८॥
यहु ठग बाजी ठग्ग की ठग्या सकल ससार ।
त्यूं रज्जब देखहि सु जिन जे न ठगावणहार ॥१५९॥
रज्जब अज्जब काम यहु हरि सुमिरौ हित लाइ ।
उलझि न अलि मत्त आसिरै, जो दीसै सो जाइ ॥१६०॥
सब जग जाता देखिये रहतो कोई नाँहि ।
मन रज्जब जगदीस भजि समझि देखि मन माँहि ॥१६१॥
जल तरंग के जीवन गाफिल कहा गंवार ।
पीछे ही पछितावहुगे रज्जब राम संभार ॥१६२॥
प्रान पवन हू पलक में छिन माहै चलि जाइ ।
रज्जब सु समझि यू समझि बहिला वारि न लाइ ॥१६३॥
पाणी पानि न ठाहर प्राण प्यांड यू जाणि ।
सौ परमारथ पाइ जन बात कही निज छाणि ॥१६४॥
मनिष देह दामिन दमक वेगावेग सु जाइ ।
रज्जब देखी हरि बरस ढीलाढील न लाइ ॥१६५॥
सम धन गृह गाफिल असति ज्यूब सलिल ब लाग ।
दस बादल सब झूठ है रज्जब परिहरि राग ॥१६६॥
रज्जब मृग जल मांड सब मानहु मिथ्या जग ।
दसण को दरियाव है, तहां न पाणी मग ॥१६७॥
राम बिना सब झूठ है ज्यूं सुपिनै सुरा हाइ ।
रज्जब आग चलि गया कछू न देगै जोइ ॥१६८॥
राम बिना सब झूठ है मृग तृष्णा का रूप ।
रज्जब पावै नीर की जहां जाइ तह धूप ॥१६९॥
सीत काटि अरु मुड़सि का सीजै सुपना सैन ।
रज्जब यूं संसार है नहीं सु दीसै ऐन ॥१७०॥

रज्जब बादल बुदबुदे तीर्में प्रस के भाग ।
चतुर जानि चषि देखिये है नाहीं भ्रम भाग ॥१७१॥

चौपाई रज्जब सुपना सकति सैन मन मिथ्या देखै सु मैन ।
जाग देखि दीसै सू नाहि रे मन मूरिख समझी माहि ॥१७२॥

साखी सुर नर देई देवता सूता सुपिनैं माहि ।
जो रज्जब रामति रच सो जाग कोइ माहि ॥१७३॥

गुदड़ी ज्यूं गृह के मिले, तिन बिछुरत क्या बैर ।
रज्जब संतति सकति की हठ वारे दिसि हैर ॥१७४॥

रज्जब रज घर बास तन सिसु रामति संसार ।
सने मन्दिर रचि मेटतौं कहौ किती इक बार ॥१७५॥

जन रज्जब रजु सर्प जग यूं जानै संसार ।
तिनहिं न संक्या बिसु चढ़े औषधि परम बिचार ॥१७६॥

जन रज्जब सुपना जगत सोता देखै सति ।
जाग्यू मिथ्या पूत सब नींद सु न्यारी मति ॥१७७॥

रज्जब सीसे का सलिल छता यहु संसार ।
सरगि नरक फिरता रहै जुगि जुगि बारम्बार ॥१७८॥

बहु बिछोह बियोग न उपजै मीच न आवै याहि ।
रज्जब रीता प्राण सो जनमि गंवाया बादि ॥१७९॥

मिथ्या तन मन बानी प्राणी रज्जब भजै न राम ।
साँज सिरोमनि मनिषा देही बादि गमी बेकाम ॥१८०॥

कौल चूक मिथ आदि का मूला मोंहू साच ।
रज्जब झूठा राम सौं सो क्यू बोलै साच ॥१८१॥

जगपति जीव झूठे किये तब के झूठे जाणि ।
अबहि साच बोलहि सु क्यू पड़ी झूठ की बाणि ॥१८२॥

प्राण प्यंड की ससति झूठी तौ साच कौन सो होइ ।
रज्जब मिथ्या माया मेला जिनरु पतीजै कोइ ॥१८३॥

साचे मैं झूठी करी सो साची क्यू होइ ।
रज्जब देखौ दिव दृष्टि मनसा बाचा जोइ ॥१८४॥

रोम न टूटा नट्ट का करि दिखलाई खंड ।
यू मिथ्या रामति राम सति ब्रह्म रचे ब्रह्मंड ॥१८५॥

चतुर चानि बाजी बिहर, सबल पसारा झूठि ।
रज्जब ज्यूं थी त्यूं कही रुजू होइ भावै रूठि ॥१८६॥
चावल कीये धूलि के पंख परेवा कीन्ह ।
झूठ दिखाया सांच करि बिरले पुरिखा चीन्ह ॥१८७॥
सुपना को सांचा नहीं नहीं मृग्तृन मधि नीर ।
सीत कोट कोटै नहीं त्यूं वसुधा सब धीर ॥१८८॥
बिन कैवध काया कुमत मरकट मनहिं सु मीच ।
रज्जब सो न उपाड़ही बैठे मूरिख सीच ॥१८९॥
माह मूत्र के जेवड़हु गांठि दई है पोलि ।
रज्जब छांटे प्रेम जल निकस्या चाहै खोलि ॥१९०॥
कुल कुटुंब घोहरि बिवा नख सख बाटे धीर ।
सोणित सीर परसत पड़ै स्वारथ हेत समीर ॥१९१॥
जग चाया घोहरि बिवा कुमति सु कांटहु पूरि ।
बुधि बस्तर फाटै निकट रज्जब निकसौ दूरि ॥१९२॥
कुल कुटम्ब कैवध बनी मन मरकट तहं जाइ ।
साध सबद मान नहीं मरसी मूढ़ सुभाइ ॥१९३॥
कुल कुटंब कलजुग सही कनि बसर्पी की ठांव ।
रज्जब विरच्या यू समझि तामें तहां न जांव ॥१९४॥
छाजन भोजन बिषै रस जीव लहै जम बास ।
रज्जब पाये पास सुर पिरथी बिरघ पलास ॥१९५॥
उद्दिम उर्मे न कीजिये मन मूसा सुण येह ।
बानि चुराबत करड बान्ध्यौ कुसल सु नाहीं न्हे ॥१९६॥
मन मरकट माया चरम तृष्णा सीत न जाइ ।
या परि बान्दर बृन्द मिलि गगा सर्ग को गाइ ॥१९७॥
माइ मांडरी की चबै लसण मसावर प्याइ ।
राम बिमुख बाई यमै रज्जब इह ब्रह्मंड ॥१९८॥
बारे केसौं पुष्पपथ मैन रैन मधि चोर ।
राम मेत रजनि गुरुम तजि तम करता मोर ॥१९९॥
रज्जब रजर पुहपनै हेरि दिखाया हेत ।
चीर चिहुर की स्यामता चोइ करी सब सेत ॥२००॥

सत सुकृत सुमिरण करत बिलम न कीजे मीर ।
भुर मिरवर गहरे तिरत रज्जब गहिये भीर ॥२०१॥

महत महीपति मरु सु सठ पड सेवग संसार ।
मासी सम मुंह मागिले मूलहु सींचणहार ॥२०२॥

चौपई सतगुर साईं साध सबद, बंदनीक चारयू ये हद ।
रज्जब समझे समुझै माहि, इन ऊपरि आपण कौ नाहिं ॥२०३॥

साखी रिण न उत्यारा राम का प्यड प्राण जिन दीन ।
रज्जब तिनहिं उधार दे मन बच क्रम सो छीन ॥२०४॥

पंच पचीसौ त्रिगुण मन कीड़े काया माहिं ।
रज्जब रासी साध ये जुवहु सुमावै नाहिं ॥२०५॥

अरिल सफरी स्वसन सलिल सुमिरण मधि बास कुबुधि मधि बिसे न होइ ।
सोइ बात रज्जब जल जप सो मारि पकावै बिरला कोइ ॥२०६॥

## सरणा का अंग

सरणा साईं साध का पकडि रही रे प्राण ।
तौ रज्जब मागे नहीं जम जालिम का बाण ॥१॥

सतगुर साईं साध के सरणै धक्का नाहिं ।
काम चोट की ओट यहु समझ देख मन माहिं ॥२॥

सरणा कीजै साध का सरणा गहि गुर पीर ।
रज्जब सांझा साख का रहै ग्यान मैं सीर ॥३॥

सांपे के सरनै बचे मूत पानि बिब देत ।
तौ रज्जब सुनि साच का सरणा क्यों नहिं लेत ॥४॥

सारदूल स्वंत सीपुर सहित रहै सेम सरणाइ ।
तौ रज्जब सरणा बड़ा नर देखौ निरताइ ॥५॥

जलनिधि नै जलचर बचे तौ सो जोजन देह ।
सा भी सरणै सलिल कै मम मत मामी मेह ॥६॥

अरिल बिरछहिं जाइ बिहंग असणि कै भावतैं ।
तू तकि आतम राम बरी जमराव तैं ॥७॥

मोर्छ होइ उबार सुर सरणा चाहिये ।
रज्जब कही बिचारि पठंगा सांह ये ॥८॥

प्राण सु सरनै प्यंड क प्यंड सु सरनै प्राण ।
सरणै का सरणै सुखी रज्जब समझ सुजाण ॥९॥

उदर मासिरै ऊपज्या प्राण पठंगा माहिं ।
सो सरणा क्यू छांडई मूरिख समझै माहिं ॥१०॥

अगनि मासिरै काठ के काठ सु सरन आगि ।
जुवे होत जिव सूं गये रहे एकठ लागि ॥११॥

अठार भार अधियार को देखो दीपक खाइ ।
सो रज्जब सरनै बिना वाइ लागि बुझि जाइ ॥१२॥

बिहू काम ताके सरन तन मन काचे आनि ।
आश्रम बिन अंतक उदै प्राण प्यंड ह्व हानि ॥१३॥

देई देव दरवास रहैं प्यूदि लिल्हरिया भीर ।
रज्जब बोलै झाड़ क पास सध है भीर ॥१४॥

मनसर्पप पथ्यू यही पै सरनै रहै अकास ।
सा अहार उदली करै करवै धरती वास ॥१५॥

तक दिसा कौं आसिरा सरणा छाडै साथ ।
ताकौं क्या परमोधिये मूरिख बुद्धि अगाध ॥१६॥

## काम का अंग

काम किसी छोडै नहीं सुर नर सब ब्रह्मंड ।
जन रज्जब दृष्टान्त कौं जथा अगनि बनखंड ॥१॥

काम न छोडै ज्ञान गुणि बद पड़ै ज मारि ।
जन रज्जब मजार ज्यूं पढ़या अपड़ सुकमारि ॥२॥

रज्जब रहै न राज बसि छूटै रंक न होइ ।
अम ज्वाला नर तर सु तृण क्यू करि बंच कोइ ॥३॥

साहिब बिन साहिब किया सो रज्जब सब जाइ ।
काम सहित सब काम मुनि ज देख्या निरताइ ॥४॥

रगा रज्जब रहै न काइ सबको मरना है सही ।
काम कंचन जग जोइ भूप भेष मेल्है कही ॥५॥

री रज्जब कोल्हू काम के सब तनि तिमी समान ।
सा उबरै कहै कौन बिधि जो आवे बिधि पान ॥६॥

निसि दिन आमन मरण मैं चंद सूर आकास ।
जीव सहित सब खानि करि काल करै इक ग्रास ॥७॥
जैसे ससि के सकल विधि मंडल मद्ध अकास ।
त्यू रज्जब रहसी नहीं प्यंड प्राण के पास ॥८॥
ज्यूं धामे आतुर उठैं बिलै होत नहिं बार ।
त्यू रज्जब तन काल बसि खिन मैं होंसी छार ॥९॥
जैसे सावण के सम चमक उदै आकास ।
रज्जब पलटैं पलक मैं त्यू तन खिन मैं नास ॥१०॥
दामिन चमकहि देखि लै केतक बेर उजास ।
त्यू रज्जब ससार मैं अस्थिर नाहीं वास ॥११॥
जैसे बहुरंगि उष्ण परि बूद बिलै होइ जाइ ।
त्यूं रज्जब देही दसा हरि भजि बार न लाइ ॥१२॥
यहु तन जल का बुदबुदा असथ अधूरी आव ।
रज्जब रती न ठाहरै सायर कहावै नाव ॥१३॥
जम रज्जब संसार मैं रहसी रंक न राव ।
सब घट जाता देखिये योसी कीसी आव ॥१४॥
करिही करि क्या कीजिये अति गति ओछी आव ।
जन रज्जब ओस्यू घणी जरा बिपति जमराव ॥१५॥
मार्मौ परि अस्थल नहीं बिहंग न बठा जाइ ।
तौ रज्जब संसार मधि आतम क्यू ठहराइ ॥१६॥
आदित अंतक वेखसी ओसे ज्यूं अभिलास ।
अठार भार आगिन मिलत पान फूल फल रास ॥१७॥
कहां इंद्रासन इंद्र कौ कहां पहुम पुनि राज ।
जे रज्जब जीज नहीं तौ जगम केहि काज ॥१८॥
रजधानी सब लोग की भावे बिसवा बीस ।
सो रज्जब झूठी सबै जे जम आमिर सीस ॥१९॥
लघु नीरप आव सु बलप ज सिर ऊपरि मीच ।
रज्जब राम संभालिये ढील न कीजै नीच ॥२०॥
चंद सूर पाणी पवन धरती अरु आकास ।
ये रज्जब ओस्यू भरे, सकल सहित घट नास ॥२१॥

मावण्या तरोवर कटै अहनिसि वहै कुहाड़ ।
बन रज्जब सो क्यूं रहै जो आया बिष दाड़ ॥२२॥
आवण्या संरवर घटै मानै मनिष न मीन ।
यो रज्जब माता जगत माया मोहमद पीन ॥२३॥
कड़ी जड़ी सुधि जाम की मीन मुदित जल माँहि ।
त्यूं रज्जब जीत्या जुरा जीवहि सूझै नाँहि ॥२४॥
रज्जब काया कूप मैं आव अधारे नीर ।
रहत रैणि दिन घटि घड़ी भरिये सलिल समीर ॥२५॥
तन तरकस तैं जात है सांस सरूपी तीर ।
मांगे मिलै न मोलि सौं अरथ निघटे वीर ॥२६॥
घड़ी घड़ी कर तीर है, घट प्राणी की आव ।
रज्जब रेजा कछु रह्या सो तूं मुजा मढाव ॥२७॥
रज्जब धवणि लोहार की त्यूं सुर नासिक दोइ ।
भजन बिमुख पावक पवन देखो वहेम सु होइ ॥२८॥
जीवी ऊपरि जतनि बहु टूटी टूटै सब ।
कहना था सो यहु कह्या मन बच क्रम रज्जब ॥२९॥
जीवी ऊपरि जतन भी माविहि अनत उपाव ।
रज्जब राम सु काढि ले तब याके सब दाव ॥३०॥
हाती आव उपाव बहु ओषद जतन अनेक ।
सो सरकावै सांइया तब तहि का मम येक ॥३१॥
जीव जतन बहुतै करै क्यू ही मरिये नाँहि ।
रज्जब रोके वाहिले मारणहारा माँहि ॥३२॥
जुगति जतन सारे रहे, जब जम पकड़या सीस ।
रज्जब धन धणि यूं लिया कहा करै तेतीस ॥३३॥
सकति सकति सो मीकसी कहै और की और ।
रज्जब काढ्या धन धणिहु उठी आतमा ठौर ॥३४॥
छह सहस इक बीस बीरियां मारुत माग गहेत ।
रज्जब अहनिसि उठि चलै कहु कैसे सु रहेत ॥३५॥
महुठ कोडि इकई उभै इते माम मग येक ।
रज्जब जिव जल क्यूं रहै, काया कुंभ ये छेक ॥३६॥

रज्जब रज मारुत लगी बप सु बघूला हेर ।
गात बात गत गाँठि की कहु छूटति क्या बेर ॥३७॥

रज्जब सकसे भाट सब काल कष्ट तन मौन ।
सांस सबद सकट पड़ै तब सुमिरेगा कौन ॥३८॥

रज्जब राम न सुमिरिये मिलै सकल संजोग ।
तब सुमिरौगे कौन बिधि जब बपि आइ बियोग ॥३९॥

बिषम ब्याधि क्यू टालिये कठिन काल की चोट ।
रज्जब केसरि काटसी भाइ गही हरि ओट ॥४०॥

काया माया मांड सब सकल जीव को काल ।
रज्जब काटै कौन बिधि यहु अंतरि गति साल ॥४१॥

ब्याता चिता कुकाल है मनहु मनोरथ मीच ।
रज्जब जानै राम बिन यहु जौं राम न नीच ॥४२॥

काम कल्पना कोटि बिधि नीच मार मन मौज ।
जन रज्जब जिव क्यूं रहै, देखी यह दिस फौज ॥४३॥

मन कुरग कित जाइ बसि चतनि चीता काल ।
रज्जब पटकै पलक मैं काटै करि करि खाल ॥४४॥

जैसे सुसा सिकार मैं बचै न कानहु आट ।
त्यू रज्जब हम होइ करि, क्यूं टालै जम चोट ॥४५॥

अंतक आतम राम बिच अंतर माही कोइ ।
ओप्यू की आइम यही जतन यही तें होइ ॥४६॥

## सजीवन का अंग

अमर मिले आतम अमर बिछुरत बिनसै साइ ।
रज्जब रहे सु यूं रहै सब संतन निधि जोइ ॥१॥

जगजीवन आवै सदा नामे ताका दास ।
जन रज्जब जाप्यू गई करे न होइ बिनास ॥२॥

ज्यू पावक मल मुनि मैं त्यू परि आतम मैं प्रान ।
रज्जब मारै कालि क्य जु मिलसि न होई मान ॥३॥

सुन्नि ठाहरै सुन्नि मैं तबही आनंद होइ ।
बेतनि बगनि को मिलै काल न लागै कोइ ॥४॥

सब सों सुरति उठाइ करि जो पैसे प्रभु पाहिं ।
जन रज्जब सो काम कर क्यू ही आवै नाहिं ॥५॥
रज्जब साधू सुम्नि ह्वै सीस सबहु सलि देइ ।
अंतक मैं उसको नहीं अकस आप मैं लेइ ॥६॥
सुम्नि सजीवन हरि अमर रसना रहते माहिं ।
जन रज्जब आयू अखिल प्राणी मरै सु नाहिं ॥७॥
अडिग सुरति आठौं पहर अस्थिर संग अडोल ।
सो रज्जब रहसी सदा साखी साधू मोल ॥८॥
अरि इंद्री आपा गये अंतक उठया अनंग ।
रज्जब जीवै जीव सौ काटया करम कुसंग ॥९॥
रज्जब मुये जु मारता बिनसे बैरी पंच ।
तब ताकौं लागै नहीं बुरा मरण जम अंच ॥१०॥
सुरति माहिं साँई सदा याद अखंडित होइ ।
सो रज्जब आतम अमर बिघन न ब्यापै कोइ ॥११॥
मन उनमन से राखिये परम सुम्नि अस्थान ।
तौ रज्जब लागै नहीं जम जालिम का बान ॥१२॥
नांव ठांव निरभै सदा सुमिरि सजीवन संत ।
जन रज्जब लागै नहीं तहां जोर जम जंत ॥१३॥
प्राण प्यंड ब्रह्मंड मधि नांव सु निरभै दुंग ।
रज्जब बड़ बोवास करि जम जीतै नहिं जंग ॥१४॥
नर निरभै हरि नांव मैं यहु गढ़ अगम अगाध ।
रज्जब परि लागै नहीं सदा सुखी मह साध ॥१५॥
नांव ठांव निज जीव को सदा सजीवन बास ।
रज्जब रहिये ठौर तेहि पट रितु बारा मास ॥१६॥
बसै निमाणा नांव मैं तार्थे मीजै माथ ।
जन रज्जब ता संत की मैं बलिहारी जाथ ॥१७॥
रज्जब अज्जब ठौर है सुमिरन मैं ठहराइ ।
अमर सु मादम आतमा सुख मैं सुरति समाइ ॥१८॥
रज्जब मन पंचो पिसण लूटै वही देस ।
इन बनिमंसी पास छुड़ावै बलिवंत प्राण नरेस ॥१९॥

इंद्रिय द्वार न आवई सु अंतर्हि गया न जाइ ।
रज्जब आतम राम समि नर देख निरताइ ॥२०॥

प्रबल प्याद पतिसाहि परि पंच पिसण लिये साथ ।
रज्जब पैठे ग्राम गढ़ सा प्राणी चढ़ै न हाथ ॥२१॥

गुण इंद्री परकिरति में, प्राणी पड़ै न बंदि ।
जा रज्जब रामहि भजै सु थडा ग्यान गिरंदि ॥२२॥

काम कटक देखत रहै, और सकल दुख दंद ।
जन रज्जब देखत गया चढ़ि गिरिवर गोव्यंद ॥२३॥

गुर गिरवर बिहूणे नहीं प्राणी पगहु सयान ।
मिले न स्वारथ साहु को आतम अनमी रान ॥२४॥

मिले न स्वारथ साहु को त्यागि दई पय दोइ ।
नाम गिरोहौं मैं रहै, रज्जब राणा होइ ॥२५॥

उदधि ग्यान मैं मीन मन सूर सकति तप अंग ।
उभै न दगधहि उभै तन पाया सीतल संग ॥२६॥

रज्जब सूर सरीर विधि आतम सकति सु अंभ ।
सा रज्जब सोखत सबै सही सीर सु थंभ ॥२७॥

पातिसाह पहरे भया सब देसहु डर माहिं ।
रज्जब चोर कहा करै, जो राजा चेतन माहिं ॥२८॥

स्रवनि द्वार द्वै दुग मिलि चढ़ै सबद सावंत ।
रज्जब रिप मारे सु मधि बाहरि बिषम न जंत ॥२९॥

रज्जब साधू काम मन जे बढै जिव माहिं ।
सो निरभै मौलंड मैं पिसण सु गंजै जाहिं ॥३०॥

साध सबद अमृत अंचै अमर हान आतम ।
पीवै प्राण पियूष यहु जीव न लाग जम ॥३१॥

## जीव ब्रह्म अनराइ निरम का अंग

रज्जब जीव ब्रह्म अंतर इता जिता बिता अग्यान ।
है माहीं निरनै भया परम का परवान ॥१॥

प्राण जगत गुर सम्मगही बसग भजान अचत ।
रज्जब मध दूरि का ममन्नि काया संकेत ॥२॥

कौन भांति साहिब खुसी जो जीव न जानै ।
पै रज्जब कीजै बंदगी अपनै उनमानै ॥१०॥
जिते अग उनमाने के तेते जीवहु पास ।
जो साहिब सौंपी नहीं सो पावै क्यूं दास ॥११॥
सब ठाहर सब कहि गये साध वांच कवि राव ।
ऊंट न गरजै यंद्र समि अपणा करै सुभाव ॥१२॥
हुणवंत बौण कहु कौण दे को देखावन बीस ।
पै जीव जुलणि खाणै नहीं रज्जब देखै सीस ॥१३॥
फलहि सु फौरी भावसणि वधि महिसा इत वांस ।
तौ अमिक अठारहु भार कुछ निरफल रहै न कांस ॥१४॥

## निरपखि मधि का अग

रज्जब सांचा सोहू-पखि पारस है प्रभु नांव ।
परसे सौं कंचन भये यहु निरपखि निज ठांव ॥१॥
फकड़ भाति खुदाइ की उभै मिरति परवेस ।
रज्जब मल्लहु ज्यूं रहै, सा सांचा दरवेस ॥२॥
ब्रह्म जाणै सा ब्राह्मण सोबै सैयद होइ ।
रज्जब राखी यहु मैं फेर सार नहिं कोइ ॥३॥
ब्रह्म बरगि ज्यूं ब्राह्मण सौद सैयद होन ।
भद कुराणहु मैं कही छूटे गाफिल गोत ॥४॥
ओंकार साठी सकति कसम अंट कुस होइ ।
रज्जब असफ अनीन यू सो बंदे सब कोइ ॥५॥
द्वै पप बीरज दालि हैं बिच अंकूर अतीत ।
सा रज्जब ऊंध्या चल्या यहु तीजी रस रीत ॥६॥
ससार समद पखि तीर द्वै मधि मुक्ता सु महंत ।
सो रज्जब उर सिर धर ब्रह्म आदिपुर जंत ॥७॥
ससार सर्प मंडाण मुग पप आइप बिप हाइ ।
तहा मुनी मणि मीपजै निरपप निरविप सोइ ॥८॥
अन बमार्ग की छरी पारस परसी जाइ ।
रज्जब ऐसी देयना कुप भ्रम कुलि कटि जाइ ॥९॥

हींदू तुरक हुसेब करि दून्यू देख्यो जोइ ।
जन रज्जब रहती रही सु पावै विरला कोइ ॥१०॥
हींदू पावैगा नहीं नाहीं मूसलमान ।
रज्जब रजमा रहम का जिसको दे रहिमान ॥११॥
चंद सूर पाणी पवन आमे उडग मझार ।
मधि धासी प्रतिपाल महि धर अंबर सुनियार ॥१२॥
चंद सूर पाणी पवन मामे उडग अतीत ।
धर अंबर परस नहीं यहु तीनी रस रीति ॥१३॥
पग पिरथी मस्तक गगन जीव रहै नमि थान ।
पषि पोप निरपषि रहै आतम संत सुजान ॥१४॥
चड़ मत छाँड़ि सु बिमी धर तजि अभिमान अकास ।
रज्जब रहिये बीच वण पटरितु बारहु मास ॥१५॥
आकास रूप अविगति कर वहयै बंदहु ठाम ।
पंच तिण रज्जब रचे मधि मनोहर धाम ॥१६॥
माया बिन मरि जाइये माया पायुं मीच ।
जन रज्जब जीवन मर्दे जु दुर्जन मठे बीच ॥१७॥
देही दीपक जोति जप अमति मधि ठहराइ ।
सकति समीर सु बहु बना जम रज्जब बुझि जाइ ॥१८॥
सकति सुता ता बहुन है श्रीपति पतिनी मात ।
तासौं रग न रूठणा रिधि सौं कैसी घात ॥१९॥
रज्जब साबुन ससिस का सुनहु सनेही हेत ।
देखो हींदू तुरक के बसर करहि सु सेत ॥२०॥
अनंत नांव प्रभु पुहप हैं प्रान पाणि पषि दोइ ।
रज्जब करहि सुगंध सो हिये हाथ ले जोइ ॥२१॥
महादेव कौं आत्म कहिये गोरख तन सु हाथी ।
इष्ट एक ह दे पषहु बिच रूठे किस साथी ॥२२॥
रचहि न हींदू तुरक सों बिदु जन बिरचै नाहि ।
नारायन रूपी सु नर, निरपषि प्यारे माहि ॥२३॥
रज्जब साधू सूर का मरणा हू मैदान ।
पसु पंषी प्यांवहि मर्षे नाही गार मसाण ॥२४॥

गोर मसाण न तिनहु कौं जेर पड़े संग्रामि ।
रज्जब सोभा सब रही सरबस आया कामि ॥२५॥

रज्जब हींदू तुरग की रिण माहीं रस रीति ।
इन काया मुकि मुकि चढ़े मोले हूं मयमीति ॥२६॥

पहुम पवन मिलि एक हूं भवति उदक ता माहिं ।
रज्जब तुरग न पाइये हींदू वेई नाहिं ॥२७॥

कै परम तत्त सों प्राण है, कै परम तत्त के माहिं ।
रज्जब सोधे उभै भर हिंदू तुरक सु नाहिं ॥२८॥

सुमति सेती बाप था मां के बीधै काम ।
दून्यूं बिच बालिक भया तहां नहीं मुकसान ॥२९॥

सुमति सेती बाप था बेटा हींदू होइ ।
रज्जब कहिये तुरक क्यूं कटया न आवै कोइ ॥३ ॥

हिंदू गति हिरदै नहीं तुरक तमा कछू नाहिं ।
रज्जब बंदे बस्त के कहा चुर्से इन माहिं ॥३१॥

हिंदू गति हिंदू खुसी तुरक पु तुरकी माहिं ।
रज्जब मालिक एक के तिनकै दून्यूं नाहिं ॥३२॥

हेत न करि हिंदू धरम तजि तुरकी रस रीति ।
रज्जब जिन पैदा किया ताही सों करि प्रीति ॥३३॥

रज्जब हींदू तुरक तजि सुमिरहु सिरजनहार ।
पषा पषी सों प्रीति करि, कौन पहूच्या पार ॥३४॥

है पष दारा त्याग करि प्राणी ले बैराग ।
जन रज्जब सो नीपजै ता सिरि मोटे भाग ॥३५॥

दून्यूं पष सौ बहि रही जब जिव जोगी होइ ।
जन रज्जब बिसिकिसि मिटी नांव न लेवै कोइ ॥३६॥

एवहिं दव्यू एक मत बांधै पर मैं होइ उपाधि ।
जन रज्जब परिहरि पष दून्यूं सहजै होइ समाधि ॥३७॥

खैंचातानी है है मिटी तब घर मैं आनंद ।
ज्यू रज्जब माइया रई सहजि गये दवि दंद ॥३८॥

लोहा जल पावक परस सीत सलिल पाषाण ।
रज्जब उभै असाहिन्न समस्या ससि बखाण ॥३९॥

रज्जब बसे महंत मुनि मधि मत्ते के मागि ।
सीत ऊष्ण मन वन रहै द्वन्द्व दीसे आगि ॥४०॥
मन रज्जब पखि पैठतौं पड़ै पिसणता प्रान ।
निरपखि मिलि निरवैर ह्वै साधू संत सुजान ॥४१॥
पखा पखी मधि पिसुणता प्रगटहु दुविधा दंद ।
जन रज्जब निरपखि भए, निरवैरी निरदंद ॥४२॥
पखा पखी मैं पिसणता निरपखि मनि निरवैर ।
मनसा बाचा करमना रज्जब कहीं न गैर ॥४३॥
पाप पुंजि मूरति असुर, झूठे जाति कुजात ।
मन रज्जब सोवै सबै भो न अंधेरी रात ॥४४॥
हिंदू सेवै मूरती मुसलमान सु गोर ।
रज्जब मुरदे मानिये जग ज्यदा किस ओर ॥४५॥
वे देवल मिले दयाल की अरु मालिक मिले मसीति ।
तौ रज्जब अणमिलन की यहु सबकै रस रीति ॥४६॥
द्वै पख थापै दोइ विधि करै अष्ट विधि बंदि ।
रज्जब सांई सकल विधि देखि दसौ दिसि बंदि ॥४७॥
देवल पास मसीत ह्वै दोइ म ठाहिं दोइ ।
रज्जब राम रहीम कहि बोलैं बिघन न कोइ ॥४८॥
पीपल वड बाढ़हि नहीं हिन्दू तुरक फहीम ।
तौ रज्जब क्यूं मारिये कहतो राम रहीम ॥४९॥

## अनेक समिता का अंग

घरि घरि दीपक देखिये पावक परस्यू येक ।
यू समझे एकै हुये रज्जब संत अनेक ॥१॥
एक सरोवर सब भरे भाव भिन्न करि जाहि ।
रज्जब सब मिलि एक ह्वै उसटे सरवर माहि ॥२॥
एक कंचन काटि करि, बहु भूषन करि जाहि ।
रज्जब मान्यू मिलि भये ताके ताही माहि ॥३॥
साईं सबका येक है सब समझे ता माहि ।
जन रज्जब यामहि भजै तिनकै दूजा नाहि ॥४॥

सब संतन का एक मत जैसा अगनि सुभाय ।
जम रज्जब अगि एक सी वह विधि देखो जाइ ॥५॥
पटदरसन समिता बहै देखत दह दिसि माहिं ।
रज्जब रहसी राम मैं फिरि मिरि दरिया माहिं ॥६॥
काठ लोह पाषान की अगिन उजामरि येक ।
त्यू रज्जब रामहिं भजै सो नहिं भिन्न अनेक ॥७॥
रज्जब रहते जगत सौं सुलमे एकै जानि ।
बहुत काष्ट में धूम ज्यूं मिले सुभि में आनि ॥८॥
यथा अठार भार की बिनस्यू सबकी देह ।
त्यू रज्जब रामहिं भजै सो सब एकै देह ॥९॥
माया माटी सूं भये बप बासण सु अनेक ।
रज्जब रिषि रज नांव बहु अरथ सोधता येक ॥१०॥
कृतिम कुंभ मत छिद्र बहु माहिं जोति जग और ।
रज्जब प्राण पतिम परि आइ परै इक ठौर ॥११॥
रज्जब समिता मावतैं मनिषा देव समान ।
धरणि गगन पानी पवन साषी ससि हर भान ॥१२॥
चंद सूर पाणी पवन धरती अरु आकास ।
देव दृष्टि दुविधा नहीं सब आतम इकलास ॥१३॥
जगनाथ की हाडी समिता भोजन भेद सुनाहिं ।
नीच ऊंच अंतर सु उठाया दृष्टि आतमा माहिं ॥१४॥
पटदरसन मैं पाण का पातरि भेद न कोइ ।
रज्जब जनमे तिनहु में सो न्यारा क्यूं होइ ॥१५॥
रज्जब अज्जब काम यहु जो जिसही कन होइ ।
समिता भरि पैठ सुरति कने न देखै दोइ ॥१६॥
पटदरसन समिता बहै देखत दह दिसि माहिं ।
साई समद सु सनमुखी उभै उभै अंग माहिं ॥१७॥
नारायण अरु नगर कौ रज्जब पंथ अनेक ।
कोई आवो कहीं दिसि आगे अस्थल येक ॥१८॥
है गै प्यादहु पंथ बहु रथ बैठयू मथ येक ।
रज्जब नर हरि नगर निज पहुंच प्राण अनेक ॥१९॥

व्यापक जैसी मोलता पाणी जैसी प्यंड ।
रज्जब वंस पिछाणिये इन वंसी ब्रह्मंड ॥२०॥

चौपई हिंदू तुरक उदै षस बूदा कासौं कहिये ब्राह्मण सूदा ।
रज्जब समिता ग्यान विचारा पंच तत्त का सकल पसारा ॥२१॥

साखी चौरासी लख संपदा सामी सकल सरीर ।
जन रज्जब घटि घटि इठी ज्यू पूठै कै नीर ॥२२॥

चौरासी लख संपदा करी विसंभर सोइ ।
रज्जब रची बखाणिये औरू करै सु होइ ॥२३॥

जे जिन्या ब्रह्मंड मैं सोई प्यंड पहिचान ।
रज्जब निकसे सबद मधि पंच पड़या यू जान ॥२४॥

महंत सु दीपक हीर मैं सब विस सम परमास ।
रज्जब धुर्कहि न एक रस सुणहु सनेही दास ॥२५॥

षट दरसन मैं सब मिलैं पौणि छतीसी माइ ।
जैसे सपत समुंद मैं नौ से नीर समाइ ॥२६॥

## मेलग का अंग

प्रासौं महिये पंच मिलि ज्यू पंची मिलि राम ।
जन रज्जब मेला भला मेलै सरै सु काम ॥१॥

श्रवण नैन मुख नासिका अधर दंत कर पाइ ।
रज्जब निरखत नौ युगल मोह्या मर्दं मिलाइ ॥२॥

मंट सु लेयण दोइ सिरि, कारिज काले येक ।
त्यू रज्जब द्वै मिलि चलैं योंही बड़ा बमेक ॥३॥

पंच तत्त करि घट भया प्राण करै तहं राज ।
रज्जब बिसरे बहु विधन आतम होइ अकाज ॥४॥

पंच मिली मधु ऊपजै पंच मिलै मधु होइ ।
रज्जब पंचे पच मैं बिगती बिगति सु जोइ ॥५॥

इक अजरी बजरी मिसहि, इक मधुरिय मधु ठौर ।
मेला देखि न मुगधि मिधि मेल मेल रस और ॥६॥

एक पाकि पलटि ह्वै पै मई, एक पाकि धुनि पीव ।
रज्जब पाकहु फेर बहु नर मिरली सु नसीब ॥७॥

पंच तार जंतर ज्यूं सोलह सुर सु मृदंग ।
सुरमंडल सुर बहुत हैं, बाजत एकै अंग ॥८॥
रज्जब भली भई नहीं जे मन एकहि रंग ।
ज्यूं सोलह सुर तूर के मिलि बाजहिं एक संग ॥९॥
तूबी समि जो आतमा तिरहि सु एक अनेक ।
सो संगति क्यू छोडिये रज्जब समझ बमेक ॥१०॥
येकहु माहिं अनेक है, अनेकों मैं येक ।
रज्जब पाया संग का पूरण परम बमेक ॥११॥

## दया निरवैरता का अंग

मुक्ति दया निरवैर ह्वै सब जीवहु प्रतिपाल ।
तौ रज्जब तिनि प्राम ने मेल्या मंगल माल ॥१॥
निरवैर होत वैरी नहीं चौरासी मैं कोइ ।
रज्जब राखत और कौं अपणी रक्षा होइ ॥२॥
खोट न काहू कौ करै तौ खोट न इसकौ होइ ।
जन रज्जब निरवैर सौं वैर करै नहिं कोइ ॥३॥
बिषम टालतौं और के अपने बिषम सु जाहिं ।
नेकी सौं नेकी बधै समझ देखि मन माहिं ॥४॥
नर निरवैरी होत ही सब जग वाका दास ।
रज्जब दुबिधा दूरि गइ उर आये इखलास ॥५॥
निरवैरी नौखंड मैं साधु सु हिरदी होइ ।
तौ रज्जब तिहु लोक मैं वैरी नाही कोइ ॥६॥
चौरासी लख जीव परि, साधू होइ दयाल ।
रज्जब सुख दे सवनि कौ तन मन करि प्रतिपाल ॥७॥
इसके मारण की नहीं तौ इसहि न मारै कोइ ।
कुसल वांछता और की अपणे कुसल सु होइ ॥८॥
दया तरोवर धरम फल मनसा मही सु माहि ।
मिहरि मेघ हरि नीपजै रखवारे फल खाहिं ॥९॥
राग दोष काहौं करहिं सबमैं साहिब जाणि ।
रज्जब बुरा न बांछिये छाडि नेह गत आणि ॥१०॥

विभूति चाकरी तन लागै धन सु मसखने चारि ।
यों साध असाध इक ठौर हैं, मर निरबैर मिहारि ॥११॥
रज्जब सूं निरबैरता तो बैरी कोइ नाहिं ।
मनसा वाचा करमना यों समझी मन माहिं ॥१२॥
नांव सगोती बोलिये कहिये ते मा अंस ।
सो रज्जब क्यूं खाइये परतपि अपणा बंस ॥१३॥
गोसपंद गावमेस माकर हूंस सीर सब माह ।
रज्जब ऐम अजीम बोलिये गाफिल मोसत खाइ ॥१४॥
षटदरसन औ खलक की पोषि खात मद मास ।
रज्जब सोच न चिति दया सूं आया पर नास ॥१५॥
पंच वखत जो बांग दे वह तो दीनी यार ।
सो मुरगा क्यूं मारिये काजी करो बिचार ॥१६॥
मुसलमान की मारणा मुरगा माफिक नाहिं ।
पंचौ बिरिया बंग दे मुल्ला समुझौ माहिं ॥१७॥
बंदनीक बाराह सु बधिये मुल्ला मुरगा मारै ।
दून्यूं दृष्टि बिहूनै दीसैं दुष्टौं कौम बिचारै ॥१८॥
कुलि मैं मोहित मामिक सबहु मैं सु बिहान ।
रज्जब यू जाणी जाहिर, रहेम माहि रहिमान ॥१९॥
मुल्ला मन बिसमिल करो तबहु स्वाद का घाट ।
सब सूरति सु बिहाम की गाफिल गला म काट ॥२०॥
घात घाट कौं करै जाहिर कहैं सु हुक्क हलाल ।
रज्जब यहु पंथी पकड़े जाहि पचि पैमाल ॥२१॥

चौपई सबमैं सांई मास सु खाहि तौ निज ज्ञान नजरि मैं नाहिं ।
जाहि मजे ताही सौं बैर रज्जब नाहिं कही कछु गैर ॥२२॥

साखी तन मंदिर मूरति मधि आतम फोड़ै फूटै दोइ ।
उभै उजाड़ एक की कीजहि, खसम खुसी क्यूं होइ ॥२३॥
चक्र तिणा सिये मीरसैं सून खता सित क्षोम ।
तौ घास गास बिन मुक्ष सदा सिन मारण् क्मा सोम ॥२४॥
धुन हाकी मैं धुमि गया माजी सहन बमाहिं ।
रज्जब खाइ कबूल करि, मै मुरदारी नाहिं ॥२५॥

मछली किनत कबीर की धुण किन किये हलास ।
अंडे किन बिसमिल किये सब खाणे का स्याम ॥२६॥

अजाजील अर आदमहि, देखि अदावत आदि ।
दोषि लागि क्यूं दिसि बिमुख जनम गमाया बादि ॥२७॥

रामचन्द अर रावनहि, वैर भाग भई मीच ।
तौ रज्जब दोष न राखिये समझी मनवा नीच ॥२८॥

कीड़ी कुंजर सबनि सौं मेटि वैरता मंत ।
पीड़ा देत पषाण कौं देखौ हुकम्म दत ॥२९॥

कृष्णदेव की बहन मधु हती कंस करि कीस ।
रज्जब दामिन दोषहीं नासौं पड़ै सो सीस ॥३०॥

हरनकसिव मध होलड़ी भये पिसण पहलाद ।
साधू मारत ते मुये तजहु वैरता बाद ॥३१॥

राहु केत ससि सूर का देखहु वैर बिरोध ।
इहै जानि निरवैर रहु रज्जब मिल परमोध ॥३२॥

दोष दोष सौं ऊपजै मर देखौ निरताइ ।
राहु केत ससि संग रहै सपत नक्षत्र सु भाइ ॥३३॥

रज्जब अज्जब काम है, जे हूजे निरदोष ।
परे न बंधन वैरता मानहु छूजे मोष ॥३४॥

रज्जब अज्जब काम है, जे दिल न दुखाया जाइ ।
इहां खमक उस परि खुसी आगे खुसी खुदाइ ॥३५॥

हंस हने हत्या सही परि आदम अघ अधिकाइ ।
रज्जब निरखहु नरहि डसि पनिग पूंछि गरि जाइ ॥३६॥

राग दोष दीरघ उदधि पंच चोड़ सजु भार ।
जन रज्जब उतरत उभै सपत समंद नर पार ॥३७॥

रज्जब अज्जब यहु मता सब सौं रहु निरवैर ।
उदधि उपाधि न डरपिये ओल्यूं जस जिव पैर ॥३८॥

औगुण ढाक और के अपणे औगुण नांहि ।
रज्जब अज्जब आतमा निरवैरी जग मांहि ॥३९॥

मारया जाइ त मारिये मनसा वैरी मांहि ।
जन रज्जब सो छाडि कर मारन की कछु नांहि ॥४ ॥

मारणहारा मारिये जीव नहीं उपाधि ।
मन रज्जब यू जीतिये घट का वैरी साधि ॥४१॥

काहू पर चढ़िये नहीं मन क्रम बिस्वा बीस ।
रज्जब रथ ससि कृष्ण कैं सोइ पंथि पर सीस ॥४२॥

पग पहूण प्रभु जी दिये मति गति होइ कृपाल ।
रज्जब तिनहु चढ्या फिरै निरदयी सु दयाल ॥४३॥

## दया अदया मिश्रत का अंग

समरथ मारि जियावणै दोष दया मैं जान ।
अमर सजीवण राम तूं येत्या करौ बखान ॥१॥

पुंनि सु पाणी स्वाति का सुरति सु सीप मझार ।
पाप पणींगा खार जल मन मुक्ता मिसि ख्वार ॥२॥

वैरि सहर सूं मिलत ही खलहल होइ सु वास ।
ब कीमति घु बदी बधै नेकी हाति सु मास ॥३॥

चौपई ज्यूं मिसरी माहिं घोलि रस पीजै ज्यूं सुकृत मैं कुकृत कीजै ।
दया मध्य दुष्टता एसी ज्यूं मर माहिं सु बाइण बसी ॥४॥

साखी पुंनि पिसणता एकठे तब लग धरम न कोइ ।
माई हति भाई कौं पोषै समझे बहु दुख होइ ॥५॥

मिहरि कहर माहै मिली ता सेर सेर मैं नाहिं ।
महु रज्जब अज्जब कही समझि देखि मन माहिं ॥६॥

पुंनि प्रभाकर उदै कौ पाप प्रचंड सु राहु ।
मग उजास सु गिलत हैं, चपि त्रिभुवन तन दाहु ॥७॥

सुत सुकृत कौं गिलत हैं सापनि सुधि बिन दास ।
पुंनि मधि पापहिं करत हैं प्रानी जाइ निरास ॥८॥

सुकृत मैं कुकृत कुचिल ज्यूं ससि मद्धि कलंक ।
पुंनि पियूप सु प्रान पोषियं चपहु बुराई बंक ॥९॥

धरम अम्यान कुकरम न सोभै जथा मैन मधि फूला ।
आतम ग्रांति मंप्यारा भइसा कहिये कहां सु सूला ॥१०॥

## दुष्ट दया का अंग

देखहु दुष्ट दयाल गति ज्यूं बालिक पित मात ।
रज्जब काटै मारि मुख मूरख माटी खात ॥१॥
सकल प्राण प्रीतम किये पर हरि कुमति कुसंग ।
रज्जब के रस रोस यहु दुष्ट दया का अंग ॥२॥
कुलिरवाह सौं रहम करि बदअमलौं सौं बैर ।
मिहरि गुसा मसमूं का रज्जब कै नहिं गैर ॥३॥
मनि दयाल मुखि दुष्ट गति यथा नीब संयोग ।
रज्जब कड़वा पीवता पीछे काटै राग ॥४॥

## कंवला काढ़ का अंग

रज्जब रिधि रतनौ भई मन समुंद के मांहि ।
कोइ जन काढ़ै कमठ ह्वै नहीं त निकस मांहि ॥१॥
कंवला काली ये कहै सो देही दह मांहि ।
कोई एक काढ़ कृष्ण ह्वै नहीं त निकसै नांहि ॥२॥
माया मणि मन मच्छ मुखि दुल्लभि लेता दोइ ।
रज्जब ठौर सु विषम है बेत्या काढ़ै कोइ ॥३॥
बिव बीरज पारामई काया कूप मझि बास ।
साधू सुंदरि परसतू बाहर ह्वै परगास ॥४॥
आकास अवनि अरु उदधि अष्ट कुल माया राखी मांहि ।
हुकम हिकमत्यूं कर भई नहीं त सहिये नांहि ॥५॥
जन रज्जब जल जीव मैं सिरिया सीर समाम ।
विषम बारि तै काढ़ि कर हंस करै कोइ पान ॥६॥
मन तै माया काढ़नी ज्यूं दही तै घीव ।
जन रज्जब बल बुधि उस महा बमेकी जीव ॥७॥
कंचन बिरची चुणि से रज मैं पारै पूरि बमेक ।
तैसे मन तै माया काढ़ै साधू कोई मेक ॥८॥
माया मधु विधि काढ़ही मसि सागर मधुरिपि ।
तिनकी सरभरि करन कौं रज्जब बिरला पिपि ॥९॥

मन माया मिश्रत सदा भया अकलि मैं राग ।
रज्जब राखी एक कौं दत दीपक धुनि जाग ॥१०॥

काया कुभनी मैं रहै, सकति सरप औतार ।
साधू जाता गाडरी इनके काढनहार ॥११॥

चौपई मनुवा रावण रिधि सु परान बास आवित माहि धरान ।
कद कोइ जीव भभमण होइ माया मारि उतारै सोइ ॥१२॥

साखी सकति सजीवन जबी ज्यूं दुरलभ लई न जाइ ।
का ल्यावै हणवंत ज्यू उरगिर सहित उठाइ ॥१३॥

मनमुपुरस्थल देस समि सकति समिल अति दूरि ।
साध सगर काढही औरौं कढै न मूरि ॥१४॥

मन समंद माया मुकता सुरति सीप के माहि ।
साधू मरजीवा बिना रज्जब निकसै नाहि ॥१५॥

ज्यूं अपछर आकास मैं त्यू हरि सिधिहि आनि ।
रज्जब मूर सु सत परि, उभै उतरै आनि ॥१६॥

नर उर हिमगिरि ज्यूं झरै साधू सूरिज बेष ।
जन रज्जब तन ताप मैं बिगता बिगस बिसेष ॥१७॥

ससार सुई ज्यू चलि मिलै साधू चंबक चाहि ।
सारा किसही का नहीं बाबै बस्त सुबाहि ॥१८॥

माया मन मिश्रत सदा नख सल सानी राम ।
रज्जब गिधि काढन कठिन महा सु मुसकिल काम ॥१९॥

जन रज्जब नर माक मैं उभै ठौर भरपूर ।
पै बाणी पाणी भेइये तौ निकस सक्ति अंकूर ॥२०॥

## सुकृत का अंग

सकल बोम जिव को मिलै कहु सुकृत किम होइ ।
रज्जब पहरै पुनि कै मकरि नीद कछु जोइ ॥१॥

माया काया भारवी प्राणहि परिहरि जाइ ।
तापै रज्जब समै सिरि सुकृत सीज माइ ॥२॥

रज्जब पावक प्राण का अंति निरंतर बास ।
तौ मन काठी भीम ज्यूं पहलै धरी अकास ॥३॥

जेता सुकृत कर लिया तेता प्राण अधार ।
जन रज्जब धन धाम मैं पीछै चलै न सार ॥४॥
सुकृत संबल कीजिये इहिं औसर इहिं देह ।
जन रज्जब यहु सीख सुणि परमारथ कर लेह ॥५॥
गृह दारा सुत वित्त की मृहु सब झूठी माखि ।
जन रज्जब रहती इती सुमिरण सुकृत साखि ॥६॥
सरीर सहित सब जाइगा कहु कहा सग और ।
जन रज्जब जगदीस भजि कछू सुकृत करौ दौर ॥७॥
सकल पसारा झूठ का झूठी जग की आखि ।
रज्जब रहसी जीव कम सुमिरण सुकृत साखि ॥८॥
सुकृत सिर्षहि देखतौं कुकृत जाहिं तुरंग ।
ज्यू रज्जब रवि की किरणि तम तुंगनि ह्वै भंग ॥९॥
पुन्नि प्रभाकर कै उदै पाप पुलहि ज्यू तार ।
मन मच क्रम रज्जब कही तामे फेर न सार ॥१०॥
धरम सुकाती करम की पुन्नि पिसण है पाप ।
एक सु अंतक एक करौं रज्जब रचे सु आप ॥११॥
रज्जब ताला पाप का पुन्नि पूंची करि राखि ।
जीव जखपा ऐसे सुलै साध वेद की साखि ॥१२॥
मनसा मैली पाप करि पुन्नि पाणी करि धोइ ।
सुमिरण साबुन लावना रज्जब उज्जल होइ ॥१३॥
अघ अनंत अहं सम बनै जुग अनंत महि जाहिं ।
धरम राह देखत चलै पाप ज्यंड पल माहिं ॥१४॥
तुपक तीर बरछी बहै कठिन काल की चोट ।
रज्जब कछु लागै नहीं सति सिपर की ओट ॥१५॥
सतियहु का सत रहत है बिघन न बिघनौ माहिं ।
परनपि पेखि पटूलिका पावक परसै नाहिं ॥१६॥
मातम जननी ऊपजै सुकृत सुत मनि मत्थ ।
जम ज्वाला मातहु टसी राम काज समरत्थ ॥१७॥
तारि सरि माहै रहै मापरि और न सूम ।
रज्जब बरि रंजसि मही मिहरबान महबूब ॥१८॥

पापी की पीड़ा टलै लै हूत पुनि का नाम ।
सो सुकृत किन कीजिये रज्जब अज्जब काम ॥१९॥
चंद सूर गगनहि रहै, दान पुन्नि महि मान ।
रज्जब देणा अति भला जेहि छूटै ससि भान ॥२०॥
सुकृत सुत जीव सग है उपगार सहेत ।
पिता सुजस रास इहां इहां सुरुचि फल देत ॥२१॥
पुनि पारस है कलपतर कामधेनु धरम धन्नि ।
रज्जब पलटहि प्रानपति मांग्या मिलहि जु मन्नि ॥२२॥
सांई सुकृत सनमुखा साध बेद की साखि ।
सत संतोषण प्राणपति सती पुरुष उर राखि ॥२३॥
सोच रहित सुकृत करहि सो सुख लहैं अनंत ।
रज्जब माया ब्रह्म का फल कामना मंत ॥२४॥
सुकृत सुख सरवे सग कुकृत दुख दातार ।
मव आगै आसम कन कदे न छोड़े मार ॥२५॥
फिरि आवै तौ करि सजाना प्रभु कन रहै पुन्नि उपगार ।
संकट मैं सुकृत सगा मित्र सनेही दोसत यार ॥२६॥
हरषंद हेरि गहिय धरम मन न डुलावहु कोइ ।
रज्जब रहतीं सति के सकति सबल फिरि होइ ॥२७॥
अहूठ हाथ हरि हत दे तो पावै उनचास ।
धन रज्जब प्रिव की फलै सांई दासी दास ॥२८॥
परमारथ मैं प्यांड दे सो पिरथीपति होइ ।
तिन रोमहु राजा मिलहि नाहीं अचरज कोइ ॥२९॥
रज्जब रज मुख मलिये सो सहस्र गुन होइ ।
सौ छाजन भोजन साध कौं देत न संको कोइ ॥३०॥
सैरि कहै सतरी गुणी दत्ति सहस्र गुण साहि ।
रज्जब धोमे चूकि चपि जे पहु रोटघू पतिसाहि ॥३१॥
पे आप उतरि रथ देत हैं, परमारथ के प्यार ।
सौ विविधि भांति वाहन मिलहि है ग नर असवार ॥३२॥
सकल करहु परि करन के कनक देन का राग ।
सौ रज्जब पाया तिनहुं हाथों ऊपरि दाग ॥३३॥

परमारथी पनिंग पसि सिष्टि भार सिरि लीन ।
तौ रज्जब प्रभु पहेम परि नाव तिनहु के कीन ॥१४॥

ब्रह्माण्ड बड़ा परमारथी तौ आव बड़ी दी रब ।
ये प्यण्ड प्राण सब स्वारथी वेगि मरे सौ सब ॥१५॥

अरिल नेकी ऊपरि मनि वदी धिक्कार सु बोलिय
घटि घटि ब्रह्म वसत तिनहु मुख पाप सु खोलिय ।
पुंनि पाप का फेर सु पलटा आइया
देखौ बकत्र वदंति सु श्रवण सुनाइया ॥३६॥

साखी रज्जब अवनि अकास बिचि सतजत थंब सु दोइ ।
यो मंदिर आधार इह, बिरला बूझै कोइ ॥३७॥

षट दरसन अरु खलक की सेणी दुवा दुरुब ।
रज्जब रहै असंखि जुग राख्या कीरति थंब ॥३८॥

परमारथ पिरथी भवै विभूति बीज हरि हेत ।
रज्जब रुचि नर नीपजै सती पुरिष का खेत ॥३९॥

अतीत अवनि हाली सति वाही सुकृत बीज ।
भूखा भाजन करि बड़ी समनि होइ सौ चीज ॥४ ॥

रज्जब धरती धरम की बह्यौ बीज बिभूति ।
मेघ मिहर नीरा करै आवै साखि सु सूति ॥४१॥

षट दरसन दल दुर्वा के सती पुरुष के संग ।
रज्जब विघन न ब्यापई बाढा सुकृत अंग ॥४२॥

रज्जब पावक पाप की जालै प्यण्ड पराण ।
परम पुंनि पाणी परसि सीतल साख सुजाण ॥४३॥

कुकृत करम कुआगि में सब जग असमठि होइ ।
रज्जब सुकृत समंद मधि तिसहि नहीं डर कोइ ॥४४॥

रज्जब सुकृत सुकलपधि आतम अनकन पोष ।
कुकृत अंध अध्यार निसि भागे भ्रामक दोष ॥४५॥

रज्जब कुकृत कास तजि सुकृत समै सू भाव ।
मनसा बाचा करमना के जीवन का भाव ॥४६॥

पैर नजाना जीव कम प्यण्ड पड़त पुंनि साथि ।
सो रज्जब किन कीजिये परम भागणे हाथि ॥४७॥

प्याण्ड पड़े पुनि ना पड़े परले पवन न होइ ।
रज्जब संगी जीव का सुकृत सिवाय न कोइ ॥४८॥

माल मुलक सब जाइगा गये सरीर सहेत ।
धन रज्जब रहसी धरम जो दीया हरि हेत ॥४९॥

सौदा इह संसार मैं सुकृत समि नहि कोइ ।
रज्जब सो किन कीजिये जो आगे का होइ ॥५०॥

रज्जब करता धरम कौं धुकधुक चितिह न आनि ।
आगे को संबल इहै, रे प्राणी परवानि ॥५१॥

रज्जब ढील न कीजिये दाता तन कर दास ।
उठ सुकृत दीसैं संबल स्यो सजी बस बास ॥५२॥

चौपई संबल सुकृत तोसा खर रज्जब कह्या सु नाहीं गैर ।
खर समाना पुनि करि हाथ जो वित चले जीव के साथ ॥५३॥

साखी तंदुल कोपी दो बटी रोटी पईसा पोट ।
धन रज्जब सुकृत भया समसरि कौ नहि ओट ॥५४॥

रज्जब सांई लग सुकृत सवा सुखी सुकृती होइ ।
पलटा पूरे पुरष का मेटि न सकई कोइ ॥५५॥

द्रुपदि सुदामा क्या दिया तिमिरलंग क्या दादू ।
भले भाइ पावहु पड्या जानि उघाड़ी आदू ॥५६॥

द्रुपदि सुदामा दादू दतवि तिमिरलंग का त्याग ।
रज्जब पातर पूजतें भुवहू भूरि सु भाग ॥५७॥

पंच मरतारी पुनि का कहा सुदामा दीन ।
जग रज्जब प्रभु दान परि, सबहु बडी पर कीन ॥५८॥

देखि सुदामा द्रौपदी दान तनक बुध कीन ।
ता परिता के कनक घर वाहि अमित पट दीन ॥५९॥

दणा सव ठाहर भला जे कछु दीया जाइ ।
ताही माहि बसिस यहु जु बरष भगवंत भाइ ॥६०॥

हरि हित दसवन्ध बरष सौं आवे दसा सु द्वारि ।
रज्जब राजा चोर जम त हरि सके न मारि ॥६१॥

सरवस दीजे तो भला नहीं त दसवन्ध काढ़ि ।
रज्जब भज्जब बात यहु बहुत कहैं क्या बाढ़ि ॥६२॥

अतीत अवनि ह्वासी सती बीज विभूति संभानि ।
नर मुक्तौ मुक्ती किरषि मूठष् मूंदी सहूं ठानि ॥६३॥
किरषन सुगल वमादानि यन अजा सु मुकरी माहिं ।
मन रज्जब यवते सुफल नीसर मुफल सुजाहिं ॥६४॥
रज्जब दवा फकीर की राजेसुर की वान ।
उभै ठौर अघ अन्तर मन वच कम करि मान ॥६५॥
असन वसन अघपत उदित साधू दान असीस ।
सती जती यार्छे भला भला करै जगदीस ॥६६॥
पै आसिक अल्लाह क साईं मतीतौं मार ।
ज्यूं रज्जब हित वींद कै होत मरातयू प्यार ॥६७॥
खाणे की सब सलक कन सुलावण की नाहिं ।
आसिक सकहु सुलावई के जालिक पार्माहिं माहिं ॥६८॥
सुख दीय सुख पाइये दुख दीये दुख होइ ।
उभै आंगना के अनंत जन रज्जब करि जोइ ॥६९॥
आसम संवल सोभ पगि लीजै भुख दाइक ।
जन रज्जब पुर काम ह्वै कर सुकृत लाइक ॥७०॥
पैट भरया वहु पुन्नि करि आये परम सु भन्नि ।
रज्जब भूख न ल्यासही जुगि जुगि तिनकै मन्नि ॥७१॥
रज्जब रज रागी भली सुकृत सालण लाइ ।
आरति अहर सु लीजिये भूख जुगनि की जाइ ॥७२॥
रज्जब पावै पुन्नि के सदा सुखी वरसंत ।
दुख पावै नहिं दिल दिया सुखदाई मन्नि मंत ॥७३॥
चतुर पहर संतोष ह्वै पैट भरै भिज अग ।
परमारथ पर कै दिये भूख सदा की भंग ॥७४॥
परमारथ पुन्नि पोरसा पाया प्राण पलाम ।
रज्जब त्यावति माव खिरि घटै न खरचौ खाम ॥७५॥
जीव दया जगदीस दत सब सुकृत सुत होइ ।
सब रज्जब पुन्नि पूत की पावै विरला कोइ ॥७६॥
जीवन जड़ी न जीव कन राखी राम जुगोइ ।
वई देह तौ पाइये सुमिरण सुकृत दोइ ॥७७॥

परमारथ परलोक मन स्वारथ है संसार ।
मन रज्जब बाणिर कही तामैं फेर न सार ॥७८॥
मनिषा देही मौज मैं है कर सीज मन ।
रे रज्जब परलोक कौं सुमिरण सुकृत मन ॥७९॥
सत की वैरी लछिमी आदि कहैं सब कोइ ।
जे दमित्र तौ सत नहीं सत तौ लछी होइ ॥८०॥
रज्जब रिधि चंचल सदा जवै मर बिन बाम ।
पुन्नि पुरिष सुवर सकति नित निहचल सहि धाम ॥८१॥
सदन सरोवर सकति जल सुकृत मोरी राखि ।
विभूति बारि ज्यू ठाहरै सब संतन की साखि ॥८२॥
सूमहु सौं रिधि रूठि करि हेरि छुड़ावहि हाथ ।
रज्जब राती सती संगि मुवौ न छोडे साथ ॥८३॥
रज्जब रिधि सोहू मरया तो सुकृत सीर छुड़ाइ ।
इहि कारी कर ऊबरै माहीं तौ मरि जाइ ॥८४॥
आरंभ मार अपार से तौ रिधि रुधिर मराइ ।
ताको जीवन जुगति यहु सुकृत सींगी लाइ ॥८५॥
कंचला सही कपूर गति मन मच भ्रम है माहि ।
माहन हित मिरचौं रहै माहीं तौ उड़ि जाहि ॥८६॥
सक्ति सुमति अपणीं मर आवै कुमति परे घरि जाइ ।
मंगलगोटा कैथ फल मर देखी गिरताइ ॥८७॥
सुमति सरय सुकृति मैं सकति रहै ठहराइ ।
कुमतिहु संग कुलखणहु देखत लच्छी जाइ ॥८८॥
धरे माहिं करि भवरहि पहुचे जो बित जीव चढ़ावे ।
काया माया छाजन भोजन भाव सु भगवंत भावै ॥८९॥
रज्जब राखी रिधि की भाव भगति भंडार ।
भंडारी भगवंत मन कोई सकै न टार ॥९०॥
रज्जब राखी माल कौ और खजाना माहि ।
सालिक तहां खजानची क्यामति खलहल नाहि ॥९१॥
रज्जब रिधि बहती सबै रहता सुकृत धन ।
मनसा बाचा करमना सो कछु कीजै मन ॥९२॥

मास भणी अरु मास कौं मालिक मिलतौं येक ।
जैसे पावक परसतें कण कूकस न बमेक ॥९३॥
धन धणी धणियहु चढ़े हुये सु होते आदि ।
कण कूकस ब्योरा नहीं पावक परसे बादि ॥९४॥
कै हरि सुमिरे ऊघरे कै सये कोइ संत ।
जन रज्जब द्वै काम की बाकी और अनंत ॥९५॥
साधू घटि ह्वै आदरै असन बसन को राम ।
रज्जब रिधि आई अरथि और गई बेकाम ॥९६॥
अन्तरजामी गरम गति साधू सुंदरि माहिं ।
रज्जब आय एक के बून्यू पोवे जाहिं ॥९७॥
ब्रह्म बिरख धरती धरया जड़ सु जती उणहार ।
सेव सलिल माली सती सीचत फल दीदार ॥९८॥
रज्जब साधू पूजिये साहिब कीजे यादि ।
दुनिया में द्व काम की बाकी की सब बादि ॥९९॥

चौपई दस गारस मोहमन चौबीस चौधहु चौथ धरे गुर सीस ।
दरसनि दुनी अतीत अराध रज्जब साधू माहिं अगाध ॥१००॥

साखी पट दरसन षहु वेद मधि पूजा साध परसिधि ।
इनसे यूं सेया बनी योधि बताई बिधि ॥१०१॥
अंघूप रूपी आतमा परमारथ सब ठाट ।
रज्जब रिधि सुरत सगी सतपुरियौं की बाट ॥१०२॥
बैरागर परमारथी मुकता देइ समंद ।
त्यू सतपुरियो की सकति परमारथ ज्यूं मंद ॥१०३॥
बिविधि घटा सुकृति बरषहि धरम सु धरती आइ ।
रज्जब नीपजै मीपजे गुन दालिद्र सु जाइ ॥१०४॥
माया बरषै मेघ ज्यूं महत मही परि आइ ।
अतीत अगारह मार मधि परमारथ मैं जाइ ॥१०५॥
रिधि रहट ज्यूं बहुत है पुरिष पारीछे पूरि ।
गगन गिरा पर सत मधि पीयहु तन तृण दूरि ॥१०६॥
मर्द मशीने दारिका पीव गया जगनाथ ।
पगहु न पहुम प्राणिया जीतौं चल न हाथ ॥१०७॥

पग बिनाइ पिरथी बहुधा हस्त नाति हिरदैं जीव ।
रज्जब चरनहु मात परि कर कुल पहुच पीव ॥१०८॥
परमारथ पंथि ले गये सकति मिलाई सीव ।
रज्जब करता साम धरम द्वै दत पाया जीव ॥१०९॥
रज्जब पावै प्राणियहि, साधौ के घर माहि ।
सुकृत नसीणी सुरग की सती पुरिष चढ़ि जाहि ॥११०॥
पुनि पंथ बकुठ का पुनि आतमा सु आहि ।
मार्गौ माग सु पाइये साधू मंडल माहि ॥१११॥
सीलवत सुमिरण करै अरु सुकृत की वाणि ।
रज्जब मनिषा जनम को फल पाया तिन प्राणि ॥११२॥
रज्जब रिधि मैं एक फल जे परमारथ होइ ।
नहीं त निरफल निरखिये बिन सुकृत सहु सोइ ॥११३॥
रज्जब सुकृत गिरगिडा करि डोलण सु सुगम्म ।
सुकृत नाति सु सैल सिरि स जाणी सु अगम्म ॥११४॥

चौपई रज्जब राम कही दे रोटी यापरि वात और नहि माटी ।
जती सती सीध मधु ठौर बाकी बहु बेकामी और ॥११५॥

साखी छाड जती सु रही सती पै क्यों पुनि होइ ।
जन रज्जब निरदेहु के दूध न दसवी कोइ ॥११६॥
सती ऊपरै धरम सति जती माउं तत राखि ।
रज्जब यक दून्यू मली सब संतन की साखि ॥११७॥
भाव भगति वैराग मधि सकति भगति सु गिरस्त ।
रज्जब कही विचारि करि सोधिर साधू मत ॥११८॥
सतियहि सुक्रम चाहिये जती अजब संतोष ।
रज्जब द्वै बिन दोइ न दीस दोरथ दोष ॥११९॥
जति तृष्णा सति सूम गति द्वै टाहर द्वै मार ।
जन रज्जब साखी कही तामैं फर न सार ॥१२०॥
रीतो मामारहन की पाणी पुनि न कोइ ।
सत जत पढि बांध बिना बहु मेपै क्या होइ ॥१२१॥
दानि पुनि गिरही धरम बैरागी जति जाप ।
जन रज्जब द्वै काम की साखी सकल बलाप ॥१२२॥

सरवर तरवर सती के मुरछाहुर मत येक ।
रज्जब जल दिल सम दृष्टि यौं ही बड़ा बमेक ॥१२३॥

अरिल बैरागीर बिहंग वास द्रुमि आवहीं
माया छाया ठौर सबै सब पावहीं ।
उभै न राखहिं अंग मंग नहिं वाहि रे
रज्जब रोपे राम जुगल जग माहि रे ॥१२४॥

साखी सती तरोवर जती खग बैठें आइ बिहंग ।
रज्जब अज्जब यहु मता सब सौं एकहि रंग ॥१२५॥

पंच दोइ पूजें परमारथ आतम राम सगाई ।
सिसम सनेहु सु स्वारथ सौदा मन बच क्रम सु ठगाई ॥१२६॥

षट दरसन देखे खुसी जग जीवन भावन मोचनं ।
रज्जब पोषे पंच द्वै सती सपत ये लोचनं ॥१२७॥

बमक सिला षट खेत मधि बाहौ सुकृत बीज ।
रज्जब निपजै भाव भरि ये न होइ यूं बीज ॥१२८॥

षट दरसन षट खेत भल जगत जिमी मधि जान ।
ग्यारसि बारसि बाहिये निपजै एक समान ॥१२९॥

धारा तीरथ धार तमि वेस विसंतरि माहिं ।
त्यूं रज्जब सुकृत भजन समझि देख मन माहिं ॥१३ ॥

जीव जमी सौं बास है, जप जल उभै अकास ।
रज्जब चढ़त न जपि चढ़ै उतरत प्रगट प्रकास ॥१३१॥

मवनि भेट आकास कौं अंम असोप सु जाइ ।
तापरि बरंमू ब्योम ह्वै बिपुल सु बरिषै आइ ॥१३२॥

रज्जब दे से एक कौं परमेसुर के भाइ ।
मन मूरिख माया खरचतौ सबका सरवस जाइ ॥१३३॥

जन रज्जब रिषि राम बिन स्वारथ खरच्यूं हाणि ।
सुकृत सेवा साध का यहु परमारथ जाणि ॥१३४॥

रज्जब रिषि स्वारथ गई सो ठग चोर कुलीन ।
भगवंत भोग क्यू मीढ़ई हरि हित मदै न दीन ॥१३५॥

हाथी भूखै भाग भरि क्यूं छूटै जिव जाणि ।
त्यू रज्जब रिषि राम बिन स्वारथ खरच्यो हाणि ॥१३६॥

पासी छूटे भोग मरि, सती सु सहि सिर भार ।
सती जती सीसे सु यू, रज्जब समझ विचार ॥१३७॥

चौपई करसा सती जती रजपूत उभ राम राजा आगे मैमूत ।
गिरही भोग भरै मंझारि बैरागी खाइ सीस उतारि ॥१३८॥

साखी गाढ़ी गाँठि गिली गई गाफिल काया साथि ।
रज्जब रिधि सती रही जु हरि हित खरची हाथि ॥१३९॥

रज्जब आतम अवनि परि पाणी बरिषा होइ ।
उभै अंकूर न ऊपजही तौ बीज बिघन है कोइ ॥१४०॥

साधू दरसन देखतैं वृग जु दुरे दिसि माँहि ।
बीज मल्या सो जाणिये जो बरष्यू ऊगै नाँहि ॥१४१॥

दरसन दाहा देखि करि मुखो कँवल कुमिलाइ ।
तौ रज्जब तिहि दास भ्रमि सेवा फल को लाइ ॥१४२॥

रज्जब सेवा संत की मन मैल कर कीजै ।
सो कृषि कसे नीपजै भूमिर माझा बीजै ॥१४३॥

चौपई दया धरम जे जिस मैं नाहीं गह ला ज्ञान अज्ञान्यूं माहीं ।
यूं आगा क्यू होइ न सामा रज्जब आइ गये बेकामा ॥१४४॥

साखी स्वारथ की गाँठें खुली सुणि सतगुर की साखि ।
परमारथ पच्ची हुआ साम बद कहैं साखि ॥१४५॥

सुमिरण सेवा सबद मधि सुकृत का अस्थान ।
भुर मंदिर सोपैं बसैं रज्जब संत सुजान ॥१४६॥

रज्जब सत सुकृत बिना सूने सहर सरीर ।
असन अतीत न पावई सूना जाइ फकीर ॥१४७॥

सती बिना सून सहर सत्य सगाई नास ।
रज्जब ऊजड़ बोदरहुं असन अतीत निरास ॥१४८॥

जती सती को पूछई सबको देहिं बताइ ।
बस्ती मैं बस्ती उहै नर देखौ निरताइ ॥१४९॥

चौपई बस्ती बंदे ऊजड़ और, माय गये न पावैं ठौर ।
गुप्फ्त वृच्छ मग सैन्या बास निरफल तरबर जाहि निरास ॥१५०॥

## दान निदान पुन्नि प्रवीन का अंग

रज्जब भरिये धरम कौं सारै वासण माहिं ।
फूटे मैं जोक्यूं भर्णी हरि पुर पहुंचै नाहिं ॥१॥

मन रज्जब जेहि पात्र में यह विधि दीजै राइ ।
पानी पुन्नि न मेलिये तबहीं नीकसि जाइ ॥२॥

राम बिमुख ऊसर सबै साध सिरोमनि खेत ।
मन रज्जब तहं बीजिये राम राइ कण हेत ॥३॥

रज्जब सुरही सर्प समि पात्र कुपात्रहिं जोइ ।
वहिं तृण चरि अमृत स्रवै वहि अमृत विष होइ ॥४॥

ठौर कुठौर न देखई इंद्र उदार सु जोइ ।
पै रज्जब निपजै भली त्यों ऊसर नहीं होइ ॥५॥

सार समंद मुकता भुकति कदली केसर खेत ।
रज्जब निपजै ठौर बस त्यूं पातुर पुनि हेत ॥६॥

सेवे कौं सांचा गुरू मनिवे कौ भगवंत ।
जस वस कौ ये जीव सब यहु रज्जब निज मंत ॥७॥

रज्जब जल दल सम दृष्टि सेवा समुझे हाइ ।
कुमि बेटी गुर बीद कौं जान्यू देइ न कोइ ॥८॥

गुरु पूज्या भूके पूजिये गुर पूजण की भाव ।
रज्जव अज्जव ये कही सुनहु सनेही दाव ॥९॥

## सुकृत निदान का अंग

तन मन मारिर भाव सेवंदा ब्रह्म समान ।
दया धरम का दूजा डेरा रज्जव किया निदान ॥१॥

रज्जब दीया पाइये निरबैरयूं निरबैर ।
सब सग भाबर भूख भाकरी तन मन किया न पेर ॥२॥

रज्जब दीया पाइये मारया मारै माइ ।
यहु धोखा संसार मधि साहिब लिया न जाइ ॥३॥

## निरबैरी निरमिलाप का अंग

पौणि पौणि की कहै न पौमी सहरि बस सब कोइ ।
निरबैरी नर नगर विराजै मेला जनमि न होइ ॥१॥
खाने बहुत खान सुलतानौ देस बरोगहु बोप न कोइ ।
कामि कमैती मिलि दिन लागै निरबैरपू मेला नहिं होइ ॥२॥
आरंभ अटके आदमी सरक्या रती न जाइ ।
निरबैरी न्यारे रहैं क्यू करि मिलै सु आइ ॥३॥
नर नापिग निरबैर जीव जल हरि सु हंस सों आये ।
बिचि बिगरे आसम अंम दसि सांई पूर समाये ॥४॥
तन सरकस के तीर ये वह दिसि बसाये ।
सो फिरि बहुरि म मिलि सके कछू रोस कसाये ॥५॥
विविधि भांति की बंदिग्यू बहु सेवक साये ।
साहिब सवमें पैठ करि सब ठौर रंजाये ॥६॥

## पात्र कुपात्र का अंग

पात्र कुपात्र पिछाणिये जे सिरजे करतार ।
रज्जब उनमें राम जी उनमें बिसै बिकार ॥१॥
विस बिरचि रामहि रचै सारा साधू पात्र ।
जन रज्जब सो पूजिये सेवा सुफल सुजात्र ॥२॥
जन रज्जब ज्यूं ईख बिष रसू पात्र कुपात्र बसेख ।
पाणी पुषि सु सीचिये क्या क्या निपजै देख ॥३॥
ससक समरि वन खारवा बैन बीज बलि धूर ।
रज्जब बुधि बसुधा मधुर उपजै अरथ अंकूर ॥४॥

## सेवा का अंग

सेवा साना सोमहां निपजै तन मन माहिं ।
यहु प्राणी जित जानि यहु तिहिं घरि टोटा नाहिं ॥१॥
खालिक खिजमति खूब खित बरागर की लाम ।
राम रतम तहं नीकसै सो ठाहरि उर आम ॥२॥

परमारथ पारस परस हंस लोह ह्वै हेम ।
जन रज्जब आगिर कही मनसा वाचा नेम ॥३॥
विविधि भांति बिन बंदगी कठिन करी महि जात ।
सेवा के बसि साइयां सुर नर किती एक बात ॥४॥
रज्जब सेवा बंदगी दिल दासा तन होइ ।
सतगुर सांई साध सुर ताके बसि सब कोइ ॥५॥
रज्जब अज्जब काम है मन बच क्रम बंदा होइ ।
सो बदौ बंदा धणी छाग्यो छावै सोइ ॥६॥
बंदौ बंदा है धणी हरि दासौं का दास ।
सेवग धरि सेवग सुण्या रज्जब बिरद प्रहास ॥७॥
भगतबछल भगवंत की सुनिये दासौं दास ।
बहु बसिवंती बंदगी बिरलै बदौ पास ॥८॥
माया ब्रह्म महंत महीपति मुलिक मसख्त मान ।
रज्जब बासही बंदगी मन बच क्रम करि जान ॥९॥
एक मना दृढ़ एक सौं सो क्यू न निवाजै देव ।
मजे सौं बस्मे भये रज्जब सांची सेव ॥१०॥
सालिक मुलक सबकौं मिलै माया मसकति माहिं ।
तथा बंदगी ब्रह्म परापति कुल कारण कोइ नांहि ॥११॥
विविधि बंदगी ब्रह्म पाइये किरत अनेकौं कौला ।
अणसमझे कौ उलटी लागा समझे कौं सब सौला ॥१२॥
महा मोहिनी बंदगी मोहै सांई साध ।
रज्जब महिमा क्या कहै सेवा सबन अगाध ॥१३॥
सेव पियारी साइयां सेवा कै बसि साध ।
जीव सीव सेवा रचै सेवा महल अगाध ॥१४॥
मन बच क्रम तिरसुद्ध ह्वै मिलै प्राणपति सोइ ।
सेवा करि हाजिर हुआ सेवा हाजिर होइ ॥१५॥
सेवा कर अकलि कहै सेवा अलख अघाइ ।
रज्जब सुर नर सेव बसि सेवा बड़ी सुबाइ ॥१६॥
बड़ा बसी सौ बंदगी आपर रीझ राम ।
तौ सेवा सम कौन है संत सुधारण काम ॥१७॥

सेवग भाव सु सुरति मैं सग्न रहै ठहुराइ ।
यहु बंदे की बंदगी आगे खुसी खुदाइ ॥१८॥

सेवग मिलै न बीछुड़ै जब दिल सेवा माहिं ।
रज्जब रख्या सु बंदगी एक दूसरा नाहिं ॥१९॥

ब्रह्म बंदगी मैं सदा सेवा मैं सब सिधि ।
खिजमति मैं अजमति रहै, रज्जब पाई विधि ॥२०॥

रज्जब बैठी बंदगी बंदे के दिल माहिं ।
सेवग सेवा मैं गरक सा फल चाहै नाहिं ॥२१॥

साँई पद सब त्याग करि, सेवग सेवा सेइ ।
रज्जब महगी राम सौं सो सेवा महिं देइ ॥२२॥

साँई सेवा सोच सी सो किसही नहिं देइ ।
जुग प्रतिपालत जुग गये अरन अधान सेइ ॥२३॥

वादा देइ न बंदगी बंदे करहिं विलाप ।
तो सेवा समि को नही जापर झगड़ै आप ॥२४॥

जीवन जडी न जीव कनि राखी राम जुगोइ ।
दई देइ तो पाइये सुमिरण सुकृत दोइ ॥२५॥

खिजमति खूवहु खूब है सेवा सब सुख रासि ।
वडौं वड़े होहिं बंदगी जन रज्जब जिस पास ॥२६॥

साँई सेव सवन कौं साँई कोई नाहिं ।
मनसा वाचा करमना मैं देख्या मन माहिं ॥२७॥

रज्जब बेटी राम की भगति सु सेवा अंग ।
रिधि सिधि निधि सौंडी सबै आडै तन के संग ॥२८॥

रज्जब बनी बंदगी आई सिरजनहार ।
जा जुव कौं सो दीजिय रिधि सिधि बांगी सार ॥२९॥

सांची सेवा बंदगी जापर रीझ राम ।
दरस परस दासौं मिलै सवग सीझै काम ॥३०॥

भगवंतहि भावै भगत सौं साँई मांगी सब ।
ब्रह्म कबूली बंदगी रज्जब पाया भेव ॥३१॥

भाव गराही बंदगी परि बिसकै सो भाव ।
जापरि मनमानहु दवै रीझै का है चाव ॥३२॥

नांव ठौर निज थाल है, भाव भगति भोजन ।
यूं प्रसाद सेंहि प्रानपति देहि सु साधू जन ॥३३॥

प्यासे मांव मो मात के छीर सनेह पिलाइ ।
रज्जब यहि सेवा करत सांई बसि बसि जाइ ॥३४॥

सेवा संकट बंदगी दासा तन दुख होइ ।
रज्जब मृत भैभीत गति मासंभि सकै नहिं कोइ ॥३५॥

रज्जब मंजन भाव के सदा रहै भगवंत ।
ज्यूं पंच तत्त के प्यंड मैं जुगति सजोइया जंत ॥३६॥

भाव भगति के भुवन मैं सुर गोव्यंद ह्वै साथ ।
जन रज्जब बड़ भाग मृत यहु मम महल अगाध ॥३७॥

माया मनिष उपावई हुनर करि सु हजार ।
त्यूं रज्जब हरि बरस कौ सेवा भांति अपार ॥३८॥

अनेक भांति की चाकरी चाकर चतुर अनेक ।
रज्जब पावै राम धन माया मुद्रा भेक ॥३९॥

बहुत टांगरे बहुत धन बणिजै बणिया जीव ।
रज्जब आरंभ इहि भरम मास सु मच्छी पीव ॥४ ॥

जीव महाजन अंग टांमरे, करि आये बणिये का साज ।
रज्जब बणिज करै ब्योपारी केवल सांई संपति काज ॥४१॥

बिबिधि भांति के बहुत अंग जिव सौदागर पाइ ।
एक बणिज बित टूटई एक बणिज बधि जाइ ॥४२॥

बिबिधि सास्त्र सैन्या बिबिधि बिबिधि सु मावथ राज ।
एक अंग एक मागही एक सु मार्वहिं काज ॥४३॥

मौषा करि नर निस्तरहिं एक एक गुन राखि ।
रज्जब सो सीखे सुणै बद वोप की साखि ॥४४॥

सकल गुणहु संजुक्ति जन सो तौ आवै आप ।
पै एक सुलक्षण होइ मन ताहि न तीन्यूं ताप ॥४५॥

बारहि सोलह सुरत है राहु केत की माहि ।
रज्जब गृह उगृह सबै सकल कला सुसि जाहिं ॥४६॥

रज्जब राखौ बंदगी जे सभु धीरप होइ ।
त्यूं कर अंगुरी हासतौं दाग न देखै कोइ ॥४७॥

रज्जब रह न मीजिये जे मुकता निज होइ ।
सांच ठेलतौं सत्र हरि, बुरा कहै सब कोइ ॥४८॥

केसरि करि कांटा चुम्या काटया किसही प्रान ।
सेवा मानी स्वंच नै सौ मृत गति सति जान ॥४९॥

कुस्की चौरे कूकडी केवल कण ही काज ।
चुगै चुगावै चीटसहु काढि सुरौड़ी माज ॥५०॥

गुर मत नाई नांव धर भाव मीज महु माहि ।
रज्जब हरि मरि वेहिगे हाली जिव की काहि ॥५१॥

मांब माज निज साहिय ऊमे सेवा पास ।
रज्जब सो क्यूं काटिये सहसगुणी कण मास ॥५२॥

गुर सेवा सिष प्राण की सिष सेवा गुर गात ।
रज्जब दून्यू दास हैं, नहिं स्वामी की मात ॥५३॥

अंतरजामी गरम गति साधू सुंदरि माहिं ।
रज्जब जाये एक के दान्यूं पोपे जाहि ॥५४॥

पंची पोपे पोपिये देखौ घटि घटि प्रान ।
तैसें रज्जब राम की दीवानी दीवान ॥५५॥

साधू निरमल आरसी हरि आमौं बिन मान ।
रज्जब भोजन भाव बिधि अनखानो सो खान ॥५६॥

## सेवा सुमिरण का अंग

आरंभ करत न हरत है अबमा का आधान ।
ती सेवा सुमिरण क्यू घटै समुझौ संत सुजान ॥१॥

संकट नाहीं सेस कौं जद्यपि सिर परि सृष्टि ।
रज्जब संग न मजन मधि परमारथ मैं दृष्टि ॥२॥

वृच्छ बधोतर ना घटै मिटहि न फलहु सु पोष ।
ती रज्जब भृत कृत करत भजन न उपजै दोष ॥३॥

बान्स बिद्याधर फिरहिं, पै बारि न बिद्या छीन ।
ती टहल करत टहलै नहीं जे उर हरि सौं लीन ॥४॥

गुर सेवा गोम्यंद भजन उमै बात बित येक ।
रज्जब मीरज दामि है मंब मंपुपा येक ॥५॥

गुनी ग्रंथ द्वै दास कैं वीम्यू विरख सु मेक ।
त्यूं सुमिरण सेवा भणी रज्जब समस्त अमेक ॥६॥
सुमिरण सुकृत सौं भला सब काहू का होइ ।
रज्जब अज्जब उभै गुण करत न संकहु कोइ ॥७॥
मन रज्जब गढ़ ग्यान कै दीसै द्वै दरबार ।
एकै सुमिरण संचरै एक पुसि ब्योहार ॥८॥
मन सुमिरण सुत ऊपजै तहं परमारथ होइ ।
रज्जब देखौ दृष्टि सौं, सखा समीपी दोइ ॥९॥
जहं सुमिरण सुत ऊपजै तहं बासा तन दूध ।
मन बच क्रम रज्जब कही बाति विमल तिर सूध ॥१०॥
सुत सुमिरण जीवन जुगत पै परमारथ पोष ।
रज्जब देखौ देखिय द्वै कै द्वै बिन दोष ॥११॥
ओपदि बिन पथ क्या करै पथ बिन ओपदि बादि ।
यूं सुमिरण सुकृत अमिस उभै न पावहिं बादि ॥१२॥
जीव जगत गुर भाव निज यू सुकृत रूप सरीर ।
यू उभै मिलत मानव अमर मिरतगि अमिस सु बीर ॥१३॥
ब्रह्म आतमा सुमिरण सेवा जगपत जोड़ा साज ।
इनहि सुनि सुख सुत उपजै अमिस तहां दुख राज ॥१४॥
सवा सुमिरण पाव प्राण क हरि के मारग जाग ।
इन चरनो चलि जाइ ब्रह्मपुर, बिचि बस बिरह बियोग ॥१५॥
सब सग मात्रा काम की देखौ माथिर संग ।
मन रज्जब रामहि भगे सबल सुकृती अंग ॥१६॥
राम काम की देखिये चतुरंग सेन्या संग ।
तैसैं रज्जब गोब कन सकल सुकृती अग ॥१७॥
श्री मंगल को तार बहु सो सुर साधन साज ।
त्यू रज्जब सुकृत सबै नांव निरूपम काज ॥१८॥
सुकृत सेना गंध सब मिले अरगजा होत ।
रज्जब साहक लावहीं गाब निरपती मोत ॥१९॥
रज्जब पंपी नांव परि पप सबै सुकृत ।
उभै बंग एकै भये अगम अकासहिं जत ॥२ ॥

सकल प्रानपति साइयाँ स्यूं सुकृत पधि नाँव ।
उम अंग लाग इनहु जन रज्जब बलि जाँव ॥२१॥

## सत जत सुमिरण मिश्रत का अंग

सत जत सुमिरण सारिखा जिव कौं समा न और ।
वहि सुखदाई प्रवति यह, यह पहुचावे ठौर ॥१॥
सत सुखाई जति जत जतन नाइ लगे निस्तार ।
जन रज्जब जग जीव कौं सीमि लगे संसार ॥२॥
नर निस्तारा नाँव लगि पुनि राम सत जत ।
रज्जब कही बिचार करि सोधिर साधू मत ॥३॥
सीसे सीसै सीस से सत जत सुमिरण माँहि ।
मनसा वाचा करमना चौथी ठाहर नाँहि ॥४॥
रहुति सहति सुमिरण करै सतवादी अरु सूर ।
रज्जब तिन सौं राम जी कहौ किती मत दूर ॥५॥
सुमिरण सुकृत सीस व्रत जिनकौं दे करतार ।
रज्जब पाई मौज मुर भज अमम औतार ॥६॥
रज्जब जत मैं जोग सब धरम दया अस्थान ।
नाँव ठाँव निरगुन रहै, मन बच क्रम करि मान ॥७॥
सत जत सुमिरण मैं रहै, सांई साधू बोइ ।
जा तनि जावे अगम मुर ठाहर डेरा होइ ॥८॥
धन सरीर सुकृत करहि जप तप से प्रतिपाल ।
रज्जब पाई मौज मुर, भाग मले तेहि भाल ॥९॥
रज्जब सुमिरै राम जी सत जत सुमिरण साज ।
मन बच क्रम तारहि तिरहि, जग जलनिधि सु जहाज ॥१ ॥
सीस रहै सुमिरण गहै, सत संतापण मेह ।
रज्जब परतपि राम जी प्रगट भय तेहि देह ॥११॥
एक रहत रंकार रत तीर्व सती सु होइ ।
रज्जब पाई मौज मुर, ता सम और न कोइ ॥१२॥
हरि हिरदै न बिसारिये यहि व राखि जतन ।
रज्जब सत जत माँहि स पाय प्राण रतन ॥१३॥

पंचतत्त्व जत हाथौं सती मुख मीठा उर गांव ।
जन रज्जब ता संत की मैं बलिहारी जांव ॥१४॥

दृग दरसन साधू सुनी रसना रटि रंकार ।
रज्जब आतम राम रुचि ते बिरला संसार ॥१५॥

साच बाच माहैं सदा सील सिसम ठहराइ ।
रज्जब जन रंकार रत महिमा कही न जाइ ॥१६॥

सांच सहित सुमिरण करै सतवादी जिव जंत ।
रज्जब रीझ्या देखि करि नमो नमो मिज मंत ॥१७॥

जत मत माहैं पाव धुक सुमिरैं सांई नांव ।
रज्जब सत सुकृत लिये ताकी मैं बलि जांव ॥१८॥

सुमिरण सुकृत सांच बाच गुर प्राण सनेही पंथ ।
रज्जब रहिये सगहु मैं तौ न लगै जम अंथ ॥१९॥

सुमिरण सुकृत सील सांच सौं साहिब हासिल होइ ।
चारथू जुग चारथू सबै रज्जब देखौ जोइ ॥२०॥

सुमिरण सुकृत थवण धरि सांच सील परवेस ।
चारि पदारथ प्राण गहि यहु उत्तिम उपदेस ॥२१॥

भाव भगति सुकृत लिये जे जत सुमिरण होइ ।
मनिषा देही चतुर फल पावै बिरला कोइ ॥२२॥

आतम की औसादि को बडे ध्यार ये काम ।
सात सहित सत जत लिये रज्जब सुमिरैं राम ॥२३॥

मनिषा दही चतुर फल भाव भगति जत आप ।
रज्जब दीय राम की आतम कौं ये आप ॥२४॥

भाव भजन मामा रहित पुसि सैं सत संतोष ।
पंच पदारथ पाइये रज्जब रहिये मोष ॥२५॥

दया धरम निरबैरता सांचर सुमिरण माहिं ।
पंच पदारथ बर बसैं रज्जब टोटा नाहिं ॥२६॥

रिधि सिधि निधि पुरुषारथ सहित रतन पदारथ सब ।
रज्जब पावै राम सौं जीव सु सुमिरै जब ॥२७॥

चौपई भाव भगति सत जत संतोष ग्यान ध्यान धीरज पुनि मोष ।
पिया दया दासा तन सील रतन सु राम चौन्हा कीन ॥२८॥

साखी माव भगति गुन ग्यान गरीबी सांच सील संतोष ।
दया धरम पतिव्रत छिमा नित पारख प्रभु पोष ॥२९॥
तप तमि विद्या बुद्धि बल वखत बसी बखराम ।
रज्जब पाये पंच बस क्यू न सरै जिव काम ॥३०॥
ष्यंडे उपना राज कुल पान गुरू मत मधि ।
रज्जब पाई मौज मुर, मापरि क्या दे वधि ॥३१॥
रज्जब अज्जब वस्त श्री साहिब जी का नांव ।
मनिष देह का फल मिल्या इह औसर इह ठांव ॥३२॥

## रत विरुत का अंग

जा माया मैं जग खुसी साधू के दुख सोइ ।
रज्जब रजनी एक मैं घूघू चकवा जोइ ॥१॥
जा जस सौं मन वृद्धि सोइ जवासै हाणि ।
रज्जब रिधि जीवन सवौ साधौ मृत करि जाणि ॥२॥
रज्जब सुख संसार का साधू कै देख हाणि ।
जीवहु जीवनि मीच मुनि रत विरुत रति जाणि ॥३॥
साधू असत यु सक्ति मधि ज्यू मुराम जल मीन ।
रज्जब दीसै भिन्न गति होतहु अंग सु भीन ॥४॥
एक कपूत मातहि भषै एक मात सुत खाइ ।
बिभूति सु वीछनि ब्यालमी नर देखौ निरताइ ॥५॥
जो तत चौरासी चरै, ताकौं चुगै चकोर ।
एसै माया मनिष मुनि देख्या इ दिस ठौर ॥६॥

अरिल चौरासी सत्र अंत मुसंत चकोर हैं
महली प्रगट बिभूति बहुत आतम दहैं ।
एकहु ऐन अहार एक संहारिये
एकहु जीवनि जड़ी एक पुनि मारिये ॥७॥

साखी बरतनि बरतै साधु सिध सोई सकति संसार ।
रज्जब रिधि जीवनि तनहु मन मनि भिन्न बिचार ॥८॥
माया के त्यागे मनिष आपन्वंत अपार ।
रज्जब चर्महि बिभूति तजि ते बिरला संसार ॥९॥

रज्जब रूठा रिद्धि सौं कोई कोटि मधि येक ।
मन माया सौं मिल चलै ऐसे प्रान अनेक ॥१०॥

सकति सूर सम देखिये नर नैना सु अनेक ।
उभै उभै अंग मिलि चलैं तहं पूष्र कोइ येक ॥११॥

चौरासी चेतनि हू माया मेघ की पाव ।
रज्जब वासा आगि जुदे इन्यूं उपजै दोष ॥१२॥

रज्जब मन माया बंधे ज्यू अहि कठिन करंड ।
स्वामी ताषा क्यूं बंधे बामैं अगनि प्रचंड ॥१३॥

माया दीपक देखि करि, नैन नरौं ह्वै पोष ।
तहां उदरैं पतंग जिव तिनकौं उपजै दोष ॥१४॥

काया काष्ट प्राणी पावक साईं सुष्टि समान ।
इन द्यूं पलटैं सो पावैं सोजैं पद निरवान ॥१५॥

अरवाहि तलै औजूद के सब लग माया रूप ।
प्राण पुरिस पव प्यंड परि, तब निज तत्त अनूप ॥१६॥

ओंकार ऊमर सकति बूडे प्राण सुवार ।
रज्जब रिधि आतम तलैं से तिरि लंघे पार ॥१७॥

काया मसक दिये बस भरिया यह्यु अस अससैं भार ।
सो रीती करि मरौ ज्ञान दम रज्जब उतरौ पार ॥१८॥

काया सिर धरि बूडिये तन तलि दे तरि जाइ ।
जन रज्जब यूं जानि लै जीवन मरन उपाइ ॥१९॥

रज्जब बूडै आतमा सिर परि सिला सरीर ।
सो वप बोहित पांव तलि तिरिये जल गंभीर ॥२ ॥

हंस बस दे हीर से मिले सु माया मंड ।
प्यंड प्राण न्यारा भये सहज तजे ब्रह्मंड ॥२१॥

प्राण प्यंड पहराइये तबहीं सकल उपाधि ।
न्यारैं नाराइन कल्या सहजैं होइ समाधि ॥२२॥

गुड महुवा मर बेर जड़ मगिन उदकि मिलि मद ।
ये रज्जब न्यारे निर्मल सगति ही सौं रद ॥२३॥

नर नारी का संग दुइ मुक्ता मदन सुजान ।
रज्जब समझे उभै घर, संकट मुकत सुजान ॥२४॥

एक गये निज काम करि, एक गये बेकाम ।
रज्जब एक बिमुखे भजत एक सनमुखे राम ॥२५॥

## सुमति कुमति का अंग

रज्जब मन माया सब ठौर है पै सुमति कुमति का फेर ।
वह पहुंचावै सुरग कौं वहि मरकि म जाता बेर ॥१॥
सुमति पंथ सौ सुरग का उत्तिम ऊंचे थाहि ।
दुरमति मारग दुरमती रज्जब नर किस माहिं ॥२॥
दुरमति विल बीरम दुखी सुमति सदा सुख रासि ।
जन रज्जब जोइर कही देखौ सकल विमासि ॥३॥
कुमति कुकरमहु कंद है, सुमति सुकृतहुं मूल ।
जन रज्जब जामी जड़ी उभै एक अस्थूल ॥४॥
रज्जब बंदा भाव का गुण औगुण सु बिकार ।
एकहु जीत्यूं स्वर्ग है, एकहु नरक विहार ॥५॥
आदम ईदम औलिया आदम ईदम होइ ।
सूर स्वान मनिया सही रज्जब समझम जोइ ॥६॥
दास भाव सुत सुमति का मोहै आतम राम ।
कुमति कूखि अभिमान है मां बेटे बेकाम ॥७॥
पांच तत्त सो परम है पंच तत्त कर कर्म ।
बरतणि ज्ञान अज्ञान की रज्जब साह्या मर्म ॥८॥
इंद्री आमे ऊनबन तब लग खिवणि खिवाहिं ।
समझि सुध्रि सत के फिरे मनसा बीज बिलाहिं ॥९॥
आतम अंभ अकास में तब लग नीचे जाहिं ।
जन रज्जब तम त्यागतैं उभै अकास समाहिं ॥१०॥
मनसा अंड अज्ञान गति तब लग नीचे जाहिं ।
रज्जब पाये ज्ञान पर उलटे सुध्रि समाहिं ॥११॥
अंडा मवनि न छांड़ई बिना पंख परगास ।
रज्जब रहसी रज पड़या गम्म न मगन निवास ॥१२॥
तेरू तोयं तिरि चलै अतेरू जल बूड़ि ।
कूट पंथी पिरथी पड़या सपंषा जाई ऊड़ि ॥१३॥

अचेत अंग मोहामई क्षित छांडै नांहि अंग ।
रज्जब सो रज त्यागि दे चेतन चंबक संग ॥१४॥
नरक महीं निहकाम कौं तापरि करहु रतबाद ।
देखौ दुरमति घी बिना दोजक नहीं दमाद ॥१५॥
सुरग अस्थाने सुख नहीं दुख महिं दोजक मांहि ।
रज्जब सीतल तपत बिच आपद सापै मांहि ॥१६॥
अगनि मशानी देखिये शामी सीतल नीर ।
रज्जब सून्य ठौर का ब्योरा पाया बीर ॥१७॥
दुरमति दारू सौं मरे, बप सुमान बिधि मांहि ।
रज्जब त्रिगुणी मरे बिन निहचल उभै सु नांहि ॥१८॥
कठिन कुमति की गांठि है, दई सुमद मति खोलि ।
जन रज्जब सो सुमति बिन कोई सकै न खोलि ॥१९॥
मूलि बेवड़ा सुगद मति गांठि गरग की बेद ।
जन रज्जब खोसण मतै ता मसलौ ये भेद ॥२०॥
कूवै कम्भिख कोस भरि, त्यू कुमति सु पाया मांहि ।
जन रज्जब तीन्यूं बहैं, कबहू उबरे नांहि ॥२१॥

## सक्ति उभै गुणी का अंग

चौपई माया बेड़ी बेड़ी माया हरि सिद्धी का भेद सु पाया ।
नरक नसेणी सरगि बिमान रज्जब रिधि के दोय बखान ॥१॥

साखी स्वारथ परमारथ सकति सौ धुग माया धम ।
रज्जब रुचि सौं काढ़ि स्यो जो है जाके मम ॥२॥
परमारथ पहुंचै मिलै स्वारथ पड़ै अहार ।
रज्जब त्रिगुणी तिसी मैं समझि करौ ब्योहार ॥३॥
घोड़ घोड़ा कौम विधि चढ़ि चौगान खिलाइ ।
यू स्वारथ परमारथहिं सकती चलै संमाइ ॥४॥

चौपई माया बह्म बह्म सोइ पाया काया काष्ट भेद सु पाया ।
जागे जोति सोवतै कठै समझै नांहि सु मूरिख सठै ॥५॥

साखी अठार भार उभै गुणी हरि सिद्धी गुण होइ ।
याही मैं जीवत जड़ी याही सो मृत होइ ॥६॥

इक बहुनीर विभूति मैं वो वो गुण इन दोइ ।
एक बधै इक बालियहि मन अप वेखो जोइ ॥७॥
रज्जब माया मन सम बैरी मीत न होइ ।
कुकृत उपजै इनहु सौं इनसौं सुकृत होइ ॥८॥
जिम्या रूपी जीव है, दावमई सू सकति ।
ये सास्तर रसना हुये समझ्या साधू मति ॥९॥

## माया जड़ चेतनि का अंग

रज्जब जड़ चेतनि दरौ गुर ज्ञातहु के संग ।
लोहा पारस मिरतग जीव ते परसत पलटै अंग ॥१॥
नर नग मादा मानर जंगम बिछुरे बहुरि मिलाहि ।
यूं माया मुइ जीवति देखहि मुनिवर नैनौ माहि ॥२॥
छाया जोड़ी मूसल मेलै चंदक सुई चलावै ।
जन रज्जब जड़ चेतन दीसैं जे सतगुर दिखलावै ॥३॥
रज्जब बसुधा बीज जड़ मिलतौ चेतनि होइ ।
सौ दीसे सब जीव ते मूवा नाहीं कोइ ॥४॥
काया ऊनी कूमनी पाप का काया माहि ।
चलदल दीसै जीव तैं कही कौन विधि जाहि ॥५॥
माया ममर मरै नहीं दासी बस न घटाहि ।
रज्जब रिध दारू दसा दमधी धुंग उड़ाहि ॥६॥
सिठिया सकति समानि है संकट स्वाद सु पुष्टि ।
माया मिसरी मरवत दीपहि देखै कौ दिव दृष्टि ॥७॥

चौपई रज्जब औषधि रोग लड़ाई जड़ी माहि चेतन गति पाई ।
तौ मूवी मूवा सौं कोइ माहि, जीवत मति दीस सब माहि ॥८॥

साखी पंच तत्त जीवहि सदा आतम अमर अनादि ।
जन रज्जब बिछुरहि मिलहि मूये कहैं सु बादि ॥९॥
ब्रह्म कामि ब्रह्मंड सु चेतनि रज्जब रजासु होइ ।
मुई जीवती माड कौ बूझै बिरला कोइ ॥१०॥

चौपई माया मनसा मरै न कबहू जास्यू भूत होत है सबहू ।
जड़ चेतनि देखी हरि सिठी मुई जीवती जाइ सु गिठी ॥११॥

गुड़ महुवा अरु बेर बड़, जल ज्वाला मिलि मद ।
यूं पंच तत मिलि माया पाकी जीवकरन कौ रद ॥१२॥
रज्जब मुई न मिरतगा यदभू अगौ माहिं ।
मतक मुसि भमसा भये सनै तनैया माहिं ॥१३॥

## माया का अंग

रज्जब आतम राम बिचि कनक कामिनी कोट ।
यहु आमा अंतरि इहै, यहु पड़दा यहु ओट ॥१॥
माया बांध्यू मन बंधै खोल्यूं खुलता जाइ ।
रज्जब ग्रह उग्रह कह्या नर देखौ निरताइ ॥२॥
महांक खिप्या फूलहु तल केतक भड़े सु जोइ ।
त्यू सधु माया दीरघ ग्रह्या परि जीव सु आखी होइ ॥३॥
मन माया सौं बंधि करि, निहचल कदे न होइ ।
रज्जब पींडा धाक परि अस्तिर सुण्या न कोइ ॥४॥
रज्जब माया मिलत दुख बिछुरत बिहुरै प्रान ।
करवत रेती साण कै आवण जावण जान ॥५॥
बणि भमार बित माये फाटैं नीर गये परि फाटैं ताल ।
त्यूं रज्जब संपति बिपति मन कौ करै बिहाल ॥६॥
रज्जब रिधि बाहिनी रमत ही जीव माहिला जाइ ।
सौ मन माया मीन बल नर देखौ निरताइ ॥७॥
रज्जब राखहिं रिधि सौं मिलहिं मानवी आइ ।
सिरखै सोइ बिभूति बिन जब सकति सवम सौं जाइ ॥८॥
बर भामनि पहु पुरिष गति जोबन सुत उनहार ।
रज्जब आतम बार कै भ्रम भूसे भरतार ॥९॥
माया मारै मीच ह्वै बिण बालीही भाइ ।
रज्जब सिष साबिक बसे सो टासी नहिं जाइ ॥१०॥
जो माया मुनियर गिलै सिष साधिक से खाइ ।
ता माया सौं हेत करि रज्जब क्यू पतियाइ ॥११॥
एक गये नट नाच करि एक बछे अब आइ ।
जन रज्जब एक भाइये बाबी रची सुवाइ ॥१२॥

माया तरवर पत्र घट इक उपजै इक जाहिं ।
रज्जब पूरण बसो दिल रीता कबहू नाहिं ॥१३॥

ज्यू सूरिज दीसे समुदि मैं मीन मर नहिं कोइ ।
त्यू रज्जब माया मगन हरि गुन मिलत न होइ ॥१४॥

पलवा परवत पलक का उभै एक करि जानि ।
जन रज्जब ओल्यू दहै हरि देखणि की हानि ॥१५॥

नामरदौ भुगती नहीं मरद गये करि त्याग ।
रज्जब रिधि क्वारी सु यू पुरिष पाणि नहिं लाग ॥१६॥

चेरी के चेरी किये चौरासी सब जंत ।
तौ रज्जब कहि कौन है, सकति समान महंत ॥१७॥

रज्जब सकति सुमेर समि चरन चलहु दिढ़ि वास ।
सो ठाहर छाई नहीं छाया मिस भर नास ॥१८॥

ज्यौं नगरी परि हात है, चाकर मनिया जान ।
सो सब एक समानि है रज्जब फर न जान ॥१९॥

माया मुक्ति बोलै नहीं सदा लिये चुप धार ।
रज्जब बकते सब फिरैं इस मोनणि की मार ॥२०॥

## सक्ति शिव सोध का अंग

ब्रह्मंड प्यंड प्राणी सहित यहु सब रिधि सरीर ।
रज्जब पावै कौन विधि सक्ति समंदर तीर ॥१॥

ब्रह्मंड प्यंड जिव जोति मगि मधि माया मुर रूप ।
रज्जब निकसै कौन विधि रिधि छाया हरि कूप ॥२॥

ओंकार आतम सहत तन मन ससि सरीर ।
रज्जब न्यारा रिद्धि सौं कौन कौन विधि बीर ॥३॥

ब्रह्मंड प्यंड माहै रहै पुनि मन मनसा माहिं ।
रज्जब रमहिं सु रिद्धि मैं बाहरि कहिये नाहिं ॥४॥

नामी सौं त्यागी तबहिं, मोहि कही समझाइ ।
एक ब्रह्म दूसरी माया यहु संसा नहिं जाइ ॥५॥

जन रज्जब मन सुधि समि बादल मैं सु विभूति ।
सरगुण निरगुण संगि सौं क्यू काढ़िये सु सूति ॥६॥

माया बादल बार गति, आतम सुभि समान ।
सरगुण निरगुण सकति ह्वै, रज्जब रिधि बिधि दान ॥७॥

ज्यूं कूकस कण मैं रहै, त्यूं माया मधि प्राण ।
जन रज्जब यहु जुगति यूं करै कौन बिधि छाण ॥८॥

ज्यूं कायांहि छाया लगी, त्यूं ही छूटै नांहि ।
त्यूं रत बिकृत रज्जबा, दीसै माया मांहि ॥९॥

पाणी मैं प्रतिब्यंब देखिये नहीं त दीसै नांहि ।
रज्जब जीवै जीव यूं, माया काया मांहि ॥१०॥

ससि सलिल मांहि प्रसै प्रतीब्यंब परि भान ।
जल मधि नांही नहीं, समुझौ संत सुजान ॥११॥

सरीर सुखी ह्वै सक्ति मधि, औरै देह परास ।
बिन माया घरि घरि फिरै छाजन भोजन बास ॥१२॥

प्यंड प्राण मैं माया लागी, ज्यूं आटै मैं लूंण ।
सुमिरण सिरिमा स्वाद डाकिये, मिली सु काढै कूंण ॥१३॥

रज्जब बास बिभूति के, मूल सुतन मन मांहि ।
कोटि बार काटयू अकठ जड़ निकसै सू नांहि ॥१४॥

सुभि सरूपी सांइयां बादल मैं सु बिभूति ।
रज्जब परगट गुपत ह्वै सदा रहै इह सूति ॥१५॥

ससिहर सूर मैं सरगुण निरगुण पुनिह पेख तू पाणी ।
जीव ब्रह्म मैं ऐसे दीसै प्रगट गुप्त गति जाणी ॥१६॥

जीव ब्रह्म मैं सरगुण निरगुण तन मन माया मान ।
रज्जब रवतब काढतौं एकमेक भिन जान ॥१७॥

चौपई जीव ब्रह्म मैं तन मन माया एकमेक भिन भेद सु पाया ।
ज्यूं सुभि मांहि आभै नीर सरगुण निरगुण होहिं सरीर ॥१८॥

साखी पान फूल फल सब गये तरु नर सूके अंग ।
रज्जब मति जामण मरण छाया माया संग ॥१९॥

चौपई दीसै बाहर भीतर बैठी जामण मरण सु आगी पैठी ।
माया जीव जीव सोइ माया रज्जब छूटै न छूटै काया ॥२०॥

साखी काम क्या सु काढई पै माया कढै न मन ।
सो बिरक्त ह्वै कौन बिधि समझौ साधू जन ॥२१॥

सुपनैं तजै सरीर कौ तौ तन गया न त्यागि ।
त्यूं बिकृत सु बिभूति मधि जे देखिहि जिव जागि ॥२२॥

चौपई एक ब्रह्म दूसरी माया जीव जीव का भेद सु पाया ।
सकति समंदर जिव जलचरा भरम पुकारै बाहरि परा ॥२३॥

साखी तन मन मनसा जीव सम यहु माया मुरछादि ।
रज्जब सुरति न ये तजैं त्यागी कहैं सु बादि ॥२४॥

सकति सींव सब देखिये ब्रह्मंड प्यंड लग प्रान ।
रज्जब षट बिन षट दरस माया मैं सब जान ॥२५॥

षट दरसन अरु सालक सब माया के मुख मांहि ।
रज्जब निरगुण मिले बिन न्यारा कोई नांहि ॥२६॥

रज्जब गुण पंछी सब दंत हैं, माया के मुख मांहि ।
सुर नर चाबे नाज ज्यूं कोई छूटे नांहि ॥२७॥

नगन रह्यो वस्तर पहिर, माया मीच ज्यूं खाइ ।
भजन बिमुख छूटे नहीं रज्जब उमै उपाइ ॥२८॥

त्यंचनि सक्ती त्यंच जिमि चौरासी चुनि खांहि ।
नागहु बाघहु ना डरहिं, पूदड़ि गुदरि न खांहि ॥२९॥

सकति त्यंचनी त्यंच जिमि सुमिरण मंत्र किमाहिं ।
रज्जब दसा छतीस परि, बसिवंत बैरी खांहि ॥३०॥

रज्जब खाये ब्याल बिष उचटे रुके न खोत ।
तैसे माया मीच मुनि जे आप बड़ी नहिं होत ॥३१॥

काया माया सारिखी आतम आया ऐन ।
रज्जब जिव जिव मैं रही, तन मग परै न चैन ॥३२॥

जस्यूंस खताये का गया भूत रह्या मन मांहि ।
*तन सब जिव जीते नहीं रज्जब फुलस सु नांहि ॥३३॥*

मानि बाइ संपि मू गये मम कपूर कृत कीम ।
ज्यूं जम खोज न पाइये महै न की मध मीन ॥३४॥

जानि मानि नीचै दबे सो नर निकसे नांहि ।
जन रज्जब जिव मूढ़ मति मिले मीच की मांहि ॥३५॥

मान मेर नीचे फिरहिं, मन पवन ससि सूर ।
रज्जब सोम उलंघने दोन्यूं दोन्यूं दूर ॥३६॥

निसि वासर नीरहि रहै आदित रुप अरूप ।
त्यू रज्जब रुचि रिषि सा भेष भिखारी रूप ॥३७॥

मानि गुपत जल सुनि का माया परगट नीर ।
तृष्णा आरसा क तपै तिनकी मेट न पीर ॥३८॥

भांति भांति की भूख बहु रिधि सिधि पूजा मानि ।
कोटि कष्ट तापरि मरहिं, हरि दरसन की हानि ॥३९॥

चौपई जो मत मुख मैं माया मंडाण सु वाहरि कौण धरै जिव आण ।
सब सुरत्यूं मधि सक्ति समाणी वाणनहार इसी विधि माणी ॥४ ॥

साखी सुषि सरीर सु ब्रह्म का मागी अग विभूति ।
रज्जब रिधि विधि सौं वणी क्या कहिये अस्तुति ॥४१॥

मन पवन ससि सूर समि मनसा सक्ती मेर ।
रज्जब देहि सु रैन दिन परदच्छिन षहु फेर ॥४२॥

माया फर अरषहि फिरहि मन पवन ससि सूर ।
तो रज्जब कहि को चहै सक्ति सैलपति दूर ॥४३॥

मंषूप नहीं अलाहिदी अमरवेल जड़ हीन ।
त्यू रज्जब माया मुकत असे जल विन मीन ॥४४॥

कंचन किरची सोधि से पारा राखि मझारि ।
तो जीवत जिव कसे तजैं रज्जव देखि विचारि ॥४५॥

गिरही राखै गिरह मधि वैरागी वप माहिं ।
धात सु प्यारी सबहु को काई त्यागै नाहिं ॥४६॥

सुषि सलिल मधि सैल तलि सोई धरी सकति ।
रज्जव रिषि राखी प्रतनि ममोनरायम मति ॥४७॥

चौपई एक ब्रह्म दूसरी माया जीव सीव का भेद सु पाया ।
भमैं त कवला अंभ जल साइ रज्जब रिद्धि न निकस्या जाइ ॥४८॥

साखी चरणकमल प्रभु के सुमिरि आतम कंवला होइ ।
रज्जब प्रगटे वस्त वल परि सोहा अगनि सु वोइ ॥४९॥

परम जोति वसि जाति बहु सो सब सकति सरुप ।
रज्जब दीस्या देखि करि एकमेक भिन भूप ॥५ ॥

माया सो मामा विरचि प्रभु पाहुम विधि जाइ ।
चरणकंवलि कमला रहै सु भाडी बैठी आइ ॥५१॥

माया छाया ब्रह्म तर, रही पेड़ पग पूरि ।
रज्जब मर वनिता बनी करै कौन सौं दूरि ॥५२॥

चरणहु संगि सदा रहै, कवला कमित कदीम ।
सो रज्जब रिधि क्यू रहै, हरि पद भजत फहीम ॥५३॥

चरनकंवलि कवला रहै, तहां मुनेसर जांहि ।
नेत नेत सारे कहैं, मति गति माया मांहि ॥५४॥

काची पाकी सक्ति कन अकस कल्या नहिं जाइ ।
सो रज्जब रिधि मधि सबै मर देखी निरताइ ॥५५॥

कौंसा कला असंखि है सर्लाहि जौहरी संत ।
जन रज्जब पारिख बिना माया हूं भगवंत ॥५६॥

ब्रह्मा बिष्न महेस सौं माया के औतार ।
रज्जब कौंसा अगम है जामैं कला अपार ॥५७॥

ओंकार करि प्रगट ह्वै अंतकि अंतरिम्याम ।
रज्जब रिधि आमामई सांई सुधि समान ॥५८॥

अलखि कला लच्छिहि लहै, जिव जड़ जाणै नांहि ।
ब्रह्म धर्द जिस ठौर को सो सब माया मांहि ॥५९॥

त्यागनहारे त्यागि करि भागि भजन दिसि जाइ ।
रज्जब यू छूटै सकति त्यो मुकति सुरति समाइ ॥६०॥

चरनिकंवलि कवला रहै, हमहू सुमिरे सोइ ।
रज्जब फलसी भाव की पै रिधि दूरि न होइ ॥६१॥

भोर्क म्यन्न मिली सब ठाहर विभूति भूति मैं सामी ।
पंच तत्त मन मनसा मिथत विचार चालनी छानी ॥६२॥

रज्जब त्याही सकति मधि अंम आतमा सानी ।
सो सूरिज सांई सुर्णाह मन बच क्रम करि मानी ॥६३॥

सब अंगहु सब अंग मिलि सेवग स्वामी येक ।
रज्जब रिधि सांमे सोई बंदा ब्रह्म अनेक ॥६४॥

रे रज्जब रिधि रैन रवि चर्साहि कौन बिधि टालि ।
तिमिर उजासे सौं परै को निकसै निरजालि ॥६५॥

सक्ति सीव बिकुल निकट रत कौं कहूं मैं मांहि ।
रज्जब कही बिचारि करि, समझि देखि मन मांहि ॥६६॥

माया सौं मरणा बह्म समझी साधू साखि ।
रज्जब रिधि आतम सह्ति क्या रासैं क्या नाखि ॥६७॥

## स्वारथ का अंग

ज्यू मारे पोस्यूं नहीं पूत मरत ह्वै पीर ।
यूं रज्जब बालिक उमैं परिस्वारथ रोवैं बीर ॥१॥
रज्जब स्वारथ सबस यह सारे संसार ।
लोम सु लावें बेबड़ी बांध लिये सब लार ॥२॥
रज्जब स्वारथ ठगि ठगे चौरासी लखि प्रान ।
तन मन धन सबका लिया कहिये कहा बखान ॥३॥
स्वारथ बसि संकट सबै स्वाद सहावै मार ।
रज्जब रोटी बोबटी दुखदाई संसार ॥४॥
स्वाद सनेही जीव का जीव न छोड़ै स्वाद ।
तब मग सहसी मार सब कहा किये बकवाद ॥५॥
रज्जब स्वारथ लागि संगि परमारथ मधि नास ।
मिसरी मधि बिष पीजिये ताकी कैसी आस ॥६॥
बिन दीपक करि लीजिये लागि सु पैठम काज ।
सो माहुरि किस काम का यहु रज्जब रवि राज ॥७॥
रज्जब रवि राकेस बिन राखिहु तम हर आस ।
सपत दीप दीपक बर्सहि पै तृगनि तौरा तास ॥८॥
अपस्वारथ मन बेग ह्वै परमारथ पगि पंथ ।
रज्जब पहुच ठौर क्यू भाव भगति का मंग ॥९॥
गुर सेवा सेती बिमुख स्वारथ सबदौं सेत ।
रज्जब मर निपजै नही जैसे कासर खेत ॥१०॥
मन रज्जब संसार मैं स्वारथ बसि सब कोइ ।
ज्यू सुरही सुत खीर बिन माता निकट न होइ ॥११॥
स्वारथ की सरकार मैं यहु सारा संसार ।
मनसा बाचा करमना तामैं फेर न सार ॥१२॥
षट दरसन अरु दासन का जलदस मेला मुनि ।
रज्जब भजनर भोग का पीछै आवहि रुनि ॥१३॥

अमरस मेला मुख ह्वै और सबै तिनि पिष्टि ।
पट दरसन भरु खलक की खाये भुलहिं सु दिष्टि ॥१४॥
असन बसन क मासरे आदम की औसादि ।
राम काम पावन सहण जोगि भोगि की वादि ॥१५॥
सबद सुखी ह्व आतमा असन बसन आकार ।
रज्जब पावै प्राण है तौ जनमि न छोडै सार ॥१६॥

## अबेसास तृष्ना का अग

तीनि लोक मन कौ मिलै तृष्ना तृपति न होइ ।
रज्जब भूखे देखिये सुरपति नरपति जोइ ॥१॥
जे जिव लोक असखि लै तौ भरै न भूख भंडार ।
जन रज्जब पुष्या बणी नाहीं पापमहार ॥२॥
कर धरि पातर पाहिका भरया न भरसी कोइ ।
रज्जब रीता देखिये सो पूरण नहिं होइ ॥३॥
तृष्ना तरसत ही मरै माया मुकती खाय ।
जन रज्जब उर की अगनि मुहडै कही न जाय ॥४॥
जन रज्जब तन ताल मैं माया मेघ जल जाहिं ।
सो दीस सूका सग तृष्ना बवई माहिं ॥५॥
बडवानल तृष्ना रहै मन समुद्र के तीर ।
रज्जब सोखै मांझ क माया रूपी नीर ॥६॥
बड़वानल वणि वणि व्यापति रावन चिता ज्यंत मन माहिं ।
ज्वालामुखी जगभगै मनसा रज्जब क्योंहि बुझाई जाहिं ॥७॥
असंखि लोक अहार करि काल सुधा पै नाहिं ।
बडे बटहु पुष्या बडी घडवानल बप माहिं ॥८॥
तन की पुष्या तमक बुख खाये सेर अघाइ ।
रज्जब रोटी जिमी ससि मन की भूख न जाइ ॥९॥
मावष्या पूरी हुवै पै पूरा होइ न मन ।
भूख न भागी भूत की रज्जब बिछुरे तन ॥१०॥
रज्जब रवि दिन दिन बधै रहै न रिधि सौं धाकि ।
भूत प्राण भूखे सवै भखतौं सगी भड़ाकि ॥११॥

तृष्णा अगिम बुझाइये दुनिया दारू आनि ।
जन रज्जब जीव यूं जलैं मति मूरिख सब जानि ॥१२॥

आदि अंत मधि मंडि रही तृष्णा तन मन पूरि ।
रज्जब यूं संतोष सुख जिव सो रह्या सु दूरि ॥१३॥

उदधि उदधि काष्ठ अगनि जीव सकल जम खात ।
सिखन संतोष न बिये रस तिस्ना तृपति न जात ॥१४॥

तृष्णा स्वारथ लोभर लालच मांगण माया माहिं ।
रज्जब पारधू लाज बिन भूखे मांगहु माहिं ॥१५॥

तिस्ना तिरगुन कुनारि है मिल्यूं न संयम होइ ।
रज्जब राम भरतार बिन भूख न मागै कोइ ॥१६॥

चौदह विद्या विविध कृत एक उदर के राज ।
रज्जब मरैं सु राम यूं वै करहिं किये की लाज ॥१७॥

तन मन घटती ये बधै नरवर केस तृष्णाइ ।
मन रज्जब हैरान है महिमा कही न जाइ ॥१८॥

## तृष्णा बेसास का अंग

तृष्णा तरल तरंगनी जहां बहै अग फेर ।
जन रज्जब मिरमै भये थकि संतोष सुमेर ॥१॥

बहुतें जक बेसास बिधि अजक तहां जहं नाहिं ।
रज्जब सुख संतोष मैं दुख दीरघ तहं नाहि ॥२॥

मांगत माया ना मिलै त्यागत आवै हाथि ।
बिभूत भूत ऐसैं वणी रज्जब बाणी नाथि ॥३॥

## बेसास सहित संतोष का अंग

सबही बसि बेसास कै माया ब्रह्म समेत ।
सो रज्जब सु गह गही सतगुर कह्या सचेत ॥१॥

जन रज्जब बेसास गहि सब साहिब परि राखि ।
बेसासी बरतहिं मिल यूं सतगुर की साखि ॥२॥

ज्यूं माता त्यूं हाडगा यहु बरतणि ब्योहार ।
तावैं रज्जब राम की त्यूं जिनि छाड़ै सार ॥३॥

रे रज्जब बेसास गहि, तकि तरवर की वाणि ।
सिदक सयूरी ऊपरै ज्यूं जल बरषै आणि ॥४॥
चौरासी लख जीव का राम रिजक भरि देइ ।
जन रज्जब बेसास गहि सो सांई सुधि लेइ ॥५॥
स्वामी सेवग ह्वै रह्या इहि सारे संसार ।
रे रज्जब बेसास गहि मूरख हिया न हार ॥६॥
चौरासी को चूणि दे प्रभु प्राणहु प्रतिपाल ।
रज्जब सो न विसारिये जो सबकी करै संभाल ॥७॥
रज्जब रोटी दो अटी देहैं दीनदयाल ।
तौ आसा तजि और की बेरबा ब्रह्म संभाल ॥८॥
जिमि जननी के उदर मैं तेरी करि प्रतिपाल ।
सो भव क्यूं भूलै तुझै परि तू भी तिसहिं संभाल ॥९॥
आरंभ बिना अहार दे उदर माहिं अविगति ।
यहु समझि सतोष करि, रज्जब अज्जब मति ॥१ ॥
उदर माहिं उदरहिं भरै पावै अरभक पोष ।
सो दाता सिरि पर खड़ा रज्जब गहि संतोष ॥११॥
उद्यम माही उदर मैं तहां करी प्रतिपाल ।
सो भव क्यूं भूलै तुझै रज्जब दीनदयाल ॥१२॥
बस साहस नहिं बंदि मैं सिधी बिना बित नास ।
बुद्धि रहित वप मैं सु वप तब तोहि दिया गरास ॥१३॥
सल सिली मैं दत है आरंभ बिना अहार ।
तौ रज्जब बेसास का छोडे मत व्योहार ॥१४॥
अगम ठौर सु अहार दे सकट सारै काज ।
जन रज्जब बेसास इस उसहि किये की लाज ॥१५॥
आरंभ विना अहार दे गै अजगरहि गोव्यंद ।
तौ रज्जब रोवैं पेट को हरि बराब मति मंद ॥१६॥
रज्जब मोटे मच्छ अति सो भोजन सु सरीर ।
तेउ पेट पूरण भरै तौ गहि बिसास मन धीर ॥१७॥
मजन बिमुख भोजन लहै चौरासी लख जूनि ।
तौ रज्जब सुमिरण सहित तिनके कैसी ऊनि ॥१८॥

असन अकास असंषि कौं पाताल पूरि परसाद ।
मही सु मुकता करि परया सु सुझै न करसी याद ॥१९॥
असंषि लोक ब्रह्मंड के बोदर उदधि निवान ।
रज्जब पूरे ठौर सब सुझै न देई दान ॥२०॥
असंषि लोक प्रतिपाल हरि सकल किये की च्यंत ।
तौ रज्जब भूला सु क्यूं सो साँई करि म्यंत ॥२१॥
साहिब सबकौं रजक दे बंदे को तौ बसेषि ।
रज्जब रहु वेसास बिधि करणहार दिसि देषि ॥२२॥
जरा बिपति अरु मीचसी मिल अबाछी आइ ।
तौ रज्जब बेसास गहि रजक कौन पै जाइ ॥२३॥
रज्जब राग न रोग सौं मीच महूरति माहिं ।
योंही माया मन रहै पै सिरजी आवै माहिं ॥२४॥
रज्जब रोग न छाडई मूकै मनिष न मीच ।
तौव रजक कहं जाइगा समुझी मनुवा नीच ॥२५॥
अणवाछी आवहि अवसि जरा विपति अरु मीच ।
त्यू माया मिलसी सुझै मन मति कलपै नीच ॥२६॥
ज्यों अहि कठिन करंड में मूसा पैठा काटि ।
जन रज्जब भोजन बिना अरु निकस्या वहि बाटि ॥२७॥
सिरज्या आवै सुरग सौं जल बसि करै सुकाल ।
रज्जब रहै न बिन रच्या माया होइ उकाल ॥२८॥
मनल अंड ज्यूं ठौर बिन नहीं पोष पंष बाव ।
जन रज्जब सो नीपजै तौ पूरण पूरा गाव ॥२९॥
कूंजी कूरम मनल के अंडे देखो जोइ ।
रज्जब राखै सो कहां तौ क्यूं बेसास न होइ ॥३ ॥
उदर दिया सु अहार देइगा गला बनाया गासे काज ।
रज्जब चौंच भूगि को सिरजी किये किये की सबकौं साज ॥३१॥
असंषि लोक अंतक सहित भोजन दे भगवंत ।
ता पूरण सौं प्रीति करि सोच करै क्यूं संत ॥३२॥
आसमान जिमी अंबर अरपि आब भार अठार ।
बागे दे ब्रह्मंड कूं प्यंडहि कहा बिचार ॥३३॥

नौ निधि जाके नांव मैं सब संतनि की साखि ।
जन रज्जब सो सुमिरिये कहा करे कित राखि ॥३४॥
यहु विधि देवे क्यौं खुदा दीनानाथ दयाल ।
रज्जब यूं जाण्यूं कटे चित बंधन के साल ॥३५॥
बैरागी चित क्या करे जो बेसासी होइ ।
रज्जब मच्छा मसक सो अर्नहिं न जोया कोइ ॥३६॥
बह्यु व्योम विधि देखहीं साधू सारंग दोइ ।
जन रज्जब बेसास यहु नजरि निवाण न कोइ ॥३७॥
रोटी मोटी करि धरी माबै वसुधा माहिं ।
रज्जब दीसै दसौं दिसि कही किसी एक नाहिं ॥३८॥
करतार कमाऊ जिनहिं के तिनकै क्या परवाहि ।
सदा सुखी आनंद मैं जुगि जुगि बे अरवाहि ॥३९॥
करतार कमाऊ जिन घरहु तिनकै कैसी हाणि ।
यूं बैठे बेसासि मैं सब कछु देसौ आणि ॥४ ॥
नहीं तहां तैं सब किया रज्जब प्यंडर प्राण ।
सो अब भूखे क्यूं तुखे करि संतोष सुजाण ॥४१॥
पूत पांगुला पेट मैं आरंभ असन न आस ।
पुष्टि पराये पगन परि बिधन नहीं बेसास ॥४२॥
असंखि लोक आतम मरी सबकी करे संभाल ।
गुण औगुण देखे नहीं कीये के प्रतिपाल ॥४३॥
जड़ वासण जड़ का गह्या रीता रहै न सोइ ।
कुम कुम्भार कमाऊ कूर्यूं, सो पूरण किन होइ ॥४४॥
मात पिता माया बह्यु बालिग बंदा कम ।
मोह मिहरि मैं ये सदा यू बिसास निरसंभ ॥४५॥
साधू सुखिया समै मैं दुखी न होहिं गोपाल ।
रज्जब जिनके राम जी सदा करे प्रतिपाल ॥४६॥
रज्जब रहै बिसास मैं वादी कहां विभूति ।
सदा सुखी सुमिरन करहिं, सब विधि आई सूति ॥४७॥
राम काम जिनके करै, तिनके कारज सिधि ।
जन रज्जब बेसास परि, बनि आई सब विधि ॥४८॥

जन रज्जब अज्जब कही सुमहु सनेही दास ।
बिनु परचै परचा भया जब आया बेसास ॥४९॥
धरे अधर का मूल है नांव निरंजन पास ।
जन रज्जब बेसास इस करै कौन की आस ॥५०॥
मनिष मनिष कौं सेवतौं मुक्ति संपति इह भौन ।
तौ रज्जब रामहि भजै तिनकै टोटा कौन ॥५१॥
च्यंता अणच्यंता भरै वोदर को अविगति ।
तौ रज्जब बेसास गहि सोधिर साधू मति ॥५२॥
मांग्या अणमांग्या मिलै जु जिव कौं जगपति कीन ।
बंदे बेपरवाह यूं मूल न भावै दीन ॥५३॥
चाकर अणचाकर सबै वरा बिसंभर देइ ।
पूरण पूरे सकल कौ सो पलटा नहीं लेइ ॥५४॥
साच सबूरी मैं रहै, निहकामीर निरास ।
तौ रज्जब ता दास घरि सांई होइ सुवास ॥५५॥
निहचल मैं निहचल रहै मिल जन नांव निवास ।
तौ रज्जब माया ब्रह्म होंहि दास घरि दास ॥५६॥
मात पिता माया ब्रह्म चौरासी प्रतिपाल ।
पर संतोषी सुत ऊपरे तूर्न्यूं सदा दयाल ॥५७॥
आस उलटि तृष्णा तजै संतोषी हरि साथि ।
रज्जब सो बेसास मैं सरबस आया हाथि ॥५८॥
जे बंदे बिचि सिबुक ह्वै तौ भेजै बिसियार ।
जन रज्जब राजक मिलै रिजिक सबै तहि सार ॥५९॥
सहज सबूरी सांच लै सुमिरै सिरमल अंग ।
सो रज्जब रामहि मिलै सब सम्मत तेहि संग ॥६०॥
जब जिव पैठे सिबुक घरि साहिब कै दरबार ।
तौ रज्जब बाकी कहा पीछै पलै हजार ॥६१॥
बेसासी बैठ्या रहै हरि भेजै सो खाइ ।
रज्जब अजगर की दसा चलि कतहू नहिं जाइ ॥६२॥
भावै कुंभहि कूप भरि भावै भरौ समुंद ।
जन रज्जब परवान परि अधकी चढ़ै न बुंद ॥६३॥

अणबेसासी आसमा, करै अनेक उपाइ ।
रज्जब आवै हाथि सो जो कछु राम रजाइ ॥६४॥
लिखी लच्छमी पाइये अरपी आव सु होइ ।
रज्जब यहु बैराग मैं घटै बधै नहिं वोइ ॥६५॥
रज्जब नर तरु सीस परि माया मधु बिधि होइ ।
आवत जात अच्यंत मैं दोस न दीजै कोइ ॥६६॥

चौपई आव अजाचिक बरतण भेइ जाइ सु पहरै मीरै देइ ।
यहु रज्जब सन्तोष सरूप भलहिं मुनेस्वर चाल मनूप ॥६७॥

साखी रज्जब माया छाया मैं सदा सधु धीरज व्योहार ।
अचिंग आस अस्थूल विधि यहु साधू मत सार ॥६८॥
धीरी ध्यंत न घटि बधी अधु धीरज भया सेस ।
सौ रज्जब कहु वोस क्या करमहार दिसि देख ॥६९॥
रज्जब जब लग यहु मता करै कहै मन माहिं ।
तब लग नहीं बिसास गति तिहु बिधि येहू पाहिं ॥७०॥
जन रज्जब करिबे रह्या कहिबे थकित निरास ।
तब तृष्ना तन मन गई पूरा पुष्टि बिसास ॥७१॥
मनि मर्कस मुहबै अजब पुनि काया कृत नास ।
यू परि कौड़ी कोड़ि होइ बहु बेसासी दास ॥७२॥
रज्जब एकु बेसास मैं मन वच क्रम तिरसूप ।
ता ऊपरि सोहिं राम दे सो माता का दूध ॥७३॥
त्रिभुवन तन तृष्ना परै, सुनि संतोष सु बान ।
रज्जब पहुचै मीत्त मथ कोइ बेसासी प्रान ॥७४॥
तृष्ना तिरै तरंगनी स्वारथ स्वाद समंद ।
सो पहुचै संतोषपुर जन रज्जब निरदंद ॥७५॥
सपि समुंदहु के परै सुनि संतोष सु थान ।
मन बच क्रम तृष्ना रहित सो पहुचै कोइ प्रान ॥७६॥
संतोष सदन जप पाइये जब तृष्ना तनि नास ।
ब्रह्मंड प्यंड सेती जुवा जन रज्जब बेसास ॥७७॥
संतोष सबूरी भगम् घर, पुर पीरहुं अस्थान ।
बेसास तबक्कस मैं रहै, निहचा पुरस इमान ॥७८॥

जैसा नहिं बंधे मिले बीज रहित बिन माँहि ।
रज्जब फिरि ऊगै नहीं गये सु जनमि निमाँहि ॥७९॥

रज्जब भाये ध्यान हरि, भूत भूख भई भंग ।
भूरि भाग भे मैं सुखी उठैं सु उन्नति अंग ॥८०॥

जन रज्जब थिर धन तज्या जब मनसा धरि धोइ ।
भूत भार भ्यासै नहीं करता करै सु होइ ॥८१॥

रज्जब आसा मैंल मन निरमल सदा निरास ।
आगे खुसी खुदाइ की यहु बेसा बेसास ॥८२॥

जे कोइ धूरि उठाइ ले धरती धोखा माँहि ।
जाने कित सौ जाइगा मेरी मुझही माँहि ॥८३॥

रज्जब रिधि रज एक है, बसुधा में बेसास ।
बिभूति भूति कौ ले चली बरषा धरे के पास ॥८४॥

बपुस न मिलै बिसास बिन बहु बिधि करो उपाव ।
रज्जब रती न पाइये भावैं तस विधि जाव ॥८५॥

जे हिरदै बेसास है तौ हरि हिरदा माँहि ।
जन रज्जब बेसास बिन बाहर भीतर नाँहि ॥८६॥

पेट भरै बहु पाप करि पापी प्राण अनेक ।
असन बसन आरंभ बिन आतम सहै सु येक ॥८७॥

अबेसास आरंभ करि मन मधि मेहिं अहार ।
असन बसन बेसास बिच निहकामी ब्योहार ॥८८॥

आस निरासी असन कन सुनहु अमेखी बोम ।
पड़ै पंचमुख पंजरै पनिम पिटारे खोस ॥८९॥

पट परसन अरु असक सब दीरम स्वामी दास ।
जन रज्जब बंसास बिन जत सत माँहि निरास ॥९ ॥

बैराग्य की बरात उतरी सेवग सतियाँ सीस ।
जैसे तरु फर पंखी पावहिं बिधि बानी जगदीस ॥९१॥

बरात उतरी ठौर जेहिं बरात तहाँ सो लेहिं ।
बिन आज्ञा देसी न कोइ, दोस किसी मति देहिं ॥९२॥

हाथ सबै हरि हाथ में कृपन कृपासहु येक ।
दोस देइ कहु कौन कौ माया परम अमेक ॥९३॥

जा बिन ज्यूं रास प्रभु, ता बिन त्यूं रहिये ।
रज्जब दुख सुख आपणा काहू महिं कहिये ॥९४॥

## अच्यंत बेसास का अंग

बैराग बिसंभर परि सकण करि च्यंता चिति नास ।
बिहंग बोझ न बिहंग सिरि, देखे उड़त अकास ॥१॥
उडग अतीत अकास आस बिन भार न काहू देहिं ।
रज्जब मिले अर्संखि एकठे रिजक राम पहिं लेहिं ॥२॥
बैराग सु बादल सम सदा सकल अमर ब्योहार ।
सागे सोई सुधि सौं भूवहि देइ न मार ॥३॥
अठार भार इक अवनि परि त्यूं आतम अविगति ।
रज्जब चित च्यंता उठी जब आई यहु दुरमति ॥४॥
जलनिधि मैं जलचर बिबिधि पै कासिरि काठ का बोझ ।
त्यू रज्जब सब राम परि समझै नहीं सु रोझ ॥५॥
रे रज्जब राकेस कन सदा सु मंडल तार ।
किसकी चिन्ता कौन कूं किसका किस परि भार ॥६॥

## निरिहाई निरबान का अग

रज्जब पाई प्राण मै माव निरंतर मूटि ।
पाप पुंनि की ताखड़ी गई हाथ सौं छूटि ॥१॥
पुंनि किये पुंनि पावई देणै लेणा होइ ।
रज्जब इहिं सौदे रहै, सुंनि समानै सोइ ॥२॥
लेखे का लालच नहीं महिं देखे करतार ।
रज्जब अज्जब मुकत मत जीव ब्रह्म उणहार ॥३॥
भली बुरी भावै नहीं परसै पाप न पुंनि ।
सो रज्जब रामहिं मिले सहज समाने सुंनि ॥४॥

## अनेक बेसास मधुकरी का अंग

रज्जब मीठी मधुकरी मेरे मन भाई ।
सिध साधक जोगी जती जगि मांगि सु खाई ॥१॥

भूप भूतं मिलि मीख कों तब सु मिस्त कों जाइ ।
तौम मेहणा मधुकरी नर देखौ निरताइ ॥२॥

एकहु कोपी एकहु पैसा एकहु संपुम रोटी ।
महा मसदों भीख आदमी मान मधुकरी मोटी ॥३॥

जे औसर सिरि सिलक कूं भूपति मारै हाथ ।
सौ रज्जब कछू रंक गति राजा दासिद साथ ॥४॥

छाजन भोजन देह लग सिध साधक सब लेहिं ।
जन रज्जब परवान परि मन ममसा नहिं देहिं ॥५॥

छाजन भोजन देह लग जा बिन रह्यो न जाइ ।
रज्जब अधिक उपाधि है, तासौं मन न लगाइ ॥६॥

जन रज्जब रथ रहंन्या पुनिहु पखावज जोइ ।
काष्टहु बांगे से चले सौ बिन बरतम नहिं कोइ ॥७॥

चौपई
छाजन भोजन दे भगवंत अधिक न चाहै साधू संत ।
रज्जब यहु संतोषी भास मामहिं नाहिं मुलक अर मास ॥८॥

साखी
मसि बिन माया संगि रहै मसि बिन मिहुरी जाइ ।
यहु रज्जब मुनियर मतो नर देखौ निरताइ ॥९॥

## संजम कसौटी का अंग

काया कुंदन सारखी हरि सोनी कसि लेइ ।
जन रज्जब ताये बिना दरसम दरब न देइ ॥१॥

कसि कसि सीमे काम के नर निरमल निरताइ ।
जन रज्जब अममगि रहै, महिमा कही न जाइ ॥२॥

नर तरनी सौ मैं रहै ब्रह्म बासदेव माहिं ।
बिन सूकै सोक्यंति बिन रज्जब प्रगटे नाहिं ॥३॥

तन तूबा सोक्यति बिना धुनि सुधि माहिं न होइ ।
रज्जब गूंगा यूद भरि बाजत सुन्या न कोइ ॥४॥

अंतरि माहैं निकरि करि अंतरि चढ़े सु जाइ ।
रज्जब पाई नाद निधि सोहा कसनी माइ ॥५॥

रसना निकसी पाठ मैं अंतरि निकसे तार ।
रज्जब मुखि अंतरि चढ़े सरवहिं सुधा अपार ॥६॥

कंगहि करवत सीस सहि तब साहीं सिर आइ ।
तौ रज्जब वाणी जुगति सन मन कसि हरि माइ ॥७॥

सिरि कटाइ लेखण चढ़ी कर कागद अरु काम ।
रज्जब इहि विधि पाइये परमपुरिष निज धाम ॥८॥

देखहु कुंभ कुंभार करि, निपज्या कसमी खाइ ।
रज्जब रज पग खलि सदा सु सिरि परि बैठी आइ ॥९॥

कामद कूंडी कागही कोल्हू निरखि कुंभार ।
त्यूं रज्जब कसनी गुरू सखि सु लोहार सुनार ॥१०॥

हुलभजन दुखि पाइये जद्यपि है दिलि माहिं ।
ज्यूं काष्ट कष्ट बिना पावक प्रगटै नाहिं ॥११॥

दाख छुहारे रस रह्या वे सुकवे सु सरीर ।
यूं रज्जब सरबस रहै, तन मन सिमट्या बीर ॥१२॥

संतहि सोभा सिमटतीं चल कौं चलन सु जोति ।
रज्जब रस रंग रहति मैं जथा सीप मधि मोति ॥१३॥

रज्जब रेसम मन का संकटि सूधा तार ।
ए दून्यूं बांधे भले लोल्यूं होइ सु ख्वार ॥१४॥

पसरया पचि पचि मार है, सिमट्या माहीं खोइ ।
जन रज्जब द्रष्टान्त कौं मन कच्छिप दिसि जोइ ॥१५॥

मस्यूल उदधि ज्यूं पीजिये आतम होइ अगस्त ।
जन रज्जब ऐसी कथा देखि गहै कोइ बस्त ॥१६॥

पाप ताप संघपि घटै तौ रोजे व्रत राखि ।
रज्जब रोग विषम ह्वै बैदर बेस्या साखि ॥१७॥

जम दल खेंचे तन मरै, मन मारै गुर ग्यान ।
रज्जब ये यूं जीतिये साधू कहैं सुजान ॥१८॥

काया मारै स्वाद तजि मन मारै भजि नाथ ।
रज्जब गढ़ घेरे बिना गढ़पति चढ़ै न हाथ ॥१९॥

नींद सुबेटी मात्र की नाज नींद का पूत ।
रज्जब साधै जोग कू जुगल साधि औधूत ॥२०॥

रज्जब निकसे पानु परि महा मसक्कति धारि ।
तौ कष्ट बिना क्यूं ऊपरै आतम दह मा धारि ॥२१॥

धन कसणी मिहकाम मम है पट है कोपीन ।
जन रज्जब यहु रहति गति आतम रामहिं लीन ॥२२॥

उनमन लागै मन सधै सबद सधै सु बिचार ।
रज्जब तनि तामस सधै बिरला साधनहार ॥२३॥

संख सुक्ति मुकता सहत सदा महोदधि वासि ।
पै रज्जब चौवह रतन सो संकट दे आनि ॥२४॥

मन मयंक मोटे भये मले मुलिक न मास ।
मम कलंक कसतौं कटै सब जग बंदै जान ॥२५॥

काया काष निर्मल करै बसमैं सरिखा होइ ।
जन रज्जब पक्षा बठया पिव कौ देखौ सोइ ॥२६॥

कुमति कटै करमौं घटै काम क्रोध का नास ।
जन रज्जब या जीव कै परतषि ह्वै परकास ॥२७॥

अरिल अज्ञानी अरु भेष मोह मनि अंतरा
तिनि चतुर करमि जाइ मरकि सु नाहीं पंतरा ।
पुष्या गांव रन गोत आव ठिक देत रे
रज्जब रट जटि राम सु चहू समेत रे ॥२८॥

साखी आतम उग्रह चंद ज्यूं माया कलंक न जाइ ।
जन रज्जब यूं आव सम निरमल मांव कहाइ ॥२९॥

दुख करि दुनिया देखिये दुख करि मिलै सुदीन ।
जग रज्जब सुख दुख परै, सु ताकि तपावसि कीन ॥३०॥

दुख करि माया पाइये दुख करि ब्रह्म दयाल ।
तौ रज्जब दून्यूं दसा दुख दीस प्रतिपाल ॥३१॥

मेसा माया ब्रह्म का दुख देखे निज दास ।
तौ रज्जब सुष सुम कौ मनहू म कीजै आस ॥३२॥

कंवला कंतर केतगी कटिग कांवल सुबास ।
आतम अलि आवै तहां तजिव सीस की आस ॥३३॥

मकर सीप मैंमंत सिरि मुसब्बिस मुक्ता लेत ।
त्यूं रज्जब माया ब्रह्म बुधि दरसन सो देत ॥३४॥

अरिल मुख सुख माँहि न मार अंग दिखलावहीं
चाकी उर गुर पैठि सु आप पिलावहीं ।
मैदा मनहि सुनाइ विविधि ह्वै व्यंजना
रज्जब राम सोई मुनि मन रंजना ॥३५॥

साखी मिहर मार मंदिर रहै सुख संपूह दुख द्वार ।
कृपा कसौटी कै परै, तामें फेर न सार ॥३६॥
संकट मधि संतोष है विपति बीच बेसास ।
दुख बिन सुख लहिये नहीं समझि सनेही दास ॥३७॥
फीके सेख फरीद के, करसी कौन फकीर ।
रज्जब रखमा यूं लिया बाहिर होइ बहीर ॥३८॥
प्रहलाद कसौटी यूं रिसी वैराहु भामी मोम ।
रज्जब अडिग सु भगनि मैं निकस्या नाँव मकोस ॥३९॥
रज्जब अज्जब काम मैं मौत मही मन मूर ।
यूं अल्लह आसिक हुआ बाहिर जग्त जहूर ॥४०॥
सरवस दे सरवस लिया साधू साँई संग ।
रज्जब अज्जब काम मैं बदौ बदल्या नंग ॥४१॥
रज्जब औसर काम सिरि मरनैं मुलिक बखान ।
ज्यूं नक्षत्र निसि टूटतौं देख सकल जहान ॥४२॥
औसर बिन की मीच गति ज्यूं दिन टूटा तार ।
रज्जब उभै अलोप ह्वै दीसैं नहीं मगार ॥४३॥
सेवग सेवा संकटया सुंदरि सुत आरंभ ।
रज्जब पीड़ा परम सुख मृति मामनि भावत ॥४४॥
रज्जब मुकत्यूं मूल है बदि बंदगी माँहि ।
यू सेवा संकटि सहै साधू सरकहिं माँहि ॥४५॥
कठिन कसौटी नीपज्या चित मया चूनै माइ ।
सा मत मंदिर छाँड़ै नहीं गुरू सिलावट साइ ॥४६॥
सेवा संकटि सब सहै, सेवग अपम सीस ।
सोभा ये भगवंत की रज्जब बिसवा बीस ॥४७॥
निस माहैं दिव होत है मोसहु मोसा भाग ।
रज्जब रजमल ऊतरै, दिसहूं घुपि गये दाग ॥४८॥

तन मन इंद्री आल हैं, कूटण रंगिये प्रान ।
बिन कूटण कोरे रहै, जन रज्जब जिय जान ॥४९॥
तन मन तापड़ कूटिये कूटण कागद होइ ।
बिन कूटण कोरे रहै, जन रज्जब षमि जोइ ॥५०॥
तन मन लोहा कूटिये तामे ह्वै तरवार ।
जन रज्जब ताये बिना षड़ग न होइ विचार ॥५१॥
तन मन माटी पीटि करि कोइ एक घड़ै कुंभार ।
जन रज्जब टूटे बिना कुंभ न होइ गंवार ॥५२॥
कूटण चित चावल भये बिन कूटण सब सालि ।
रज्जब रज सबकी गई इस कूटण की ख्यालि ॥५३॥
बाजीगर सूं क्यूं मिलै मन मरकट बिन मार ।
जन रज्जब खेलै तबै जब मारै मारू वार ॥५४॥
मन मंगल मारै बिना कहो मरहि क्यूं आइ ।
रज्जब मिलै महावतहि, अबहि मार बहु खाइ ॥५५॥
रज्जब सूता पाप पस पीटे निद्रा नास ।
यौ मन सूता कुगति का सू क्यूं जागै बिन त्रास ॥५६॥
रज्जब रोग असाधि की औषधि कसणी देत ।
जैसे पिष्ट पतंग के केस कृष्न ह्वै सेत ॥५७॥
पंच रंग रोम पतंग करि संकट सेत अनूप ।
रज्जब पलटै प्रान सूं पीड़ा पारस रूप ॥५८॥
संकट सुखप सरीर लग कुरमति दगधैं देह ।
मन उनमन ले राखिबा कठिन कसौटी येहु ॥५९॥

## निरतग का अंग

मोजनि बूडै जीवता ममता मेर उठाइ ।
रज्जब निरतगि मैं बिना सु हसुका तिरता जाइ ॥१॥
मैं आया माया गई मैं नाहीं तब नाहि ।
रज्जब मुकता मैं बिना बंधन मैंही माहि ॥२॥
असु गयंद बोहित चढ़ै मूरिख ले सिर भार ।
त्यू रज्जब सब राम परि मैं तजि मरै गंवार ॥३॥

मरजीवा मिलि माँहि जल सिरि समुंद नाँहि भार ।
जे रज्जब सिरि कुंभ ले तौ दुख होइ अपार ॥४॥
जे आँखि न देखहिं आपको तौ दीसै सब ठौर ।
त्यूं रज्जब आपा उठै परम तत्त मैं त्यौर ॥५॥
जन रज्जब जिव कै परै जगपति मिलसी आइ ।
कहणा था सो सब कह्या अब कछु कह्या न जाइ ॥६॥
जब लग जिव मैं जीवणा तब लग जिवै न कोइ ।
रज्जब मरणै मिलि गयूं सब कछु होइ त होइ ॥७॥
जब लगि तुझमैं तू रहै तब लग ये रस नाँहि ।
रज्जब आपा आप दे तौ आवै हरि माँहि ॥८॥
अपणा पड़दा आप ही मूरिख समझै नाँहि ।
रज्जब रामहि क्यूं मिलै यहु अंतर इस माँहि ॥९॥
मरणै माहैं जीवणा जीवण मैं मरि जाइ ।
रज्जब जीवण त्यागि करि मरणै मैं मन लाइ ॥१०॥
मरणै माहैं मिलि रह्या जीवण मैं छिन जाइ ।
रज्जब जीवण त्याग करि मरणै मैं मन लाइ ॥११॥
मरिवा मोहड़ै कहण को जीवन मूरि निधान ।
रज्जब रहे सु मरि रहे, ऐसैं समझि सयान ॥१२॥
ज्यूं ज्यूं तन मन मारिये त्यूं त्यूं जीवै जीव ।
इस करणी कल्याण है रज्जब रंजै पीव ॥१३॥
जो जीवत मिरतग भये तिनहि काल मैं माँहि ।
रज्जब रहै सु राम मैं सदा सु जीवनि माँहि ॥१४॥
जे साधू मिरतग भये तिनकै जम नाँहि कोइ ।
जन रज्जब दृष्टान्त को जसी जेवड़ी जोइ ॥१५॥
रज्जब दीसैं एक से जीवत मिरतग दास ।
बिन दीपक दीपग जथा हीरे का परगास ॥१६॥
जैसे मारैं सार सो महा कटै तनि रोग ।
त्यूं रज्जब मिरतग मिल्यूं सहै अमर जिव जोग ॥१७॥
मारे पारे परसता तांबा कंचनि होइ ।
त्यूं रज्जब नर मीपजैं मिलि मिरतगि जगि जोइ ॥१८॥

रज्जब एकल सूर ससि झूठे नवसखि तार ।
पलक माँहि पैमाल ह्वै दीसे नहीं लगार ॥१०॥

सांच सदा दे झूठ को जुगि जुगि बारंबार ।
रज्जब रोस न कीजिये तामैं फेर न सार ॥११॥

परतपि एकै ससि नहीं सुनि सुपिनै की कोड़ि ।
रज्जब सत्य असत्य यों देखि जीव मैं जोड़ि ॥१२॥

तारहु तोरा तब मढ़ै, जब लग रवि न प्रकास ।
रज्जब रती न रहि सकै देखि दिवाकर भास ॥१३॥

सांच सुत सौं कापि कट साधू अम सुत धार ।
रज्जब काढ़ौ वंक वस तामैं फेर न सार ॥१४॥

सांच आरसी देव गति करै कौन की कानि ।
कहि दिखलावै होइ ज्यू, आपा पर समि जानि ॥१५॥

साधू ससि हरि सूर कै आपा पर समि भाइ ।
रज्जब रंग प्रगट करै अरु अपगुन देहि दिखाइ ॥१६॥

दीपक बोप जु तिमिर तजि हीरै कर्सौं माँहि ।
रज्जब सत्ति असत्ति करि उभै जग ये माँहि ॥१७॥

सांच सबद खांडे भटा जाकै द्वै दिसि धार ।
रज्जब वकते कै मढ़ै सुरता होइ सुमार ॥१८॥

साधू वक्ता बंस गति सत्ति सबद बिधि भागि ।
मन रज्जब सुरता बन्यू करम जलैं तेहि लागि ॥१९॥

दार दरसणी पंथर पडित साच सार हरि हंस ।
चतुर ठौर बहुनी वचन कहि बिधि बरखैं बंस ॥२०॥

सांचा बोलै इंद्र ज्यूं सब बाणी सिरताज ।
रज्जब छत्र बस सबद का ता सिरि करै न राज ॥२१॥

सत्य सबद के सीस परि झूठ न पावै ठौर ।
रज्जब ससि सोमा कमा तापरि चढ़ै न और ॥२२॥

अधिक अठारा सौं नहीं पासौं माहैं डाव ।
ससे रज्जब सांच सिरि झूठ न चढ़ै चवाव ॥२३॥

मन रज्जब माणा खरा मानै मौसंड माँहि ।
खोटे को डारै लसक यामैं मिन्वा माँहि ॥२४॥

नर माने पाड़े भरे मोम न पावहिं मूलि ।
ज्यूं रज्जब तुलि काणि की सदा बहावै धूलि ॥२५॥
सांच चमंगा एक को परि सत्य न धोस्या जाइ ।
रज्जब रसना माट मैं झूठ रह्या भर छाइ ॥२६॥
मुख झूठा भाखे नहीं बोलण लागा सांच ।
आमदनी अबिगत्ति की रज्जब पलटी बांच ॥२७॥
सांचहु पुण्य सुखी ह्वै सांचा झूठें दिल दुख होइ ।
रज्जब सांचा सांच बखाने फेर सार नहिं कोइ ॥२८॥
चोरी की तहं चोर है नाहीं की तहं नांहि ।
रज्जब पकड़ें झूठ परि दई न दिव सो मांहि ॥२९॥
देही दसम न दिव का जे एक सांच लघु होइ ।
तो रज्जब क्यों भूत भै जेहि सति सुमिरन दोइ ॥३०॥
भजन विमुख घटि सांच ह्वै ताहि न दिव दुख देत ।
तो रज्जब तिनकों न डर जहं सुमिरण सांच सहेत ॥३१॥

## परम सांच का अंग

माया रूपी सांच बहु आतम ठगहिं अनेक ।
रज्जब सा न ठगावहीं जिनके परम बमेक ॥१॥
एक सांच अंजन मई नहीं निरंजन भेख ।
रज्जब रखे सु झूठ मैं तापे सत्यहु ठेख ॥२॥
सांच सांच मथि छांड़तौं सत बित करि चढ़ि जाइ ।
रे रज्जब जन जौहरी कहु क्यूं खोटा खाइ ॥३॥
सांच सरूपी झूठ ह्वै पैठहि प्राणहु मांहि ।
आस्यूं ममत सु नीकसै नहीं त निकसै नांहि ॥४॥
सांच सांच त अगम है, विरला बूझै कोइ ।
रज्जब परम बमेक बिन घटि घटि समझि न होइ ॥५॥
सांचहि मिलै सु सांच ह्वै झूठहि मिलै सु झूठ ।
जन रज्जब सांची कही मानहिं रीझि मानै रूठ ॥६॥
बिन दासी नहिं सांच है, मिलै न अबिगति नाथ ।
सीख्या सीख्या सब कहै, रज्जब देखि सु हाथ ॥७॥

कामधेनु सुर तरु सहित पारस पोरस सांच ।
रज्जब रिधि सिधि निधि सब भजन बिमुख कुलि कांच ॥८॥

करामाति भ्रम कामना बंदे बंदि सु माहिं ।
रज्जब रज तज सोधतें मस सु जत मत माहिं ॥९॥

दस औतार बैंनी देवा देखि पुनी रग रांचि ।
रज्जब रीझन तू इहां इनतें परै सु सांचि ॥१०॥

सांचा साहिब मरै न जामै झूठा आवै जाइ ।
रज्जब सतगुर सति सु सामै साधु सु मे निरताइ ॥११॥

पंथी करि परसै नहीं परमेसुर बिन मान ।
रज्जब रोजा बरत सति सकट औरस मान ॥१२॥

रज्जब दीजे दाम सिर, सत जत सुमिरण पैठि ।
या समि तुल्लि न धरम पुनि तौमे तुला सु बैठि ॥१३॥

## किरपन का अंग

सोरठा जे सूरत ह्वै सूंठि सपत धात गाडय़ू मडै ।
तौ सुकृत ह्वै मूठि ज्यू रज्जब रामहिं चडै ॥१॥

साखी रज्जब धन धर गाडतौं मन गाडया महि माहिं ।
जीवत पैठे गोर मैं सु प्राणी निकसै नाहिं ॥२॥

कवला कंवल सु गाडतौं सुकृत बास न होइ ।
सूम सती अरु पद्दप परि गुप्त प्रगट करि जोइ ॥३॥

मौनपि मधि माया रही गुपचुप तिमहु न मान ।
आतम रामहिं सौंपता पटि पटि होइ बखान ॥४॥

पहु पहुमी अंतक अवनि बिषम चोर ठगि लेत ।
सूम मंडारी सपत का धणियहु गिणि गिणि देत ॥५॥

सूम सनेही सपत का खित खित भुज रज चोर ।
जस ज्वाला येसी बिघन पग न पुन्नि की ओर ॥६॥

पहु पहुमी जम चोर सौं कृपन कमावै आथि ।
रज्जब धुकै न धरम दिसि जो सम्बल ह्वै साथि ॥७॥

सूम सत्य संजम रहै, द्रव्य परसै नाहिं ।
तन डिगतौं धन की धका मत कोई कछू नाहिं ॥८॥

सूम सगा नहिं जीव का आपा पर न सनेह ।
रज्जब दुख दे देह कौं सुकृत करै न गेह ॥९॥

सूम समाया सांकड़ै सदा जतन सब जोड़ि ।
रज्जब रोका रिधि का रह्या सु तन मन मोड़ि ॥१०॥

सूम समाई कामणी यहु भरया घट माहिं ।
जन रज्जब रिधि के जतनि सकै सु दोऊं माहिं ॥११॥

रज्जब सुकर सु सूम ह्वै बैठा झारी माहिं ।
नरपति फोड़या नैन गुर पै पुनि छोड़या नाहिं ॥१२॥

सुमिरण सुकृत दिसि चलत बरी बिघन अपार ।
भाठी सलिता साम गति प्राण पुन्नि कोइ पार ॥१३॥

सुमिरण सुकृत वरजहीं सो बरी बट पार ।
सबद न सुणिये सूम का रज्जब मार्यै मार ॥१४॥

सुकृत करै न करण देहि यहु सूमहु का सूल ।
पै पैडा मारै पुन्नि का परम पाप का मूल ॥१५॥

पच्यासी का पूत है, सूम सु इह संसारि ।
गाड़ी छाडी मैं रह्या निकस कौन बिचारि ॥१६॥

सूम मते के सूत सौं बांधे माया पंख ।
ब्रह्म व्योम क्यों जाहिं उड़ि पंषी प्राम असंख ॥१७॥

सुरग धाम धरमिष्ट का पापी नरक समाइ ।
जन रज्जब यत जोति दिसि सूम सरप कहं जाइ ॥१८॥

सुरगि सुन्न मुकति रही, कुकृत नरक निवास ।
रज्जब सांसा सूम का कहां करैगा वास ॥१९॥

जम रज्जब श्रम सूम करि, कृपन कमाई कोडि ।
स्वारथ परमारथ नहीं गये मास मन जोड़ि ॥२०॥

आलम अधूप मैं न्हसै सूम सु सूकी डाल ।
परमारथ सोभा न तरु सो जम चूल्है जाल ॥२१॥

माया के फल सूम कै कद न आव हाथि ।
स्वारथ परमारथ नहीं तीजा चलै न साथि ॥२२॥

सूमहि इहा न उहां कछु मात बिनंठी मूलि ।
रज्जब धन धर माहतौं तुरत गिया तिन धूलि ॥२३॥

ज्यूं गत राका पै पुंनि बिन त्यूं सूमहिं सुकृत मास ।
रज्जब रीते उभै दिसि निहचै जाइ निरास ॥२४॥

देखहु किरपन कूप मधि माया छाया होइ ।
जन रज्जब बेकाम वहु ब्योसावै नहिं कोइ ॥२५॥

रे रज्जब रिधि सूम की विभिचारी आधान ।
भणियहु काम न आवहीं मन बच क्रम करि मान ॥२६॥

सकति सदन मैं बावरौं हृदये संचक हेर ।
ज्यूं जहाज जन सौं भरै तव बूडत क्या बेर ॥२७॥

सकति सीत के कोट कौं संचिक देखि सिहाइ ।
रवि सुत किरम न सूझई सुनहीं महीं करि जाइ ॥२८॥

कोड़ि कोड़ि सुपनै पड़्या जागि देखि कछु नाहिं ।
तैसे रज्जब सूम गति यूं समझो मन माहिं ॥२९॥

गजमोतीर भुजंग मणि तीजै सूम सु आथि ।
रज्जब मुर मारे बिना माया चढ़ै न हाथि ॥३०॥

दुमई के द्रुम सारखी किरपन की कोपीन ।
रज्जब रिधि नीरघ्यू चढ़ै पुनि पानी सो छीन ॥३१॥

सूम सु घेरा सब्द की हस्त न सकई जाइ ।
पुंनि पुरुष सिरमौर है, खरचै सदा सु खाइ ॥३२॥

किरपन कंचन धन धरया हस्त न सावै हेर ।
तौ रज्जब सुणि सखी मैं संच्या सोवन मेर ॥३३॥

सोरठा रज्जब माये काम सुकृत सामैं विन भले ।
सूम सदा बेहाम मूवे चौरासी हले ॥३४॥

साखी रज्जब काढै कूप जल घटै न निरमल नीर ।
बिन काढ्या पाणी सड़ै पिवै न कोई बीर ॥३५॥

सूम विछोहै त्यो सकति इहि दुखि को सहि थोइ ।
रज्जब सिधि सराप जेहि, सोव सरप किन होइ ॥३६॥

## सांच चाणक का अंग

सबद सु उससे बहुत हैं, तनि मनि सुसझ्या येक ।
रज्जब जीव जंजाल मैं बिरम्या बहुत अनेक ॥१॥

मुख मुकते मन मैं बंधे ऐसे कपटी कोडि ।
रज्जब बिकुत वक्त्र सौं रहै बिसे वप वोडि ॥२॥

ब्रह्मंड प्यंड माहैं बंधे छाजन भोजन बंध ।
रज्जब मन मनसा बड़े मुहड़े कहै अबंध ॥३॥

बाहतु मुकते गात बंध मुहकम माया माहिं ।
सफरी सूवा बाल प्यंजरै सिर निकस्यू मड़ निकसै नाहिं ॥४॥

सरीर बसै संसार गति सबद सु न्यारा रूप ।
रज्जब बातैं व्योम की बसै बिचारा कूप ॥५॥

वित्त मारि बैसी सरफ बातौं परै प्रकास ।
ससि सूर का एक मत सुणहु बमेकी दास ॥६॥

सबद माहिं औरै कहै, सुरति मधि कछु और ।
रज्जब मैली आतमा लहै न निरमल ठौर ॥७॥

तन तुपक जीवतौं बची सबद सकस दिसि सोर ।
मन रज्जब वोसी सुमन गवन करहिं किहिं ओर ॥८॥

मन भुअंग सिरि सबदि मणि विष सु बिष नहिं बाहिं ।
रज्जब देखि उजास उहि मारि मारि जिव खाहिं ॥९॥

देही दरसण बंधि वप ज्ञानी अकलि अगाध ।
रज्जय रस रीतहि भिये मुसकिल हूणा साध ॥१०॥

रज्जब नग मौखंक किय धरि सु अष्ट बिधि ध्यान ।
मन मुकता गत मोख हुं कहौ कौन यहु ज्ञान ॥११॥

मन अस्थिर करणा कठिन रोकि दसौं दिसि मुख ।
अष्ट ध्यान धरि अष्ट मधि रहै भग इह रूख ॥१२॥

प्राणी पातुर लोह कै काव सु कली चढ़ाइ ।
कसत मसत सो ऊपजै गत बित दृग दरसाइ ॥१३॥

गांव सु पानी मुख रम्या पै मन खास न होइ ।
तब लग रस्त अरस्त है समझ्या समझै कोइ ॥१४॥

प्राणी रंगि बंधे बहुत पै प्राण रंम्या नहिं जाइ ।
तब लग रहते रंग मैं रज्जब कहां समाइ ॥१५॥

इक बकता है सुई समि इक सुरता समि ताग ।
रज्जब धागा बंदगी लागि रहै तहिं माग ॥१६॥

बादल ज्यूं बाइक मिलै गरजि सु मारे गाल ।
रज्जब चमकै बीज बस धरिया बित विन काल ॥१७॥

अरिल विद्युत जोति ज्यूं रैनि भगनि सी देखिये
त्यूं करनी बिन कावि सु बीर बसेखिये ।
देख्या सुन्या सु नांहि सूझे भर सोवतैं
रज्जब उभै भसति सुण्या सत बोवतैं ॥१८॥

साखी विद्युत बोध कृत हीन कवि दृष्टि देखि सुधि झूठ ।
रज्जब उभै मसति हैं, रजू होइ भावै रूठ ॥१९॥

रज्जब कथिये ज्ञान मृह, सो सुधि मरै न कोइ ।
जैसे बादल बीजुली चमकै बिषन न होइ ॥२०॥

गिरह उठाव गिरा करि, तन मन का नहिं जोर ।
तौ रज्जब कहु क्या सरै सबद किये बहु सोर ॥२१॥

सबद संग्रहै कावि कथ सब सुधिमें की आधि ।
करणी तत बिन कामठौं रज्जब चढै सु साधि ॥२२॥

मत मंडल माहै मढे मम मयंक नमि धाम ।
छाडि कलंक न तिन मिटै मन बध क्रम करि मान ॥२३॥

आतम आवित एक गति बाणी पाणी माहिं ।
रज्जब अज्जब आगि है, बुझती दीसै नाहिं ॥२४॥

मुखि मीठे बस मुकर ज्यूं पै ब्याला मैं अय ।
रज्जब कदे न कीजिये तिन कपटयू का संग ॥२५॥

मुखि साधू मन मैं असध परिहरि कपटी मंत ।
रज्जब देखै ध्रूपि दरस है मतहू भौतंत ॥२६॥

कह्या सुण्या कहबी न कछू, जे करणी कण नाहिं ।
रज्जब तब लग काल है, समझि देखि मन माहिं ॥२७॥

चौपई करणी कण कूकस कथ कव साधू संत कहैं सो सब ।
ज्यू बातहिं बात बाम के मेहू यहौ कथा क्यूं सुणी न केहू ॥२८॥

साखी कह्या सुण्यूं कछू वै नहीं जे कछू किया न जाइ ।
रज्जब करणी सति है नर देखौ निरताइ ॥२९॥

बकत्रहुं बिद्या बकत्र सम सुरतिहुं श्रवनौ द्वार ।
ग्यान नगर पैठा नहीं उरिल किया ब्योहार ॥३०॥

सबद सलिल संबूह सौं, घन बादल भरि पूरि ।
बोध धारि परसे नहीं, मनसा दामिनि दूरि ॥३१॥

रज्जब रहति सु भरि रही पर भरि गई कहति ।
मूरिख मूल न जानई, समझ्या समझै सति ॥३२॥

महा कवेसुर पंडिता बातौं काम प्रवीन ।
रज्जब माहीं काम की जे साधू अंग हीन ॥३३॥

चरण किये बहु भांति के पर चरण न कीया बीर ।
रज्जब बातौं परै की आपण वैसी तीर ॥३४॥

पढ़े पढ़ावै और कौं पंडित प्राण अनेक ।
मन समझावै आपणा सो रज्जब कोइ एक ॥३५॥

सत जति सुमिरण करण कौं मन बच क्रम नहिं आस ।
जन रज्जब जगि आइ करि सो बिन गये निरास ॥३६॥

मन लागै नहिं नांव सौं बातैं ब्रह्म सु होइ ।
रज्जब मन की लगनि बिन सीझ्या सुण्या न कोइ ॥३७॥

जन रज्जब चित चोरटे बोलै साधू बैन ।
देह दसा उर और दसा बहु ठग बिद्या ऐन ॥३८॥

पदहुं न पहुंचै परम पद साखी भरहिं न साखि ।
इस लोकहु उस लोक मैं जे मन सक्या न राखि ॥३९॥

गुण गावन कौं एक को गुण गाइण सु अनेक ।
रज्जब कही बिचारि करि समझौ बीर बमेक ॥४०॥

कथ कथ कागद भाव परि पढ़ि गुणि बैठे जाणि ।
पै करणी कष्ट जहाज बिन रिधि सिधि छिरहि न प्राणि ॥४१॥

सत जत सुमिरण ना गह्या बिद्या बेत्या बीर ।
पाठी पार न पाइये रज्जब वैसी तीर ॥४२॥

करणी कठिन सु बंदगी कहणी सब आसान ।
जन रज्जब रहणी बिना कहां मिलै रहिमान ॥४३॥

तन मन आतम राम सौं यहु जोड़े नहिं जाहि ।
तो रज्जब क्या पाइये सबदौं जोड़े माहि ॥४४॥

करणी सौं काठे रह्या कथणी को हुसियार ।
रज्जब रामहि क्यूं मिलै सरस बकया बिभिचार ॥४५॥

समझि न अपणे कहे की बकै बिकल बुधि माहिं ।
रज्जब पूते के सबद आगे की मति नाहिं ॥४६॥
कथणी कथ्यूं न मन मरै नबै न मौ की कोर ।
ज्यू रज्जब बड़रात सुणि, बित न छांड़ै चोर ॥४७॥
सीत भरम सुणि गुदड़ी राख्या ओढ़ै घर घट माहिं ।
रज्जब रोगी टारि न खोलै, चोर डरै यूं नाहिं ॥४८॥
रज्जब कथ्यू न मन मरै अरि सुन डरपहिं नाहिं ।
जैसे स्यांच पषाण के पंषि बसे मुख माहिं ॥४९॥
करणी बिन कथणी निबल नहीं ज्ञान मन गंठि ।
जन रज्जब ज्यूं स्यंभ मस बांध्या बालिक कंठि ॥५०॥
पुहुप पान गति ज्ञान है सु उन्ही पहुमि न प्राण ।
रज्जब ज्ञाता गहन कौं तजै नहीं मत बाण ॥५१॥
पढ़ि पढ़ि हुये ऐहु से सूखौं भरथा सरीर ।
रज्जब मारै और कूं आप न बेधे बीर ॥५२॥
उर अनरथ मुहड़ै अरथ कह्या कह्यां सो होइ ।
जन रज्जब रीते रहे काजी पंडित कोइ ॥५३॥
दस पथ साखी सीख करि फिर फिर मांडै सींग ।
रज्जब साधू सौं अड़े देखौ बिगड़े धींग ॥५४॥
ज्यू नृतिकारी नाचतौं काढ़ै रूप अनेक ।
त्यूं रज्जब सब कहण कौ करिबे को नहिं येक ॥५५॥
बात माहिं जो देखिया गात माहिं सो नाहिं ।
तौ रज्जब सो सबद सुणि सुरता क्यूं ठहराहिं ॥५६॥
रज्जब बिद्याधर बहुत लिये अबिद्या साथि ।
तम मैं चलैं चिराकची रहैं चिराकहिं हाथि ॥५७॥
पुस्तक पढ़हीं सिर धरहिं, पंडित प्यादे जोइ ।
पाठ पंच तन पेट मग दरस देस मनि होइ ॥५८॥
साख्यूं सांसा न चुकै पदौं न पद मैं जाइ ।
रज्जब कहि सुणि देखिया मर देखौ मिरताइ ॥५९॥
अकल बकलि सौं जाणिये पै बीज सीज नहिं होइ ।
सत मत सुमिरण बाहिरा सीख्या सुध्या न कोइ ॥६०॥

रज्जब बरणै बैन बपि जिव जीवन नहिं जान ।
मामहु ग्राहिक गहन गति गहै न ससि हर मान ॥६१॥
ब्रह्मंड प्यंड कौं ब्योरई, बातौं करि सु बसेकि ।
रज्जब मोसे मोष मसि विरला कहसी देखि ॥६२॥
रज्जब बाई बात मैं हाथ माहिं निधि माहिं ।
सो रीता मुणि रिद्धि बिन समझि देखि मन माहिं ॥६३॥
रज्जब पारस चित्र का माझ्या सोवन मेर ।
त्यूं कथणी करणी बिना साध चढै क्या हेर ॥६४॥
पद पावक मैं लिख लिया तौ पर तिमिर न जाइ ।
रज्जब दीपक राग की बे न सुमावै गाइ ॥६५॥
भगवंत भजन बिन झूठ सब प्यंड ब्रह्मंड बखाण ।
रज्जब दत बाजी बिहूर दे से मिथ्या जाण ॥६६॥
पाठौं दरसी नाँव सब परि ठाव न पैसै प्राण ।
तब लग तत वित दूरि है समझै संत सुजान ॥६७॥

चौपई राग माल लिखि राग न आवै भोगल लिखि छै राज न पावै ।
प्यंगुल लिखि नहिं प्यंगुल उपजै यूं सबद सीखि कहिं साध न निपजै ॥६८॥

साखी सास सहस मण कूटिये ऊखल मूसल माहिं ।
रज्जब यूंग्यूं बरतिये परि ताल परख कछु नाहिं ॥६९॥
पकवान पकाये बहुत बिधि कड़छ कड़ाही माहिं ।
रज्जब दुख यूंग्यूं सहै स्वादर सीर कछु नाहिं ॥७०॥
लाख कोडि लेखणि लिखी लहै न लच्छी भेस ।
कसम कमावै और कै देवहु यहु उपदेस ॥७१॥
बैद बंदिये बप बिमल बूटी बीच बिसाइ ।
एक बलासी यहु नफा मर देखो निरताइ ॥७२॥
मन गोमी पहुँचै पहल पीछै सबद अवाज ।
यूं करणी सौ कथनी भगी इनके सीझै काज ॥७३॥
ज्यूं कथणी मुख मौं बचै त्यूं करणी हूं माहिं ।
तौ रज्जब सांची कथा कहै न्याय जो नाहिं ॥७४॥
एक मझ्या साही मर्त कहै किया नहिं जाइ ।
तुबसतान तीरे ... ॥७५॥

स्वान सबद सुनि स्वान का, बिन देखें मुखि देइ ।
त्यू रज्जब साखी सबद जे देखि निरख नहिं लेइ ॥७६॥

परधिर बोल्या पाहुरू सो बोल्या परवाणि ।
रज्जब सुनहूँ सुणि सहस, मूके मिथ्या बाणि ॥७७॥

रज्जब बोले भेष धरि बया स्वाम संड खाइ ।
वहि बासंक्या ना उठै, वहि नहिं उदर भराइ ॥७८॥

टूटहुं की पहुचा खड़ी, कोई गह्या न जाइ ।
त्यू भाव भगत उपजै नहीं, अज्ञानी बक बाइ ॥७९॥

हीरे चींणण सर्प मणि, आणि नहीं रंग आगि ।
यू ज्ञान बिना मति ज्ञान की तिरगुण बरसहि न जागि ॥८०॥

मानहु मिरतग पूत जणि क्या हरखै पित मात ।
त्यूं रज्जब कहु वै नहीं ज्ञान हीण गत बात ॥८१॥

सीखे सबद कबीर के, दिल बांध्या कहिं नांहिं ।
मनसा बाचा करमना, वहि निगुरा मन मांहिं ॥८२॥

गुर बिन सीखी बहु गिरा, ज्यूं कारन बिन कंत ।
कलितहु माहिं कलंक यहु निकसै सेतहु अंत ॥८३॥

जन रज्जब गुर बिन गिरा, सीखै अनंत अपार ।
बहु पुरिखौं पुरिखे नहीं गनिका का औतार ॥८४॥

सबद सकल के संग्रहै, गुर एकहु नहिं सीस ।
रज्जब यहु बेस्या मता मन भणि बिस्वा बीस ॥८५॥

बहु बापौं बापै नहीं बेस्या बालहिं जोइ ।
त्यूं निगुरे बैराग के ठिक ठाहर नहिं कोइ ॥८६॥

मीति भेष पतिबरत की नर निगुरेऊ नास ।
रज्जब बेस्या बाल बिधि पिता पूत नहिं बास ॥८७॥

उभै अरथ आवै नहीं कहत सुनत मई सांस ।
सो रज्जब निरफल गये ज्यूं नर नारी बांझ ॥८८॥

चौपई मिगुरी बाणी बुदक सौन ताहि न मोल बिसाहै कौन ।
गुर मुखि सबद सरस रस स्वाद मोल बिकावै मुलिक सु आदि ॥८९॥

साखी नर मघम पीसहि अनंत उदित अमावस रैन ।
पहुंचै पून्यूं प्रगट सुध, अम्मासै नहिं सैन ॥९०॥

बैराग बघूळै ज्यूं उठै अलप अधूरी आव ।
रज्जब रहै न उस मवै मत मारुत नहिं पाव ॥९१॥

चारि खानि चौरासी भरम्या, रज्जब रह्या न माहिं ।
पै खानि पाचमी पग न ठाहरै निगुरा निहचल नाहिं ॥९२॥

तन फेरे बहु खानि फिरि, पंचम मैं गुरदेव ।
मूरिख मरम न जाणही पड़ी फेरणी टेव ॥९३॥

कागर बेसुर पास इक मोसा पूजै सोइ ।
मी रज्जब मारै सबै करणी नाहीं कोइ ॥९४॥

दस राहै देखे दुनी नीस टांस कौं मैन ।
सौ-कहा खसक से बाहुड़ी का बम पाया चैन ॥९५॥

चौपई गढ़वी चारण राजा भांट डोसी राणा उसटा ठाट ।
रज्जब स्वामी सुष नहिं सार ज्यूं मिथिल भ्रमत कहा दातार ॥९६॥

साखी ज्यूं देखादेखी पंच सिरि पाघर कीजै ढेर ।
त्यूं रज्जब संसार सठ रती न समझै भेर ॥९७॥

ज्यूं देखादेखी बिरह कौं चींपी बांधै जोग ।
त्यूं रज्जब समझै नहीं झूठा जग का जोग ॥९८॥

हुये चूवड़ी जाट ज्यूं जोग न आया हाथ ।
जन रज्जब फूलै फलै जड़ जुवती घर साथ ॥९९॥

दसा औ बसा दूरि करि दिस परि साहेब राखि ।
रज्जब रचना नांव मैं साख बेद की साखि ॥१००॥

जग रज्जब रीती रहति नांव बिना क्या होइ ।
स्वांचल दीप बती भणे सीझ्या सुण्या न कोइ ॥१ १॥

त्यागी कौ सामी भणी माया मैमग मन ।
यहु भी हुनर देखिये समुझै समुझो जन ॥१०२॥

माया मृग उसटे चढ़ै बिकुत बधिक सुभाइ ।
बिभूत उड़ावहिं सनमुखी जड़ चेतन ठगि खाइ ॥१ ३॥

उदार अहेड़ी बधिक बिधि साधू सुद्ध सो माहिं ।
भूति बिभूति उड़ावहीं मृग माया फंद माहिं ॥१ ४॥

आतम ओड़े सोग सब ऊपरि ममिम सरीर ।
रज्जब रचना कपट की संत न मानै बीर ॥१०५॥

रज्जब बसुधा ब्योम बिधि सूर दिगंबर रूप ।
सर सलिता प्रासे सबै सोखे बापी कूप ॥१०६॥

अंड अवस्था नगिन नर मागहु नागे माँहि ।
दृगहु दिगंबर देखिये बहुत पंक पटमाँहि ॥१०७॥

रे रज्जब मन नांव सौं नामैं शुद्ध न होइ ।
तौ बिन अंबर पहिरि कर, सीस्या सुण्या न कोइ ॥१०८॥

तन नागा बहुतैं करै मन नागा नाँहि होइ ।
रज्जब मन नागे बिना कारज सरै न कोइ ॥१०९॥

सकल दिगंबर देखिये चौरासी लख जीव ।
नागे गंठिबंधन नहीं कहु क्यों न पाया पीव ॥११०॥

नागे पगि नाहर फिरहिं, विषम पसू हति खाइ ।
सिहरि माँहि मोले पहरि, मुगलौं खोजी गाइ ॥१११॥

मानहु कपड़े कामुसी तजि सुनि बिन नर नाग ।
रज्जब नख सख विष भरै, ठाहर उभै अभाग ॥११२॥

रज्जब चुपड़े असन अति बसन सु रूखे अंग ।
मन बच क्रम कपटी कला केसौं कैसे भंग ॥११३॥

मांव बिमुख बिकृत बहुत कोई सीझे नाँहि ।
चौरासी सब चीर बिन कनक न मांठघू माँहि ॥११४॥

बप बामहु बिरच्या सही बिव सलिल उतारहि श्याम ।
तौ रज्जब मम मच्छ तैं सकति सलिल भै स्याम ॥११५॥

वागे त्यागे नरहु नै ज्यूं तरवर पतझार ।
बिन दस मागे देखिये पुनि वाके ब्योहार ॥११६॥

उचरघू उकिउं न बृति मिलै प्राण पारघू लाभ ।
तिरसुद्ध तिरसुद्ध हूं रज्जब बुद्धि अगाध ॥११७॥

नित नागे नरकन रहैं, बिन देवे ल्यूं देव ।
भोजन समये पुर नगिन म्रिग सु दिगंबर सेव ॥११८॥

दाम धाम माहैं रहति आक्रम अक्ष्मू ठाट ।
रज्जब राम न पावहीं भूले भजन सु बाट ॥११९॥

काया सौं कामनि तजी मन भुगतै रसबास ।
रज्जब बप बनखंड मैं चाहै कनक अवास ॥१२०॥

बाहरि भेष बैराग के भीतरि मिरखी लोभ ।
रज्जब रामहिं क्यूं मिलहिं, इहै पाखंडी जोभ ॥१२१॥

काम कसणि माहैं कसे माफिल मल ज्यूं गात ।
रज्जब बीधा व्याधि मैं मुखि सु राम की बात ॥१२२॥

वीये दाम न कर चढ़ैं बिना उपाधि उपाधि ।
अनवीये सु अतीत ले कपट कसौटी साधि ॥१२३॥

कपट कसौटी ठग बिद्या आसण अधर कराइ ।
रज्जब लोभी लालची सकल भरे के भाइ ॥१२४॥

परम न माया लेण को बिबिध कौसौटा कीन ।
रज्जब जिव रीता रह्या महा मुगध मति हीन ॥१२५॥

मन तन मरघा मानि को करी मीच सम मीच ।
रज्जब आतम राम का ताऊ न भागा बीच ॥१२६॥

रज्जब कौडी ना गहै, करि दासौं मैं बास ।
ज्यूं जल मीन न मुखि पिवै बिन तोयं तनु नास ॥१२७॥

मीन मुनीसुर होइ करि, रहै बास वह कोस ।
रज्जब पंषी प्रान कौ जलनिधि लेत सु रोस ॥१२८॥

रज्जब दासौं माहैं बास करि स्वामी स्वाम बसेख ।
अजाचिक गृह गहि रह्या पुसै अतीतौं देख ॥१२९॥

आदम ईबम सारिखा देखिर मुसै फकीर ।
चौरासी माहीं मही दूबा वहि समि बीर ॥१३०॥

दास देस दिल मैं गहै देह दिगंबर होइ ।
माड रिझाई भांड मत मुस मानैं सब कोइ ॥१३१॥

औधें करि पानी चढ़े सूका कीन्हीं मास ।
त्याग दिखावै जगत कौं करै ताम परि बास ॥१३२॥

गहै सगरबी गूदड़ी तजै निगरबी मीर ।
रज्जब रचना कपट की पाखंड मांड्या बीर ॥१३३॥

अमरबेलि समि औलिया जिमी जगत निरमूल ।
रज्जब पलहि सु मर तरहु फूटण की नहिं भूल ॥१३४॥

जल बिहूण जल मंडली जीवै पाणी माहिं ।
त्यूं अतीत आसा रहित परि आसम न्यारे नाहिं ॥१३५॥

तीन दाम की चूकमी मुहरहि चूकम जाइ ।
त्यूं रज्जब सार्थहि असद सबद सुभोवे आइ ॥१३६॥

लोहा सोना छेदियें सोहै कंचन तोल ।
पै रज्जब रज सत्त कावलों सरभरि सहै न मोल ॥१३७॥

साध असाधौं सौं सके मूलि न हूज्यो मेटि ।
कीड़ी सौं कुंजर डरै सोवे सूड़ि समेटि ॥१३८॥

मर्यम सु डरपै माछरौं देखौ कदरज साहि ।
एक पूंछि क झाटकै केते मारे थाहि ॥१३९॥

सोधी बिन मिथ देखिये साई पावै नाहिं ।
सुरति बंधी रिधि सिधि सौं फिरि आवै कलि माहिं ॥१४०॥

माया माहि मिल्यो मन खेलै कहिवे कों मुक्ति केवल राम ।
सांई मिलै नाहिं इन बातौं रज्जब सरया न एकौ काम ॥१४१॥

माहैं माया बाहिये ऊपरि भये उदास ।
रज्जब रामहि क्यूं मिलै ध्यान धरे के पास ॥१४२॥

बाहरि सौं निवृत भये भीतर भूख अनंत ।
पन रज्जब बग यू ठगहि बहुरि कहावै संत ॥१४३॥

ब्रह्म मिल्या भी बाहिये अरु माया सौं काम ।
पन रज्जब कहु क्यू मिलै अंतरजामी राम ॥१४४॥

रज्जब माया कूप मैं करक कामना माहिं ।
जब लग सो निकस नहीं तौ जल काड़े कछू नाहिं ॥१४५॥

सूतैं सुपिना खिलसिये जोगी ह्वै जोग्यंद्र ।
रज्जब सीखी कौन विधि मनवा मैंसे मद्र ॥१४६॥

घरि वनि पसु माणस रहै उमै न लपटहिं अंग ।
यहु रज्जब माया भरम फिरहि न माड़े मग ॥१४७॥

पसु प्राणी पलटहि नहीं घर बनि बासा मूठ ।
रज्जब रीते राम बिन रजु होइ भावै रूठ ॥१४८॥

बिन चारे बिचरहि सदा अणिये बैठे हाट ।
रज्जब चंचल अचल मति सुरति सकति की बाट ॥१४९॥

करहि कीरतन पेम सो माया देखि मजूर ।
पन रज्जब ऐसी भगति हरि सौं नहीं हजूर ॥१५०॥

सूम न डरपै माँगता संसारी अरु साध ।
रज्जब माने पाहि चलि भीतर भूख अगाध ॥१६६॥

रज्जब डरिये सूम सौं मति गति हाटी सूम ।
मिस्त प्रापि दोजग चल्या देखि सु चूकता धूम ॥१६७॥

मंगित मन ठाहर नहीं नित तृष्णा नगि पग ।
सब दिसि चिगता देखिये तौ कहिये जाचग ॥१६८॥

मंगित मति माई नहीं मंगिण मिथ्या न जाइ ।
रज्जब राखै कौन विधि मर देखो मिरताइ ॥१६९॥

चौपई मांव भिखारी मारति मार, रसणि पुराणी रोप्या सार ।
रज्जब सती सु चोरी करै, मांचत भेद उड़ै मति करै ॥१७०॥

साखी सालच लच्छी कौं चले लाज पछमनी सेह ।
मंम्मत चढ्या हिलोसनै पग न धीर धर देह ॥१७१॥

रज्जब दीन देह आधीन वाइक मूठ मीत परसेव ।
मामदरी हूं मीच समायो भिन्न माहिं नहिं भेव ॥१७२॥

एक बोलते अति भले एक अनबोले कछु माहिं ।
रज्जब नरनासेर ज्यूं मौनी चिकठे माहिं ॥१७३॥

मौनी मुख मांगै नहीं सैना चाहै सोइ ।
परि रज्जब परपंच कौं साध न मानै कोइ ॥१७४॥

संख सबद फिरयादि हैं, सींगी नाद पुकार ।
रज्जब रोवहिं पेट कौं मति कोइ करै संभार ॥१७५॥

केते मुरगे बांग देहि, रासिव पूरै संख ।
किन उनकी पूरा दिया रे मन मूढ़ मसंख ॥१७६॥

मद पीवत माया गमै मतिवाले मति खोइ ।
कासे पाणी घर गया सकल पुकारै लोइ ॥१७७॥

दारू चक्का दैत का पी परसै मनि नास ।
तौ रज्जब इह जुगल मिलि जीगे की क्या आस ॥१७८॥

मांव भंग भंगै करै, पोसत पाईं नेह ।
रज्जब राष्यूं बसि करै, बिरख्यूं पाड़ै देह ॥१७९॥

ममल ममल अपमा करै, मनसा मही मझार ।
रज्जब प्राणी परख परि, पीड़ा दुख अपार ॥१८०॥

अमली अमली कहत हैं, सो क्यूं मिलसी आइ।
रज्जब भाये भेव की नर देखो निरखाइ ॥१८१॥

सोफी नांव बुलाइये अमल न छूटै कोइ।
रज्जब बिरद बिसारि कर बैसे रसन सु खोइ ॥१८२॥

नांव पराहित हित परै भूक बड़ी चित माहिं।
रज्जब नांव प्रताप की मिहमा जाणें नाहिं ॥१८३॥

नांव जोतगी सब कहैं, सूझै नीक न ठांव।
ज्यूं अंध संतोपे अंध मन नीड़ा माया गांव ॥१८४॥

ये करवौं घा जोतगी देखो दिसि आकास।
भरखी धन सूझै नहीं रज्जब तत विसे पास ॥१८५॥

सोरठा
गुर गोब्यंद दरबार, गरब मरद मागी न बग।
सुरगज सेहिं अपार अहि अवनी छाडै न संग ॥१८६॥

गुर गोब्यंद दरबार रज रज्जब मागी न उर।
सु छिन छिन लोटहिं बार खिस मालिक सिरजे सु सर ॥१८७॥

साखी
साधू पद रज परसतें बहुत लाभ सुनि बैठ।
रज्जब एक अनेक ह्वै धान धूलि मैं पैठ ॥१८८॥

मन माया की बंदि मैं बीती उमर अनंक।
रज्जब गुर गोब्यंद कौ जनम दिया नहिं यंक ॥१८९॥

अनेक जनम यूं ही गये वातहिं दिया न येक।
तौ रज्जब जड़ जीव का समझ्या सकल सकेत ॥१९ ॥

वस्तु विकी अर बाठ रहै भरि सो संपति कछु नाहीं।
धन रज्जब एकौ बिन ऐसे समझि देखि मन माहीं ॥१९१॥

रज्जब काया कीच की सजल सरोवर येक।
वारि गये सु बराह बहु हस ह्वै गये अनेक ॥१९२॥

सदगुर बूटा भाल का सिप जड़ सूटे मीच।
पुनि ऐस आये मिल संबू बसुधा बीच ॥१९३॥

दुनिया सा करि दास्ती रज्जब बिसरचा पीव।
मूक बिरघ मैं फलत कै अइया मूढ़ मति जीव ॥१९४॥

आतम रामहि ना बणी रिधि न मिलसहिं अभाग।
रज्जब दीसहि प्राण पहि, महा बिपति बैराग ॥१९५॥

जीव सीव पर नाचहीं, सक्ति सु दीनी पीठि ।
रज्जब रह्या बसिभ्र धरि यह विधि दीसे दीठि ॥१९६॥

रज्जब सक्ति पण जीव के धार्यों ब्रह्म सु होइ ।
मनसा बाचा करमना कारिज सरै न काइ ॥१९७॥

धन रज्जब तन रंक मति सब बार्तों सु सकज्ज ।
मन बच राजी ह्वै रहै, नहिं बोलै सु निसज्ज ॥१९८॥

कूरम ग्रीवा मति गिरा प्रगट गुप्त ह्वै अंत ।
साध सबद निकसै सु यू, ज्यूं रज्जब गज दंत ॥१९९॥

साध सबद सति सैल सभि सो सरकै नहिं कोइ ।
बामन उवै असंत के गिरा सु मति गत होइ ॥२००॥

मनसा के बति मित नहीं कीजहि बात अनेक ।
रज्जब दुरसम हाथ सौं करिबे को नहिं येक ॥२०१॥

सठ मुरखा हूये रहैं, बेत न समझ्यूं ठौर ।
पै मत मत कैसे छिपै आगे पीछे और ॥२०२॥

बांझ्या बाधै कू भव मुक्ति हूण की आस ।
सो रज्जब कैसे खुलै इह झूठे बेसास ॥२०३॥

चेतनि कम सुणि सील से सेवै अकहिं सु जाइ ।
सो रज्जब कैसे पचै नर देखौ निरताइ ॥२०४॥

तन पाका ज्यूं तोरई मन पाका ज्यू बीज ।
रज्जब रस बाकस भया अमृत बिषमैं चीज ॥२०५॥

सेवग सिरदार नककई, काचा सेकैं स्वादि ।
पाकि मुकि बड़ ब्यार मति बाकस ह्वै पै बादि ॥२०६॥

तन तह रज्जब बडे ह्वै तब फूलौं सौं जांहि ।
सो यूं सेवग साधि के ब्यास बड़ाई मांहि ॥२०७॥

रज्जब रावण मुख सभा पै बड़ा बदन रासिब ।
नर आनन नीकै कहैं, वह बोलि बिगारै सब ॥२०८॥

चौपई घट घोड़ा आतम असवार, ज्यू किसहि करावै यार ।
पांच यार पैहपु के भोवै यू उज्जवल असवार न होवै ॥२०९॥

साखी अस असफौ का संजम उजू, असवार सुपति तप मीठ ।
तौ उज्जल ज्यूं पाक ह्वै चलि ऐसी रस रीत ॥२१०॥

चौपई
सदा पयंक पापी सो सोवै ऐसे प्राण न उज्जल होवै ।
जलचर देखि रहै जल माहीं रज्जब मैलि न उनके जाहीं ॥२११॥

साखी
सोक बकत्र दाढ़ी बढ़ी मे तिसकी करै न लाज ।
रीछ रीस रूपी सु तन कहौ सरचा क्या काज ॥२१२॥

सुपिनै सम्पति संचिये सुपिनै गुर सिष रत ।
रज्जब दून्यूं झूठ हैं, जागे माल न मत ॥२१३॥

सुपिनै नर नारयू मिलै सुपिन गुर सिष गत ।
रज्जब उभै असति हैं जागे सुख ना मत ॥२१४॥

क्या सिष सुपिनै सेवकी क्या गुर बरंमू होइ ।
रज्जब सगपण झूठ है, जिनर पतीजै कोइ ॥२१५॥

रंक, सगाई राज घर जे सुपिनै मैं होइ ।
रज्जब नाता ना गिणहिं जागे जगपति कोइ ॥२१६॥

मूये गुर मार्थे मरे निगुरहु नै निरताइ ।
जीवत सो जोवयूं घणी सेवा करी न जाइ ॥२१७॥

गुण ग्यान जीवतहु कन लिया मुये किये गुर पीर ।
मन बच क्रम बिरूस बणी संत न मानै मीर ॥२१८॥

तम सोमे से तेल मींगजै वास चरै पसु जीव ।
तौ रज्जब रूखा क्यू कहिये मस्त प्रमित सू जीव ॥२१९॥

तिरि खाणे महिं हरि बिमुख सिर से पाप पषाण ।
बिसुवा बीस सु बूडई रज्जब कह्या बखाण ॥२२ ॥

चौपई
सुनही सूरी मुरगी मीन बहु आतम जणि कहवा कीन ।
पै परमारथ उपज्या क्या माहिं रज्जब रावण देखौ नाहिं ॥२२१॥

साखी
मत हींणा मन जब धावई तब मारग चलै न जोइ ।
ज्यू मुखि मूंदै आपणै जोक मस्त मद होइ ॥२२२॥

सारबूस तलफै पै मरै सुनिब इंद्र की गाज ।
सो सुरपति समझै नही महु पवन होत अकाज ॥२२३॥

## बसत ब्योरे का अंग

नर उर हिमगिरि ज्यूं मरै साधू सूरिज देस ।
जन रज्जब तप ताप मैं बिगता बिगति बसेस ॥१॥

त्रिविधि भांति का भोग हैं, त्रिविधि भांति का जोग ।
जन रज्जब सेवा समझि, सर्वे लगावैं भोग ॥२॥

चौपई दीप मसाल एक नहिं पाती जैसा देव सु तैसी पाती ।
रज्जब रोस न कीजै बीर भाग स्यस काहू नहिं सीर ॥३॥

साखी सबकू समसरि ना किया अन्न धन्न अर भाव ।
रज्जब बहुत विचारिय कीजै नहीं चवाव ॥४॥

त्रिविधि भांति त्रिगुणी करी सो संसरि क्यू होइ ।
आव अलूफे बकसि मैं मन बच क्रम करि छोइ ॥५॥

सिरज्या सिरजणहार का मेटि न सकई कोइ ।
रज्जब दुरमति दोस धरि, वादि बके क्या होइ ॥६॥

रज्जब रिधि सिधि भाग की पाई पूरब मति ।
ताहि देखि तपि तपि उठ भइया मूरिख मति ॥७॥

दुख सुख सांई का दिया जीवौं पाया सोइ ।
ती देखि दलिद्री ईसुरहि स्यू सरसंधा होइ ॥८॥

देखि पराये भाग कौं रोवहिं सदा अभाग ।
रज्जब वे आनन्द मैं उनके दिसि दुख दाग ॥९॥

सठ सुतझा निस दिन घुसैं मांस्यू देखि अतीत ।
रज्जब रिजुक न धरि बंध्या दै बकि विकस बतीत ॥१०॥

भौकहिं गोरख दत्त कौ कुसहु की यहु बाणि ।
पै सिरज्या सरकै नहीं हासिल होइ न हाणि ॥११॥

विभूति बंदगी हरि हुकम मरहु परापति होइ ।
जन रज्जब थोड़ी बहुत दोस न दीजै कोइ ॥१२॥

रज्जब दुख सुख देखि करि, कीजै नहीं उचाट ।
एकहु के पाइन पदम एकहु नहीं लिलाट ॥१३॥

मारौं माइक मार पावहीं मौजो माइक मौज ।
एकहु के पग कूकर काटहिं, एकहु गैल सु फौज ॥१४॥

सत जत सौं दीसै बड़ी रती जु मस्तग माहिं ।
रूप राग गुण सब थके कोई पूज नाहिं ॥१५॥

रती न पावै रती बिन सती जती ह्वै जोइ ।
सपत दीप नौखंड फिरि, बिन रचना क्या होइ ॥१६॥

रचना बिन नाहीं रती बखतौं घट न बिराट ।
रज्जब पावै पान सौं ठाकुर ठ्या जु ठाट ॥१७॥
भगवंत भाग माहीं लिख्या सोई मिलसी आइ ।
ता ऊपरि बोझा अधिक रज्जब लिया न जाइ ॥१८॥
रती सहित राजेन्द्र ह्वै रती बिहूणा रंक ।
रज्जब भाग अभाग बिच येक रती का अंक ॥१९॥
रूठे तूठे किसे के घटे बधे कछू नाहिं ।
राम रच्या सो होइगा लिख्या सु मस्तग माहिं ॥२०॥
भावी भाजि न ऊतरै भूति न भावी भाय ।
रज्जब रचना क्यूं टलै भावै कोइ भावै जाय ॥२१॥
भगवंत भाग मोटा दिया तौ छोटा किसक न होइ ।
प्रभू पसाव सो क्यों घटे काहि कलपै कोइ ॥२२॥
पैठहि सैस समुद्र मधि रिधि मुकता के भाइ ।
भाग बिना लान्यूं दबै बाहि मगरमछ खाइ ॥२३॥
बारि सोक बड़वानल महिये ये उग्रह सु अभाग ।
परबत परि पाणी मिलै रज्जब अजब भाग ॥२४॥
सारंग चाहै स्वाति कौं दामनि दग्ध्या गात ।
रज्जब कहिये कौन को इन बखतौं की बात ॥२५॥
आभा तजि ओड़े अहर, सारंग स्वातिह बानि ।
अघणि अभागी कनै ओसरै, तहं सुमत की हानि ॥२६॥
हाडी तो भाड़ी भई, छीकत लागी आगि ।
जीवण करतौं जगि मुये अइया मूंडे भागि ॥२७॥
अइया अभागी ऊंदरा करंड काटणे जाइ ।
कै बसत बसी बाली गहै, जासौं भाये माइ ॥२८॥
गोला छूटा और दिसि पंथी आया बीच ।
रज्जब कहिये कौन सौं भागौं ह्वै गई मीच ॥२९॥
अनल पंप आश्रित परी बड़वानल सौं मीन ।
जीवनि ठौर सु जम भई काहि कहै – मसकीन ॥३॥
नर तर तारे लगि नहीं जे सिरजे करतार ।
रज्जब पटि अपि बीच के बावे हाथि बिचार ॥३१॥

चतुर खानि के जीव जमि माहीं एक समान ।
त्यूं रज्जब सुमि हेत रज एमी यू ही जाम ॥३२॥
अठार भार अरु अष्ट कुलि उतम सु एक न होइ ।
रज्जब लघु दीरघ रचे आदम अंगुरी जोइ ॥३३॥
प्रभु पारस मंहगा किया सौंघे असम सु मान ।
रज्जब लघु दीरघ हुकमि समझौं संत सुजान ॥३४॥
रज्जब राजा किन किये कौंमे किये सु रंक ।
ये आपिर अविगत लिखे मिरखि लिलाटहु अंक ॥३५॥
बड़ पीपर अरु सांप तिण उदै अंकूर सुमाइ ।
लघु दीरघ सु दयाल दस दोस न दीया जाइ ॥३६॥
कीड़ी कुंजर किम किये लघु दीरघ दी देह ।
रज्जब दोस न दीजिये देख तमासा येह ॥३७॥
साईं समसरि ना किये पंच खानि के प्रान ।
लघु दीरघ घटि वधि पटा रज्जब रचे दिवाम ॥३८॥
रज्जब दुविधा दूर लग सरम भरग ह्वै बास ।
येकौं कूं देवस फिरै येक जिव आइ निरास ॥३९॥
किन फरास निरफल किये किन किये अंब सुफल्ल ।
येकै करता उभै का कौन करै हलचल्ल ॥४०॥
रज्जब निरफल आइ चगि सुफल सु दायपू बास ।
दून्यूं कौ वद वई का सोम कही कोइ मास ॥४१॥
देखहु सिर धरि पगहु अंतरि अंतर जोइ ।
यन रज्जब सब ठौर की बागहु बिगति सु होइ ॥४२॥
भागि अभागी ऊपजैं भागि बुराई संग ।
उभै अंग आतम लहैं, जे हरि देहिं उमग ॥४३॥
भागि भले गुर ग्यान पाइये भागि भले सतसंग ।
भागि भले सौ भगति ऊपजै मेटै अविगसि अंग ॥४४॥
सकल बिभूति सु पाइये भागि मिलै भगवंत ।
उभै अभागिन आवहीं सोधि कह्या सब संत ॥४५॥
रज्जब सुखी सु भागिये दुखि दीरघ सु अभाग ।
कहीं ठौर बाइगा कहीं सुख दुख दून्यूं दाम ॥४६॥

आकास मधि माभे अमन्त, अगत मोम तहं आहि ।
रज्जब पूरे पूरियहि, नर निरखौ क्यूं नाहि ॥४७॥
नदी नाव आवहिं मवी बहु बरिषा तहं बारि ।
अम रज्जब भरिये भरे नर निरखौ सु मिहारि ॥४८॥
भाग राव धरि औतरै मागि गुरू गृह दास ।
घरधा मघर भागे मिलै माम्य भरै उर भास ॥४९॥
बसतौं ही बीती पड़ै परधन अपना होइ ।
रज्जब भागी भोलि सब भागौं सबा न कोइ ॥५०॥
इक कौड़ी कौड़ी कौ फिरै इक बैठे कौड़ी ना लेहिं ।
रज्जब भूतहु भाग भिन्न कही पटतर क्यूं देहिं ॥५१॥
मोह कनक पारस परस सबपति साह हमाइ ।
हणवंत हांक गुर गिरा सुणि रज्जब बसत कमाइ ॥५२॥
रज्जब भावी बसस की मागे मिलहि सु जाम ।
रंक राव ह्वै पलक मैं सब सिधि प्रभू पसाव ॥५३॥

चौपई भाग भले भगवतहि गावै बसस बड़े पे बहु सुहावै ।
रती सु उत्तिम हरि रत होइ ता सम तुल्य और नहिं कोइ ॥५४॥

साखी सतगुरु साधू भट घटा सिव सारंग पुकार ।
बैन बूंद बरिषा विपुल पै भागि परै मुखि धार ॥५५॥
स्वाम सुपासन चढ़ि चलै सही सुसीरा आहि ।
रज्जब मोड़ै सावदू लिख्या सु मागहु माहि ॥५६॥
तमिकहार कसतम चलै स्वान सुपासन यान ।
रज्जब कौया रोस क्या भावी भिन्न सु जान ॥५७॥
रज्जब कोगहि पावक्यू काष्ट सामा येक ।
भाग भिन्न ठाहर मिलै न्यारा किया बमेक ॥५८॥
रज्जब महंत मयंक के सभा सु मंडल होइ ।
आतम उडग अनेक हैं तहां सुधा भट होइ ॥५९॥
रज्जब भावी भाग मैं सभा सु तिनकै पास ।
रवि ससि बिन मंडल नहीं औसोकहु आकास ॥६०॥

सोरठा दाता दिल दरियाव भाव भला सब त्याग का ।
पै मंगित करि आव जेतक भजन भाग का ॥६१॥

साखी उदार अधिक मदिनाय से जिन माहैं बहु वस्त ।
पै रज्जब वासम बपत का देता आव हस्त ॥६२॥
बाव सरै सोतन सुखी सूषणहारहु दुख ।
तथा संपदा देखि करि आपद मोड़ै मुख ॥६३॥

## स्यदा का अग

निज तीरथ स्यंदक सही स्यंदा नीर सु माहि ।
रज्जब रजमस उतरे घट गंभीर सु नाहि ॥१॥
स्यंदक नांव समान है जिनसौं प्राम पवित्र ।
मन बच क्रम रज्जब कहै, ऐसी और न स्यंत्र ॥२॥
स्यन्दक निज जन घारिसौं मम मस मंजणहार ।
सदा सनेही संगि है करे न छोड़ै सार ॥३॥
स्यंदन ओषदि अग्र गति स्यंत्रमई गुरदेव ।
येवहि ठाहर यक है पुनि सोधे भिन भेव ॥४॥
नांव नाज उर घर बहै, बाहै प्राण किसान ।
रज्जब रिधि दीये बिना स्यंदक करै निम्गान ॥५॥
निन्दक डूमर निस्तरै कुमति सुमतिहु याहि ।
कही भांति जाण न अइ जनम जाति जो बादि ॥६॥
स्यन्दक निन्दा निस्तरै निसि सु दूरि ह दोष ।
महापुरिय पारसमई सोह समो रस रोस ॥७॥
स्यन्धा स्यन्धा नरक भय पटि बधि कहितौं व्यापि ।
रज्जब राम न मानै लागा राग असाधि ॥८॥
स्यन्द कै भगतो नहीं पममस धोवहि स्यन्त ।
रज्जब गिनै न रैम क्यूं ऊजल करै सु स्यन्त ॥९॥
स्यन्द कै निम मम बहु अहि निमि करै मनीति ।
रज्जब मांप न मूर्ध सब मूठी रम रीति ॥१०॥
नारायण गुर मर महित निन्दक मीरै भाड ।
रज्जब रप म गम बौ जगति न भावै भाड ॥११॥
गुरपुर मरपुर नागपुर, स्यन्दक का नहि ठौर ।
रज्जब राम न रागई कहै और की और ॥१२॥

न्यंदक दुख दोषी भरया कहैं अनुगती बात ।
रज्जब रोग अपार मंनि घेरि रही घट बात ॥१३॥
सारंग सरोवर सुपिन मुख बीजै न्यंदक बैन ।
जन रज्जब मिथ्या मुकुर कहु किन पाया चैन ॥१४॥
न्यंदक नरक समानि है, बाणी बिबिधि कुबास ।
रज्जब सुणि सूधै नहीं कुमति कानि की नास ॥१५॥
रज्जब दिल दोषहु भरया आतम औगुण पूरि ।
ऐसा अंमि अज्ञान का करै कौन बिधि दूरि ॥१६॥
तूटे फूटा रूप दिखावहिं, नर नखित्र मिरताइ ।
रज्जब बहूणी बक्त्र बपि जुगम सु असता आइ ॥१७॥
लोहा बैरी कनक का मुकर्ताहि पिसण पखाण ।
यूं असाध साध को न्यंदई, तुल्य न बसत बखाण ॥१८॥
मुख रसना प्रभु जी दिये अपनै सुमिरण काज ।
सुर नर न्यंदा मैं बरचि रज्जब खोई लाज ॥१९॥
दोष दोषकम आवई काया नगरी माहिं ।
सहर सहर कुरमति कड़ै औगुण आवै माहिं ॥२०॥
मावि न आवै तौ भली बुरी बसत मन माहिं ।
परकी बरी बिचारतौं आप बुरे ह्वै जाहिं ॥२१॥

## कृतघ्नी निगुणा का अंग

जन रज्जब गुण चोर का कबहू भला न होइ ।
सतगुर का कृत हंति करि सीख्या सुण्या न कोइ ॥१॥
साधौं के गुर चौर कौं कहौ कहां है ठौर ।
माया मै भी मारिये रज्जब चोरी चौर ॥२॥
जैसे अंध उलूक गति रवि गुण मानै माहिं ।
रज्जब रजनी ह्वै गई बिद्यमान दिन माहिं ॥३॥
बिद्या लेइ बिहंग की बक्त्र सु बरषी खेम ।
रज्जब मरतौं गोद मट मरि उर बैठा सेस ॥४॥
भसमाकर भसमै हुमा महादेव गुण मेटि ।
तो रज्जब गुण चोर का भला न होई भेटि ॥५॥

रज्जब साँई सूर समि सतगुर ससिसु सु जग ।
सिष सफरी पन बस पुदे वार्यों पूले भग ॥६॥

देखौ मुकर मसन्द मुनि मुख सुख पावक पीठ ।
रज्जब रवि रमिता रची वया द्रुष्ट निधि वीठ ॥७॥

देये विना सु देत हैं, लीये विना सु लीन ।
यौं गुर सिष सनमुख विमुख ज्यूं मांस्यूं आदित कीन ॥८॥

अविगति आदित की सता मातम मांस्यूं मांहि ।
पै कृतघ्नी सारी उमरि द्रुष्टी देखै मांहि ॥९॥

मूष पलटि मंझार किय पुन स्वान स्यंघ धारि ।
तौं कहा सेवड़े सुख सखा गठ गुण चोर निवारि ॥१०॥

रज्जब खोटे जीव सो कुछ गुण किया न जाइ ।
केहरि काढयो कूपतैं काटणहारहि खाइ ॥११॥

जन रज्जब जगि जीव जो दे सतगुर कौं पीठ ।
सो सकति सेन साँई सहित भरहिं द्रुष्टता वीठ ॥१२॥

रज्जब रजनीपति की सदा सुधा मैं वीठि ।
जगत सुखी जंमम दुखी जाकै चांदी पीठि ॥१३॥

रज्जब जंमम मिरग जवासे चंद इंद सौं होइ ।
उभै उभै मैं ऐब कहि बूझै विरला कोइ ॥१४॥

हरि सौं हुई हरामखोरि, होसी हठराखी ।
घरसावरस सु बोलिये रज्जब जग माखी ॥१५॥

गुर गोबिन्द सनमुख निमख नर निरखै नहिं नीक ।
ज्यू आदित आकास दिसि देखत आवै छीक ॥१६॥

साँई सूरिज की सता मर मनहु कौं होइ ।
रज्जब वरहैं और दिसि उनकौं सूझै न खोइ ॥१७॥

प्यंड प्रान जगदीस का ताकी छांडी सेव ।
जन रज्जब गुण चोरटे पूजहिं देवी देव ॥१८॥

सुत बीरज से मीर कूं सोभा दे सिरि हींज ।
तो रज्जब गुण चोर की साखि भरै नहिं बींज ॥१९॥

राज बीज कौं से गई कोइ एक कामिन औरं ।
रज्जब सुत पावै नहीं सो टीके की ठौर ॥२ ॥

साखि सबद ले और का गुर करि थापै और ।
रज्जब निगुरा मन मुखी आगै ठीक न ठौर ॥२१॥

चेतनि कन सुणि सीख ले सेवै जड़हि सु आइ ।
सो रज्जब कैसे बड़े नर देखौ निरताइ ॥२२॥

पुत्र जणाया आन मिल कहै पुरिष पुमि आन ।
रज्जब सो बिभिचारिणी पतिब्रता नहिं मान ॥२३॥

रज्जब पीवै और गुर बधै और गुर माहिं ।
ज्यू पीपल परि खेजड़ा डाल पान सो नाहिं ॥२४॥

जैसे अंडा मोर का मुरगी काढ़ै सेइ ।
रज्जब गुण मानै नहीं अंति उहै गुण भेइ ॥२५॥

शिष दरपन गुर सूर सशि सनमुख इष्ट प्रकास ।
सबद सता सब विधि सुभग फुरहि न ते गुण मास ॥२६॥

बिप बिघन बैठी गई, सो न सगारथ होइ ।
त्यू रज्जब गुर बिन गिरा सीख्या सुण्या न कोइ ॥२७॥

रिण न उतारया राम का मनिष देह जिन दीन ।
रज्जब तिनहिं उधार दे मन बच करम सु छीन ॥२८॥

गुर दाहै मनिषा मही सबकी पूरन आस ।
किरतघनी उठि का तरे बैरी करै बिनास ॥२९॥

जीव सु खेती ज्वार की गुर बाहै मन मास ।
गुण चोर उठे गंवार ह्वै किया सु काल दुकाल ॥३ ॥

## कलियुगी का अंग

झूठ सांच को मारई पैठि चोर परपंच ।
यहु रज्जब कलिजुग कथा कपट करम की अंच ॥१॥

जन रज्जब कलिजुग तहां जहां कपट का साज ।
मुसि औरे माहैं भवर ता कुसंग तजि भाज ॥२॥

रज्जब मज्जब सो करै मति मजगैबी होइ ।
कसि भेवस कपटी कला आइ पड़ै मति कोइ ॥३॥

अपणा औगुण आवरै पर के ऐब प्रकास ।
जन रज्जब जिव कलिजुगी कपटी कंध विणास ॥४॥

## कुसंगति का अंग

सकल बुरे का मूल है, एक कुसंगति माहिं ।
ज्यूं रज्जब समदहि मिल्यूं नीरस दीसैं नाहिं ॥१॥
रज्जब गंगा ज्ञान की देही दरिया मेल ।
स्वाद समुद सरीर संगि ह्वै गया औरै खेल ॥२॥
साईं सुनि गुर भाम गिर रसन रसातल गंग ।
रज्जब पैठे उर उदधि खारू सौं गुन भंग ॥३॥
रज्जब समझि कुसंगतै कबे न होई गोत ।
राहु केत की घात तैं ससि सूरिज क्या कोत ॥४॥
रज्जब धड़े बमेक बिन तिनहिं त्यागि मम सठ ।
भाहनूर बाहिर बस्या मूसे के मन हठ ॥५॥
येसी बरग पुरावई मारी जे मड़ियास ।
तौ रज्जब सुनि दसतौं तजौ कुसंगत पास ॥६॥
लंकापति सीता हरे मांधी ये सु उदिध ।
तौ कुसंग किन त्यागिये सुमि महिमा परसिध ॥७॥
गंगोन्कि मद मैं मिल्यूं सकल महातम जाइ ।
यूं तन उत्तिम मन नीच गति रज्जब नरकि समाइ ॥८॥
रज्जब रहै कुसंग मैं कुमति उरै ह्वै आइ ।
ज्यूं सुरापान के कुंभ मैं खीर क्वार ह्वै जाइ ॥९॥
घुग्घू के घर मैं रहै, सु चिड़िया कासी होइ ।
जन रज्जब यहु देखि करि कुसंग करो मति कोइ ॥१ ॥
यकै बूटै बांस कै डरै अठारह भार ।
जन रज्जब जस आलसी पापी की परिवार ॥११॥
एकै सर करगस परै, सब तरकस को तोड़ि ।
तौ रज्जब तिस तीर को काढ़ि न डारहु टोरि ॥१२॥
रज्जब नाणा गांठ का खोग्य बस न हाणि ।
तासो माह न कीजिये डार देहु किन काटि ॥१३॥
रज्जब मांहि अंगुरी सप दंत मंत करि काट ।
तमक तजै तन ऊबरै, तौब संभाई बाट ॥१४॥

रज्जब काम कुसंग है, काचे कूत बसेख ।
बीमा चाहे परहरी मरण मतै करि देख ॥१५॥
पांवर परसे पांव दे बाइल मिलतौं बाव ।
रज्जब देखौ दृष्टि ये कुसंगति सु सुभाव ॥१६॥
विष मिसरी सानी सहत खाये होइ सु मीठ ।
त्यूं सन उत्तिम करणी कुचिल रज्जब परिहरि नीच ॥१७॥

सोरठा ज्ञानहीन गत गात ज्यूं कड़वी नीरस समै ।
लगी कोमल बात प्राण पसू परतौं मरै ॥१८॥

साखी कामहि माहि करंक मैं धारे कामल कंध ।
रज्जब त्यूव कुसंग खग कर अज्ञानी अंध ॥१९॥
परदारा रत पारधी जुवारी अर चोर ।
मद्य मांस वेस्या गमन सातौ नरक अघोर ॥२०॥

## कुसंग सुसंग का अंग

विमल वारि बादल सौं बरसे परै मगर परि आइ ।
सहर विकार परस जल मैला पाणी पिया न जाइ ॥१॥
पुनि वे सलिल जाइ सलिता मैं निरमल मांव कहाइ ।
त्यूं रज्जब जप बाइप मैला अस्थल संगि बिकाइ ॥२॥
पुरियों उपजै सील बल स्यंघल दीप सुथान ।
त्यूं मथुरा जागै मदन मन बच क्रम करि मान ॥३॥
अगिसौं की पिसुसौं सई, तन मन सोई ताक ।
कृष्ण कथा सुणि मरद ह्वै हीज सु हणवंत हाक ॥४॥
रज्जब कुसंग सुसंग का केवल महण विचार ।
आतम उर अरभक उपजि पेखि पलट व्योहार ॥५॥
देखौ नारी बीज नर महण हमाइ मतीत ।
नाभि सु भोजन सिसु मनिप छांह छानि परतीत ॥६॥
उपकंठ उन्धि उत्तिम जनहु सुख सीकण सु सहंत ।
रज्जब मद्धिम नापिगा धर नर तट सु बहंत ॥७॥
एक मिलाप सु ममी मैं एक हलाहल ऐन ।
रज्जब संगति कीजिये देखि सु भन मचैन ॥८॥

इक ओषद रूपी आतिमा इक पीड़ा मैं प्रान ।
रज्जब संगति कीजिये सुख दुख सोधि सुजान ॥९॥
सज्जन ससि संदल सही संगति सुखी सरीर ।
दुरजन कैबच कष्ट बिष परसत प्यंडहु पीर ॥१०॥
सज्जन सुधा सु संपती सकल सुखौ की रासि ।
दुरजन दुख दारुन दुसह, पीड़ा प्रानहु पासि ॥११॥
साध सजीवन सबद हैं, संसारी बिष बात ।
रज्जब सुमिये समझि सौं को औषदि को घात ॥१२॥
संसारी सावन घटा साधू स्वाति नछित्र ।
बैन बूंद बहु अंतरा नैपै निरखौ म्यंत्र ॥१३॥
साधू घट अमृतमई संसारी बिष बेलि ।
जन रज्जब गुन समझि करि, पीछै मुख मैं मेलि ॥१४॥
सुसंमति घूर उजास मैं कुसंमति सम ऐन ।
रज्जब कही बिचारि करि सो निरखौ मर नैन ॥१५॥
मधु दीरघ सु दिखावई, असमैं चित सब ईठ ।
दरपन रूपी दुष्ट दिस तहां दीरघ मधु डीठ ॥१६॥
दरपन मैं दिस छोटा दीसै मोटा फटग पषाण ।
एसे निरगुनि सरगुन सौं मिलतौं मधु दीरघ सु बषाण ॥१७॥
गधी हाथ बिसासवा सींगी हाथि हुवाम ।
बहि सुगंध संगति सदा बहि सोषित सब ठाम ॥१८॥
श्रवण सोत ह्वै सबद जल काया कूप मैं आइ ।
कपट कामना करक पड़ि रज्जब पिया न जाइ ॥१९॥
इक निवान नीर खीर मैं एक अंम बित खार ।
इक पियूष पाणी पहुम परहरि पियो बिचार ॥२०॥
आतम अंघूप खोदि बित तहां चढ़ै जल झारि ।
उर घर मिलि समि खोर जल रज्जब समझि बिचारि ॥२१॥
रज्जब काचे काठ कौ देखी कीड़े खाहिं ।
पाके मैं पैठे नहीं चकर सु बेधे नाहिं ॥२२॥
भला न आवम सारिखा बुरा न ऐसा और ।
रज्जब देख्या गुर दृष्टि सुकृत कुकृत ठौर ॥२३॥

ऊखरि बैरि असंखि मण कण निपजैं कछु नांहि ।
त्यू रज्जब सठ सिष सौं हाणि हुई गुर मांहि ॥१५॥
सांभरि केसर सारिखा सठ सुरता का भाग ।
रज्जब तहां न नीपजै भाव भगति का भाग ॥१६॥
हिमगिरि परि तरु तरल ह्व बंध्या न सुणिये कोइ ।
तौ रज्जब जड़ जीव मैं कहु सुकृत क्यूं होइ ॥१७॥
हिमगिरि परि पाखंड का कीट हुआ नहिं होइ ।
यू आशा भंग अचेत उर क्यूं करै ज्ञान गढ़ कोइ ॥१८॥
सिल सिस परि जामैं नहीं भाव भगति का बीज ।
रज्जब फल क्यू पाइये पे जतरि गति हीज ॥१९॥
आतम अबला बांझड़ी सुकृत सुत नहिं वास ।
रज्जब ऊजड़ वोदरहु पुरदाई कृत नास ॥२०॥
रज्जब गुर वर बहु मिलैं बेस्वा विधि मई सांझ ।
सांई सुत उपजै नहीं वे बुधि बामा बांझ ॥२१॥
मीन माग जल मैं करै, सलिलहि रहै न संधि ।
त्यू रज्जब सठ सबद सुणि पीछे रहै न बंधि ॥२२॥
रज्जब पावन कथा सुणि पामर भेदै मांहि ।
सोधें संधि न पाइये ज्यूं रूप गया मम मांहि ॥२३॥
नीवहि सीचै दूध सौं नामहि देवे पान ।
रज्जब विसियर बिस मरया नीवहि कड़्वा जाम ॥२४॥
कवैसा काजल दूध सौं धाये सेत न होइ ।
त्यूं रज्जब जो प्राण है, तापरि रंग न कोइ ॥२५॥
सेत ऊन सरचा सहित रंग्यो रंगी सो जाइ ।
रज्जब काली क्यू रंगै बहु विधि करौ उपाइ ॥२६॥
रज्जब कुमति कूंज का मंड है, मोमन जिसका बीस ।
हो है हिमगिरि ज्ञान तजि गलै नहीं जगदीस ॥२७॥
बहु भगिन मम ना बलै तौ समंद कीट सौं बांधि ।
बैद बैन्की क्या करै रज्जब रोग असाधि ॥२८॥
सबद सींदरी क्यू बंधै काया कुंभ नहिं कान ।
रे रज्जब तारघ्‌ बिना कहा दिखावै भान ॥२९॥

रज्जब अज्जब आदमी जौहरि सेती होइ ।
परमेसुर सौं पीठ दे तौ या समि बुरा न कोइ ॥२४॥

## अपलच्छिन अपराध का अंग

हिरन हेराना नाद सौं सुण्या बधिक का नाद ।
रज्जब तन मन यू गम्या का सिरि देहि अपराध ॥१॥

जथा मीन मिलि स्वाद कौं स्वारथ कालहि खाइ ।
तैसे रज्जब हम भये दोस किसहि देइ जाइ ॥२॥

ज्यू भौंरा मिलि बास कौं कंवलि समाणा आनि ।
त्यू रज्जब हम होइ करि हमहि हमारी हानि ॥३॥

ज्यूं दीपक कौं देखि करि पड़ि पतंग जरि जाइ ।
तैसे रज्जब हम भये जे देख्या निरताइ ॥४॥

ज्यू गज कामी काम बसि पड्या बिखन बिधि माइ ।
त्यू रज्जब हम होइ करि बैठे बप बंधाइ ॥५॥

ज्यूं मरकट मूठी भरी बैठि स्वाद की मोक ।
यौं रज्जब भरि भरि फिरे का सिरि देहि असोक ॥६॥

ज्यू पटक्षत के प्यजरै स्वारथ स्यंघ समान ।
त्यूं रज्जब हम होइ करि मापै आप बधान ॥७॥

यहु मनु बमुसा बिगसि बिन माया का नालेर ।
रज्जब चिहुटैं चूयतां छूटण का नहिं फेर ॥८॥

बइयर माती नासियर बनसी मिग मिन मीन ।
जन रज्जब तेते मुये मर मूसा बग मीन ॥९॥

ज्यूं बिब काटै जीभ कौं स्वारथ मुखहि चलाइ ।
त्यूं रज्जब हमभी भई का सिरि देहि बलाइ ॥१०॥

आधि बूझि जे जहर कौं जथा जीव जो खाइ ।
रज्जब कहिये कौन सौ अपलच्छिन मरि जाइ ॥११॥

प्रानी परलै ममभुखी स्वाद माणि जिव जाइ ।
रज्जब दीमदयाल को उलटा दोस न माइ ॥१२॥

मकड़ी की गति माहिं मिलि माड्या माया जाल ।
रज्जब कसै सकल दिसि माहिं मरै इस ख्याल ॥१३॥

ज्यूं सूवा सठ ज्ञान बिन नलनी लटकै आप ।
त्यूं रज्जब हम लटक करि देहि कौन सिरि पाप ॥१४॥
मरकट मानी ग्रासि करि चिरम देखि चुट माल ।
त्यूं रज्जब माया मनहि भूलि पड़्या भ्रम ख्याल ॥१५॥
ज्यूं गज मूवा ज्ञान बिन देखि फटक मैं आप ।
त्यूं रज्जब हम मरत हैं, देहि कौन सिरि पाप ॥१६॥
यहु मन पसू पतंग परि विसय न पेखै नीच ।
परसै पावक पंथ मुखि रज्जब राता मीच ॥१७॥
जथा कांच के महल मैं कूकर भौं है मीच ।
त्यूं रज्जब हममैं भई, भ्रमि मूसा मन नीच ॥१८॥
कुमति कांच के महल मैं यहु मन स्वान समान ।
रज्जब एक अनेक ह्वै निकस्यो एकै थान ॥१९॥
बिना भार भारी भये बिनही दुख दुख पूरि ।
जन रज्जब ज्यूं नींद मैं सिया अपारे चूरि ॥२०॥
सब दिल दरपन सारिखे आतम सह्य मसेल ।
रज्जब सनमुख बिमुख त्यूं प्रतिब्यंब परि देख ॥२१॥
अपना आप बुरा करै ता ऊपर क्या रोस ।
पर के दीवै पर जल्या देहि कौन का दोस ॥२२॥

## साम का अंग

गुरमुखि सांची ना गही मनमुखि बैठी मानि ।
जन रज्जब सुलझै सु क्यूं हिये हलाहल सानि ॥१॥
रज्जब सानि सरीर मैं कही और की और ।
पड़्या पुकारै नाम मैं ले चालो गृह ठौर ॥२॥
रज्जब झामी बाठि करि मूरिख काटै मूल ।
सो सठ गहि माम्या न बिन भीतरि भारी भूल ॥३॥
रज्जब साधू भेस गति लोप पर बहु भूल ।
जथा सानिया दास चढ़ि मूरिख काटै मूल ॥४॥
ज्यूं बालिक मौरी भई सहज भेस की ख्यास ।
रज्जब त्योंपै त्यूं फिरी जु सब देखै चक धाम ॥५॥

## मूढ़ करमी असाध रोग का अंग

सूता सबद जगाइये जागति सुणि क्यों जाइ ।
रज्जब मनि ऐसी नहीं तासो कछू न बसाइ ॥१॥

सतगुर की समझै नहीं अपणे उपजै नांहि ।
तो रज्जब क्या कीजिये बुरी बिथा मन मांहि ॥२॥

सतगुर सबद न मानई, चलै मनमुखी भाइ ।
ओषदि मई अहार पड़ि बिथा बीच मरि जाइ ॥३॥

बीच बिसारी बीच नै ताहि कौन उपदेस ।
रज्जब रोग असाधि कौं लगै न ओषदि लेस ॥४॥

असाध रोग मधि ऊपजै सो गुर सबद न जाइ ।
जन रज्जब ज्यूं संख परि रंग न चढ़ै चढ़ाइ ॥५॥

यहु मन पिंडा मारि का भ्रमता चक्र सुभाव ।
रज्जब छेदै कौन बिधि लगै न लाइक घाव ॥६॥

नख सख पाखर पहरि करि भया बख्त्र ब्योहार ।
रज्जब मारै कौन बिधि कहा करै हथियार ॥७॥

रज्जब यहु मन कासिबा काठा अती कठोर ।
बाहर सिरि काढ़ै नहीं तौ मारै केहि ओर ॥८॥

यहु मन काठा कुलिस गति बहुत खेचरी ठाणि ।
रज्जब पैठा ह्वै रह्या मरै न लाइक बाणि ॥९॥

संगति मैं सीखे सबै खेचर सीखै नांहि ।
जन रज्जब ज्यूं करड़ कूं, गल्या न हांडी मांहि ॥१०॥

श्रेष्ठ जु सनमुख आप सौं सुध बुध सबद सुणाइ ।
जन रज्जब खचर बिमुखि सु क्यूं ही गह्या न जाइ ॥११॥

जैसे मोती गुमट परि महि बाल्यू गिरि जाइ ।
त्यूं रज्जब बहुरी सुरति सबद कहां ठहराइ ॥१२॥

जे सुई सुरति के छिद्र ह्वै तौ तागा सबद समाइ ।
जन रज्जब नाकै बिना कहां पिरोयें जाइ ॥१३॥

ग्यानी गाफिल ह्वै चलै पग मग बाहरि देइ ।
तौ रज्जब जागत चढ़हि, कहिधौ कहि क्या लेइ ॥१४॥

ऊसरि बैरि असंखि मण कण निपजै कछु माहिं ।
त्यूं रज्जब सठ सिष सौं हामि हुई गुर माहिं ॥१५॥
सांमरि केसर सारिखा सठ सुरता का भाग ।
रज्जब तहां न नीपजै भाव भगति का बाग ॥१६॥
हिमगिरि परि तरु तरुन ह्वै संध्या न सुणिये कोइ ।
तौ रज्जब जड़ जीव मैं कहु सुकृत क्यूं होइ ॥१७॥
हिमगिरि परि पाखंड का कीट हुआ नहिं होइ ।
यूं आज्ञा भंग अचेत उर, क्यूं करै ज्ञान गढ़ कोइ ॥१८॥
सिल दिल परि जामैं नहीं भाव भगति का बीज ।
रज्जब फल क्यूं पाइये जे अंतरि गति हीज ॥१९॥
आतम अबला बांझकी सुकृत सुत नहिं आस ।
रज्जब ऊभड़ जोवरहु गुरवाई कृत मास ॥२०॥
रज्जब गुर बर बहु मिलैं बेस्या विधि भई सांझ ।
सांई सुत उपजै नहीं जे बुधि बामा बांझ ॥२१॥
मीन भाव जल मैं करै ससिसहिं रहै न संधि ।
त्यूं रज्जब सठ सबद सुणि पीछै रहै न बंधि ॥२२॥
रज्जब पावन कथा सुणि पामर बेधै माहिं ।
साधें संधि न पाइये ज्यूं रूप गया जल माहिं ॥२३॥
नींबहिं सींचै दूध सौं नागहिं देवै पान ।
रज्जब बिसियर बिस भरया नींबहिं कडुवा जान ॥२४॥
कवैसा काजल दूध सौं धोये सेत न होइ ।
त्यूं रज्जब जो श्याम है, तापरि रंग न कोइ ॥२५॥
सेत ऊन सरषा सहित रंग्यो रंगी सो जाइ ।
रज्जब कारी क्यूं रंगै बहु विधि करौ उपाइ ॥२६॥
रज्जब कुमति कुंभ का अज है, मोमन बिसवा बीस ।
जो हैं हिमगिरि ज्ञान लगि गलै नहीं जगदीस ॥२७॥
बहु अमिन मन भा बसै तो समंद कीट सौं बाधि ।
बैद बैन्की क्या करै रज्जब रोग असाधि ॥२८॥
सबद सींवरी क्यूं बंधै काया कुंभ नहिं कान ।
रे रज्जब रारध् बिना कहा दिखावै भान ॥२९॥

बावन बास न बेधिया मिसरी मिल्या न बंस ।
यूं न्यारा निरमंत मैं मूका बरष सहंस ॥३०॥

रज्जब पुरिष पवंग कौं कीजै सुध उपाइ ।
इक तिरियार तुरंगनी इनकी बिकटि न जाइ ॥३१॥

हणवंत हाक नर हींज ह्वै परि नारि न ह्वै निहकाम ।
रज्जब पुरिष प्रमोधिये परि बोध न बीधैं बाम ॥३२॥

हणवंत हाक सुणि ना भया जत जुवतनि के सीस ।
जन रज्जब धनि साध सौं जो उनहिं उपावैं ईस ॥३३॥

हीरा मिसरी मोती बाइक फटग बंस तग घूत ।
रज्जब रंग रस भुक्त मन जड़ पोसा सुष पूत ॥३४॥

मनिष मीन जगदीस जल मुख पीवहिं महिं माहिं ।
सो रज्जन जाण सु क्यू सुकृत सोणित माहिं ॥३५॥

जप तप कस यूं माहिं कोरा पाके बिबिध अनेक ।
रज्जब रहे बेद बदि बाइक मनिमानी नहिं येक ॥३६॥

मीच बिसारी मुगध मनि भूला आतम राम ।
रज्जब मूढ़ करम यहु सरै कौन बिध काम ॥३७॥

ब्रह्म बिछोह वियोग न उपजै चौरासी आवै नहिं चीत ।
तौ रज्जब तासौं क्या कहिये महा मूढ़ मदमागी मीत ॥३८॥

ऊसरि सिल बपि बांझ कै बीज न ले परमास ।
त्यू रज्जब सिषि सठौं मैं सबद सुध का नास ॥३९॥

सुध सबद सत बक हुवा सठ सुरखों मैं आइ ।
रज्जब मदमंजन परसि बीर स्वार ह्वै जाइ ॥४०॥

नरक ग्यान गहरै सु बसि आवध्या भरि न्हाहिं ।
पै रज्जब मन मीन की दुरमति बास न जाहिं ॥४१॥

आतम उर अग्यान रत सुनै न सतगुर बात ।
पारस पोरिस क्या करै, भरती साई घात ॥४२॥

हरि सा हितू बिसारि करि मुगध सु भूला मीच ।
रज्जब रोग असाधि अति त्यूं मीका ह्वै मीच ॥४३॥

रज्जब रोग असाधि है राग दोस जिव माहिं ।
निकसै गुर मोष्यंद सौं नहीं त निकसै नाहिं ॥४४॥

मुरि माने मन मैं अमन ज्यूँ ब फले मत जित्त ।
बासक बंझ न ऊपजे विषै विमूचे नित्त ॥४५॥
दिनकर दई न दीसई तौ घूघू बाबुलि बिगु ।
रज्जब ज्यू की त्यूं नही कोई करो म रिसु ॥४६॥
भवगति बरषे इद्र ज्यू अकमि अंब जमि आइ ।
रज्जब बंदे बन बंधे जगत जवासा जाइ ॥४७॥

## सिष सुत प्रस्ताव का अंग

तात गुरू काष्ठ करि सिष सुत उपजै आग ।
तौ रज्जब तिहि ठौर कौ भाग भले नहिं भाग ॥१॥
मोति आरसी ऊपजै सुत फूला अरु दाग ।
रज्जब तथा कपूत सिष टाहर उभै अभाग ॥२॥
मेद गूंमडी माख्या बासिक बिपति सुजाण ।
रज्जब जाये जक नहीं सो सिष सुत दई न आप ॥३॥
रज्जब सिष सुत पहेल के भये कपूत मयान ।
तौ तिनपरी बया कीजिये मूली मूसग पान ॥४॥
मणि भुजंग मारी मुमुग कीट पटबणी सूत ।
रज्जब रज सौं सकल नग कहां बाप कहूं पूत ॥५॥
सीमे सुत रूपा जण्या खीर समंद सुत संग ।
रज्जब बेटे बाप का मनहु न कीजै संग ॥६॥
दीप जाति कज्जर जनम स्याम घटा मधि बीज ।
रज्जब ऊजम मेस ह्वै मैले उजल बीज ॥७॥

## स्वांग का अंग

रज्जब स्वांग न मेस के मुरस्यैद स्वांग न कीन ।
बहु बादर बहु भवनि मैं उभै पथ सयमीन ॥१॥
दत मनि मे कोवीग का चन्या बाह्य की बाट ।
रज्जब देखो गुर सिरो कौन भय रिख टाट ॥२॥
गोरख के मुद्रा नही कौन भेष हनुवंत ।
जन रज्जब जगि ऊपरै भजन किया भगवंत ॥३॥

सुर असुरन के गुरहु कन भेष न ध्यासें कोइ ।
रज्जब देखौ ब्रहस्पति पुनि सूकर दिसि जोइ ॥४॥
षट दरसन दरसन बिना देखौ अवनि अकास ।
चंद सूर पानी पवन कौन भेष उन पास ॥५॥
एक ब्रहस्पति वारुना सुक्र सेस सुखदेव ।
रज्जब ते तन ऊभरे बिन बानै रट सेव ॥६॥
दत गोरख दरसन बिना स्वांग न सुखदेव सेस ।
रज्जब उभरे राम कहि बारुन बरन न तेस ॥७॥
रज्जब रसना स्वांग बिन जिनि आया गुरदेव ।
तहां श्रवन सिष सवन के लहै सु अबिगति भेव ॥८॥
तिलक रहित दे तिलक तन देखौ कर सु कपार ।
रज्जब साधित भगत कौं बेखा करौ बिचार ॥९॥
टीका इत सारे नवै बिण टीके को जाइ ।
रज्जब यहु पतसाह दिस नर देखौ निरताइ ॥१०॥
नर नाणे जो घट रचे वरस अंक दे छाप ।
रज्जब सब सिक्के बिना जो नग निपज्ये आप ॥११॥
छै दरसन की छाप का बिकरा बसुधा माहिं ।
आगै पीछै सांच को भेषहु भूकै नाहिं ॥१२॥
दरसन दे देखै किया सारमहिं दरसन माहिं ।
पै तिमिर हरै जे सुंगनी सु मानि मंहगै जाहिं ॥१३॥
सपत धात नाणे सुघट दरस अंक दे थाप ।
नांव नीर नम दास मैं सो मण मोल बिण छाप ॥१४॥
नख सख दरसन देह का करि दीया करतार ।
रज्जब ऊपरि और करि बिड़वै कहां गंवार ॥१५॥
बानै पर बाना करै बिधि नाहीं बेसास ।
रज्जब रचना राम की रचै न मूरख दास ॥१६॥
पीव जीव बानै दिये देही दरसन वेख ।
रज्जब भीखी किये के राहै किसकी रेख ॥१७॥
पट्टा पाया प्राण तब अब अप बाना नाहिं ।
मब टिर्टब कापरि करै समझि रह्या मन माहिं ॥१८॥

सरप स्वांगि सुक को मया बिन पंखौ परगास ।
त्यूं रज्जब राम न रटे बिन बानै के बेसास ॥१९॥
रज्जब जिव जल बुद समि पट दरसन रंग साम ।
ब्रह्म ब्योम पहुचै नहीं बिना भजन बिन भाम ॥२०॥
रज्जब देखै देखते दृग दोइब हरिचंद ।
भेष भरम न्यासै नहीं वे नैना मधि मंद ॥२१॥
मन मयंक की गहन गति पुगति जोतिगह जान ।
देह दसा देख नहीं छांडहु खैंचाताम ॥२२॥
आंखिहु अध अज्ञान मति काजल तिलक बनाइ ।
रज्जब रामति राम का दरसन किया न जाइ ॥२३॥
समर्थंत भजन बिन कुछ नहीं भेष भरम दे नाखि ।
रज्जब सखै न महन गति अंजन कै बसि आंखि ॥२४॥
बुधि बिद्या क बलि बसी निरखहु गटमी साथ ।
रज्जब सकति न स्वांग की ऐसाहि खेम अगाध ॥२५॥
पट दरसन मैं हुस कन भेष न न्यासै कोइ ।
खीर नीर न्यारा करै सो न्यारी गति जोइ ॥२६॥
हुनर होइ न हंस का बहुत जीव जम गोटि ।
खीर नीर न्यारा किया कौन गूदड़ी कोटि ॥२७॥
मन पै मिज बप बारि सो काढ़ै साधू हंस ।
बानै बसि छानै नहिं कोइ सब जम बायस बंस ॥२८॥
कै दुहाग कै सेज परि क न्हावत पति मार ।
पन रज्जब जुबती तजै भारप् समम सिंगार ॥२९॥
ज्यूं सुन्दरि घरि न्हावता अभरण धरै उतारि ।
त्यूं रज्जब रमि राम सूं स्वांग छाडिहिं मारि ॥३०॥
सदा सुहाग सुलषिणी कुलपषि दुग्न दुहाग ।
रज्जब भौसत क्या करै न्यारे भाग अभाग ॥३१॥
रज्जब साधू स्वांग का समस्या संग बिचार ।
जो जम मसमी पत्र परि सोई सीप मंझार ॥३२॥
तागै छाप न पलटई तन मन तांबा लोह ।
प्रमु पारस जु परापरी जब लग मिलै न बोह ॥३३॥

साधू पारस लोह मन परसे कंचन होइ ।
रज्जब स्वांग सुमेर मिलि मन नहिं पलटे कोइ ॥३४॥

सोरठा देखे सुन्दर स्वांग सुई सुरति सरक नहीं ।
चिदानंद कन माग रज्जब चंबक चेतना ॥३५॥

बाने पलटे नाहिं रज्जब यप अमराइ बिधि ।
समझि देखि मन माहिं चंम्न चित चंदन किये ॥३६॥

तन मन तांबा लोह पट दरसन पट छापही ।
रज्जब फिरे न लोह बिना प्रान पारस मिलै ॥३७॥

रज्जब सीसै सांच स्वांग न कोइ सीस कहीं ।
कहं कचन कहं कांच दिव दरसन देखै नहीं ॥३८॥

साखी सुरति सुई ज्यूसी फिरी काया कंठ ता भेस ।
भावसमेत मगाध बिन रज्जब गमै न देस ॥३९॥

मन भ्रम भवंर न भेष धरि सबद डंक भव भृङ्ग ।
रज्जब पहुंचै हरि कंवलि पीवै परमल अङ्ग ॥४ ॥

मन रज्जब मिलि भाजपे भेप सु मीठी नाहिं ।
लक्षण सौं लक्षण सरै समझि देखि मन माहिं ॥४१॥

रज्जब कादर सूर की स्वांग न करै सहाइ ।
भाव सौटौ भावे लड़ि मरौ नर देखौ निरताइ ॥४२॥

सदा हंस सावा रहै नहीं स्वांग कोइ संग ।
जन रज्जब जगपति किया तैसा ही है अंग ॥४३॥

माला तिलक न हंस कै बसहि दोषहु कोइ ।
ए सब तब सादे सदा बादि बके क्या होइ ॥४४॥

स्वांगी राखै स्वांग की परि सादा राखै माहिं ।
तौ अधिक हंस की क्यूं बणी समझि देखि मन माहिं ॥४५॥

स्याम घटा स्वामी सबै साध सेत सुख धार ।
रज्जब रीते रूप रंग सादे बरिखणहार ॥४६॥

पट बरसन मुख ऊपरै कोइ न पीवै बोइ ।
रज्जब सादे सुरंग पग तहं चरनोदिक होइ ॥४७॥

जे जल रहै त कुंभ बसि चित्र बंध्या कछु नाहिं ।
त्यूं रज्जब हरि साध मैं स्यंभ न स्वांगहु माहिं ॥४८॥

मंदिर थंभ कटाव करि भाग्या स्वांग सिंगार ।
रज्जब रती न ले सकै चित्र थंभ का भार ॥४९॥
नकस नराजी परि घणे भावै कोई नाहिं ।
रज्जब बहुसी बित्त निज चकहु न चित्रहु माहिं ॥५०॥
चित्री साठी तीर की मग तरि पड़े न मेह ।
रज्जब भलकै भाव बिन झूठा स्वांग सनेह ॥५१॥
वागहि वानन पंख रंग गोली गोलै नाहिं ।
चास चोट मैं चूक क्या समझि देखि मन माहिं ॥५२॥
ममर्मंदे मैंगल मदे स्यंगारे सु सरीर ।
जन रज्जब सुध जीति है, जो बलिवंत सु बीर ॥५३॥
है गै विरल मीढ़ा मरद माडे सकल सरीर ।
रज्जब बिरियां काम की अति बधै बलबीर ॥५४॥
मार्तग मोर नर नालियर केस मकेसौं येक ।
जन रज्जब चित्त लीजिये सोभा भिन्न बमेक ॥५५॥
चिणगी चकमक चित्त की बुझै न चौड़े चीर ।
रज्जब थूटी बुद्धि बिन अगनि उभै उर सीर ॥५६॥
जथा मोर की छाप कौं ले पीतलि पर देइ ।
तौ रज्जब क्या स्वांग कौ सोवन सर मरि लेइ ॥५७॥
स्वांग स्यंघ का कीजिये ब्यंड प्राण परि आणि ।
रज्जब सकति न स्यंघ की माडर गति परवाणि ॥५८॥
कागहिं केसरि का तिलक कंठि पहुप की माल ।
सकल गाति पंजर किया रज्जब चूकी न चाल ॥५९॥
तम मम कामा मौर ज्यूं किया काठ मैं घाम ।
केसरि चरचा स्वांग सिरि, रज्जब सरचा न काम ॥६ ॥
काग कपट का भेष धरि कबहू हंस न होइ ।
जन रज्जब स्वांगी सबै जितिर पतीजै कोइ ॥६१॥
वप सारे बनराय विधि मद्र भमे पत्र झार ।
जन रज्जब सु सुभाव कणि तामैं भेर न सार ॥६२॥
सिर मूडया मस्पूल का काम बडया मन माहिं ।
रज्जब मन मूंडे बिना सिर मूंडे कछु नाहिं ॥६३॥

काया धौली कुष्ट करि मन कासा ता माँहि ।
त्यूं रज्जब ऊजल दरस प्राण पतीजै नाँहि ॥६४॥

तन ऊजल मन मैल मैं कपटी कासा जोइ ।
जन रज्जब चित चोर ज्यूं कुसंग सु कासा होइ ॥६५॥

बाना देखि न बहुसिये ऊपरि ऊजल जोइ ।
रज्जब सूमी का गुवा अतर कासा होइ ॥६६॥

ऊजल राता तेवसी तौभी पीज न कोइ ।
रज्जब दीपक जोति मैं कारा काजर होइ ॥६७॥

रज्जब माडे मोर प्रभु तन परि चित्र अपार ।
मुख बाणी मीठी मधुर भोजन मिष्ट सु स्वार ॥६८॥

कमी कपट कौं चाहिये कंचन कमी न होइ ।
रज्जब स्वामी साध का इहै पटंतर जोइ ॥६९॥

जन रज्जब सुष गाइ के कंठि न बांधै काट ।
डीमरि तिसकै भेसये सु ताकै बारहबाट ॥७०॥

बहुत स्वांग गनिका करै, जाकै पुरष अनेक ।
पतिबरता सादी भली रज्जब समझ बमेक ॥७१॥

जन रज्जब देही दरस मनौवृत्ति नहिं जाइ ।
देखि दिवाली चित्र ये अति गति गोधे गाइ ॥७२॥

बानै बानी सो रंगै काचे काया कुंभ ।
रज्जब रही न ठाहरै परसत अबला अंभ ॥७३॥

मंझे भावौ नाँहि किय उठै तम जरिपोस ।
रज्जब रचि मतिमन्द के गुही माल्हि सुणि पोस ॥७४॥

चाम दाम सम स्वांग सब तामैं फेर न सार ।
रज्जब तजै सु जौहरप्यू लेसे मुगध गंवार ॥७५॥

दरसन दिस बैठे नहीं पाखंड पड़े न प्राण ।
रज्जब राता राम सौं समझ्या संत सुजान ॥७६॥

बानै भी बींदे नहीं सब संतन की साखि ।
रज्जब राखै कौन बिधि पूछि पुकारैं नाखि ॥७७॥

मन मयंक सम नीकसे अबला आदित छाँहि ।
जन रज्जब बंदै सु क्यू बानै बादल माँहि ॥७८॥

रज्जब रहै न स्वांग मैं माने बंधहि माहिं ।
आतम राम न सूझई, भेष मोकसी माहिं ॥७९॥

षट दरसन के वृष महीं, भेषौ भाने मैन ।
आतम राम न सूझई, रज्जब परै न चैन ॥८०॥

ज्यूं सांभरि केसर परष्, पसू पचन हूं जाइ ।
तैसे रज्जब स्वांग मैं, आतम तत्त बिलाइ ॥८१॥

दरसण चाहै दरसणी, पाखंडी पाखंड ।
रज्जब चाहै राम कौं, सु लिपै न परपंच मंड ॥८२॥

स्वांग सनेही दरसणी, सांच सनेही साध ।
रज्जब खोटहु खरहु का, अरथ अगोचर माध ॥८३॥

चौपई मनहि बालदे मन से फेरै यहु उर बात न भावै मेरै ।
आपे देइर रासि लुटावै सो रज्जब कैसे करि भावै ॥८४॥

साखी संगि चलै सो सांचि है, रहां रहै सो झूठ ।
तौ क्या भ्रम स्वांग सरीर का रजू होइ भाव रूठ ॥८५॥

स्वांग सयाती देह सम सो देही भी नास ।
तौ रज्जब तिस झूठ की कहु क्या कीजै आस ॥८६॥

प्राणी माया प्यंड से भेष दिया भरमाइ ।
रज्जब बपि बामें रहै, हंस अकेला जाइ ॥८७॥

बामे बंध्या रासिबा बिन बामे मै नास ।
पाडी परिहरि करैंगे तौ जिन के कौन हवाल ॥८८॥

षट दरसन अरु बालक सब पोले परि बिस्राम ।
रज्जब रवि सुत परसतैं घट घट भाये घाम ॥८९॥

परम स्वांग से सांच का आदि अंत यो होइ ।
कल रज्जब क्या कीजिये को दीसै दिन दोइ ॥९०॥

बिन ससिहरि ससिहर किया पैंनहु मैं धम माहिं ।
तैसें ससिहरि स्वांग का सु रज्जब माने नाहिं ॥९१॥

सांचा ससिहरि सांच का सकल लोक परकास ।
रज्जब ससिहरि स्वांग का द्रावस कोस उजास ॥९२॥

मिरतग घोड़ी स्वांग की तिहि चढ़ि गरबे जीव ।
पंथ पलाडपा काठ का क्यूं पहुंचैंगे पीव ॥९३॥

बाना बगतर पहिर करि लड़ै सकल संसार ।
जन रज्जब सो सूरिवा जो झूझै निरधार ॥९४॥
सिंगार सहुत होली जसी रहा प्रीत प्रहुसार ।
सो रज्जब भाने जगत कहा स्वांग परि भाव ॥९५॥
हरि बिन होली धंम बिन भोसा भेसि हजार ।
रज्जब रहै न इस मते भलि बसि होसी द्वार ॥९६॥
काया छीपी काठ करि, मास भेसि दस बीस ।
भाव बिसाई हाड करि, किन पाया जगदीस ॥९७॥
स्वांगी सब पुड़ सारिखे पैठे काछु माहिं ।
जन रज्जब जस से सबै इह परि छूटै नाहिं ॥९८॥
ज्यूं कूंवे मै देखिये रज्जब बोरहि सेह ।
त्यूं स्वांगी संकट परै बंट काठ मैं बेह ॥९९॥
बंदि पड्या संसार सब पट दरसन बेसि होइ ।
रज्जब मुकता स्वांग सौं सो जन बिरला कोइ ॥१००॥
पट दरसन मन रंजना दुख भंजन गोव्यंद ।
जन रज्जब रामहिं भजो स्वांग सबै जग फंद ॥१०१॥
माया बेड़ी तोड़ करि, कोइ कोइ निकस प्राण ।
रज्जब अधिय स्वांग सौं आग सहै न जाण ॥१०२॥
बांधे सांकल स्वांग सौं बिनही ज्ञान बिचार ।
ज्यूं रज्जब पसु बंध मैं बहुत राज दुवार ॥१०३॥
भोसा पहरे भेष को पीछे पग पड़ि जाइ ।
जन रज्जब जग यूं बंधे कौन छुड़ावै आइ ॥१०४॥
जो जिय अहि जाइगा अप्पा तहां जडै स और ।
त्यूं रज्जब भरा मिरग मुकतहिं रातै टौर ॥१०५॥
डम्बरे रामिब रागी पुनि गरंद गयंदै ।
पानि को बस नारि दरमणी दरमण बंधै ॥१०६॥
गीम गाप सुमिरण बिना ज्ञान गरग बर माहिं ।
गीति सुप रजि रोग गनि बान बगतर माहिं ॥१०७॥
गिरही कारे गुन्ही को उतरै तन ताप ।
रज्जब गुर अनिगति पो गुन्ही न परताप ॥१०८॥

जाजुर, उतरे जगत की-बती बड़ै महिं ताप ।
। रज्जब ऐसी गूदड़ी बोढ़स मरिये माव ॥१०९॥

आरोही समदी सती तजि कठोर मद काम । –
आठों चकि त्यागी गहैं, मिरम्या कहैं सु राम ॥११०॥

रजब । छटहु छीते भये हेरहु होसी मोइ ।
तौ रज्जब बहु बरन करि, क्यूं न बावसा होइ ॥१११॥

मांव लिये भर निस्तरहि तापै सीज माम ।
। वन रज्जब जार्पै नहीं स्वांग सरै क्या काम ॥११२॥

साई सहिये सांच मैं तामैं फेर न-सार ।
तो रज्जब क्या बारिये इन भेषौं का भार ॥११३॥

जे तत परापति सिमक मैं मासा पहरयु- मेस ।
तो रज्जब परसे पीव सब सहज भया यहु वेस ॥११४॥

जे भेष धरै मर्म पार।ह्वै दरसण दे दीदार ।
यूं रज्जब साईं मिलै तो सब पहुंचे पार ॥११५॥

सिर मुंडाइ साधू भये मासा मेलिर संत ।
रज्जब स्वांगी स्वांग धरि, माटी माइ महंत ॥११६॥

पदमे का परताप सिरि, मार्थे माटी माहि ।
रज्जब राम न पाइय नाना बिधि तन-भाहि ॥११७॥

भेषौं मीड न मागई स्वांग न सीझै काम ।
जन रज्जब पाखंड तजि जब लग भजै न राम ॥११८॥

भर्यौं मसा न जीव का स्वांगहु स्वाति न होइ-।
जन रज्जब पाखंड धरि जिमिर पतीजै कोइ ॥११९॥

स्वाग सरोवर मिरग जल दरस एक उनमानै ।
रज्जब तिप्टा निपति हैं सो टाहुर परवानै ॥१२०॥

भप माइसी देख करि, मिरम मास मन जाइ ।
रज्जब रीत स्वांग सर, मांब नीर तहं नाहि ॥१२१॥

चौपाई मंत्र चित्र ज्यूं मंत्र कहाय तरु फल बिना कौन सचुपाव ।
रज्जब दरस दसा यूं जान निरपख बिना मिलै भगवान ॥१२२॥

साखी स्यांग सिपाही मिरफल है जे जप जड़ गु न साम ।
भफन सफन से देखिये रज्जब बड़े मभाग ॥१२३॥

भेष भरोसे बूडिये, जे मांव मांव कन नांहि ।
रज्जब कही सु मान ल्यो, पैठे औघट मांहि ॥१२४॥
बदन सदन चित्रे चितवि डरें न मंत्री चोर ।
रज्जब सूते स्वांग घसि सक्ति न संपति मोर ॥१२५॥
भजन भरोसे छूटिये भेष भरोसे झूठ ।
रज्जब ज्यूं की त्यूं कही रखू होय भावे रूठ ॥१२६॥
आसा बहु आसण करे, भूख बणावै भेष ।
रज्जब सावे सांच बिन कबहु न मिलै अलेप ॥१२७॥
रज्जब भूप भेष बहुते करै तामें फेर न सार ।
वप अवस्था बावन बली बसि मंगण की बार ॥१२८॥
भांड भूत बहुते करें, भूपे भेष अपार ।
रज्जब छलणी का मता तामें फेर न सार ॥१२९॥
भेषों भगति न ऊपजै यामें बसि नहिं पंच ।
जन रज्जब इस स्वांग में चौबेही की टंच ॥१३०॥
स्वांगो स्वारथ खान का भेषों भगति अनंत ।
रज्जब यूं जानै बचे कवे न छोड़ै अंत ॥१३१॥
पढ़े पठंगी भेष के पामर पालै पेट ।
जन रज्जब इस बिस परि, नहीं राम सौं भेट ॥१३२॥
स्वांग दिखावा जगत का कीया उदर उपाव ।
जन रज्जब जग कौं ठगै करि करि भेष बणाव ॥१३३॥
ज्यूं घुण काष्ट में घुसी गज बाहैं सिरि धूरि ।
त्यूं रज्जब माला तिलक पसू करै नहिं दूरि ॥१३४॥
मानस माडे मूर से दीसे दुनी अनेक ।
रज्जब रत रंकार सौं सो कोइ बिरला येक ॥१३५॥
स्वांग स्वांग सारे कहैं जथा कथलिये राति ।
रज्जब काढ़ैं रूप बहु आप दूम की जाति ॥१३६॥
स्वांग स्वांग सारे कहैं, नहीं मांव के चीति ।
जन रज्जब भूला जगत यहु देखी बिपरीति ॥१३७॥
मुखि मुखि उकटै छार से सहर सियाला देखि ।
महंत मही ऊसर भरे आमो करै असेखि ॥१३८॥

देही दरसन फेरिये, दिन देखत सौ बार ।
रज्जब मन फेरन कठिन जो जुगि जाहि अपार ॥१३९॥
स्वांग किया सहिनाण कौं ज्यूं जीवहि पावै जीव ।
मन रज्जब इस मामले कहु किम पाया पीव ॥१४०॥
पट दरसन सहिनाणि कर गुर खेचर गहि लेहि ।
जन रज्जब ज्यूं स्वान सिसु, वणिक वाचमें देहि ॥१४१॥
तन मन पतिव्रत चाहिये रहसी सहित सिंगार ।
कंत न छाड़ै कामनी रज्जब विम विभचार ॥१४२॥
सिंगार सहित मचवा रहित पति परसे सुत होइ ।
रज्जब मामिम भेष बसि फल पावै नहिं कोइ ॥१४३॥
जंत्र ठाट सब चाहिये मालहि रंग म रंग ।
रज्जब तोपि न रग कै नहीं राग मैं भंग ॥१४४॥
जंनग बौ रागै वजै सोई राग सरवेनि ।
तौ रज्जब सार स्यंगार का कमि भार अघकेनि ॥१४५॥
सारि म रची रबाब कै गवै तंबूरे धारि ।
रज्जब राग सु एक से वधि बंदौ बेगारि ॥१४६॥
गऊ दंत दरसन वधा दूजी दिसि सो नाहिं ।
यूं स्वांगी साचे सवा उभै मांझ मुख माहिं ॥१४७॥
बिम सुमति कुं तुरकनी मामनि वागे नास ।
ऐसै मासा तिलक बिन रज्जब भगत सु वास ॥१४८॥

## स्वांग सांच मिरनै का अंग

दत्त दसासी यू फिरै देखि दिगबर कोडि ।
परि सो सबलाई कौम मैं अबलोको इहि कोडि ॥१॥
ज्यूं गोरख गोदावरी मनिष किये पाषाण ।
त्यूं रज्जब औरौ करैं सरभरि सोई साम ॥२॥
भरम भेष धरि मर परी सूसी हरी म होइ ।
तौ रज्जब मानै सु क्यूं, त्यूं पतियावै कोइ ॥३॥
मंदिर फिरै न मूरति पीवै गौषन जीवै शानि ।
तौ नामदेव समि होइ क्यूं, पद साखी सु बखाणि ॥४॥

करनी करि सरभरि नहीं कथा कबीर कहाइ ।
रज्जब मानैं कौन बिधि बातनि उतरी आइ ॥५॥

इक साँभरि अल्लाह पुर, दादू देखे दोइ ।
दरस दसा सरभरि भणी परि कला कौन पै होइ ॥६॥

जहाज कढ्या चीरी फिरी गज सुरहे मुंह मोडि ।
दादू दीनदयाल के रज्जब परचे कोडि ॥७॥

बांछे अणबांछे करी सांई संत सहाइ ।
रज्जब देख्या बखत बल मिथ्या कही न जाइ ॥८॥

दसा चौदसा ग्रहण बिष सदा जीव के साथि ।
जग रज्जब इन सौं परे, सो बिसवेस्वा हाथि ॥९॥

दुख दोजक सुख सुरग है दून्यूं मांझ मझार ।
जन रज्जब इन सौं परै सो जन उतरै पार ॥१०॥

प्रतिबिंब पाणी ना गहै किरण अकरषै नीर ।
स्वांग सांच निरनै भया नहंग चढै कहि सीर ॥११॥

करणी किरण सु मे चढै जिव जल कौं सु प्रकास ।
स्वांग सबद प्रतिब्यब परि, यहु कृत होइ न तास ॥१२॥

## तीरथ तस्कार का अंग

मांव बिना निरमल नहीं बहु बिधि करै उपाइ ।
रज्जब रज किसकी गई, दहू दिसि तीरथ न्हाइ ॥७॥
सूती सुत उर लाइ करि, सुपिनै मरती माव ।
यूं रज्जब पिव पीव कन मूसै दहू दिसि जाव ॥८॥
दहू दिसि दौड़ै दूरि को भ्रमि भ्रमि तीरथ न्हाहि ।
रज्जब राम न सूझई जो इस काया माहि ॥९॥
पंडित कहै सु पावनी गंगा गोम्यंद मांहि ।
सामैं न्हाये मीच कुस तो क्यूं न करै द्विज पांति ॥१०॥
टेढ़ा तूमी ना चुकी अठ सठ तीरथ न्हाइ ।
सो रज्जब सुनि सांच मधु मांव निरंजन गाइ ॥११॥
मनिष मीन सम ह्वै रहै अठ सठ तीरथ न्हाइ ।
पै रज्जब रज नांहि उतरै दुरमति बास न जाइ ॥१२॥
जन रज्जब तन तूंबड़ी नर देखो निरताइ ।
कुबिस न कड़वापण गया अठि सठि तीरथ न्हाइ ॥१३॥
बाहर नई न जानई पुरष तज्या परवीन ।
रज्जब राम न आवरी यूं सौंपि समंदरि दीन ॥१४॥
गंगा गोविन्द चरन तब चार समंद को जाइ ।
रज्जब उथली के उदिक अघ उतरै क्यों न्हाइ ॥१५॥
हरि सौं हुई हरामखोरि हाड़ बसाये माहि ।
रज्जब क्यूं जानै नहीं गाफिल गंगा माहि ॥१६॥
धारा तीरथ धार तजि त्यू सति जति सुमिरण राम ।
रज्जब कारिज सीस परि जित चेतहु नहिं काम ॥१७॥
तन कौ तीरथ बहुत हैं मन कौ तीरथ तीन ।
सत जत सुमिरण सलिल सुध रज्जब काढ़े चीन ॥१८॥

## भरम बिधंस का अंग

हाथि घड़े को पूजिये मोलि लिये की मानि ।
रज्जब अघड़ अमोल की सालक खबरि नहिं जानि ॥१॥
मूये बच्छ सभि प्रतिमा पसु प्राणी सब मोल ।
रज्जब ब्रह्म न बैल का भूसि न पावै मोल ॥२॥

क्वांरी कन्या सब रमहिं गुपड़ गुडी मशान ।
त्यूं रज्जब मोसे भगत भूले अस पाषान ॥३॥
पाणी पाहन पूजसे कौण पहूच्या पार ।
रज्जब बूड़े धार मैं इहि खोटी ब्योहार ॥४॥
पाहण सौ घड़ि पूतला सबै समाने सेव ।
रज्जब संभू सबनि मैं साका लखै न भेव ॥५॥
रज्जब सेवा सैस सुत ज्यूं सुपिनै की मावि ।
सोवत सब कछु देखिये, जागति कछू न हावि ॥६॥
जड़ सेवा जड़ का करै सठ हठि समुझै नांहि ।
रज्जब फूटै रोस चढ़ि कण नाहीं तु समांहि ॥७॥
करहिं पूतला मनिष का, सो मनि चोरी खाइ ।
तौ अमूरत मूरत किये कैसे सुखी खुदाइ ॥८॥
रज्जब चेतन जड़ गढ्या सुधि बिन लागे सेव ।
येती अकलि न ऊपजै असम भया क्यूं देव ॥९॥
जड़ मार्गे जड़ ठौर सौं चेतनि चेतनि ठाइ ।
स्वाग समाड़े सैल सुत स्यंघ सिंघणी जाइ ॥१०॥
अमर आतमा अमर की ताकी कीजै आस ।
मिरतमि तनि मिरतग घड़ी तापरि का बेसास ॥११॥

चौपई
माता पिता पूत अरु पोता इन उपरंति सगा नहिं होता ।
तेऊ मुवा सु जीजै जारी सौ मिरतगि मूरति ह्वै क्यूं प्यारी ॥१२॥

साखी
रज्जब निपजै धात धर गिर सरवर बनराइ ।
ध्या विधा के ठाकुरहु चाकर चित न पत्याइ ॥१३॥
केस मास अस्थि गूद धर तिनतैं प्रतिमा तन ।
रजपूतौ की रज्जबा सेवा करै न मन ॥१४॥
अवनि अस्थि सौं देव घड़ि जीवै मांडी सेव ।
रज्जब वह कछु और है अवगति अलख अभेव ॥१५॥
सपत धात सागर सपत सरिता सु सलिल अपार ।
तहां सैल सुत नांव चढ़ि सुरति न पहुचै पार ॥१६॥
अतिर जीव माध्यम अतिर पारंगत क्यूं होइ ।
गिर सुत ग्रीवा बांधि करि तिरता सुण्या न कोइ ॥१७॥

पानि पानि परसोत्तमा तोड़े जीव असाध ।
रज्जब पूजि पषाण कौं सदा करैं अपराध ॥१८॥

पान फूल फल दीप सौं प्रतिमा पूजैं लोग ।
रज्जब राम न मानई प्राण सिधारण जोग ॥१९॥

जे हिरदै हरि सेइये मनसा निरमल होइ ।
तो रज्जब इस बपुरी जीव मरैं नहिं कोइ ॥२०॥

हरि भर माहै छांडि करि परदे सौं जाइ प्राण ।
जन रज्जब सोधी बिना पूजै जस पाषाण ॥२१॥

एकहि बाधे कंठ सों पूजैं पूजण जांहि ।
जन रज्जब बेसास विन सोधी माहीं मांहि ॥२२॥

सालिगराम सरूप संतहु कम जन आवै जगनाथ ।
रज्जब रीझ्या देखि करि गुर ज्ञाताविन साथ ॥२३॥

मूप मावसी मैंदिये गमिगिज हिये पषाण ।
रज्जब गुर सिष यू इंद्र कहिये कहा बषाण ॥२४॥

छांड संगि फेरे लिये जुमी जसम संगि होइ ।
त्यू प्राण पाणि प्रतिमा लगी हेत मौर सब कोइ ॥२५॥

ब्याहे खांड खीर समि त्यूं प्रतिमा ब्योहार ।
सब समझैं सवेह बिन मागे है भरतार ॥२६॥

गोहू उपरि घुमट रच्या सदा रहै सो नांहि ।
त्यू मूरति परि मन महल सुरति अमूरति मांहि ॥२७॥

कामबूत करि काटणा पहलैं ही यहु भाव ।
रज्जब सब लग राखिये जब लग होइ सभाव ॥२८॥

मूरति एक पषाण की मात पिता के नाइं ।
रज्जब रसना उन दई दूध पिया उस ठाइं ॥२९॥

कहो कौन कूं पीठ दे कहो कौन दिसि जांहि ।
निकट तुम्हारा सबन सौं सा सोध हम मांहि ॥३ ॥

प्रतिमा के परताप सौं प्रान न पलटै कोइ ।
तो पारस पत्थर मसा लोहा कंचन होइ ॥३१॥

पंचक चलैर पारस पलटै त्यूं भी प्रतिमा मांहि ।
रज्जब सेवा सवित परि, समझि रेखि मन मांहि ॥३२॥

हुमाइ छांह के छत्रपति चंदन पलटै काठ ।
प्रतिमा हतो न पाइये गहण दिखावै पाठ ॥३३॥
प्यंड प्राण पलटै नहीं प्रतिमा पूजै सोइ ।
दास देव देखें दुनी रज्जब रूप न होइ ॥३४॥
सुमेर सहित दंमर सवै तिन परि बरसै मेह ।
रज्जब रुचि इस बात की सौ सब चरनोदिक लेह ॥३५॥
सावण मैं सब जीव का जल चरनोदिक होइ ।
सौ रज्जब पीव सब सीख्या सुण्या न कोइ ॥३६॥
माला तिलक न मानई तीरथ मूरति त्याग ।
सो दिस दादू पंथ मैं परमपुरिष सौं लाग ॥३७॥

## झूठणि का अंग

रज्जब रिषि झूठी सवै सब जग देख्या जोइ ।
इन न अभोगित पाइये कहु सेवा क्यूं होइ ॥१॥
जीव जुठासी लछमी लच्छी औठणा जीव ।
इहां अभोगित कछु नहीं कहा समरपै पीव ॥२॥

## आचार उपेस का अंग

चाकी चूल्है सीपता दीपक पाणी पात ।
जग रज्जब जीवैं मरैं एकट करम वन घात ॥१॥
एक करम सौं भाजिये ये दीसैं षट करम ।
रज्जब करै सु कौन विधि लहया धरम का मरम ॥२॥
चींटी दस चौकै मरै चुण दस हांडी माहि ।
जन रज्जब इस भूमि मैं बरकति दीसै नाहि ॥३॥
करै आचार विचार बिन सिल दिल बैठी आइ ।
रज्जब उपजै कर्म षट करम करम घर जाइ ॥४॥
धर्म वृष्टी चौकै चढे कोटि सु चित गज दोइ ।
रज्जब सो समझै नहीं जिम सादणि भेर्ड मोइ ॥५॥
रज्जब चौकै चकहु के जीवहि चारयू जानि ।
सुमकि विना मीपत फिरै, दुख ते पीयो आमि ॥६॥

भांति भांति भोजन भरे स्यौ माणै भगवन्त ।
रज्जब एकहि थाल मैं जीवहि जीव अनन्त ॥७॥

अभरी आये उठि गया इस ऊपरि आचार ।
रज्जब सूच्या ना रही मैला करौ विचार ॥८॥

अभरी अभरी परसि करि पाक पूर परि जाइ ।
कहो अचार कहां रह्या थे पंडित सो खाइ ॥९॥

जीवत गाई जोगि येहि, त्यूं पूभा पट करम ।
रज्जब आये पाप सिरि जोसे कहिये भरम ॥१०॥

रज्जब उपजै पाप पुंनि एक पुंनि ह्वै पाप ।
असम भेद जग करत ज्यूं है हो मेरे बाप ॥११॥

अरिल कहै गिरह का करम पाप का मूल है
मरै उभै पचि प्राण कहो क्या सूल है ।
मारै पंच पुनीत करम को ठौर दे
रज्जब पापर पुंनि भाव करि भौर रे ॥१२॥

साखी रसोई रस सब पड़े एकसि रूप अहार ।
रज्जबरू ते खाइ करि मोहीं पाक अचार ॥१३॥

पाक पूर परि हर रह्या पाकी सुख न सार ।
रज्जब सो सुपिनै नहीं फूले फिरै गंवार ॥१४॥

पाक अचारी एक को जाके पाक अचार ।
रज्जब नर नापाक सब नांव बिना संसार ॥१५॥

रिठि रकत ज्यूं काढ़िये ब्रह्मंड प्यंड को पाखि ।
सो अहार सीरे कहै, कहां पूछिये आखि ॥१६॥

पै प्राणी पसुतैं लिया भूतकूं पै सु अहार ।
सायै सागण जल पिया रज्जब करि सु बिचार ॥१७॥

ऊंधा थाल न कूटिये सूधा करि संत पोखि ।
टीकी नहीं उडावणी कपट न लहिये मोखि ॥१८॥

चौपई खास पखावज झालरि संख ढोल दमामा भेरि असंख ।
बाहरि सोर सरै क्या काम माहै मौनी कहै न राम ॥१९॥

## बेद बेकार का अंग

रज्जब बहु दिसि धूक है छहू ठौर छल छेव ।
नौन राज सीये सबै अष्टादस अरि भेव ॥१॥
रज्जब च्यंत चौवीस दिसि बेद बोध की साखि ।
मसत एक मत माग बहु कहा करै सो राखि ॥२॥
एकै नवहिं उगौण दिसि एक नवै आथौण ।
रज्जब बातैं बेद की सुणि भूसे मुर भौण ॥३॥
बेद बतावै भठ सठधू पूजौ जल पाषाण ।
रज्जब रवहिं न संत जन भिमहू निरंजन जाण ॥४॥
विष अमृत सब बेद मधि निरनै करै सु माहिं ।
जन रज्जब जगि बुगल रस पी प्राणी मरि जाहिं ॥५॥
रज्जब बेदहु सौ रह्या परघा भेव मैं जाइ ।
दूरि न दौरै वह दिसा निकटि लिया निरताइ ॥६॥
बेद बतावै सबनि कौं प्रीता गोपी कान्ह ।
रज्जब नर नारयू रचे गति मगि गही सु नान्ह ॥७॥
भागौत कही भारत की सड़ि मुये वाना देव ।
रज्जब रचि उपजै मही काकी कीजै सेव ॥८॥

## मीलिग का अग

रज्जब देखी दिव्य दृष्टि दिव सु माहै दीप ।
सांच मूठ निरनौ भया पावक परस समीप ॥१॥
रज्जब निरखहु मीर निधि अनि गनि नीलिग अग ।
सांचा राख्या संचि उर नहिं मूठे सो संग ॥२॥
मही मंद्धि मागस मरे जीव जलंध्री नाथ ।
पहुम पु पीड़ा ना करी देखौ दिसि प्रहलाद ॥३॥
प्रहलाद प्रतिज्ञा पूरिय हरनाकुस हित हार ।
रज्जब रोम न रीस यहु निरमल नीत बिचार ॥४॥
प्रहलाद बच्या होली जमीं रही उभै रस रीति ।
रज्जब पैगि प्राचीनता मगनि न करी अनीति ॥५॥

रामचंद्र रामन सु रिप बमीपन सो भाइ ।
सत्र मित्र सोधी करी हुये नये कहि भाइ ॥६॥
रज्जब दुविधा दूरि लग सरग नरग ह्वै वास ।
एका की देवल फिरै एक मिव जाइ निरास ॥७॥
अठार भार आदम भरहु प्रासह अगनि अतीति ।
कपरि कुमाणस टलि चलै यहु आद्रू रस रीति ॥८॥
बड सरोवर तोय गहै, रंगहु रस रुचि नाहिं ।
तो भणपाणी बिण आदमी और गहै स्यूं माहिं ॥९॥
करता कर कि करम गति बुरा बुरै का होइ ।
नर मराषपति नीति बिन सुखी न देख्या कोइ ॥१०॥
बागे देर निवाजिय वागी करि निस्ताम ।
रज्जब बागहु बिगति वहु बागौं सुख दुख साम ॥११॥
वप वामे अमृत विष स्वान पर साध असाध पहराये ।
सनमुख भये निवाजे दीसैं बिमुखे जीव मराये ॥१२॥
सत्रहु सोधिर मारही करहि मित्र प्रतिपाल ।
जन रज्जब महि नीति मग सतपुरषौं की चाल ॥१३॥
दुष्टी सेती दुष्टता मिसतो सेती मेल ।
रज्जब दून्यूं काम की कमरिद्धार का खेल ॥१४॥
बडी बंधि नहिं मारिये नेकी परि न निवाज ।
तो रज्जब न्याव नीति कहु धुन्धमार का राज ॥१५॥
रज्जब रोस अनीति परि, नीति माहिं रस रंग ।
आदि अंति मधि किम्मतें सतपुरषौं का अंग ॥१६॥
अंतक सदा अनीति के नीति मीत प्रतिपाल ।
रज्जब महंत महीप त्यौं चारिहु जुग यहु चाल ॥१७॥
रज्जब जीवहिं जीव दे सो सब छोटा साज ।
जिसहिं निवाजै साइयां सो सबही सिरताज ॥१८॥
पांचो थापी रोटियां सो तो पांचौं खाहिं ।
पै पंचो थापी थापड़ी सो चूल्हे मैं जाहिं ॥१९॥
सबद सरीरहु ऊमरहि, सो बदहि सब कोइ ।
बाई विष्टा पेट की मनिष न मानै कोइ ॥२ ॥

बंदरहू बाहुर बढ़ी रज्जब नीति विचारि ।
उन बल तज्या अनीति मैं रावन सा सिरि मारि ॥२१॥
सरिता मिलहि समंद कौं चोट चिन्ह कछु नाहिं ।
रज्जब सूझहि बूद निमि उदै बुदबुदा माहिं ॥२२॥
सत पखरी ससमौं सहित करी न सोभा चाहि ।
कुसम चोट कसिके टेऊ भागन उबरी आहि ॥२३॥
अव्यापौं कौ व्यापई, करतौं दखि अनीति ।
रज्जब सांई साव परि आदि अदलि रस रीति ॥२४॥
सौ गासौं हंसा मरीं बाट चलै बप माहिं ।
एकै कण उलट चलैं जन रज्जब पक माहिं ॥२५॥
पीढ़ी पाटा पाव परि मुख गद सोधि पहार ।
जन रज्जब बैवंग यहु करै न श्रम सिंगार ॥२६॥
विघ न बुलावै दोष बिन न्याय नीति निरताइ ।
तौ थावम अपराध बिन कहु क्यूं मारघा जाइ ॥२७॥
धरम अस्थानक बंदिये करम अस्थानक डंड ।
जग रज्जब यहु जग जुगति नीति माग नौखंड ॥२८॥
करम अस्थानक कर लगै धरम अस्थानक धोक ।
जग रज्जब रस रीति यहु हरषि हुसेनी धोक ॥२९॥
येक ठौर है डंड का येक ठौर डंडौत ।
माइ मिहरि दोऊ नीति मैं नर दुनियां तण मौत ॥३०॥
रज्जब रचना राम की चौरासी लख चोइ ।
एक एक ने ना करी अब सु एक क्यूं होइ ॥३१॥
खंडि खंडि सित भुज घणे घटि घटि घाट अनेक ।
रज्जब बसुधा बहु मती सु अविगति करी न यक ॥३२॥
देस राज राजा करहिं, दिसहु राज गुर पीर ।
रज्जब रीझा सकति मैं परि मतै न मेसा धीर ॥३३॥
गुर अनन्त ज्ञानहु घणे बहु गोब्यन्द घण सेव ।
रज्जब मांड न एक मत घरि घरि देई देव ॥३४॥
साधु सुलषिण सइये लच्छी लालच नरपति ।
सो धन बामहु ना मिलै तौ मार्जे मन भृति ॥३५॥

रज्जब रमिता राम का, बहुत भांति महान ।
मिलहि न आदम एक मत जीव जीव जुवा जान ॥३६॥

रज्जब एक न किये एक नै, प्राणर पांचौ तत ।
तौ है घट क्यूं एक ह्वै मानी अविगति मत ॥३७॥

साधू इंद्री नासिका चारधू इंद्री चोर ।
रज्जब कटै कुसंग मिलि नहीं न्याव की ठौर ॥३८॥

खेती उपज आप म, तेती अपने साख ।
जन रज्जब ह्वै गैब की सो सिरजी जगदीस ॥३९॥

भाव भूप मै करि मथे, मोजन सुर मरजाद ।
पै शून्यूं मैं तीन्यूं नहीं, क्यूं करि ह्वै परसाद ॥४०॥

## बिसवर बिस सौवे सौवा का अंग

बिस दीये बिस पाइये बिसही सौं बिस भेद ।
ज्यूंव जिमी जड़ मेलई त्यूं भर तर रस देह ॥१॥

बनराइ बीज पैठै बिभ्रु, गात गरद मैं देहि ।
तौ रज्जब तर नीपजै रस सुरखातन लेहि ॥२॥

हरि हित बिस अरप्पू बढ़ै बप दे वसुधा सब ।
आतम अरपि मिलै पर आतम नीति राहिहै भव ॥३॥

त्रिविधि भांति बिब भेंट दे त्यूं प्रभु करै पसाव ।
चूवै का सा खेल है मामा पावै डाव ॥४॥

दासों सौं दाका धणी सूधौ सेती सूधि ।
जन रज्जब सांची कही जो मानै सो रुधि ॥५॥

हरि दासौं का दास है, बंदी बंदा सोइ ।
सेवग धरि सेवग सुख्या सौवे सौवा होइ ॥६॥

## गुर गति मति सति का अंग

गुर पीव बीवते सीप समि सिष मुक्ता सु सुदीव ।
ज्यूंदहु ने गुरदे जने रज्जब बरम बदीव ॥१॥

ससि खंडित मंडल मबाक मात बंध सुत नैन ।
त्यूं रज्जब गुर गति बिना पै सिष निपजै सति बैन ॥२॥

नर गुर माग समानि हैं, सबद सुमणि मुख मीन ।
सा रज्जब किम लीजिये, जो दारू दुख दीन ॥३॥

भजरी आदम गात गत सहत सविता ओस ।
रज्जब अज्जब ओपदी मर निपजै निरमोल ॥४॥

देसहु दीपक ज्ञान का साध असध कर होइ ।
तिमर हरै उर धाम म धन रज्जब करि जोइ ॥५॥

गुरू खोसरा खेजड़ा सिप सार्खों नहिं दोप ।
रज्जब मत भल पावहीं पत्र फूल फल पोप ॥६॥

परम मता पीपस सुफल कुगुरू काग उर लीन ।
परहि सु चेले चकहु परि सो निपजै कुल मीन ॥७॥

रज्जब मां विभिचारिणी बेटी पतिव्रत होइ ।
त्यूं गुर गिरही सिप जती नाहीं अचरज कोइ ॥८॥

सपत धास धरती उवै निघ नग हीरे लाल ।
रज्जब आतम काम के असन बसन इस माल ॥९॥

दारू दुष्ट दयाल दे रज्जब हरिये रोग ।
उभरमहारा ऊपरै मिले अनुगता जोग ॥१०॥

सोधि सार उपदेस दे गुर गति रहति न नेम ।
पारस साध असाध करि करख लोह तैं हेम ॥११॥

रज्जब काबि किराड़ कै किरिया ऊरा ठाट ।
तौ भी तिनका लीजिये वाइक पूरा बाट ॥१२॥

अबला बली सु बंधही मन समुद से अंग ।
रज्जब कूंपि अबंधिये निपजै सबद सु संग ॥१३॥

दर मिहीन दिठि पारपू, नर नम करहिं सु मोल ।
धण मोले धनपति गहैं रज्जब तिनके बोल ॥१४॥

गुर सविता सारंग सिप समझे समझौ साध ।
रे रज्जब कहु क्या गया अकलि अंध जहं लाध ॥१५॥

रज्जब महंत मयंक का अंक कल्क न जोइ ।
श्रवणि सुधा रस पीजिये नैम उज्यासा होइ ॥१६॥

## सारग्राही का अंग

हंस हुस ले षीर का नीरहि मिलसहि नाहिं ।
जन रज्जब यूं ज्ञान महि ले अमृत विष माहिं ॥१॥

ज्यूं सविता सोखे तिमर सीत सहित ले ताणि ।
तैसे रज्जब त्रिगुण तैं तत्त लीजिये छाणि ॥२॥

ज्यूं माखी मधु काढि ले, सोधि अठारह भार ।
त्यूं रज्जब ततहि गहौ तीन्यूं लोक मझार ॥३॥

जैसे चंचक रेत मैं चुणि लै कंचन सार ।
त्यूं रज्जब कण काढि ले केवल हंस विचार ॥४॥

सोरठा चेतनि चंचक रूप गहे सुगुण कण सार के ।
रज्जब जुगति अनूप छाणहि औगुण छार के ॥५॥

साखी जे कांटा तो रूप मैं छाह माहिं कछु नाहिं ।
रज्जब मिलिये सबहु सौ गहि निरगुण गुण माहिं ॥६॥

रज्जब साधू गुण गहै, औगुण दसा न जाइ ।
त्यूं अलि विष तिजि पहुप को परमल लेइ उठाइ ॥७॥

परहरि कंटिक केवड़ो कुसमहि ले अलि आइ ।
त्यूं रज्जब गुण को गहौ औगुण मैं निरदाइ ॥८॥

ज्यूं बछ मठ को चूपतौ मन मैं बंछ न गाइ ।
त्यूं रज्जब रस पीजिये आपा परि बिसराइ ॥९॥

जैन बूंद बहु बरषहीं जलचर होहिं निहाल ।
पै सीपि स्वाति जल को गहै, उपजै मुक्त सु मास ॥१ ॥

दुपि दुनिया मिरतग मैं लहिये मुकता सुत द्रवि दंत ।
रज्जब मेहि सो सोइ जन एक महीपति पुनि महंत ॥११॥

माया पाणी दूध हरि साधू हंस समानि ।
पै पानी पीवै जु यमि जग रज्जब मुक्ति छानि ॥१२॥

पंच नीर मैं गाढि करि, छीरहि पीवै हंस ।
त्यूं रज्जब रिधि मधि सुजन लेइ राम का अंस ॥१३॥

रज्जब तरवर महि सु देखिये नीर खेहिं निरवासि ।
त्यूं साधू सब सकति मधि त्यो रस पीवहि टालि ॥१४॥

साधू सीप सरोज गति सकति सलिल मैं वास ।
प्यंड पुष्टि ह्वै और दिसि प्राण और दिसि वास ॥१५॥

चौपई साध असम सुकृत अपराध चतुर भांति माया फल साध ।
ज्यूं ससि आधिर गोम्मद गासि रज्जब सेहि एकही टासि ॥१६॥

साखी रज्जब मधुरिष मानवी, छरु नरु देह म पीठ ।
सबही ठाहर सोधि करि लीया मधु मत मीठ ॥१७॥

अठार भार विधि आतमी सहित सु सांई देह ।
रज्जब मधुरिष मुनि मही, प्राण पियूष सु लेह ॥१८॥

रज्जब रिषि रुधिरहिं भरी मनसा मात सुधान ।
असुध दूध ह्वै वमा सुख साधू सुत से पान ॥१९॥

वमा देह मैं आवती असुध दूध ह्वै आह ।
अग्राहिज ग्राहिज भया रज्जब पलटै माइ ॥२०॥

सुकल सु सोणित सीर पुनि त्रिबिधि भांति सन येक ।
भुगताहू मुर मत मिलै रज्जब वङा वमेक ॥२१॥

ससि कलंक जुगि जुगि जडे सुधा सदा निकलंक ।
त्यूं ससि सबद रस लीजिये परिहरि करि वप वंक ॥२२॥

रज्जब महत मयक तैं लेव पियूष प्रकास ।
करम कलंक घटि वधि जुदे गुणग्राही निज वास ॥२३॥

रज्जब सबद सुगंध लै सौरभ पहुप प्यंड चालिये सु नाहिं ।
परम ममक विसनी ग्राहक गुण सु काढि ले औगुण माहिं ॥२४॥

सबद सहत ज्यूं लीजिये उतपति दसा न देखि ।
रज्जब रस का माहकौं बिरचै नहीं वसेखि ॥२५॥

अपि विष पहुप पियूष मधु गाति वाति महु षोष ।
तहु रज्जब रस लीजिये योहीं निज परमोष ॥२६॥

षट दरसन मैं खाजि से सांचा सबद विचारि ।
ज्यूं रज्जब तुरि त्याग करि अवर महि उतारि ॥२७॥

पारा कंचनि काढि ले राख रहित रलि राखि ।
त्यूं रज्जब अज्ञम मतै सोधि गहै सति साखि ॥२८॥

सब काहू का लीजिये सांच सबद न दोष ।
त्यू रज्जब वहु धनु क पै पीय ह्वै पोष ॥२९॥

मिठाई की मूरतें सूरति भांति अनेक ।
त्यू रज्जब जो सबद है, सो रस रूपी येक ॥३०॥
नभि नीझर मीवान घट साखी सबद सु नीर ।
रज्जब उभै अंकूर है कोई सींचहु वीर ॥३१॥
सकल कुलहु की आतमा सीझी हरि मैं थाँहि ।
सो रज्जब सांचा सबद कहु क्यू लीजै माँहि ॥३२॥
अवनि माँहि अन नीनजे सो आदम उर धारि ।
त्यूं साधू संसार तैं रज्जब लेहु बिचारि ॥३३॥
ज्यू उभै पसावरि कै पवनि अगनि उद धुम धार ।
त्यू बैन बिमल बुद्धि ओर कूं, रज्जब कटै बिकार ॥३४॥
तम मन सकवि समुद मधि काव्या भाव रतन ।
सारगराही औतरे सो धन साधू धन ॥३५॥
ह्वै सरवर बिधि पास ह्वै सापरि तरवर होइ ।
जन रज्जब ता पोप मैं टोटा माहीं कोइ ॥३६॥
ह्वै सरवर बिधि पासि परि तरवर तोयं लेइ ।
रज्जब तजी सु दुष्टता जीवहु दोष न देइ ॥३७॥
बहुत भांति के बीज हैं, बहुत भांति के तेल ।
जन रज्जब पावक प्रबल होइ हुतासन मेल ॥३८॥
चंदन सबही काम का सबै सुगंधा होइ ।
त्यूं रज्जब निज दास है, क्या छांड्गा कोइ ॥३९॥

## असारग्राही का अंग

रज्जब साध सर्मद गति मोती मानिक साथि ।
तहां संत साखी गहैं, चतुराई करि हाथि ॥१॥
रज्जब साधू गंग गति माहिं रतन पतियाइ ।
मुदमागो मूगी भरै तो कंकर चढ़ि जाइ ॥२॥
रज्जब साधू आरसी मल मारया नाहिं ।
मूढ़ जीव मुग दोस को देखै दरपन माँहि ॥३॥
अप अपराध उतंग भ्रष्ट कुल मन मूदि महिं हेर ।
मनि औगुन रज नैन सभि छोई त्रिया मूमर ॥४॥

जथा बिषा की बूंद ले बूटी बप सु मझारि ।
रज्जब यूं अज्ञाम गति औगुण गहै बिचारि ॥५॥
ज्यूं कीचड़ तजि दूध को लागिर सोहू पीन ।
त्यू रज्जब गुण छाड़ि कर आमहु औगुण लीन ॥६॥
रज्जब सकल सुगंध तजि मैलहि धावै मीन ।
त्यूं गुण तजि औगुण गहै, सठ सुरता मति हीन ॥७॥
गुण छांडे औगुण गहै, जन रज्जब तेलंड ।
बाजीगर के धाम मैं मानौ मुस्या करंड ॥८॥
संत सभा मैं सबद सुद्ध रस पिवै पिलावै साम ।
तहां वाद बैरी करै अमृत बिष मेले अपराध ॥९॥
रज्जब उर औगुण भरे नहीं ज्ञान गुण माहिं ।
वाहै मारी चौल ज्यूं संगि सूल रहि थाहि ॥१०॥
रज्जब निन्दक औगुणी सब अवनी दुख पूरि ।
भैमीत भांड मुख देखिये ज्यूं मसकहु भरिपूरि ॥११॥

## सबद उदै अस्त का अंग

संजोग घड़ी बाइक अथिर हुवा सेती होइ ।
रज्जब मेल न मिरतगा तव सुणै न देखै कोइ ॥१॥
रज्जब सबद सरीर बिन कानहु सुण्या न कोइ ।
जथा धूप बादल बिना दृष्टि न दीसै धोइ ॥२॥
ज्यू सुपिना नाहीं नींद बिन त्यू सबद न बाज सरीर ।
रज्जब समझ्या ज्ञान मैं ज्ञानी समुझौ बीर ॥३॥
रज्जब पाले प्यण्ड झरि, बूंद बैन परकास ।
मैं धोइ न दीसैं दोइ बिन देख्या सुण्या न वास ॥४॥

## सबद का अंग

सकल पसारा सबद का सबद सकल घट माहिं ।
रज्जब रचना राम की सबद सु न्यारी नाहिं ॥१॥
सबदै बध्या सबद गहि सबदै सबद बेलाग ।
जन रज्जब इस पेच कौं समझै संत सुजाण ॥२॥

आशा सो ओंकार परि, पंच तत्त आकार ।
उदै अस्त सब सबद मधि तामैं फेर न सार ॥३॥
सबदैं ही सुलझै सबै सबद सरै सब काम ।
रज्जब सतगुर सबद मैं सबद गहै निज ठाम ॥४॥
गुर बाइक मैं सीझिये बाहर सीझै मांहि ।
रज्जब सीझै संत सब जु पैठे बाइक मांहि ॥५॥
जो सतगुर के सबद मैं सो सीझै संसार ।
सबद बिना सीझै नहीं रज्जब कही बिचार ॥६॥
मत मारग परलोक के सबद सुनारे ठाट ।
जग रज्जब बगि जीवड़े भूलि पड़ै मति बाट ॥७॥
रज्जब रज तसि नीर निधि गुरू गगन जल होइ ।
बैन बूंद बरिया बिना नाव नाज नहिं होइ ॥८॥
करी मिमाई मत्त की ब्रह्म अगन सु पकाइ ।
सबद पुरी सब ठौर की पाव असंख्या खाइ ॥९॥
असंख असंख्या बहुत हैं, त्यू औषदि सबद असार ।
रज्जब सो सहं लाइये तौ रोग न लहै लगार ॥१०॥
बिबिध भांति बूटी बिथा बैद सु जाणै भेव ।
यूं आसंख्या अनन्त बिधि समझावैं गुरदेव ॥११॥
सबद मांहि करि पाइये तन मन जिव का भेद ।
रज्जब माया ब्रह्म का बाइक बीच न खेद ॥१२॥
रज्जब रसना राह मैं बैन बटाऊ जानि ।
तन मन मातम राम की देह खबरि सो मानि ॥१३॥
साध सबद सो तुंबिका कटि जटि रास प्राम ।
सो रज्जब बूडै नहीं भौजलि संत सुजान ॥१४॥
साधू सबद सु तुंबिका तिरैं तिरावैं प्राम ।
रज्जब पावै जीव कौं बादर बधू जान ॥१५॥

सोरठा
सबद सुमिरण भार भौजलि काढ़ै भार पर ।
रज्जब मुनि सहार, जैसे पंछी पंख पर ॥१६॥

साखी
प्रान सु पंछी पाट पर पुरै गवन गगान ।
राहु बेउ ससि सूर तन सहै पदम पग बाग ॥१७॥

साहिल वनो पर चढ़यू विपम यारि सिरि गौन ।
रज्जब पहुचै पारि पद मलो मला सौं मौन ॥१८॥
अहि आदम अब पावहीं पंग प्रवीन सबद ।
सा बावन ग्रहौ मिलहिं, दलो नारिज हद ॥१९॥
जया माह क कुंम मैं सीतल होइ सु नीर ।
तथा सबद सु महूरती सुनत होत गुन थीर ॥२०॥
सिरजनिहारे सबद के सदा सु सबदौ माहिं ।
रज्जब गुर गोव्यंद जिव सबनौ बाहरि माहिं ॥२१॥
षट् दरसन सालिक सलक सत सबद के माहिं ।
जन रज्जब श्रीनति सहित बाहर दीसै माहिं ॥२२॥
सबद सिद्ध सु सन्त रहै सदन सप्त गुर बाहिं ।
रज्जब वही विचारि करि देख दृष्टि दिल माहिं ॥२३॥
सबद सिद्धि घट ऊपजी परकाया परवेस ।
रज्जब एक अनन्त ह्वै रवि रारषू दिसि देस ॥२४॥
सबद अमरफल नीपजै अकलि अंपृपा माहिं ।
अरथ सुधा रस पावही तनि सम प्रीतम नाहिं ॥२५॥
बान तनि सांधा सबद ज्यू धीरहि बीष सुभाइ ।
गात गयहुं सति दलिये एक रहै इक जाइ ॥२६॥
बण जाण हृदयंत गति उदधि असंख्या पार ।
रज्जब सा मायति सही और मूल नव वार ॥२७॥
यक सबद मंत्र मट ज्यूं बावन की बीस ।
बाँ गालि गुनि साथ उर रज्जब धनी गुनीस ॥२८॥
रज्जब [illegible] पठावै परपा पत्र सगारा ।
दगि अगवार बरि हो मानी मग नग्धार ॥२९॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

काया खानि सनमैं सही तहाँ विभासा पात ।
सबद दीप बिन को लहै रज्जब समझी बात ॥३३॥
मौजसि बूड़े मार सौं सबद सुविका हाथि ।
रज्जब पेरे प्यंड सौं दुवी रहै न साथि ॥३४॥
साध सबद सीखे सुने उर अंतरि ले राखि ।
रज्जब विगते बीष ही काठ हुतासन साखि ॥३५॥
बाइक बादल अरथ जल सरबै कोइ सुकाल ।
पै रज्जब बरिषा बिना आतम अवनि दुकाल ॥३६॥
सबद सूर सामत मिलि बणी फैम की फौज ।
मन रज्जब रंग संम अनन्त ज्यू मलमल में मौज ॥३७॥
काम रान मैवास परि चर्टाह् फहम की फौज ।
उतरें सु अज्ञान षष्ट कुल सबद सु पावै मौज ॥३८॥
तन तरकसि सींगणि सुमति बैंग बाण करि बाणि ।
काहू का बैठा मरमि मन रज्जब परवाणि ॥३९॥
वाइ अकेली बन हुलै देखहु विसवा बीस ।
सो समीर सगि सबद के तौ क्यूं न झुलावै सीस ॥४०॥
सुई सवद पसु प्राणघ् घावै विन दिम होत बितारे ।
देखो परसे पीवते रज्जब रोगि सु मारे ॥४१॥
रज्जब समझी बैन की मीन मनिष को माँहि ।
देखो घारि विभूति मैं सो ठहरावै माँहि ॥४२॥

## साखी विचार का अग

पराकिरत ओंकार है पराकिरत रति राम ।
पराकिरत टीका भया संसकीरति सिरि ठाम ॥१॥
आदि पराकृत मूल है अंति पराकृत पात ।
रज्जब विचि बृछ संस्कृत फल रस कीने घात ॥२॥
पराकिरति मधि ऊपजे संसकिरति सब बेद ।
अब समझावे कौन करि पाया भाषा भेद ॥३॥
पराकिरत परमी पवन संसकिरति घटि सास ।
मेक सजीवन मेक मिलि मेक मेक विम मास ॥४॥

प्रगट पराकृत पूर समि, निगम नैन उनहार ।
यम रज्जब जगि येक बिन पहु कौ घोरंधार ॥५॥
प्यंड प्रान बिन कछू नहीं सबद न स्यावति होइ ।
तैसे रज्जब सस्कृत, बिना पराकृत खोइ ॥६॥
पराकिरति के पेट मैं संसकीरत सुत कोडि ।
ज्यूं बिधि बारी याग बहु पै बहु बढ़ी बहु बोडि ॥७॥
बीज रूप कछू और था बिरिख रूप भया और ।
त्यूं पराकिरत तैं सस्कृत रज्जब समझ्या ठौर ॥८॥
प्राकृत पूजी प्रान पढ़ि, संस्कृत सौंदे सेत ।
रज्जब बांधी बीबिर्याहि, फिरि मुकिहाई देत ॥९॥
बेद सु बाणी कूप जल दुख सु परापति होइ ।
पद साखी सरवर समिल सुखि पीवै सब कोइ ॥१०॥
बिद्या बधि बेत्ता बहुत बाणी बंधि अनेक ।
रज्जब सारद सिरि चढ़ै बावन बर कोइ येक ॥११॥
बाणी बिबिध बिहार करि, सांच बाच सौं काम ।
रज्जब रांचे साहिं गुणि जामै चूना राम ॥१२॥
रज्जब बाणी सचि सो जा माहै निज नाम ।
कहा पराकृत संस्कृत राम बिना बेकाम ॥१३॥
ऊजस मैसे माव है बहु बाणी बिश्राम ।
रज्जब सनमुख सबद कै बिमुख बात बेकाम ॥१४॥
जिय जोजन बोली पलट बहु बसुधा बहु बाणि ।
रज्जब सीजै सबद सति राम नाम निज खाणि ॥१५॥
राम बिमुख बाणी बुरी कहैं साध सब बेद ।
जन रज्जब तिनकौं तजै, पाया माया भेद ॥१६॥
बप बाणी बिधि एक हैं, जीव जगत गुर नांव ।
सदा सुजीवन लीजिये तजिये निरतग ठांव ॥१७॥
बैदंग जोतिग जैन मत मंत्र सु माला नांव ।
ब्याकरणी अरु संस्कृत, तामैं मैं न पत्यांव ॥१८॥
सह संस्कृत साईं बिमुख भाषत भगवंत माइ ।
सोने के थमि सौं लिखी गाली बिबिध बनाइ ॥१९॥

सरगुण निरगुण ठौर की बाणी बीच दसास ।
रज्जब गाहक जीव के संचे सु विधि पास ॥२०॥

## विद्या महातम का अंग

विद्या कर माया मिलै विद्या ब्रह्म बिनाम ।
रज्जब विद्या बसत है, सोधत विद्या पान ॥१॥
विद्या मोहै बिदु जनहु विद्या बसि सुलतान ।
रज्जब विद्या परम धन सीखहु चतुर सुजान ॥२॥
चौदह विद्या मैं चलै आदम की औलादि ।
जन रज्जब विद्या बिना पसू जनम सो बादि ॥३॥
बुधि विद्या बलवंत जगि पूजा ताकी मानि ।
रज्जब गरजै मोह मुन सब इस आदर जानि ॥४॥
गुणि गणेस कौ मानिये गुणि पूजन गुर पीर ।
रज्जब विद्याधर बड़े विद्या वावम वीर ॥५॥
विद्या सारद बंदिये गुनि लुकमान हकीम ।
रज्जब पावै नाम महि, विद्या मै पु फहीम ॥६॥
विद्या संगी जीव की सदा रहै सो साथि ।
जन रज्जब परमान परि सिये सजामा हाथि ॥७॥
विद्या मैं हुनर सबै विद्या मैं मंत्राधि ।
विद्या बसि परवरति है विद्या हरि आराधि ॥८॥
विद्या बंधू जीव की अविद्या कूं काल ।
पर अधरम विष देखिये प्रानहु की प्रतिपाल ॥९॥
विद्या सबु तीरथ सबै विद्या पावै ठौर ।
रज्जब विद्या जीव कौ करै और तै और ॥१०॥
नर निगलै निरमोल मग रमू ले विद्या माहि ।
रज्जब आनन्द उमगतौं दुख दालिद सब जाहि ॥११॥
विद्या करि वेत्ता भये विद्या करि परवीन ।
विद्या करि मागर निपुनि रज्जब विद्या लीन ॥१२॥
विद्या जीवै जीव सगि मुवो मरे सौ नाहि ।
रज्जब रहती देखिये गुरमति गति सिष माहि ॥१३॥

मिश्री परि विद्या भजन काज करै परलोक ।
और जगति के काम की रज्जब पावै शोक ॥१४॥
विद्या चौदह रतन है जप सु वारि निधि माँहि ।
कोइ एक काढ़ै कमठ ह्वै नहीं त निकसै नाँहि ॥१५॥
कहै सुणै बूझै भजन विद्या दे वरदान ।
रज्जब तीन्यूं तन नहीं सो क्यूं परसै गुर ग्यान ॥१६॥

## सरब ठौर सावधान का अंग

मोटे छोटे जीव सब प्रगट गुपति कलि माँहि ।
जन रज्जब जगदीस सौं कोई छाना नाँहि ॥१॥
परा पसंती प्रगट बिन गोबिन्द गोपि सु नाँहि ।
मधु जाणै जाणै नहीं बहि सौं छाना नाँहि ॥२॥
ब्रह्मंड प्यंड के जीव वे सुमिरै साहिब माँहि ।
नमो निरति परि रज्जबा कबहू भूलै नाँहि ॥३॥
सब ठाहर चेतन्नि है रज्जब रमिता राम ।
इस समझे का फल यहै बुरा न कीजै काम ॥४॥

## अकलि चेतनि का अंग

अकलि अखंडित मास है, बहु विद्या हित माँहि ।
सदा सु सम आतम कर्म कबहू बिछुरै नाँहि ॥१॥
रज्जब गैबी मास कौं ग्यान जानि सम जानि ।
बहुतै खरचौ खाइ बहु करे न होई हानि ॥२॥
अकलि कहै गुर पीर है अकलि असह पहिचानि ।
रज्जब अकलि मर्मम उर अकलि अमोलिक खानि ॥३॥
अकलि इनायत अकलि की जासौं होइ गुर पीर ।
जप बैरागर खानि तैं जानि काढ़ै हरि हीर ॥४॥
अकलि इनायत अकलि की आतम कन आवै ।
सु काया माया मांझ मैं दिल दुख न पावै ॥५॥
धरे अकर विधि अवब है अकलि अमोलिक अंग ।
रज्जब सहिये रहम सौं अबिगति देइ उमंग ॥६॥

रज्जब इस आकार मैं अकलि अगम आधार ।
जहि त्रिलोक देखा पड़े सिरि सारे संसार ॥७॥

आतम माहै अकलि का अजब अनूपम ठाट ।
गहण सहस चौदह विद्या मही सबन की बाट ॥८॥

सब अंगहु आगे खड़ी अकलि अकल पहिचानि ।
रज्जब खबरि अगम्म की आतम को दे आनि ॥९॥

अकलि बिहूना अकलि को इहां पिछानै कौन ।
रज्जब बुद्धि बिचार बिन रीते आतम भौन ॥१०॥

रज्जब आतम राम मिल दीसै अकलि दलाल ।
ऊंची कुमति कपाट की खोलै ताला साल ॥११॥

अकल अकलि माहै धरया सब विद्या अरु बेद ।
परा परी परब्रह्म का मूल सु पावै भेद ॥१२॥

अकलि सु अमनि अनन्त सुख सब विधि करहिं प्रकास ।
रज्जब मज्जब तत्त ये चरहिं असक्या भास ॥१३॥

एक अकलि के उदर मैं अकल सकल सब साज ।
रज्जब तामैं पाइये सिरी सहित सिरताज ॥१४॥

रज्जब वोदरि अकलि के अरमक ओंकार ।
असुर बेद बालिक सु मधु, ता पीछै संसार ॥१५॥

सहस नांव सुत अकलि के सो सुमिरै संसार ।
मन रज्जब हैरान है मति मधि उदर अपार ॥१६॥

प्राण पुरिष अबला अकलि मिलि सुत जाया नांव ।
सधु सरिका माता बड़ी परि टीका हूं किस ठांव ॥१७॥

राम रूप अरु सबद सुख पावै कोई येक ।
रज्जब बुद्धि बिसास का घटि घटि नहीं बमेक ॥१८॥

चेतनि पूरै सकल गुण तन मन राखै हाथि ।
रज्जब काम उमै करै तबि पिरथी पति साथि ॥१९॥

सुपिन फूल न सूझई, आतम अंध अज्ञान ।
ज्ञान नयन देखै सबै जगपति सहित जहान ॥२०॥

पून्यूं पूरे पावही प्राण पियूष प्रकास ।
त्यू रज्जब रस वृष्टि के बाग दरस निज दास ॥२१॥

अकलि उकति मनमैं उपजै मति बुधि ज्ञान बिचार ।
समझि बूझि सुरति आणिबा रज्जब रामसहार ॥२२॥

## अज्ञान अचेतन का अंग

अचेत न जानै आपको परहि पिछाणै नाहि ।
रज्जब रचै न राम को जीवत मूवौ माहि ॥१॥
सोधी बिन सूते सबै मेलि सु निरखै नैन ।
रज्जब राम न सूझई, जीवत मूये ऐन ॥२॥
अचेत आत्मा अंध मति तम मन तम भरपूर ।
रज्जब राम न सूझई बाहरि भीतरि सूर ॥३॥
रज्जब अंध अचेत गति कहू आरंभ क्या होइ ।
भंजन भोग बूर्यूं नहीं देखी दृष्टि सु जोइ ॥४॥
रज्जब अंध अचेत मन मूढ़ा मुगद गंवार ।
सठ भूला समझै नहीं कहै न सिरजनहार ॥५॥
उर घर बारघू बरन के रज्जब रजनी माहि ।
ज्ञान दीप बिन तिमर मैं सबनौ सूझै नाहि ॥६॥
काया कालि पट बरस परि अचेत अंध्यारा माहि ।
रज्जब सै दीपक बिना उभै उदीपै नाहि ॥७॥
रज्जब सूते रैन के प्राण उठहि परभात ।
नर निद्रा हरि सौं विमुख सु जागै दिवस न रात ॥८॥
मूठ साच से देखिये ज्ञान नैन जब चाहि ।
क्यूंब न दीसै विषम मति रज्जब रजनी माहि ॥९॥
रज्जब भोमि भयाम की तनै त्रिभुवन तम पूरि ।
छल बल पकड़े सो तहां बहु बिधि बिमन हजूरि ॥१०॥
रज्जब रैन अचेत मत बिषै बीज बिस्तार ।
पाया सोवत सुपिन मैं अकलि असंख्या पार ॥११॥
नर नारी हिरदै रहै नारी नरहु मझार ।
पैठि कामना कामक मुगद मैन मंत्रबार ॥१२॥
रज्जब रैनि अचेत मैं उडगन इंद्री तेज ।
तिमिर नींद करि पुष्टि ह्वै हू हैरान इह हेज ॥१३॥

सोरठा इंद्री घूघू नेत अचेत रैन करि पोषिये ।
सही उभै अंग प्रेत रज्जब रजनी मोषिये ॥१४॥

साखी चोर जार बटपार बिघु, बन बैरी निम हाथ ।
रज्जब रजनी न्यान बिन बसिबंत इंद्री नाथ ॥१५॥

अरिल अस्थूल असुद्ध अचेत प्रेत परिवार तन
अरि इंद्री मध ठौर भ्रमित मतिहीन मन ।
सोमि भूलि चक चूक विघन बिस्तार रे
रज्जब रैनि अचेत पगै पग मार रे ॥१६॥

साखी सूने सुमन अचेत उर, भूत बसे कै खानि ।
जन रज्जब तहिं जीव की जीवन जुगति न जानि ॥१७॥

रज्जब काया कावरू आया जीव अचेत ।
मनसा नारी मंत्र मैं प्राण पसू करि लेत ॥१८॥

तन ठग मन ठग स्वाद ठग ठग पंची परसिद्धि ।
रज्जब मोमी आतमा कण राख केहि बिधि ॥१९॥

च्यार सु पिसणों सौं सरपा वैरण् सौ अहुंट ।
रज्जब रजमा क्यूं रहै, खल खाये नौखंड ॥२ ॥

देव गुरू सब दिन कहै, मन माया सौं तोड़ि ।
रज्जब निद्रा निमक मैं सहजि गई सो जोड़ि ॥२१॥

जोगी भोगी होत हैं नर निद्रा मैं खोइ ।
नीच मीच दीरघ बड़ी तेहि पकड़ै क्या होइ ॥२२॥

रज्जब एक अचेत अंग हरि अनन्त उनमान ।
चेतनि सज्जन सेनि जिव केवल कछू अचान ॥२३॥

आतम उरहु अचेत अंधारा चेतनि मनहु चिराग ।
रज्जब उसमैं कछू न सूझे यहि सब सूझण लाग ॥२४॥

## पतिव्रता का अग

मनसा सती सु आसक्त सब बैरिन सिरताज ।
रज्जब तन मन सकल के करै न कंता राज ॥१॥
सबद सरीर जीव मधि आसत है सुल्तान ।
रज्जब रोकै सुर भवन माह्रू थपि अर भान ॥२॥

अकलिं उकति मनमैं उपजै मति बुधि ज्ञान बिचार ।
समझिं बूझि सुरति आमिबा रज्जब राखणहार ॥२२॥

## अज्ञान अचेतन का अंग

अचेत न जानै आपको परहिं पिछाणै नाहिं ।
रज्जब रचै न राम कौ जीवत मूवो माहिं ॥१॥
सोधी बिन सूते सबै मेमिं सु निरखै नैन ।
रज्जब राम न सूझई जीवत मूये ऐन ॥२॥
अचेत आतमा अंध गति तन मन तम भरपूर ।
रज्जब राम न सूझई बाहरि भीतरि सूर ॥३॥
रज्जब अंड अचेत गति कहू आरंभ क्या होइ ।
अंजन औम शून्यूं नहीं देखौ दृष्टि सु जोइ ॥४॥
रज्जब अंध अचेत मन मूढ़ा मुगध गंवार ।
सठ सूता समझै नहीं कहै न सिरजनहार ॥५॥
उर घर चारयू बरन के रज्जब रजनी माहिं ।
ज्ञान दीप बिन तिमर मैं सबनौ सूझै नाहिं ॥६॥
काया सामि पट दरस परि अचेत अंध्यारा माहिं ।
रज्जब लै दीपक बिना उभै उदीपै नाहिं ॥७॥
रज्जब सूते रैन के प्राण उठहिं परभात ।
नर निद्रा हरि सौं बिमुख सु जागै दिवस न रात ॥८॥
मूठ साँच से देखिये ज्ञान नैन जब नाहिं ।
ज्यूब न दीसै बिघन गति रज्जब रजनी माहिं ॥९॥
रज्जब ओमि मयाम की तमं त्रिभुवन तम पूरि ।
छस बस पकड़े सो तहां बहु बिधि बिघन हजूरि ॥१ ॥
रज्जब रैन अचेत मत बिवै बीज बिस्तार ।
पाया सोवत सुपिन मैं अकलि असंख्या पार ॥११॥
नर नारी हिरदै रहै, नारी मध्य मझार ।
पैठि कामना कामक सुगंध नैन मंझधार ॥१२॥
रज्जब रैनि अचेत मैं उजगम ईंद्री तेज ।
तिमिर नींद करि पुष्टि ह्वै हु हैरान छह हेज ॥१३॥

जब मन की माया मिलै तब जिव चाहै भोग ।
रज्जब माया चलि गई, तब जीव उपज्या जोग ॥८॥
पकड़ी मन ससि चांदिना, उतरत उमैं अध्यार ।
आदि अंति औलोकि कर रज्जब किया विचार ॥९॥
मन भोल्या घर घर फिरै अस्थिर बठै नाहि ।
रज्जब रामहि क्यों मिलै कूकर की मति माहि ॥१०॥
गादह पंचन परबिम श्याल सौंसि सो नाहि ।
रज्जब कूटप छार मैं यहु सुभाव मन माहि ॥११॥
कूकर काग करंक परि पाक पूरि तजि जाइ ।
त्यूं रज्जब मन की बिरति तजि अमृत विष खाइ ॥१२॥
रज्जब परिहर राम रस मन भुगवै निज काम ।
सूवर सूखहि क्या करै बिष्टा मैं बिश्राम ॥१३॥
मन अमली इस माड का उनमन कने न जाइ ।
रज्जब तजि जीवन जुगति, मरणौं रह्या समाइ ॥१४॥
रज्जब गृह बैराग मधि मन मैं बरा न खोट ।
मुगल चढै ज्यूं और दिसि करै और दिसि चोट ॥१५॥
रज्जब मनवा भूत है सदा सु उलटे पाव ।
देखा गृह बैराग मैं खेलै अपणा दाव ॥१६॥
मन न होइ भगवंत का परमोधत गइ आव ।
रज्जब रामति रमण कै ले ले आवै भाव ॥१७॥
मन बैरागी सिर धरघा मांय निरंजन बोझ ।
सो रज्जब डारघ्  खुसी इसा जंगली रोझ ॥१८॥
मन कच्छिप्प तन कूप गति जब तब करै बिनास ।
रज्जब एकहि माहि करि, दूजे में परिगास ॥१९॥
सरस बिकारू मैं खुसी यहु मन की रस रीति ।
जन रज्जब कहि कहि मुया हरि सौं करै न प्रीति ॥२०॥
बहुत ग्राम गुन सीखि ले जिव पावैं मन साथ ।
रज्जब रहै न उस मतै बहुरि करै अपराध ॥२१॥
यहु मन चंचल चोरटा ठिक ठाहर काइ माहि ।
रज्जब बात भली कहै बहुत बुराई माहि ॥२२॥

रज्जब चपे दलिद्र के, किया न जाई काम ।
अलजूदी यति आलसूं कहै कौन बिधि राम ॥३॥

दलिद्र माहिं दून्यूं गई माया ब्रह्म सचेत ।
स्वारथ परमारथ नहीं, खोया काया खेत ॥४॥

गुर गोबिन्द यहु द्वार क आनस खोये सुख ।
रज्जब देखे प्राण ये तत दलिद्र का मुख ॥५॥

रज्जब परमू पंथ मैं मांहि दलिद्र का खोज ।
सेवा सुमिरण देखतौं बैठिर माडांहि रोज ॥६॥

काम सु मरबहु मरद का काहिल तन क्यूं होइ ।
देखि दलिद्री आलसू रज्जब रहै सु रोइ ॥७॥

पांचौ तत्त मयंक सौं अन्नहिं काज मजूर ।
रज्जव सो दालिद्र मैं आवे क्यूं सु हजूर ॥८॥

उदर बिना आरंभ करै देखौ अवनि अकास ।
तौ रज्जव सूता सु क्यू पेट लिये र पास ॥९॥

## मन का अंग

मन हस्ती मैंला भया आप बाहि सिर धूरि ।
रज्जब रज क्यू ऊतरे हरि सागर पम दूरि ॥१॥

मन माया त्यागे गहै, निपट टूटि नहिं जाइ ।
मन रज्जब पसु की बिरति उगलि उगलि अरु खाइ ॥२॥

मन मरकट मूकै नहीं माया मूठी माहिं ।
रज्जब केते उठि गये इन यहु त्यागी नाहिं ॥३॥

वे मन की माया मिलै तौ मन चढ़ै अकास ।
रज्जब काया भस गई तव दुरबल ह्वै दास ॥४॥

जब मन की माया मिलै तब मन आधा होइ ।
रज्जब माया चलि गई तब कछू देखै सोइ ॥५॥

जन मन कौ माया मिलै तब मन काछै रंग ।
रज्जब माया चलि गई सहजि भये रंग भंग ॥६॥

जन मन कौ माया मिलै तब बहुत नचावै नाच ।
रज्जब माया चलि गई तब निहचल बैठे पांच ॥७॥

जब मन कौ माया मिलै तब जिव चाहै भोग ।
रज्जब माया चलि गई तब जीव उपज्या जोग ॥८॥

चढ़तौ मन सषि चांदिना उतरत उस अन्धार ।
आदि अंति औलोकि कर, रज्जब किया विचार ॥९॥

मन मोरया घर घर फिरै अस्थिर बैठ नाँहि ।
रज्जब रामहि क्यों मिलै कूकर की मति माँहि ॥१०॥

गादह चंदन चरचिये स्वास सौसि सा नाँहि ।
रज्जब छूटथ्, छार मैं यहु सुभाव मन माँहि ॥११॥

कूकर काग करंक परि पाक पूरि तजि जाइ ।
त्यूं रज्जब मन की बिरति तजि अमृत विष खाइ ॥१२॥

रज्जब परिहर राम रस मन भुगतै निज काम ।
सूवर सूंकहि क्या करै विष्टा मैं विश्राम ॥१३॥

मन अमनी इस माइ का उनमन कने न जाइ ।
रज्जब तजि जीवन जुगति मरणौ रह्या समाइ ॥१४॥

रज्जब गृह बैराग मधि मन मैं खरा न खोट ।
मुगल चलै ज्यूं मीर दिसि करै और दिसि चोट ॥१५॥

रज्जब मनवा भूत है, सदा सु उलटे पाव ।
देखा गृह बैराग मैं चलै अपणा दाव ॥१६॥

मन न होइ भगवंत का परमोधत गइ भाव ।
रज्जब रामति रमण कै स मे आवै भाव ॥१७॥

मन बैरागी थिर चरणा मांय निरंजन बोझ ।
सो रज्जब गारघ् खुमी इमा जंगली रोझ ॥१८॥

मन कपिरूप तन कूप गति जब तब करै विनाश ।
रज्जब एकहि माहि करि, दूजे न परिणास ॥१९॥

सहज विराम मैं सुखी यहु मन की रस रीति ।
जन रज्जब कहि कहि मुवा हरि सौं करै न प्रीति ॥२०॥

बहुत ज्ञान सुन सीखि स जिव पावै मन साप ।
रज्जब रहै न उस मत बहुरि कर अपराध ॥२१॥

यहु मन चंचल चारटा ठिक ठाहर कोइ माँहि ।
रज्जब बात भली कही बहुत बुराई माँहि ॥२२॥

मां बेटी मन के नहीं भाई बहण न कोइ ।
जन रज्जब पसु की बिरति सब करि देखी जोइ ॥२३॥
आंख्यूं ऐन अनंग मधि मुहडै बाई मात ।
माहैं मिहरी करि गया रज्जब मन की घात ॥२४॥
काया कामी कुटिल मति अगि अगि ऐन अनंग ।
रज्जब बात खरी कहै, मन मैं खोटा नंग ॥२५॥
यहु मन ऐसा धूत है मुहडै काया न जाइ ।
रज्जब मारे जीव को बहु बिधि घात बणाइ ॥२६॥
रज्जब मन के पेच को लखे न मुनियर प्राण ।
तौ क्या जाणै जीव अरु सदा अचेत अजाण ॥२७॥
जोड़ अजोड़ देह मन छूटै सुमिरण करै न सकटि जाइ ।
महत मत को भूमि न मानै कवि क्यूं जीवहिं ठगि जाइ ॥२८॥
मन सैतान सूता भल्या जाग्यूं जग मैं जाइ ।
रज्जब जीये व्याधि मैं सुमिरण करै न जाइ ॥२९॥
दुखदाई सूता भला, सूतै सौ भली मीच ।
जो जाग्या जौहर करै दईन जगाई मीच ॥३०॥
ब्रह्म बिछोह न व्यापई भूला मूंढ़ मीच ।
रज्जब राता झूठ सौं कहत सुनत मन नीच ॥३१॥
यहु मन बूटा बास का माया मेघ समान ।
मधु दीरघ है गरज सुण जन रज्जब हैरान ॥३२॥
यहु मन मिरतग देखि करि धीजि न कीजै नेह ।
रज्जब जीवै पलक मैं ज्यूं मींडक जल मेह ॥३३॥
सूर मरि जीवत वेर क्या वामिन मनसा मध ।
नर धीरज मैं राखिये जन रज्जब सो धम ॥३४॥
खंड खंड कर काटिये मन केसो अर माहिं ।
जन रज्जब जड़ जीव की अमर न मरपै माहिं ॥३५॥
रज्जब राखै कौन विधि मन मैं मौज अपार ।
एक मौज जे मारिये तौ उर ऊगै हजार ॥३६॥
जग तरग राट पौन थिर रनि गति आवै अंत ।
रज्जब इनतैं थोर ये मन मैं मौज अनंत ॥३७॥

यहु मन रावन मंडली मन क्रम बिस्वा बीस ।
रज्जब काटै एक सिर तौ निपजैं दस सीस ॥३८॥

मन केसरि के पंच मुख गहि बंध्या मुख येक ।
बारध मुख भहुं दिसि मर्यै रज्जब समझि बमेक ॥३९॥

भूखि मार मारहिं मनहिं, बिरह अगिन दे दाद ।
वास्यूं पीछैं जीवता भूत होइ जिव जाग ॥४०॥

मनवा मर नग माया मादी मुकत किये मिमि जाहिं ।
जीव जुदे किहि बिधि करे रज्जब संसा माहिं ॥४१॥

तन मैं मन चंचल सदा ज्यूं मोती मधि श्वास ।
जन रज्जब क्यूं राखिमे यहु अंतरगत साल ॥४२॥

जन रज्जब मन बीजली चमकै यहु न्हिसि जाइ ।
यहु चंचल कैसे रहै, त्यूं ही गह्या न जाइ ॥४३॥

मन बम की चंचल बिरति माकया रहै न ठौर ।
जन रज्जब हैरान है, देखि दसौ दिसि दौर ॥४४॥

मांड मथानी काढ़ सी मन समुद मैं जोइ ।
जन रज्जब चंचल भजौ पैय पकया है कोइ ॥४५॥

मन मनसा घोड़ा चपल राख्या रहै न ठौर ।
बांधे बधै सु ब्रह्म के मान उपाव न और ॥४६॥

काष्ठ करि पावक प्रगट सा बल जुगति बुझान ।
रज्जब जल मैं मिमि उठै मनवा बीज समान ॥४७॥

नागदवन मृग स्वंम मन इनके अंक न बाहिं ।
रज्जब साईं साम सुष सो क्यूं माहिं समाहिं ॥४८॥

जन रज्जब मन सुमि के कठिन काटने गाम ।
या मैं इन्द्री अति बिषम वा माहैं तैं श्राम ॥४९॥

क्रोध लहर मिमि क्राय मन काम लहर मिमि काम ।
जन रज्जब मन लहरि मैं राम लहरि मिमि राम ॥५०॥

यहु मन भांड भंडार मैं राखै रंग अनेक ।
रज्जब काढ़ै सम सिर ये जुदी जुदी रंग रेक ॥५१॥

रज्जब मन के भांड मुखि ज्यूं अंग अनन्त मन माहिं ।
यहु बिद्या बोदर निमति आतम कारिज माहिं ॥५२॥

मन माहै मडाण सब भासहि परगट होइ ।
रज्जब सुपिन समान को बूझै बिरला कोइ ॥५३॥

प्याइ ब्रह्म आसंसि मन सुपिन मई संसार ।
ज्यो सकती मास तहाँ मन मधि उदर अपार ॥५४॥

चौपई
मेंहरबाजी चित्राम चौरासी मन बाजीगर माँहि अभ्यासी ।
सुपिना निसा दिखावै खेल जागे दियै सु धरे सकेल ॥५५॥

साखी
रज्जब रहै न एक रंग मन मैं मोटी खाट ।
पल पल मैं पलटै मतै जैसी बिधि कर कांट ॥५६॥

मन रज्जब मन जीगणा चमकै भरु छिपि जाइ ।
पल मैं ग्याता पल गतै ज देख्या निरताइ ॥५७॥

मन मयंक की एक गति बधै घटै छिपि जाइ ।
मन रज्जब हैरान है सदा सु यहु मति माँहि ॥५८॥

मन मयंक की एक गति सदा कलंकी दोइ ।
एव उठै इष्टौं उठय् और उपाव न कोइ ॥५९॥

सपत धात के सकल मन गाळे गोविन्द गोइ ।
कुमति काट खाये सु पट सोनै सपत न सोइ ॥६० ॥

रज्जब काया चपस मन विचरै बारह बाट ।
पाका पग रोपे रहै भागे सकल उचाट ॥६१॥

यहु मन पेड़ बबूल का काया कांटहु पूरि ।
रज्जब पाका जाणिये फूल काटे जब दूरि ॥६२॥

यहु मन बांका जब लगै तब लग ज्ञान न होइ ।
रज्जब पोसन हू पहम बिगसत सूधा होइ ॥६३॥

मन मुक्ता काचे गलै, संसार समंद जल चोप ।
निपज्यु निरभै सो तहाँ सतगुर सीप सु पोप ॥६४॥

चौरासी चौहटि फिर मूरति सारि सु बेप ।
रज्जब रती न सरकही उभै सु पाके पेप ॥६५॥

धरति होत पाका सुमन ज्यू कण हांडी माँहि ।
काचा कूदै ऊछलै निहचल बैठै नाँहि ॥६६॥

पाका प्याद सु पारसा काची कापा मीच ।
रज्जब यही बिचारि करि यहु अंतर यहु बीच ॥६७॥

चौपई बाचा तुरस पुपत है मीठा । आतम बोध अंब गति दीठा ॥६८॥

साखी मन पतंग तन तोइ गति तापरि करहि पु मय ।
रज्जब बस असवार बै इस ऊपरि सु अनघ ॥६९॥
जन रज्जब मन के तले चौरासी सब जीव ।
इस ऊपरि असवार ह्वै सो कोइ पावै पीव ॥७०॥
जिन प्राणी मन बस किया ताके वसि सब मांड ।
जन रज्जब मन वस विना देखि दुनी ह्वै भांड ॥७१॥
रज्जब राकस मन का चारा चारयू खानि ।
हंस बचै कोइ हेत रज हुआ अमर सो जानि ॥७२॥
मन वनता चौगान का जाकी दस दिसि चोट ।
जन रज्जब जोस्यू टलै हू हू भये हरि ओट ॥७३॥
जन रज्जब रज रोस मन गहि माझा मूह मार ।
सो लूटै सो पुरष बिधि तो ताकै मंगलचार ॥७४॥
मन फूटे तन फूटई मन सारे तम सार ।
मनसा बाचा करमना तामै फेर न सार ॥७५॥

## सूषिम का अंग

रज्जब मन मैं मौज उठि मन की काया होइ ।
यू सरीर पल पल धरै बूझै बिरला कोइ ॥१॥
काया मैं काया धरै मन सूषिम अस्थूल ।
रज्जब यहु आवण मरण चौरासी का मूल ॥२॥
प्राण अगिनि तन काठ मिलि प्रगटै धूंवा मन ।
जन रज्जब इस अगम कौ जानै कोई एक जन ॥३॥
मन मनसा अरु कमपना कया कंचन की आस ।
रज्जब परस दसौं न्मिलि देही गुण परकास ॥४॥
स्वाद बाद अरु बिषय रस चौमे निद्रा मह ।
चौरासी के रमण कौ धन रज्जय पग यह ॥५॥
चौरासी आवण मरण मन यु मनोरथ होइ ।
बीज बिना ऊगै नहीं जानत हैं सब कोइ ॥६॥

काया काष्ट भगनि आतमा परसत धूंवा मन ।
रज्जब इस उतपत्ति कौ समझे साधू जन ॥७॥

## बिषय का अंग

गुण गण ग्रह मरजे सबै जब गृह आई नारि ।
जन रज्जब हारथू जनम हरि मेल्ही सिरमारि ॥१॥
सरिता संसै सोच की गृह सागर में पूरि ।
जन रज्जब बूड़ा तहां कहां होइ दुख दूरि ॥२॥
सुख भागे दुख दूरि ह्वै माव भगति की हानि ।
जन रज्जब इस जगत मैं दारा दोजख जानि ॥३॥
सुन्दरि सिस सभि हाथ नर क्यूं करि निकसै दस्त ।
गोरी गिर कर कंत पर तौ कहिये गिरहस्त ॥४॥
जनमभूमि छाड़े नहीं तब सम भावै जाइ ।
रज्जब बिषिया वारि मैं फिरि फिरि गोतै खाइ ॥५॥
ब्रह्म प्यंड मति एक है, काम लहरि तप होइ ।
रज्जब नख सख बसि उठै बरसण लागे सोइ ॥६॥
रज्जब बिषै बिलोकतैं बप बहुनी परयास ।
काया कुम चीकट चूवहि सेव हेव तप मास ॥७॥
संगि सुहागा सुन्दरी नर कंचन गलि जाइ ।
रज्जब रती न ऊबरै पावक प्रीति समाइ ॥८॥
प्राण पुरिष की सुरति जड़ काया की जड़ काम ।
रज्जब करवत कामनी बिहरै सून्यू ठाम ॥९॥
सुन्दरि संग संकट सदा दिन दिन दीरघ दुख ।
जन रज्जब नारी निकट कहि किन पाया सुख ॥१ ॥
चाकी चरखा बसि गये भ्रमि भ्रमि भामनि हाथ ।
तौ रज्जब क्यूं होइगे नर निहचल तिन साथ ॥११॥
कुम काया कागद मई बिषै रूप सब बारि ।
प्याड पुस्तक क्यूं बोरिये रज्जब नैम निहारि ॥१२॥
पुरिष पचम नारी भुगति सुन्दरि सुतहिं पिलाइ ।
रज्जब जिव जाचे नहीं काम तिहू को खाइ ॥१३॥

मोहे मागे मन की वहै सु बीरज आंव ।
पोढ़ि खाट ज्यू काट दी रमा ठीकरा ठांव ॥१४॥

सोरठा इंद्री अरियो धाइ सूझै दारा दुख करि ।
रज्जब रुधिर रंधाइ निकसै बीरज पीव झरि ॥१५॥

साखी मीच मार सूझै सहै सीज दिन बेहाल ।
रज्जब रमा दरस तैं सो गति ह्व ततकाल ॥१६॥

अरिल नर नारी षढ़ि चोट बहुत दुख पावहीं
मूत्र मुद्र सरीर तपति तन तावहीं ।
घाव बिना इह चोट सु भीतरि पावई
रज्जब राखि ब्रराहि बहुत को राखई ॥१७॥

सोरठा सपत धात धधाइ धामनि धमगर रूप धरि ।
तस गहै करि गाह काया छांडै कीट करि ॥१८॥

साखी अबला मूके असत सत मन सट सुनहा सुख ।
रज्जब रसना रुधिर रुचि फोडि आपणा मुख ॥१९॥

बिष का अमृत नांव धरि पीवहि हित चित लाइ ।
इह रस रसिया रसन ही रसिक रसातल जाइ ॥२०॥

येक विषै मैं सब विषै पडै जीव मैं आइ ।
रज्जब इह रस का रम्या चौरासी मैं जाइ ॥२१॥

सुन्दरि सब सूली चढ़ी पुरिष पड़े सब कूप ।
जन रज्जब जगि जुगल दुख एकस आनन्द रूप ॥२२॥

सुन्दरि तब सैं बरसही मौ सत पहुप सरीर ।
रज्जब फल बरिकत रहति तहं फूले मन कीर ॥२३॥

जन रज्जब जुवती जहर पागी सकल स्यंगार ।
आरोगहि अज्ञान नर मूढ़ै मीच न मार ॥२४॥

जन रज्जब जुवती जहर बिसुबामा औतार ।
मूरिख मिनषै वाहिले तिनहि मरत क्या वार ॥२५॥

दारा दै दूके सही ज्ञानहीन नर जाहि ।
रज्जब ज्यू बूडे तहां सु क्यूं ही निकसै नाहि ॥२६॥

सुत बित काटण को बडे सुन्दरि सैस मुखानि ।
रज्जब ते तिन वसि वधे बहुडे निकसे आनि ॥२७॥

रज्जब ज्यूंता राम बिन साभ कहूँ सो नीव ।
सकल ज्यूंत सुन्दरि सगी सुनि बइयर के बीव ॥२८॥
पैठि कामना कामक ज्यूंता डाइणि सेइ ।
रज्जब प्राणी पसू ह्वै रिण रैणी भरि देइ ॥२९॥
मन मधुकर मेहरी कंवल बंधे बास के श्याम ।
रज्जब तामैं बस इता सु फोडै मांझ मयाल ॥३०॥
कलित केतकी माहिं मिलि मन मधुकर ह्वै नास ।
रज्जब रस विस है सही मरे बिषै सग भास ॥३१॥
ज्यूं छाया नर नीव की मोजन विष ह्वै खाइ ।
त्यूं रज्जब नारी निकट बिन परसै कडवाइ ॥३२॥
नारी निगलै मैंम मधि बैयर बचनौ खाइ ।
रज्जब पीवम सर्प ज्यूं बिन परसे पी जाइ ॥३३॥
नर सु नीव नारी की छाया मोजन भाव न राखि ।
मीठा कडवा होइगा सब संतनि की साखि ॥३४॥
बिषै रहित परि बंदि मैं नर माया नग अंग ।
सो मुकते नर नारि क्यू सुकल समाई संग ॥३५॥
निराकार ह्वै नीकसै पुनि सो होइ अकार ।
नर माया नग निरखतै विरसा टूटणहार ॥३६॥
मनुवा नर मग माया मादी मुक्ति किये मिलि माहिं ।
जीव जुदे केहि विधि करै रज्जब संसा माहिं ॥३७॥
अमरवलि मनसा मरद अंमृप अबला अंग ।
जन रज्जब पाइ बिन हीरी हरी सु इहि परसंग ॥३८॥
निरनग नग साहा मई नारी पंचक माइ ।
रज्जब इरिये निकट घन मूये मेइ जिलाइ ॥३९॥
मूना मूकी माहिं है पै सुपिमैं सुन्दरि खाइ ।
तो रज्जब जागत जीवता तिम आगे क्यूं जाइ ॥४०॥
मद पीवत मावै मनिप सुन्दरि सुणि मतिवासि ।
यू रज्जब माता पगत हरि मिसि सकै न बासि ॥४१॥
हेम हुतासन हसत हग पारि बीज विष नास ।
गिरि बरवत मरिवो मला नजि कामनि का न्याम ॥४२॥

संग्राम स्यंघ सूरी सहित चढ़ि गिरवी अप सेह ।
भेप माकसी पैठि नर, रज्जब करी न सेह ॥४३॥
नारी गिरवर नीर के तहाँ न नाद बजाइ ।
जोगी राखे जीव कौं तौ मुख मुनि समझाइ ॥४४॥
जिन कसणी काया पड़ै सो सव पोढ़ी आणि ।
रज्जब रामा मिलि मुवौ उभै सुरति की हाणि ॥४५॥
संकटि सुलप सरीर सम दुखी नही इह ददि ।
रज्जब नर नारी मिले सदा सुरति बिप बंदि ॥४६॥
माता सब बाबो बपी बाबा मातहु माहि ।
जन रज्जब जग यू अडया कोई छूटै नाहि ॥४७॥
रज्जब जगि जोड़े अड चौरासी लख अंत ।
एकाएकी एक सू सो कोई बिरला संत ॥४८॥
बिपै नारि कध भति सु वृछ बांधी पारघू खानि ।
रज्जब इह ठाहर मुकत कोइ विरला गुर ज्ञानि ॥४९॥
विपै बिगूचण तीनि है, नर देखौ निरताइ ।
तन छीजै तरसहि तबै मन सुमिरण सौं जाइ ॥५०॥
दुरमति दारू नर मरे, अबला पैठी आगि ।
जन रज्जब अय यू जल्या तू दोऊ दे त्यागि ॥५१॥
विप बंध वसुधा सु दृढ जीव अडया ता माहि ।
बलि बधन छूटै नहीं जे प्रभु छोडहि नाहि ॥५२॥
रज्जब जिव माई बंधे गांठि दई गुर खोलि ।
सुर नर देख न पावही सु कमू निकसै जिम बोलि ॥५३॥
नाद ग्यान की गाठ को दई सु तामणहार ।
बाध्यू बांध्या ना खुलै मिल्यू सु कोटि हजार ॥५४॥
मन अगम तन धाम मैं धारी चाहि सहेत ।
तहं सकती ससि सुधा संगि छानि छिद्र सूं देत ॥५५॥
जो भाटघू महि मारियेहि, नर नारी निरताइ ।
सीमा चाहै जीव जो सो इनके निकट न जाइ ॥५६॥
मणकायू काई गई, कायूं तायें जाइ ।
रज्जब रामा वरषि रुचि पग देखौ निरताइ ॥५७॥

माया सकल बिष रूप है, आंस्यूं सामे वाहि ।
जन रज्जब जाणै न शिव मिले मीच की माहि ॥५८॥

मनि यहु माया खाहिं हम माया हमकौं खाइ ।
रज्जब रिधि उलटी कला सिद्धी लखी न जाइ ॥५९॥

वाम बिचारे बिषै हित सीस सीस गिरि जाइ ।
जथा चकवै चूक पर चक्र सु लागै आइ ॥६ ॥

चाखी चितहि न बीसरै अणचाखी की चाह ।
जन रज्जब दून्यू असह दिसि दिसि नारी माह ॥६१॥

रज्जब माग भाग तजि जोग जुगति मैं आइ ।
परि बिलस्या मनहु न बीसरै तब लग नरक समाइ ॥६२।

तन त्यागी लागी मनहि तब लगि मेहरी माहिं ।
रज्जब रोये संगि इहि छोड़ी छूटै नाहिं ॥६३॥

तन तै बिषिया त्यागिये परि मन त्यागै नहिं नीच ।
तौलौं कछु छूटै नहीं जौलौं विष मुख चीत ॥६४॥

छूटी धनपति ध्यान न छूटा है मिहरी मन माहिं ।
रहतौ रहति न दीसै रज्जब निरखौ जत मत नाहिं ॥६५॥

बिषै बंदि सब आतमा मर मारी सहकाम ।
रज्जब मुकता ठौर इहु मुक्ति किये सो राम ॥६६॥

ममता नारी नित निकटि मन मर कूं सो खाइ ।
रज्जब छूटै एक कौ सूषिम बिष दिखाइ ॥६७॥

बीरज तै वालिक उदै करम भरम तिन होइ ।
तिम साखै साखा सबल नहीं त माही कोइ ॥६८॥

कूकर कागों काछि वृष धनि रासिब रस रीति ।
रज्जब ध्रिग ध्रिग मानवी बहुत बिषै बिपरीति ॥६९॥

चौपई स्वान स्वन रासिब है काग पसु उपदेस मनिष नहिं लाग ।
बरस बिषै दीसै रति वामा यहु नर नीच रहै बिष ताना ॥७ ॥

पाम रिषी सुर रासिब देव स्वान जती छीग्यूं इक टेव ।
रति कै दानि मिसाचर निरजर रज्जब रहति पूजि पिरखी पर ॥७१॥

साखी कूकर कच्छा कौन है मनिषा मूरिख हेरि ।
बरस विस्यु ऊपरि बिष तहां रह्या मुंह फेरि ॥७२॥

मास मसूरु माहिसा नाहर भिड़ा सु खाइ ।
मासाहस कहता मुगव क्यू सुख माहै जाइ ॥७३॥
अबला आदि उपाधि हैं, भूलै माग सु होइ ।
जन रज्जब बत की जुगति बूझै बिरला कोइ ॥७४॥

## काम का अंग

कामहि देखत ही भये ज्ञान ध्यान मति भंग ।
जन रज्जब जोगी गयो आगे भपत अनंग ॥१॥
मदन बदन देखी नहीं सुर नर संक सु माहि ।
जन रज्जब रिप रयंद है, मोटा बैरी माहि ॥२॥
सिध साधिक हारे सबै सुर नर किये निमाम ।
जन रज्जब चोधार गुण कह्या न मानै काम ॥३॥
काम काल गरजै सदा काया नगरी माहि ।
जन रज्जब हारया जगत सुर नर छूटे नाहि ॥४॥
रज्जब रंचक राम रस करै राम रस भंग ।
यहु बैरी बैराग मधि सो साथी है संग ॥५॥
अनंग दिसा औलोक्यौं आमि उठत उर माहि ।
धप बासण तामे बिना चोपड़ निकसै नाहि ॥६॥
एकहि कुन्बे काम कै कम्पा जगति जगदीस ।
रज्जब देई देव सब उमा सहित सो ईस ॥७॥
महादेव मधि ना रह्या मदन महा बलिवंत ।
रज्जब राखै कौन विधि कीट कला जुगि अंत ॥८॥
पारा सोबै कनक कामनी देख्या राखिर कूर्व ।
जन रज्जब क्यूं रहै जीवता ये सक्पिण षेहि मूवै ॥९॥
बैजनाथ सौं बिरचि करि करै अनीति अनंग ।
रज्जब मावै कूप मैं पारा मारी संग ॥१ ॥
काम राम रावण डसे इन्द्र मानि ते ईस ।
और कवर कीचक किये रज्जब बिसवा बीस ॥११॥
अबला बसी अनंग करि, मारन की सुर भौन ।
रज्जब दसिये देव दस आतम उबरै कौन ॥१२॥

अबला बसी अनंग अति गो गंधन औतार।
रज्जब रज बस ना रह्या हारे हुत जूझार ॥१३॥
ब्रह्मा विष्णु महेस तें मिहरप् सेती मेस।
सो रज्जब तैतीस मैं कौम तजै मधु बेस ॥१४॥
भामा मिलि भूले सबै सुर नर नाग सु मौन।
रज्जब अनग असाध को कहौ सु साधै कौन ॥१५॥
रज्जब मदन महल है, मथुरा मक्के माहिं।
ठाहर उभै अनंग बस जत ठहरावै माहिं ॥१६॥
कीचक रावन इन्द्र से भस्मासुर सु बिचारि।
जन रज्जब बीती बुरी सकल पराई नारि ॥१७॥
रज्जब मदन भुमंग गति चितवनि चंपै जाइ।
मनसा वाचा करमना नर देखौ निरताइ ॥१८॥
श्रवन नैन मुख नासिका इन्द्री बहै अनंग।
रज्जब जाइ सु जतन मैं बिन बामा परसंग ॥१९॥
मदन मेर मधि नहिं रह्या व्योम बीज जलधार।
रज्जब अजब अनग को कौन सु बारनहार ॥२०॥
केसि केसि नभ काम को सो तिक्सै सब संधि।
रज्जब लहिये लहरि मैं बप ह्वै जाइ विगंधि ॥२१॥
नैन नाग तन मैं इहै ब्योरे समझि अमेक।
अहुठि कोडि इकई उभै जन रज्जब पुनि पेक ॥२२॥
सोरठा उड़हि जु बारहि बात इक आतम अरु मदनि मंस।
फिरि बारहि भर भात रज्जब स्यावहि मारि बंस ॥२३॥
साखी रज्जब करड़ा काल सौं काम सु काया माहिं।
वह मारैगा एक दिन यह अहनिस छोड़ै नाहिं ॥२४॥
अरदा सबल अनंग का एन अनीती माहिं।
जन रज्जब का बिथन बहु या समि कोई नाहिं ॥२५॥
काम कसाई कास है पसु प्राणी सब प्यंड।
जन रज्जब छल की छुरी बरी करै बिहंड ॥२६॥
काम कमार्ड करम करि कीये तन मन प्रान।
रज्जब मारे सुर भवन रोवे चतुर सुजान ॥२७॥

सकति सरूपी सरपणी जग जातिग जगि खाइ ।
इम आगैं उबरै सोइ जो अगम अगोचर जाइ ॥४३॥
आठ पहेर आशा रहै काम राम विचि आइ ।
जन रज्जब कोइ कोड़ मैं सुकल स्यंभ चिढ़ि जाइ ॥४४॥
सुकल स्यंभ तन कूप मैं काटे कुलिस न होइ ।
रज्जब मरहि सु परम घर पुनि म कीजे सोइ ॥४५॥
राम काम मेसे मर्जाहि, इंद्रादिक सु अनेक ।
रज्जब कंद्रिप दर्प दलि हरि सुमिरै सो मेक ॥४६॥
रज्जब अनंत अतीत अड जति जूवती जगि अंग ।
और लड़ाई लघु सबै यहु दीरघ रण रंग ॥४७॥
मैन मदन सा जुद्ध नित जोगेसुर का काम ।
रज्जब इस मारे बिना कह्या न जाई राम ॥४८॥
त्रियाचरित चित ना चलै लगन न पंचो बान ।
रज्जब रहता सिद्ध सों जति जोगेसुर जान ॥४९॥
और लड़ाई लघु सबै यहु दीरघ जुध काम ।
रज्जब मारै मदन को सो बलवत बरियाम ॥५०॥
काम लहरि जब ऊपजै तब देही दौ दइ ।
कोइ बुझावै जापि जल मांब मीर सौ मेह ॥५१॥
आकरषण अरु वसिकरण उदिमादिक ब्रह सोष ।
रज्जब साथै मदन सर सो नर नारी मोष ॥५२॥
रज्जब मारै मदन सर मामे मारी गाह ।
मोट चोट सार्ग नहीं जहि तनि सीस समाह ॥५३॥
मदनि भुबंगमि सब डस नारी अरु नरतार ।
रज्जब रहसी एक को जो राख्या करतार ॥५४॥
रज्जब सांकल सुकल के बांध्या सब संसार ।
मनसा बाचा करमना बिरला छूटणहार ॥५५॥
रज्जब सांकल सुकल की बांध्या जंगम जंत ।
पाबरि थिर धरती जड़े ममो निरंजन मंत ॥५६॥
दीरघ विधु बप व्योम बसि प्यंड प्रह्म उजास ।
रज्जब सुन्दरि सूर तनि तन त्रिभुवन तम नास ॥५७॥

रज्जब सलिता सुरति की, मीन बहै मन जाहिं ।
उदधिर मदक खार मैं मिलत मरै ता माहिं ॥५८॥

सुकम दूध मोहरि सही, देही बहू सु डारि ।
जन रज्जब मन मीन मैं काम नीर पुनि मारि ॥५९॥

सोरठा मदन मीन मन जान रज्जब उदिध अज्ञान मधि ।
जत जहाज जहि भान कसे होइ सु काज छिमि ॥६०॥

साखी काम लहरि बहु ऊपजे तब राम लहरि का नास ।
नहीं बूं बासिक उदै तहि भसपण क्या भास ॥६१॥

## इन्द्री का अंग

श्रवनी सदा कुरंग मत नैनौ निर्दै पतंग ।
रसना रस की मीन मन सपन स्वाद के संग ॥१॥

भंवर भाव मिलि नासिका आठौ पहर अभग
इंद्री अहनिसि गज मतैं जामें काम अनंग
जन रज्जब जिव क्यूं रहै इन पंचनि परसंग ॥२॥

गाटे सगी पंच हैं सदा जीव के पास ।
जन रज्जब जारद्यूं पणी बहु बिधि करै बिनास ॥३॥

पंच पसाई पड़ि गये काम कामनी माहिं ।
रज्जब बीधे व्याधि मैं क्योंही निकसै नाहिं ॥४॥

जब पंचौ पावन मनै तब ऊजल उर आव ।
रज्जब पंच पंच न्मिं तबही काम गराव ॥५॥

गुण गयंद गजराज पड़ि पड़ भाव दहू आइ ।
जन रज्जब गुन ऊंडि करि जन मैमा हु जाइ ॥६॥

जब लग गरज देह गुण तब लग ममति न हाइ ।
रज्जब राम न पाइये काटि करै जे कोइ ॥७॥

रज्जब मन पक्षी निकल मनै देही दम ।
न्न पतिबंतो पाम छ्राव बनिवन प्राण मरेम ॥८॥

पच पचीमो त्रिगुण मन मबाजीन म माहि ।
मैनानो के टेम मैं साधू निरतै नाहि ॥९॥

मन संभूत सैतान अजाजिल है दूंदर बैठे दिल माहिं ।
रज्जब याहि रही यूं रीती सुमिरन सुकृत उपजै नाहिं ॥१०॥

दैत विसावर देह निम जीव जमपुरी वास ।
रज्जब रहिये कौन बिधि जीवण झूठी आस ॥११॥

राहु केतु खेवे छिके पै बेसा हाजिर होत ।
त्यूं रज्जब ब्रता रही इंद्री दैत सु गोत ॥१२॥

पंचौ के घर प्राणिया पठया ठगौ मैं आइ ।
रज्जब रासिब कर लिया सु निज घर जीवन जाइ ॥१३॥

मुख धरती महुवा गगन बेर जड़ी बिधि माइ ।
मन रज्जब है तेज मिलि मद रूपी ह्वै जाइ ॥१४॥

पंच तत्त बिगते बिमल मिलते मद सनमान ।
मन रज्जब रस पान करि घटि बटि माते प्राम ॥१५॥

इंद्री परसन जीव रस नास बास चखि रंग ।
रज्जब श्रवनौ सबद सुन विपै पंच अप भग ॥१६॥

षहु इंद्री के चार मुख जिभ्या दोइ सुभाव ।
रज्जब सैवे कौं लुधी अर बकिबे का चाव ॥१७॥

रज्जब इंद्री दाइ गुण रसना भखिपण वीस
गंध दुगंध सु नासिका पचरंग नैनौ वीस
सपत सुरहु श्रवना सुनहिं, ये पूरे छत्तीस ॥१८॥

साध सबद रसना कहै स्वाद बाद बसि नाहिं ।
तौ रज्जब सुणि चतुर गुण क्यूं चालै मति माहिं ॥१९॥

बस ज्वासा जिभ्या रहै मुख मुख सबद सु माहिं ।
रज्जब रस बिप रसन मधि बक्त्र सु बाहर नाहिं ॥२०॥

विष अमृत अरु असत सति रज्जब रसना माहिं ।
नरग सरग जिभ्या जड़ी बाहरि दीसैं नाहिं ॥२१॥

श्रवन नैन मुख नासिका साटि बणावनहार ।
रज्जब पीछै पंचमा प्राण प्यंड ब्योहार ॥२२॥

रज्जब षहु मौम्यू भाग लड़ी बरती बक्त्र मझार ।
दूती दस दरबार की तापरि कहा करार ॥२३॥

रज्जब रसना साटणी करै पंच की साटि ।
पर वेचत आपण बिकी, बैठि स्वाद की पाटि ॥२४॥
रज्जब रसना रीति यहु स्वाद वाद मैं पाव ।
तहि समये अंतक असत करै आतमा घाव ॥२५॥
बन रज्जब अम जीव बिधि जिभ्या दूती जाणि ।
स्वाद वाद मैं बैठि करि, मीच बणावै आणि ॥२६॥
रज्जब रसना तूतरू पंच झाड़ का मूल ।
या सीच्यूं सारे सिचै जुदे जुदे फल फूल ॥२७॥
रज्जब आमक बस सम वसि भसि पाईहि आगि ।
पान पेंड बनराइ सब जलहि सु ज्वाला लागि ॥२८॥
इंद्रिय करि आतम बस पंच प्रपंच न मूल ।
रज्जब बंस बिलोकिये तासौं जाल्या मूल ॥२९॥
सील समुद न ठाहरै इंद्री पंच अगस्त ।
रज्जब रीता स्यंभ सो जहां परै दस हस्त ॥३०॥
रज्जब सहुडे बहु बुरे, देखि बड़हु घर घास ।
लघु दीरघ दीरघ इस्या किया सुकाल दुकाल ॥३१॥
रज्जब भइ जीव सदा लघु दीरघ न बसेख ।
पेलौ पतिग पपीलको परतपि जाया देख ॥३२॥
देखौ जिव जगदीस समि सो गुण इंद्री माहि ।
रज्जब हारया देखतौं येक अनेकौ माहि ॥३३॥
सीहु गोस सिसनहु हुस्या स्यंभ आतमा येक ।
भणा भुकावै कौन बिधि तातै रचे अनेक ॥३४॥
दीवक ग्रासै दार कौं घुण काष्ट की लाहि ।
या इंद्रय्‍ आतम गिली समझि देखि मन माहि ॥३५॥
एक अनेकहु सा करहि मन बच क्रम सु बिचारि ।
कोमल कर्महुं मैं किया बज्र सार बिधि वारि ॥३६॥
तन मन पचौ पिथण परि, प्राण एकये शात ।
रज्जब क्यू करि मारिये क्यूं रस आवै बात ॥३७॥
इंद्रिय बसि आतम भई मिटृया महातम आप ।
माहर स्योडा निरखिये बकस्यूं बांध्या बाप ॥३८॥

रज्जब राम रिझाइ करि दिया पेट तजि प्रान ।
बोदरि बणि आतम मई सहै न बाहरि जान ॥३९॥
रज्जब भाग कौन विधि करे जहाँ को सैस ।
जहाँ जाइ तहँ संग ही पेट पड्या है गैस ॥४०॥
प्राणी परखै पट तजि अहनिसि जाकी चीति ।
जन रज्जब जिव यू विमुखि हरि सौं करै न प्रीति ॥४१॥
असु आतम ऊपर पड्या अरि बोदर असवार ।
नचावै त्यू नाचिये रज्जब फेर न सार ॥४२॥
रज्जब पिसण न पेट सभि मम बध भ्रम कहि सांच ।
चपचपाइ अनकी करै, बहुत नचावै नांच ॥४३॥
प्यंड धरै सा पेट तजि सुर नर पिरथी प्राण ।
रज्जब कीये कैद सब फिरी उदर की आण ॥४४॥
पिसण न कोई पेट समि अरि न उदर सी और ।
चौरासी घेर भये माहि कूप की ठौर ॥४५॥
अरि नहि ऊपर सारिखा पिसण न पट समान ।
आकारणि अनरथ करै घटि घटि आतम बान ॥४६॥
काया तरवर जीभ जड़ पोष्यूं बधै कुरूप ।
जन रज्जब सोप्यू सुकी ज्यूं त्यूं मारै भ्रूप ॥४७॥
जे जिम्या की बध दे तो सब गुण बंधे माहि ।
जन रज्जब जिम्या खुल्यूं सारे गुण खुलि जाहि ॥४८॥
रज्जब विरजै बहुमतें दे दस द्वार निपीठि ।
रसना मामी राम रस तो आतम की ईठि ॥४९॥
पाचौ इंद्री पंडवे देह द्रौपदी जानि ।
म रज्जब तो ऊभरे ज गर्मे हिमालय आनि ॥५ ॥
इंद्री मारै इं स देव तीन तैतीस ।
जो साधू साधै इन्हहि सा सबही के सीस ॥५१॥
रज्जब पावक पंच की प्यंड प्राण को दोप ।
मदग मु काया कमनी आतम अनल न पोष ॥५२॥
पची के घर मैं रहै, बसै पंच क ग्रान ।
सो रज्जब क्यू ऊगरै पंच्यू धाप्या घान ॥५३॥

प्रथमि पंचतम के सये मन की मानै नांहि ।
रज्जब पापी पंच की सोउ परै अग मांहि ॥५४॥

अरि अनत आतम करै बोध बडे मिव माहि ।
सो रज्जब छूटै नहीं तौ घर छोडे कछु नांहि ॥५५॥

सकल कुसंगी काल मैं कमा छोडै पर वारि ।
रज्जब जीव जीवै नहीं माहैं मारन हारि ॥५६॥

रज्जब बंटा भाव का गुण औगुण सु सिमार ।
ये कहि बीस्यू सुरग कूं एकहु नरक बिहार ॥५७॥

मन पंची दस द्वार छै नो सत बीती बात ।
मुष पडे त हारिये सनमुख जीते जात ॥५८॥

पंच तत्त समि मित्र न बैरी प्रीतम पिसण न और ।
रज्जब ये सनमुखि मुख देखै दून्यू ठौर ॥५९॥

## रहति का अंग

रहता गुर गोव्यंद है बहता सिप ससारि ।
रज्जब बोलै मान्यू तामैं फेर सारि ॥१॥

रज्जब रहता संत जन अति गति महंगा होइ ।
दीप पान द्रष्टान्त को चंदन की दिसि जोइ ॥२॥

रज्जब रहनी भात को बहती पूर्व आइ ।
आदि अंत मधि मांड मैं मर देखौ निरताइ ॥३॥

मोर पंख मस्तगि धरचा जु अधिकारी गुर भौन ।
तौ रज्जब जग जगत मैं कहसि न बद कौन ॥४॥

ब्रह्मा बिष्नु महेस मिलि जतियहिं बंद और ।
रज्जब रहता जगत गुर मनि मनि सिद्ध सरीर ॥५॥

रज्जब बपि बैरी बहुत तामैं मन्न महंत ।
मारै मन सेनाधिपति सो आतम अरि हंत ॥६॥

रहन बडी ससार मैं जे रहि देखै कोइ ।
रहतं रहते रज्जबा रहतं सरिया होइ ॥७॥

रज्जब रहते पुरिष का सेवग सब संसार ।
जहां आइ तहं जगत गुर, मिहमा अनन्त अपार ॥८॥

मन वच टीका रहति कौं सब महुसे मर देहिं ।
रज्जब रंध्र जती जुगल जग मस्तग परि लेहिं ॥९॥

निरखि निसाचर सिर धरैं सुक्र जती की जाहिं ।
रज्जब रहुमा पुरिष दिसि पग प्रगटत नसि नाहिं ॥१०॥

रज्जब जिव माया जगत मैं इंद्री सौंदे काम ।
सो संभारि सुमिरण कर महां सत सिरताज ॥११॥

रज्जब पूजा रहुत की तीन लोक तेतीस ।
मनसा वाचा करमना जती जगत के सीस ॥१२॥

रहुता गुर गोर्ध्य सम जे देख्या निरताइ ।
रज्जब सुरही सीस मैं कहै कन्ह सो गाइ ॥१३॥

कामधेनु काम रहित और सबै पसु पन्ह ।
पै एकै गुण गोर्ध्य तहि नांव धराया कन्ह ॥१४॥

फल फूल विवरजित वासना रहति रही तन छाइ ।
रज्जब जत परमल परस बेधि गई वनराइ ॥१५॥

तन तांवा कंचन भया पाव पारै मेल ।
रज्जब अजब रसाइणी देखौ अम्मृत खेल ॥१६॥

पारा मारहिं प्यंड महिं सोई बल्ता यन्त ।
रज्जब हद हकीम हू काम करै जे कैद ॥१७॥

ईसफ कौ औलोकिये इंद्रय पसरचा माहिं ।
तौ महुसौ मैं मारग हुआ जे धरम रह्या दिल माहिं ॥१८॥

गन्वी गये सु गन्दा हूजै गंदी गहे सु देव ।
जन रज्जब जल बूंद का बिरला जाणै भेव ॥१९॥

पाणी राखि रहै ज्यू पाणी खावहु उतरियू उतरै भाव ।
जन रज्जब जत ओघ जुगत यहु उर्ध ठौर का सह्या जु भाव ॥२ ॥

साधू महुगे साथ असि नाही तौ कछु माहिं ।
जन रज्जब ज्यू सकल नग महुगे पाणी माहिं ॥२१॥

रहते वहुत फर यहु बिरला बूझै कोइ ।
ज्यू रज्जब पाछे अपछ, ये येकै मेलि न होइ ॥२२॥

रज्जब रहुता पूजिये जत में जोति अस्थान ।
महुने की बंदै न कोइ, अवलोकौ जगथान ॥२३॥

सवित सुन्दरी सिरि रहुणा सती अबाहिर नीर ।
रज्जब रामा चूसि ले शाकभ् वाणी सीर ॥२४॥
रहुता दीपक रतन का नारी नाग न मंद ।
विचै वाइ सो ना बुझै कमि अजरावर कंध ॥२५॥
कुलिस कमठ गेडे कठिन सादग् सीस सुमंत ।
बामा बाम न लागई सो रज्जब बत रत ॥२६॥
रज्जब रहुति अचाहि के सेव सविती सु गुलाम ।
मनसा वाचा करमना सुन्दरि करै सलाम ॥२७॥
अहि अबला देखत बुझै अगनि दीप आवम ।
तहं हीरा हरिजन अबुझ नैनी देखें हम ॥२८॥
जुवती ज्वाला मैं पड़े सती पवाहिर आइ ।
रज्जब राम सु हूं गये मानि मोल उठि आइ ॥२९॥
रहुता कामै रच है बहुता कामैं भूत ।
रज्जब उभै अनंग अग कहीं मकल औधूत ॥३०॥
मन्न भुयंग अंगार है मौर चकोर अहार ।
मनपंसी सुन आवर देखी कोटि हजार ॥३१॥
तंतीस कोटि तिरियहु बधे और सबै जिन जत ।
येतहु मैं मुकता तबी नमो नमो निज मंत ॥३२॥
सकल बसी ऊपरि कसा जो जिन जीतै काम ।
साई वापे वाम परि, सो बरियामो बरियाम ॥३३॥
मन रज्जब वहते बहुत रहुता कोई येक ।
तरणि नदी बिरले तिरहिं बूडनहार अनेक ॥३४॥
मुण यंत्री पर विरति तन बैतरणी व्योहार ।
रज्जब बूडे जीव सब बिरला पहुचै पार ॥३५॥
बैतरणी सु तरंगनी विचै वार ता माहि ।
रज्जब ताक त्रिभुवन जु इहि जलि बूडे नाहिं ॥३६॥
रज्जब विरचै विषै सौं महा बली बरियाम ।
साई सूरा सों सुभट जो कलियेहु नहिं काम ॥३७॥
बामा बप बाई बई सोई बाई बंधि ।
रज्जब रहुता जगत गुर कमि अजरावर कंधि ॥३८॥

सकल मदनी मारना मदन महा बलिवंत ।
रज्जब साधे साध सौं बलिवंतो बलिवंत ॥३९॥
अबलायसी मवाइ सब जोव किये बस जोइ ।
कंत कलित कलियहि नही अकल कहावै सोइ ॥४०॥
पंच तत्त मन सौं रहित प्रकति न परसै प्रान ।
रज्जब रहता पुरष सौ साधू संत सुजान ॥४१॥
देखौ अनत अतीत के अंडे अर अभिमाप ।
सो भर धामनि ना परे रज्जब जत मत आप ॥४२॥
अगसत आतम प्रास ही सलिता सहित समुंद ।
रज्जब रहति वसेख है उगलि न डारै बुंद ॥४३॥
बहुत राम रिषि छांड़ि करि जीव भये जत बोड़ि ।
सो रज्जब रहते बड़ी मिरखि निनाणबै कोड़ि ॥४४॥
सब सुकृत के सकति सौं जत मत चाहै जीव ।
यूं अवियहि पूजै सती रहति पियारी पीव ॥४५॥
रज्जब रंचक रहत की बात न बरनी जाइ ।
इहां सलक खिजमति करै आगै खुसी खुदाइ ॥४६॥
जोग माहिं जत जीव है सब अंग और सरीर ।
जन रज्जब सब जग कहै रहतै कौ गुर पीर ॥४७॥
तन ताजा मन मुक्ति गति कह्या सबद सति साखि ।
जन रज्जब जग जती कै रहति रूप पस हाथि ॥४८॥
जति जुवती ज्वाला ठलैं जति जामण मृत मास ।
जग मैं जीवन जोर मित जति निरवंद निवास ॥४९॥
रज्जब रहतौ नाक दृढ़ बाचा साची होइ ।
सो बाइक बहु गुण भरया सुणि मानै सब कोइ ॥५०॥
कहणहार सब बहि गये रहति बड़ी जग माहिं ।
रज्जब प्राण पसू परे जौ जिव मानै नाहिं ॥५१॥
चंद्र सूर पाणी पवन धरती अर आकास ।
मे रज्जब बहते सबै पै रहते हरि के दास ॥५२॥
रतन न रहै समुन्द मैं मरजीवौ लिये काढ़ि ।
यूं नर नारी ना ठगे सो साध समंद सौ बाढ़ि ॥५३॥

तनि सारे त्रिभुवन तिलक मन सारे काइ यक ।
रज्जब रावण वप बसी धनि मन रावण येक ॥५४॥
रज्जब कोई कोटि मैं धनि तन रावणहार ।
पै मन मारे विषै सौं ते विरला संसार ॥५५॥
तारौं सुकर गरुड़ लगि चकहु चतुर नर और ।
चत्र स्याम गोरख हणूं जति लषमण पट ठौर ॥५६॥
सुक जोति पति रथ गरुड़ चत्र स्याम सुध सेत ।
गुर गोरख जति हणू हव लषमण लरा सु सेत ॥५७॥
सुति सूर मन मथन विधि तन लंकापति भूप ।
रज्जब मारे रहति सर पान लषमन रूप ॥५८॥
इन्द्री आभी मैं रहै नीर नराजी वप ।
जन रज्जब मारे तौ सुख सुकास अरि भूप ॥५९॥
मन सेन सब संग्रही फिरी दुंग दिस आन ।
रज्जब गरज्या रहति मन सीस चढ्या सुलतान ॥६०॥
साधू रहै सु ग्राम गत सूरातन सारदूल ।
धाम कटर सार्ग महौ इहै रहति का मूल ॥६१॥
लिया अहार अघ्यत मैं पाछै पड़ि गई च्यंत ।
रज्जब नींद महुंग मधि उभै न उपजै म्यंत ॥६२॥

अरिल सारदूल अरु संत जती जग जारि हैं
जार भजर महार अनंग अरि मोरि हैं ।
भोर परव प्राम सु दारा दाम र
रज्जब रज न पगाहि विषै बसि वास रे ।
गै धामै त्राम मदन सारदूलि मसिवंत
रथ रज्जब सु अहार से गु रम संघारै सन ॥६३॥

साखी जन रज्जब रवि ससि पसे डाडी सग मम मास ।
जिभ्या जोगी बाट ब्यन और नाप मिज दास ॥६४॥
ज्या मनो माथा नीर बिन रयू उर अप तजि काम ।
रज्जब घोर अघार मैं कन न सूझ राम ॥६५॥
माया मौं काया मिलै सुकम सगार्ग नीर ।
रज्जब मेना कद्रु जिर बीज बिमरजित मीर ॥६६॥

रज्जब रहति बिषै महँ आसंधि सकै न अंत ।
रचना मेटै राम की तब उपजैं बत मंत ॥६७॥
भावी मानी भूत नै जब जिव त्याग्यो भोग ।
तौ रज्जब सुणि रमा सौं जो पातर जति जोग ॥६८॥
काची आज्ञा मेटि करि पाकी सो लै लीन ।
रज्जब त्यागा साधू सो पाका प्राण प्रवीन ॥६९॥
आज्ञाकारी बंधि येहि आज्ञा भंगी मुक्त ।
रज्जब रन तजि छापतौं समझ्या सांई मत ॥७०॥
ज्यूं प्राण नारी पुरिष जगपति राखे जोरि ।
सोइ हुकम हति हरि मिले निरखि निमाणी कोरि ॥७१॥

## जतन का अंग

जन रज्जब राखे बिना नाव न राख्या जाइ ।
जैसे दीपक जतन बिन बिसवा बीस बुझाइ ॥१॥
रज्जब मोजम मौम मघ दीन नांव ठहराइ ।
जतन बिना जोख्यूं भणी जोति आप बुझि जाइ ॥२॥
जतन बिना जोख्यू बणी बोहित बिघन मनत ।
ज्यूं रज्जब राखे बिना उदधि न उतरै संत ॥३॥
ज्यूं पाकी जौड़ै भरयू सब पीस्या उड़ि जाइ ।
त्यूं रज्जब सुणि जतन बिन कहौ मुकत को खाइ ॥४॥
करनी करि काठे हुआ रहणी रहता होइ ।
जन रज्जब सुणि जतन बिन बहुत गये मन खोइ ॥५॥
रज्जब रतनहु काच तन करै जौहरी प्राण ।
बाड़ मार न कर चढ़ै मनि मन क्रम करि मान ॥६॥
कनक कटोरै बाहिरा रहै न बाघणि पीर ।
त्यू रज्जब साधू सबद राखै घटि गंभीर ॥७॥
साधु सबद कपूर है, जुगति जतन ठहराहिं ।
रे रज्जब राखे बिना उभै अंग उड़ि जाहिं ॥८॥
स्वाति बूंद राखै सुकुत साध सबद यूं राखि ।
रज्जब निपजहिं मुक्ति मन सब समझू की साखि ॥९॥

साखी आसा बंदन आतमा मुकति निरासा नित ।
रज्जब कही बिचारि करि सोधिर साधू मत ॥११॥
सहकामी कंचन किया तिनकौं भ्रम सब फेर ।
निहकामी पलटै नही साखी सोवन मेर ॥१२॥
कामी कबैलौं की कला बुझ्यू बुझी सो नांहि ।
रज्जब अबला आगि मिलि एकमेक ह्वै जांहि ॥१३॥
दुरमति दारू से भरे बप सु बान बिधि मांहि ।
रज्जब त्रिगुनी जरे बिन निहचल उभे सु नांहि ॥१४॥

चौपई मुक्ति निरासा बंधन आस घर बन मांहि कहीं करि बास ।
एक ग्यान धरि एक अग्यान रज्जब समझे सुख दुख थान ॥१५॥

साखी रज्जब झूलै न व्योम बंधि मही न मुकता होइ ।
पाताल सुपासी ना कटै आसा बसि सब कोइ ॥१६॥
सकल प्रान स्वारथ बसि उलझे आसा फंद ।
रज्जब रट पट काटि क्रम मुक्ता सोई छछंद ॥१७॥
काम कंद प्रसरै नहीं सुरति सुंदरी भूल ।
जन रज्जब रंकार रत सो आतमा अमूल ॥१८॥
एकम नारत एक सौं फाटि कामना कंद ।
उर अजन उलझै नहीं वह आतमा अबंध ॥१९॥
उर औरै आसा नहीं मिलै न माया मन ।
रज्जब मुकता मांड मैं सुलझा साधू जन ॥२०॥
ब्रह्म भजे माया तजे मन मांहै निहकाम ।
जन रज्जब ता संत सौ परमथि रीझै राम ॥२१॥
निहकामी सेवा करै ज्यू धरती आकास ।
चंद सूर पाणी पवन त्यू रज्जब निज दास ॥२२॥
नारायन जाचै नही सुरपति मांगै जब ।
रज्जब राता इस मतै निरिहाई सो सब ॥२३॥
रज्जब रिधि सिधि ना रचै जा जिव मैं जगदीस ।
निरिहाई निहकाम सौं मन बधि बिसवा बीस ॥२४॥

चौपई ह्वै फकीर अरु मांग नांहि गृह रहित रहै गृह मांहि ।
तिन समानि मांही संसारा मन बच करम सु कीन बिचारा ॥२५॥

साखी रज्जब कांटा चाहि का बिस रूपी सु बिसेल ।
सौस चुम्या चित चरनि मैं रही सु गोव्यंद गैल ॥२६॥
बंधा गंधा होत है अब मांगै कछू और ।
चरन छुड़ाया चाहिमैं किया आपमा चोर ॥२७॥

## परवरति निरवरति का अंग

रज्जब बसुधा ब्योम बिचि बीज बृच्छ बिस्तार ।
त्यू परवरति निरवरति मधि आतम वो ओंकार ॥१॥
कौन दसा फूले फले कौन दसा निरधार ।
रज्जब मन कन गाहु ह्वै कहि दिस करै बिचार ॥२॥
एक बृच्छ ऊपर फलै एक फूल भर मांहि ।
एक दहू दिसि सुफल है, एक उभै बिधि नांहि ॥३॥
सत मत सोधी साध मत चतुर दसा चहु आंखि ।
रज्जब सुफल सु लीजिये निरफल निखर सु नाखि ॥४॥
सुकृत फल परवरति मधि निरवरति नांव निरधार ।
सत मत को यहु माखिरा रज्जब समझि बिचार ॥५॥
सुकृत फल परवरति मैं निरवरति नांव निराट ।
नर नारायन मुक्ति चढ़े आये एकहि बाट ॥६॥
सिव तरंवर छाया सकति जुगल महातम पान ।
रज्जब जामी पंखि भमि फल पावै किस थान ॥७॥
धरणि धरे सौं बिस से तरु नरु धरहि अकास ।
सो परमारथ मे पड़ै जन रज्जब सुणि दास ॥८॥
परवरति चोरा रेत का निरवरति है गज गीर ।
मन जस कहि मग मेलिये ब्रह्म विड़े जाइ गीर ॥९॥
निरवरति परवरति द्वै कथा भौ ओंकार सबद ।
निरगुणी निरगुण आदरी सरगुण करी सु रद ॥१०॥
चौपई बटक बोलतों द्वै द्वै धाम स्वारथ बड़ परमारथ डाम ।
इहि दिसि निरफल बहि फल फूल नीचे ऊंचे एकै मूल ॥११॥
साखी सांच मूठ द्वै चरन हैं जीव चलै इन मग ।
इकटंग्यू की मौर है जहां न दूजा पग ॥१२॥

## पाप पुन्नि निरनै का अंग

पाप पुन्नि का मूल है सामै फेर न सार ।
धरम करम करि ऊपजै रज्जब समझि बिचार ॥१॥
जे जड़ पैठे जमी मैं अंकुर जाइ आकास ।
त्यूं पाप पुन्नि का मूल है सुनहु ग्रमेको दास ॥२॥
प्रथमि पाप के पेड़ परि स्वारथ सुकृत डाल ।
रज्जब साखा तौ रहै किये पेड़ प्रतिपाल ॥३॥
जड़ सींची तरुवर बधै पुन्नि पुष्टि त्यूं पापि ।
रज्जब कही बिचारि करि बिकट बणाई थापि ॥४॥
कुकृत करि सुकृत सबै आदि अंति मधि होइ ।
धन रज्जब जगि देखिये जे करि जाणै कोइ ॥५॥
प्राण हते सेवा सकति पंच हते सिव सेव ।
पूजे जाइ न पाप बिन रज्जब देई देव ॥६॥
एक पाप पर कै गये एक पाप पर सिद्धि ।
रज्जब समझिर कीजिये पाप पुन्नि की बिधि ॥७॥
एक करमि करम ऊपजै एक करमिहि करम जाइ ।
रज्जब करमहि करम कौ नर देखौ निरताइ ॥८॥
रज्जब आरंभि मन चढ़ै आरंभि ही मधि जाहि ।
तौ आरंभि का फेर है समझि देखि मन माहिं ॥९॥
सुकृत बोड़ी मौहू की सुकृत खीणी तासि ।
एक कृति करम उदै हुवै एक कृति क्रम नासि ॥१०॥
आरंभ सबही निरवई तिन करि सकृत होइ ।
यूं आसतौ सीझे सबै काज न बिनस्या कोइ ॥११॥
जन्मर बीखण केलि प्रभ पाप पुन्नि परगास ।
रज्जब निपजै चतुर क्रम मूल महातम नास ॥१२॥
पाप करत पातिग चढ़ै पुंनि प्रगटत कटि जाहिं ।
रज्जब जैसे कूप फणि तहि निरमल जल न्हाहिं ॥१३॥
चोरी की सब चोर है, धरम करम मैं साध ।
जाव फिरत भाभी फिरी तिनौ मुक्त क्रम बाध ॥१४॥

कुकृत करि सुकृत करै, तो कुकृत तामैं नांहि ।
चोरी छूटै पुन्नि बलि समझि देखि मन मांहि ॥१५॥
गुन गोबिन्दर देवरिष सेवा सबै दयाल ।
पूजा करि पापी तिरे सबौ करी प्रतिपाल ॥१६॥
सुकृत सेवा चोर ठग पापी तिरहिं अपार ।
ज्यूं सुइप_ बूडे नहीं नाव काठ के भार ॥१७॥
रज्जब पाप पषाण सिमि पुन्नि काठ की नाव ।
जम जल तिरिये बैठि करि तिहिं प्राणी चढ़ि आव ॥१८॥
करहिं जीव कृत पेट को तामहिं पर उपगार ।
तो रज्जब सीष सही तामैं फेर न सार ॥१९॥
मात पिता मैले मिले सुत निपज्या विधि साध ।
कुकृत मैं कीरति भई रज्जब देख अगाध ॥२ ॥
यद्र भवनि अपराध बिन प्यंड पड़े ह्वै पाप ।
परि उनकी बिर्यं सु बंदगी जग जीवन जड़ जाप ॥२१॥

## झूठ सांच मिरनै का अंग

झूठि भोमि है पारधा सत्य कण उन मांहि ।
उभै ठोर निरफल सदा समझि देखि मन मांहि ॥१॥
सांच झूठ जोड़ा सदा ज्यूं तरवर संगि छांह ।
एक सुफल एक अफल है, समझे समझी मांह ॥२॥
बप बाइक ममसे सदा झूठ रहै तिहु ठौर ।
तिनका वासा नरक मैं अस्थल माहीं और ॥३॥
झूठ रहै यौ सांच कन ज्यू तिमर दीप तलि आइ ।
रज्जब बुझती जोति को अंधियारा भरि जाइ ॥४॥
झूठ मरै सुणि सांच मैं सांच मरै सुणि झूठ ।
रज्जब ज्यूं थी त्यूं कही रजू होइ भावै रूठि ॥५॥
अब सम प्राणी प्यंड मैं कण फूकस मधि होइ ।
झूठ सांच दो मिलि बसै तहां न दीसै दोइ ॥६॥
झूठी सांच समानि है समये सम सरि होइ ।
जन रज्जब इस पेच को बूझै बिरला कोइ ॥७॥

तन मन आतम झूठ पै समै सांच कौ जाइ ।
सो रज्जब सांचे भये नर देखौ निरताइ ॥८॥

सांच आतम झूठ तन सागिर झूठी होइ ।
रज्जब कही बिचार करि देखत है सब कोइ ॥९॥

झूठ बोलिये परम हित सो मिलै सांच क्यूं जाइ ।
यहु रज्जब अज्जब कही नर देखौ निरताइ ॥१०॥

झूठ पाप का मूल है समये मिथ्या सांच ।
मारु महम्मद की सरणि क्या बोलै सो बांच ॥११॥

रज्जब राख्या मारतहु झूठ बोलि करि प्राण ।
सो मिथ्या मानी सबौ सांईं सहित सुजाण ॥१२॥

## करणी बिना ज्ञान का अंग

दीपक ज्ञान बताइ दे जोम सुकृत तम माहिं ।
रज्जब पकड़ै प्राण उठि दीवा पकड़ै माहिं ॥१॥

दीपक दून्यू एकसा चोर साह चित माहिं ।
तैसे रज्जब ज्ञान गति मग प्राणी कै माहिं ॥२॥

हीरा हरसी तिमर कौ परसीन हरया नहिं जाइ ।
त्यूं रज्जब दीपक ज्ञान कौ जे देख्या निरताइ ॥३॥

रज्जब दीपक ज्ञान का तिमर हरै दे भेत ।
पर भजन बिना भाजै नहीं; इन्द्री अरि बिस खेत ॥४॥

जे आतम उर अंध गति ज्ञान दीप कर धारि ।
रज्जब पड़सी कूप मैं दीप न सकई टारि ॥५॥

रजनी माया मोह की इन्द्री आभे माहिं ।
रज्जब रती न सूझई ज्ञान दृष्टि कछ नाहिं ॥६॥

ज्ञान दीप नहि दूरि ह्वै तिमर व्यंड ब्रह्मंड ।
जब लग मिलहि न राम रवि जिनकी जोति प्रचंड ॥७॥

रज्जब प्राण पपीलका ज्ञान पंख परगास ।
वहु न मिलै अबिगति कौं वहु न जाइ आकास ॥८॥

रज्जब जोवन भादवा इन्द्री आभे माहिं ।
बिषै बारि बरिषा बिपुल ज्ञान भान दुरि जाहिं ॥९॥

रज्जब रैनि अचेत मत बन मन धरि नहिं जाइ ।
मान ज्ञान उग्गत वहै, उलू इंद्रिय बाइ ॥१०॥
यों इंद्री भाभे उन बन ज्ञान उन्हाले होइ ।
तो रामा रोसी चढ़े रज्जब साख न कोइ ॥११॥

चौपई आभे इंद्री रैनि अचेत सूझै नाहि सयनि के भेत ।
मान ज्ञान आभे न अधार आंखि मूंदि कीया अंधियार ॥१२॥

## ज्ञान बिना करणी का अंग

करणी करै बिचार बिन तबै बंधै ता माहिं ।
रज्जब उमझि अज्ञान मैं कबहू सुलझै नाहिं ॥१॥
भगति भेद बिन कछू नहीं ज्यूं सुपिनै बरड़ाइ ।
रज्जब रस नहिं पाइये पड़घा रैनि दिन गाइ ॥२॥
नांवहि भजै बिचार बिन बया अकलि बिन राज ।
रज्जब रहै न एक पल सबहीं होइ अकाज ॥३॥
गम गुमान बहुतै करै जोरि न पाया जाइ ।
रज्जब बुधि बिचार बिन बेड़ी खुलै न पाइ ॥४॥
करणी आंधी धोर बर ज्ञान पांगुले नैन ।
जन रज्जब ज्यूं जुरहि, जुवे न पावै चैन ॥५॥
करणी कण चावल सही ज्ञान छूति के माहिं ।
रज्जब उभै एकठे जुवे जुवे सो नाहिं ॥६॥
राम बिना रीती रहति रहति बिना त्यूं राम ।
पद्म द्रोपदि संजोग सुख बिजोगि बऊ बेकाम ॥७॥

## नांव बमेक का अंग

नांवहि भजै बिचार सौं सो भूलहिं नहिं संत ।
रज्जब नांव न रूप रटि पहुचे प्रान अनंत ॥१॥
राम नांव निज नांव गति सेवट ज्ञान बिचार ।
जन रज्जब ड्रूपू मिलै तबै पहूचै पार ॥२॥
द्रोपदि हरि का नांव ले पद्म पंचू बलि राखि ।
रज्जब जीव निरोग ह्वै सतगुर साधू साखि ॥३॥

बोपदि अविगति नाव ले पस पंचो वसि कोम ।
रज्जब रहिसी बहि जुगति आतम होइ निरोग ॥४॥
सब सुकृत ले ज्ञान सौं करहु नाव सौं सीर ।
ज्यूं घृत सक्कर कनि कसौ मारू बांधहि बीर ॥५॥
सकल गये सोम्यूं बंधै, जया अकसि मैं राम ।
त्यूं रज्जब सुकृत सबै बिष बिचार ले लाग ॥६॥
गहरे ज्ञान समुंद मैं चले नांव की नाव ।
रज्जब रज लागै नहीं मिटे तपसि के ताव ॥७॥

## उपजणि का अंग

रज्जब अज्जब ऊपजी सबको करै बखाण ।
ब्रह्म भजै माया तजै सो प्राणी परवाण ॥१॥
भाव भगति की ऊपजी, भली कहै सब कोइ ।
जन रज्जब जगपति खुसी जगम सुफलि यूं होइ ॥२॥
उपजी आतम राम की सो छानी क्यूं होइ ।
रज्जब दीसै सकल सिरि प्राणी परगट जोइ ॥३॥
रज्जब उपजी आप सौं सब ते न्यारा होइ ।
अंतरि परचै एक सौं क्या समझावै कोइ ॥४॥
सूरहि क्या मरमाइये सती न मानै सीख ।
रज्जब उपजणि आप सौं मरैं बिघन बिसि दीख ॥५॥
मनिषा देही पाइ करि सही ज्ञान गति माहिं ।
जन रज्जब जिन आप की तिहि बिधि यापरि नाहिं ॥६॥
जन रज्जब आतम उपजि सिसु सक्ति तिरै नीर ।
ज्यूं बतक मच्छा मुर दिवसि पाणी पैरै बीर ॥७॥
रज्जब देखो मीन सुत तिरन सिखावै कौन ।
ऐसे उपजण आप सौं गहै ज्ञान मध गौन ॥८॥
रज्जब अरमक माहि का ताहि तिरावै कौन ।
जनमत ही जलनिधि तिरै करै नीर परि गौन ॥९॥
ज्यूं बतक को मीन सुत मरमक माहि तरंत ।
कौन सिखावै कौन कौ जब उपजै यहु मंत ॥१० ॥

मनस। अंड, जब। उमहै, तब अरमब। ऊंचा आइ।
ज्यूं रज्जब-उपजणि जुमत, आतम ब्रह्म समाइ ॥११॥
जा जिव मैं मह ऊपजी, साहिब कीजै याहि।
रज्जब रोक्या- क्यूं रहै, वसुधा मकै सु बाहि ॥१२॥
राम उपाई काम की, भविहड अबनासी।
जन रज्जब जिव की उपज, सब तिसकी दासी ॥१३॥
येक उपजनि इंद्र मैं, सकल उपज माधार।
रज्जब उभै पिछाणिमे एक एक की मार ॥१४॥
एक घरे की उपजण सीमे, प्रान अनेक।
रज्जब उलटा एक सो, इहि उपजण कोइ येक ॥१५॥
बुरी अमर्ग्यूं बूझिहै भली ऊपजी भाग।
रज्जब एक मनन्द मैं बूझी बिस दुख बाग ॥१६॥
एक उपजि उजास करै, एक उपजि मल मूल।
जन रज्जब उपजी उभै उपजी देखि न भूल ॥१७॥
उपजी सूं निपजी सही कृपि करणी ततमाल।
उपजी मासा धंमि है निपज्यूं सकल सुकाल ॥१८॥
अनभै मेंहदी बेत लिठ उपजत बिषम उपाइ।
पै रज्जब उपज्यू पिछै बेगाबेगि न जाइ ॥१९॥

## गोपि पाप का अंग

मन मैं बिनिया बिससिये पाणी मैं पेसाब।
रज्जब आप अमत गुर, जगत न बूझै ज्वाब ॥१॥
मनि चोरी च्यंता सजा माठि गुनह तनि मार।
रज्जब रचना राम की मर सिरि मीति बिचार ॥२॥
गोपि पाप गोपिहि सजा मार होइ मनि माहिं।
रज्जब समझै समझणां सो सठ समझै नाहिं ॥३॥

## लोक लज्जा का अंग

निगुरा नारी कूं मर्र मति नाकी घटि जाइ।
रज्जब मर कुंजर किये नाक बंधी सम जाइ ॥१॥

करम मस्यानिक सब मिलत भरम अस्यानक माव ।
जन रज्जब बहु जीव गति क्यूं कर सीझैं काज ॥२॥
लोक लाज लोई लिये संक्या सांकल मालि ।
रज्जब सोई प्राण पग हरि दिसि सकै न चालि ॥३॥
सुख सौं दागे काणि कुल उपड़े उपड़ी ठौड़ ।
जन रज्जब सब जगति का लज्जा कीया चौड़ ॥४॥
रीते राखै लोक मत बहती बूझै नाहिं ।
सरनस सौंपै सगहु कौ भर उनकी आज्ञा माहिं ॥५॥
पति राखै परिवार की परमेसुर पति खोइ ।
रज्जब सठ संकटि पड़े मुकति कहां त होइ ॥६॥
लोक लाज सूरा सती लोक लाज दत सीस ।
जन रज्जब रोटी न देहि नर सुनि मति जमदीस ॥७॥
भरम धरम करि जो मले साधू श्रवनि न भार ।
रज्जब उज्जल रैनि के सु दैस न दीसै तार ॥८॥
कुल पीहर कुल सासुरौ गुरू कीया कुलवंत ।
रज्जब अकुल न उर बस्या अकुल न सोध्या संत ॥९॥

## मनमुखी का अंग

अपणी अपणी खुसी मैं चलै सबै कोइ चालि ।
जन रज्जब जो हरि खुसी त्यूं कोई सकै न हालि ॥१॥
मनि मानै सौदा करै मनि नाहीं तौ नाहिं ।
रज्जब मानै राम की सो कुछ नाहीं माहिं ॥२॥
षट दरसन अपणी खुसी खेलै सब संसार ।
जन रज्जब रुचि राम की बिरला खेलणहार ॥३॥
मन की भावहि सब चलै चौरासी लख जीव ।
तौ रज्जब इस चाल मैं कहु किन पाया पीव ॥४॥

## मैंवासी का अंग

मैंवासा मागै नहीं सेवा भगति सहेस ।
जन रज्जब जिव जब लगी सौंपै नहीं सर्बस ॥१॥

दुरमति वुगि म उतरैं तजै न मैंघट बन ।
मैंवासा मेटे नहीं मरण कबूले मन ॥२॥

चौपई मम मैंवासी देही प्रास सेवग स्वामी गत वेसास ।
बाहरि रूपा भीतरि मोह, मर नाथै बंधै नहिं मोह ॥३॥

## दुरजन का अंग

दुरजन दिल दरपन सही नहीं दिखावै माहिं ।
रज्जब मसा देखसौं पल इत उत सो नाहिं ॥१॥
मुख परि मीठा बोलणा पसगीयति परपिष्टि ।
रज्जब दुरजन दोष की दई न दिखाई दृष्टि ॥२॥
सरप स्वंम अजरी कमंध बीवत मूवौ मार ।
फूंट केसरि भीमम सु बुधि दुरजन देत बिचार ॥३॥
रज्जब करगस रूप है, दुरजन की औमादि ।
पंथौ पूतौ रह गई आदित बहुत सु आदि ॥४॥
सज्जन सभै समानि है, आवत करें निहाम ।
दुरमम दुर दुसकास मैं जब दीसै तब कास ॥५॥

## खेचर का अंग

उस्त तेम अरु आरसी सीजै खारका मांस ।
रज्जब सुधरैं राम सौं ज्यूं खेचर का गांस ॥१॥
रज्जब भापै ऊंटनै तोड़ी मीति मकेम ।
तेऊ नोक मुकतै रहै कब कसौटी वेस ॥२॥
सुष सुष सीसे बरपि तू ठगा ठगै सौ मापि ।
ज्यूं चूने का कांकरा रज्जब प्रम मिलि भागि ॥३॥
बरपे खोटी पिमा सो घर घर बासणहार ।
रज्जब बाहिर सुद्ध मैं कीया सरप संघार ॥४॥
मुख मीठ बल मुकर जिम पै ज्वासा मैं अंग ।
रज्जब कदे न कीजिये तिन कपटयू का संग ॥५॥
रज्जब दीसै सो नहीं मणदेखी भरपूरि ।
मुकर सु सरमरि मानबो विनठे रहिये दूरि ॥६॥

ज्यूं भारत के आम का सब को करै बखाण ।
जन रज्जब सो अगनि है, बिरलौ बहमी जाण ॥७॥

मुख साधू मनमैं असध परहरि कपटी मंत ।
रज्जब देखे बुधि बरस दोइ मतहु चीर्दत ॥८॥

दुस्मन दिल दरपन सही मुखि पाणी मधि आग ।
तिनका संग न कीजिये भोला मौंदू भाग ॥९॥

मुखि मीठे कड़वे कंवलि बुरस बिनाई ऐन ।
रज्जब मिसि मुख मेसती कहु क्या पावै चैन ॥१०॥

ऊपरि अमृत बीचि विष यहु बिनाई बारि ।
सो खाये बेमान ह्वै बिरचौ बीर बिचारि ॥११॥

दुष्ट बिनाई दान है, मुखि मिसरी मैं पागि ।
यहु बिष बिष अमृत देखिये भागि बसी तौ भागि ॥१२॥

बिब मैं राइण बीज समि जिभ्या छूत समान ।
तिनके उपर सीजिये तजिये उर अस्थान ॥१३॥

अमित अज्ञान उर गमी जो जातिग जणि जाय ।
रज्जब छूटै एक को जो मोह मरद तजि जाय ॥१४॥

## क्रोध का अंग

क्रोध काल कहिये सदा अंतक है अहंकार ।
जन रज्जब जोरैं जुगम पाया भेद बिचार ॥१॥

रज्जब अंतरि आतमा अंतक है अहंकार ।
प्राणी परलय पिसणता होत न लागै बार ॥२॥

क्रोध न डरै कलंक तैं मारैं माता बाप ।
ब्रह्ण बिहरि बंधू बधै पिसण न पेखै पाप ॥३॥

गुर सिष राजा बाकरहु तामस हनि तिम काम ।
रज्जब रीति न रोस मैं कहिये क्रोध चंडाल ॥४॥

क्रोध न मान बोध कौं जैसे बीज सु बारि ।
रज्जब देखी पट घटा उभै सु एक बिचारि ॥५॥

बड़वानल सो बारिनिध सजल घटा मधि बीज ।
त्यू रज्जब जति जोरि है, नकरि मघा चकि चीज ॥६॥

घात स्यानिक सा बल निकसे सो उन्हा अंग आवै ।
त्यू रज्जब बल बीज रहति मैं गाति वाति सु सतावै ॥७॥

बीबस मिरछग मसाण विधि मुवौ मानसी रास ।
रज्जब क्रोध न बोध कोइ, भूत देव करै दोस ॥८॥

धनवन्तरि रूप धुनि धारि है अहि इंद्री व्योहार ।
ताथै तामस सौं करी बद विषन्सणहार ॥९॥

सोरठा
साध सबद सूक काठ सो सीतल तापहि हरै ।
परि घसै उभै अंग पाठ जन रज्जब ते ऊजरै ॥१०॥

साखी
मानि महंतनि मैं रहै क्रोध कलंकी मेम ।
ज्यूं पारस पावक बसै जा लगि लोहा हेम ॥११॥

रज्जब साधू सेस गति मणि मुख मांव उधार ।
सबद न महणा रंभ करि, बुधि विधि हेत न मार ॥१२॥

गोष्ठी गोरखदत्त की जम रज्जब जगि जोइ ।
तिनहु चमकि चक्कर चसे सो पिमा करगा कोइ ॥१३॥

सीतारहु अहंकार की हुई सबन बिच बात ।
रज्जब देखौ दसौ दिस सो किम छाड़ी लात ॥१४॥

रावण मारया लपिमणि लंक दही हणवंत ।
रज्जब उभै अनंग जिति कहिये साधू संत ॥१५॥

जामत ज्वाला मैं रहा मुये मसाणहु आगि ।
जन रज्जब अति क्रोध फल रावण तरवर लागि ॥१६॥

रज्जब पावक क्रोध की महिमा सुणी सु कान ।
मिल तामस ताता हुआ अगिनि अगंजित ठाम ॥१७॥

रज्जब पामर दास का सरस मुखहु मधि कोटि ।
इन धनुष माध बिना सुरमनि दुरमनि चोटि ॥१८॥

बाइ पुगासा जस हरी सुराग दुवासहि घाट ।
राग दाप रवि ससि भर महि पन्दा नहि बोट ॥१९॥

बेन्दा बावनि क निरटि माना भूम बभूत ।
तान्रनि तोषा हात है, पै गाउ बात गत मूम ॥२०॥

गुन तन गाम्यग मर मगनि उन अहकार ।
रज्जब मरि पामुन्नि तजि यहनो बैनि निपार ॥२१॥

काया काठ सूखे उठै गोष्टी मथतैं आग ।
रज्जब सरसे मान अग्नि जल नहीं सो आग ॥२२॥

## हिंसा दोष का अंग

तेज तेज मो नासवें त्रिगुणी मैं सु असेस ।
उड़ग अम्यासें सुगनी दिन दीस नहिं देस ॥१॥
मंछ गलागल मन्मी सबला निबलहिं खाइ ।
रज्जब महु मंडाण मत मर दसौ निरताइ ॥२॥
सोरठा द्वै सुख उपजै दोष लागे एकहिं प्याड सौं ।
तिनहु न सुख संताप सो द्वै घट क्यू मिल चलहिं ॥३॥
साखी उभै चक्र विधि बैरता काया एक कुरंड ।
तौ रज्जब क्यू मिलि चलैं जे दीस द्वै प्यंड ॥४॥
एक प्यंड माहैं रहै, पंथे पंथू बाट ।
तौ रज्जब क्यूं होइगा द्वै घट का इक ठाट ॥५॥
पय पाणी की प्रीति को बदनि न बरनी जाइ ।
पै हेरि हंस हंस्या भरे म्यंत बिछोहे आइ ॥६॥

## सातिग तामस निबान का अंग

मन मोती ज्यू नीपजै स्वाति सबद के पोष ।
रज्जब उविध उपाधि मैं मन मोती को दोष ॥१॥
दीन दसा दिनकर उग चकवे मिल्त मिलाहिं ।
रज्जब रजनी रास की आप आपको जाहिं ॥२॥
मा वन एकै दसा बहि बामन द्वै अंग ।
एकहिं मिन गु पटा पनि एकहिं हाड सु भंग ॥३॥
सातिग ज्यों माप है तहां राजमी दाम ।
त्यु रज्जब रवि ऊग सदा गु ससिहर याम ॥४॥
तामस त्य मिथ्या मन फार सातिग पारा पी मिलि जाइ ।
काजो छाद दूप की जेग जन रज्जब दगो निरताइ ॥५॥
दुग मैं दा न टाकै पर गुरु तामस माहि ।
रज्जब रहै न गात सर मन पारा उड़ि जाहि ॥६॥

दुष्ट वचन अरु दोषिद तप मन तम त्यू बरि जाहिं ।
रज्जब सबद सु सरद ससि सब ठाहर सु सिराहिं ॥७॥
रज्जब कुवचन कास है सुसबदहु सुसबहु सुवास ।
वहै मंत कहै आतमहु वहै प्राण प्रतिपास ॥८॥
मुखि ठाहर भाव सब रज्जब समझौ धीर ।
पारा उतरै ठहि परि त्यूंही साकि सरीर ॥९॥
सूरिज सोखै सिष्टि को पे माथे ह्वै न मयंक ।
ज्यू ईस सीस ससि राखतौं सब समटी बिष धंक ॥१०॥

## जरणा का अंग

रज्जब साध अगाध सौं सबद जरे यूं माहिं ।
ज्यू पावक अन सुषि मैं पैठी निकसै नाहिं ॥१॥
ताते सीसे सबद सब मिस मुख्रि मे माहिं ।
जन रज्जब गंभीर गति मुसी बुरी सौं नाहिं ॥२॥
साधू श्रवण सु समंद गति सबद सु सरिता जाहिं ।
जन रज्जब गभीर गति सोभरि फूटै नाहिं ॥३॥
रज्जब चलै न क्रोध बल रहै दिमा जहं साधि ।
ज्यू दामणि दरियाव परि बरसी कौन उपाधि ॥४॥
रोम रंक का क्या चलै कोपी तहां कंगाल ।
जन रज्जब जब जीव मैं जरणा जाप संभाल ॥५॥
रज्जब सबसो सबल है आकस अबस मतीति ।
जरणा बरी मारि करि बैठा त्रिभुवन जीति ॥६॥
बुद्धि बारि बहु उरि उदधि तहां बैन हनि टेम ।
रज्जब रज उपटै नहीं मममा बाभा मेम ॥७॥
पाणी पावर मारिये बोछै उपजै कीच ।
गरे गारि न ऊपजै मैन ममुन्दों बीच ॥८॥
रोमहि रोम रमायण उपजै कामहि काढि कन्यान ।
परणा जड़ी कानि जनि जीवनि रज्जब जान गुमान ॥९॥
जरणा मारे जगन को गिमा गमर को गाइ ।
मानिम गुण दे संगमें मर देखो निरताइ ॥१०॥

बामा बिप्र सु ब्याधि सौं खिमा करी क्रम जानि ।
बरणा अति महंगी करी औतारहु उर आनि ॥११॥
सुकृत सलिता सब बरैं कोई साध समुंद ।
जन रज्जब गंभीर गति उलैसि न झाली बुंद ॥१२॥
गुण इंद्री जारै अजर जारै जगपति दान ।
सो रज्जब गंभीर घट आसम राम समान ॥१३॥
अजरी जारै एक कौं मामा माखी खाइ ।
जन रज्जब ओधार जन महिमा कही न जाइ ॥१४॥
रज्जब उतरै मंत्र बिप सीत अगनि सौं जाइ ।
त्यूं पूरहु पातिग कर्टाहि थिरि मार्गाहि कहि आइ ॥१५॥
मोर चकोर खात बिष बह्नी पेट पचत पुनि पुष्ट ।
तैसे साध असध गुन ग्रासै दीन दसत हैं दुष्ट ॥१६॥

## परम करणा दुष्ट दातार का अंग

सहन सीस सुकृत सिये सस सीप हद हेत ।
रज्जब अरि उर बिहरहीं माया मुकता देत ॥१॥
असम चालि उर उविध कैं कठिन कसौटी कीन ।
रज्जब औगुण गुण गया रतन चौन्हा दीन ॥२॥
घन सौं पारस फोड़ितौं सोहा कंचन होन ।
वैरी परि सरंभू भये गमो बहहु का गोत ॥३॥
रज्जब रई सु काठ की दीन्ही दधि मनि आणि ।
मारे परि मारण दिया देखि भलौ की बाणि ॥४॥
पूरै प्राणी पोरिसा परमारथ सब हेत ।
रज्जब काटे परि कृपा पुनि बित बधि बधि देत ॥५॥
कुठार करोती सीस सिस संदल किय सुगंध ।
बास लगाई बिघन परि देखि बड़हु का बंध ॥६॥
माता मिहंदी पीसतौं करहर लावहि काम ।
एम परि कसी करी बिसण पाणि पग लास ॥७॥
पापी मारै पामरहु धरमी तरु फल दाम ।
रज्जब दुष्ट दयाल का कहिये कहा बखान ॥८॥

उत्तिम उर अवनी सु समि गुन किसान माँहि सेत ।
रज्जब वैरी बीज कौं सहस गुना करि देत ॥९॥

सोरठा पूरो पिरथी रूप ऊरो दुख दे बोइ क्यू ।
रज्जब खनै सु कूप नेह नीर अधिको बढ़ै ॥१०॥

साखी रज्जब कमद कपास कौं कठिन कसौटी कोडि ।
दुखदाइहु परि सुख धरहि रहै नहीं मुख मोडि ॥११॥

दुष्ट सु दत्त समाति है रसमा रूपी साध ।
औगुण ऊपरि गुण करहि, रज्जब अकलि अगाध ॥१२॥

दुखदाता दूबर दुष्ट साधू सुख संजोग ।
ओषदि आप उठाइ करि रोगहि कर निरोग ॥१३॥

सब दुखदाई सुख दिया कहीं कब्र सम आन ।
रज्जब रीस्या देखि करि, कहिये कहा बखान ॥१४॥

बकत्र सु बीबी तन सहर बाणी बकत्र सु नीर ।
ज्ञान गंग को मिलत ही उभै समस ह्वै बीर ॥१५॥

करागर की न्यामि समि बिमग प्राण बुधिवंत ।
बुदास कसौटी गोदिय नग अंग देहि अनन्त ॥१६॥

पारस पिसण परसत नम परसे लगे सोह के राछ ।
रज्जब जम गुन धन भय बदमे का करवाछ ॥१७॥

औगुण ऊपरि गुण करहि इहै बड़ीं की रीति ।
रज्जब हारहि बीम बिनु गय जगत सो जीति ॥१८॥

करै भलाई बुरे परि ता ममि और न कोइ ।
रज्जब रीझ राम जी परि परि सुजस सु होइ ॥१९॥

परमारथ पीड़ा सहै भल बुरहु की मीत ।
रज्जब परदुख काटहीं भय बिजमारथीन ॥२०॥

मति उन्नार परदुख दवन साहस मीम अपार ।
चतुर अग रज्जब रचे यह बिरम प्याहार ॥२१॥

बरे बुराई ना तजै भले भलाई माँहि ।
प्राणन काया मैं परी सु रज्जब छोड़हि नाँहि ॥२२॥

अमृत माहै बिष नहीं बिष मैं अमृत माँहि ।
रज्जब करिये कोटि बिधि निरमे गा जो माँहि ॥२३॥

समै समंदर रतन दिये समये इंद्र उदार ।
समै मुकति मुक्तहु फलै समये भार अठार ॥५॥
नारायन निरजर सहित गुर नराधपति चोइ ।
मुकतै रीझ रज्जबा भूत कृत परिवत हाइ ॥६॥
पारवती पूछया नहीं महादेव मुख मौन ।
आरति विन उपज्या नहीं आवम अहूर सु मौन ॥७॥
रज्जब हसणा रोवणा चुप बोलणा विचारि ।
आरम्भ मग समये भले विन औसर सु निवारि ॥८॥
समये मीठा बोलणा समये मीठी चुप ।
उन्हाळै छाया भली जो बसियाळै धुप ॥९॥
तरवर सम त्यागी नहीं त्रिबिधि भांति सो होइ ।
कबहू छाया कबहू फल कबहू पतझर होइ ॥१०॥

## खेल का अंग

रज्जब रवाहु रमणि रुचि चोइ जुगति चगि मेल ।
प्राण प्यंड ब्रह्मंड मधि खलक सु खालिक खेल ॥१॥
खेलहि मेला खलक सो खेलहि खालिक मेल ।
रज्जब रीझ्या देखि कर, बिबिधि भांति का खेल ॥२॥

## गुर परसगी का अंग

रज्जब द्वै बूंदर मिलत उपजै बिषनर धाद ।
नर नारी संजोग सुख अकतामुरते स्वाद ॥१॥
रज्जब रामहु रिद्धि बस सिधहु के बस सिद्ध ।
साधू के बस साइमां मेई तेज त्रिबिद्ध ॥२॥
रज्जब बत मैं जोग सब धरम दया अस्थान ।
नांव ठांव निरगुन रहै, मन बच क्रम करि मान ॥३॥

## चतुर जबाबी का अंग

धरम सास्तर दिस दया बैराग्य अलप महार ।
कोकसास्त्र कामपि कथा सेवा महु पुलसार ॥१॥

दरद बिना दरवेस क्या पीर बिना क्या पीर ।
धरम बिना धरमी नहीं अपढ़ न आलम वीर ॥२॥

गुर गोब्यंद साधू सबद गुन गंजन गुन येक ।
जन रज्जब देखे सुने पातिग कटे अनेक ॥३॥

रज्जब नीति नराधपति चलिहीं चल मत आप ।
पुनि सुकृत परजा करै, सो सुख पावहि आप ॥४॥

काया करि सुकृत करै सबद सकल सुखसार ।
रज्जब आतम सों उभ ब्रह्म सु सिधु आधार ॥५॥

चौरासी आतम बड़ा अदमू बड़ा सु अन्न ।
अन्न बड़ा भरमहि सम्या उनमनि लागा मन्न ॥६॥

उत्तिम आदिम देह है, उत्तिम संगत साध ।
उत्तिम संगत दीजिये उत्तिम हरि आराध ॥७॥

चारि दाग चहु जुगनि मैं चारि बेद की साखि ।
चारि मांहि परिवाह चलि मासैं छाया राखि ॥८॥

सीता कुन्ती द्रौपदी चौथी गौतम नारि ।
तारा सुलोचना मदोदरी सती सु ये संसारि ॥९॥

सती भ्रष्ट जम के गये सती सु सुक्ख मास ।
रज्जब रामा नीतगत सीम्यू जाइ निरास ॥१०॥

तन औषदि आकार की मन औषदि सु सबद ।
आतम औषदि नाव निज सीखी साखी पद ॥११॥

ओंकार अविगत नग वप वीरज वप होइ ।
गुरु सबद निज ब्राम है, सत व्रत निपजहि दोइ ॥१२॥

प्यंड प्राण पासिक ग्रसैं नीर नाज निज नाव ।
ज्ञान गुरु की गहन को चतुर बस्त वसि चाव ॥१३॥

## निन्दा अस्तुति का अंग

सखी न साईं सारिखा सूम न ऐसा और ।
रज्जब देख्या निरख करि समैं सु सुरमुखि ठौर ॥१॥

रन मैं रावण मारिये मंत्री के प्रतिपाल ।
रज्जब नाहीं राम सा दूजा दुष्ट दयाल ॥२॥

## अमर अपराध का अंग

तन सुख जाता देखिये रहता मम अपराध ।
रज्जब नाहीं फास बस अघ अरि अमर अगाध ॥१॥

## भोले भाव का अंग

चौपई मोले भाव मिले भगवंत पापि न उपजै साधू संत ।
असमहि सेवैं अघगति हेत टोटी कहै सु रोटी देत ॥१॥

साखी सत्र मित्र का सीर है भोला भाव सु माहि ।
रज्जब सेवक भेद परि तीनि मिलै स्यूं नाहि ॥२॥

भोले कूं भोजन मिलै भे मुख मेलहि रेत ।
ताहे कौं भगलों मिलत रज्जब राखा देत ॥३॥

भगवंत भोला भाव ल सेव सुफल सुजाण ।
रज्जब बिनके वादि सब सेवर खोटे प्राण ॥४॥

चोर पचारख्यु नै लिये मक बंधन सो खोलि ।
मूवा आया मुक्ति फिरि रज्जब लहणी मोलि ॥५॥

## रतन भाखा का अंग

सतजुग छाणि समानि है, ब्रह्म अगिन ले छाणि ।
रज्जब निपज मिसरि मन होहिं सोसहे जाणि ॥१॥

पवमहु माहे पवन सति सुमिरण मरघा समीर ।
तहि चढिआवहि सबद सति फुर मावै गुर पीर ॥२॥

## साधि का अंग

भगवत भगति माहै सदा सोई सवगति साध ।
रज्जब आतम राम सगि सुमिरै अंग अगाध ॥१॥

रज्जब आतम राम सौ धन्य सु सेवक भाइ ।
मिस्या अमिल मिलता रही यहु मत मम ठहराइ ॥२॥

दई सु देता ना थकै लेता थकै न दास ।
रज्जब रस रसिया अमित जुगि जुगि पूरे प्यास ॥३॥

रज्जब राम रचै सदा अंतरि ह्वै न बहुम्र ।
भगवंत भोजन भावता मेरे भीतरि भूख ॥४॥

बेहद भजि बेहद मतै हद का हेत उठाइ ।
रज्जब रमिये राम सौं अति गति भावै भाइ ॥५॥

आतम हंस आरति भगिनि मिहरि मेघ पिव धार ।
बन रज्जब दोऊ अथक जुगि जुगि जन्म अपार ॥६॥

रज्जब उदिध अगाध मैं सरिता आतम जाहिं ।
एकमेक बसती रहै, डेरे डेरा नाहिं ॥७॥

सेवक सिलिया जोति जस मिलि गिलि एक सो होइ ।
रज्जब भज्जव रूप मैं सेवा स्वाद सु दोइ ॥८॥

सरबंगी साँई सहित रस रूपी रस येक ।
रज्जब सोधै पाइये सकतिर स्वाद अनेक ॥९॥

ज्यूं दृष्टा मैं दृष्टि बहु बुधि विद्या अरु वेद ।
त्यूं रज्जब पिव जोति मैं एकमेक भिन भेद ॥१०॥

चौपई बादल बिजुली सलिल समीर, निरगुण सरगुण धरै सरीर ।
सुमि भई सेवा कौं सूझै यहि विधि साधू सांई पूजै ॥११॥

साखी हीरे हीरा बेधिये कै ध्यंद कै परकास ।
यूंही मन उनमैं मिलै रज्जब किया बिमास ॥१२॥

मोख भाव सुमिरै बर्राहि, थोड़ा बहुत सु होइ ।
रज्जब साधु किसाण कै भाव न दूजा कोइ ॥१३॥

मन माया धापै नहीं जुदध्या बधती जाइ ।
यूंही रज्जब राम को भजिये सावै भाइ ॥१४॥

सलितौं समुन्द न धापई इंद्री त्रिपति न काम ।
तैसें भूख न भामई रज्जब रटतो राम ॥१५॥

अगनि न काष्ठ सौ त्रिपति लोचन त्रिपति न रूप ।
तैसें रज्जब राम सौ रुचि है तत्त अनूप ॥१६॥

माछ कै धलि जल परै पै पानी प्रगट न प्यास ।
तैसें रज्जब साध कौ राम भजन की प्यास ॥१७॥

## धीरज सहज स्वाति का अंग

श्लोक सनै कंथा सनै पंथा सनै सनै गिर पर्वता ।
सनै गुरू सनै चेला सनै ग्राम परापता ॥१॥

साखी दादू निबहै त्यूं चल धीरै धीरज माहिं ।
परसैगा पिव एक दिन दादू थाकै माहिं ॥२॥

दादू सहजैं सहज होइगा जे कुछ रचिया राम ।
काहे कौ कलपै मरै दुखी होत बेकाम ॥३॥

बेगाबेगि न पाइये मेला करौ बिमास ।
सावणहू मैं आवई स्वाति सु चौथे मास ॥४॥

तीनि मास बरिषा बिपुल बाणी मन परगास ।
पै मन मुक्ता कहि नीपजै स्वाति सो चौथै मास ॥५॥

ब्रह्मंड प्यंड बरिषा, विपुल, पै स्वाति मौरतौ मिष्टि ।
मुक्ता मम फल समहू के भुमिय मै दीसै वृष्टि ॥६॥

नीर निरमल नभ निरमल, तिण कण सुधा सु आस ।
सिसिहू सरवै सरु रति उसपति चौथे मास ॥७॥

धीरै धरम सु ऊपजै धीरै ग्यान विचार ।
धीरै संदम सब सुलै धीरै हरि दीदार ॥८॥

## निरधारिज निपूसिक का अंग

ब्रह्म व्योम माहै रहै तन मेल्हा तनि तार ।
रज्जब गिरप न गाइ परि कोइ न पावनहार ॥१॥

रहै न कंबला केलि मधि सबद सुमिरि कौ माहिं ।
मन कपूर को दाइ भर विघटप सहिये माहिं ॥२॥

उतरै उड़ग अकास त करहे पाइ कपूर ।
त्यूं मन टूटा हौं त्या सहिये निकट न दूर ॥३॥

अंबसबेस सू आतमा मुई गुरत तहं जाहि ।
जन रज्जब सा यू गमहि जा साध सहिये नाहिं ॥४॥

आतम टूटै राम का जसे उड़ग सुनाम ।
जो विना भाजन कहां केवक बर उजास ॥५॥

## खालसे का अंग

देवल गुम्मट देह सब लिखी लिखाई साखि ।
तहां पड़े पंखि सीस भी, मुरै क्यूं रख सु राखि ॥१॥
अचेत आतमा अवनि गति पड्या वचन बित साध ।
रज्जब पाया पारपू किसका करै अराध ॥२॥
अपणे अपणे रंग मैं राते माते प्राण ।
रज्जब तो मूरिख नहीं समझे सबै सयाण ॥३॥
करि कटाखि मस्तगि धरहिं साईं होइ अनूप ।
बारु बार मुखेन परि तौ क्यूं न होइ रस रूप ॥४॥

चौपई दादू भरिया रामानन्दी दह दिसि आइ मिलैंवहि नदी ।
गाजे घोरे बेद लगि दूरि मिलत सुमुखि वोहे नहिं मूरि ॥५॥

साखी मथुरा मैं माला लूनी तिलक उतरे मंच ।
रज्जब छूटे राम जन पड़ि दादू के पंथ ॥६॥
बप बिरंभ जो जीवतहु सो मूवहु क्यूं न गंधाइ ।
रज्जब देखो दीप दिसि बुझत न पूजा जाइ ॥७॥
कुम्हार कुम्हारी मात पित पाना मई सु पोखि ।
रज्जब बालक बाप बपु बस्त्र सके नहिं जोखि ॥८॥
सूक भवन सरपहु भट्या मनिष तहां नहिं जाइ ।
महि सु आवर्सियुं मा बनै पास भये सो खाइ ॥९॥
भगतवछल मुरली प्रभु, सुमिरिपू करै अभ्यास ।
गोषा ज्ञान सनेह मत काटहु केसरि काम ॥१०॥
काया कुमती नीकसहिं, माऊ नाग सु और ।
येक सु धरि जुयि व्यापुरहिं, येकहु की नहिं ठौर ॥११॥
नींद न आवै ठौर विहु बिपै बंदमी बैर ।
ज्ञानी देखो ज्ञान करि रज्जब कहीं न गैर ॥१२॥

चौपई गुर नरेंद तें गत मर जाहीं तिनका सोच न उपजै माहीं ।
सरवर पत्र सीस तै केसा तुष पृदू का कौन अंदेसा ॥१३॥

साखी भार सहित भार बर हलुका भार उतरणू भारी ।
बिकट कसा बिकट गति बप मैं देखा लेहु बिचारी ॥१४॥

मेक जापपण अरु चपलता मेटी मत की लीक ।
मुख न म्यासे मनु हरि पानि सपाई पीक ॥१५॥
बाढै बूटे एक गति परतपि देखे कोइ ।
दोइज अमावस निकट ससि सिसु रूपी होइ ॥१६॥

चौपई दृष्टि मुष्टीमन बुधि ह्वै माहिं, तौ लिखत मैं संचर नाहिं ।
चतुर मस्तु मैं बिछुरै कोइ रज्जब पाठ सुद्ध नहिं होइ ॥१७॥
पाहुनै कीन परी पहुनाई घर के भगत भूलि गये भाई ।
तब मेहमान करै मेहमानी उलटी कथा न जाइ बखानी ॥१८॥

साखी अठार भार छह रुति लिये उदै अस्त व्योहार ।
उन्हासू स्यालू दोइ दिपै तामै फेर न सार ॥१९॥
काया कुम जल सौं भरे, ज्ञान तेल भर पूरि ।
यास्त बाती सबद उज्यासा अचेत तिमिर ह्वै दूरि ॥२०॥
अगनि जीवतौं जीवते अगनि मुवो मरि जाइ ।
दून्यू दीपहि दुगिन घिरि, नर देखो निरताइ ॥२१॥
देखी सम दुकाल मैं साहिब का ह्वै दीठ ।
रज्जब सनमुख कौन सौं कहो काहि दे पीठ ॥२२॥

## पुस्तग मामा

सन्देह सत्र सति सास्तर आसंक्या अबिनास ।
अमतगुरू अगि जोग मत परम तत्त परगास ॥१॥
क्षानि पंचमी अमर फल आतम ब्रह्म बसास ।
अंतक इंद्री अधनि के प्रानहु के प्रतिपास ॥२॥
तमब तसल्लिह तालिबा ने गुफ्तम् औसाफ ।
रज्जब सैर समुद है मिसलसि सुरंद मुंसाफ ॥३॥

इति श्री रज्जब जी की साखी सम्पूर्ण समाप्त ।

रज्जब जी द्वारा रचित—

# पद भाग

## * राग रामगिरि *

सतगुर सौं यो चाहि मिल कीया ।
यो परि सीस न दीजिये मिलि अमृत पीया ।।टेक।।
ज्यूं ससि के सरणा नहीं कोई कंवल बिगासै ।
मुदित कमोदनि आप सौं बांधी उस आसै ।।
ज्यूं दीपक के दिल नहीं को पड़ै पतंगा ।
तन मन ही मैं आप सौं मोड़ै नहि अंगा ।।
ज्यूं कंवल कोस आपै खुलै मनि मधुकर नाहीं ।
भंवर भुलाना आपु सौं बींधा यू माहीं ।।
ज्यूं चन्दन चाहै नहीं कोई बिषधर आवै ।
जन रज्जब अहि आप सौं सो सोभिर पावै ।।१।।

प्रीति गुर गोबिन्द सौं ऐसी बिधि कीजै ।
आदि अंति मधि एक रस जुगि जुगि सुख लीजै ।।टेक।।
प्यंड प्राण प्यारे भये सो नेह न नासै ।
बेलि फली ज्यूं बाड़ की टूटयू परनासै ।।
ज्यूं हणवत हित जत सौं अड़पा सदा सो सांचा ।
हांक सुनत नर हींज ह्वै अजहूं कुर बांचा ।।
ज्यूं दृढ डोरी गुण आत्मा जीवत मृत पासा ।
गुरु गोबिन्द सौं सूत यूं सुणि रज्जब दासा ।।२।।

संतौ बाट घटाऊ नाहीं सो आपण समझै नाहीं ।
बिरला गुरमुखि पावै सो फिरि बहुरि न आवै ।।टेक।।
मति मारग मैं चलना तहं नाहीं तीन्यू भवना ।
ओं ओंकार अकेला सो आपु आपु मैं बेला ।

येक आपपण अरु अपसता मेटी मत की मीक ।
भूख न ग्यासै भगतु हरि, पाणि समाई पीक ॥१५॥

बालै बूटै एक गति परतपि देखै ओइ ।
दोइज अमावस निकट, ससि सिसु रूपी होइ ॥१६॥

चौपई दृष्टि मुसीमन मुषि हूं माहि तो सिखत मैं संचर माहि ।
चतुर वस्तु मैं बिछुरै कोइ, रज्जब पाठ सुद्ध नहिं होइ ॥१७॥

पाहुने कौन परी पहुनाई भर के भगत भूलि गये भाई ।
सब मेहमान करै मेहमामी उलटी कथा न जाइ बखामी ॥१८॥

साखी बठार भार सब रति लिये, उवै अस्त ब्योहार ।
चन्हालू स्यालू दोइ दिपै, तामै फेर न सार ॥१९॥

काया कुंभ भल सौं भरे, ज्ञान तेल भर पूरि ।
मारुत बाती सबद उज्यासा अचेत तिमिर हूं दूरि ॥२०॥

अगनि जीवतों जीवते अगनि मुवौ मरि जाइ ।
दून्यू दीपहि दुणि सिरि, मर देखौ निरताइ ॥२१॥

देखी समैं दुकाल मैं साहिब का हूं दीठ ।
रज्जब सनमुख कौन सौं कहौ काहि दे पीठ ॥२२॥

## पुस्तग नामा

सन्देह सत्र सति सास्तर आसंक्या अविनास ।
जगतगुरु जगि जोग मत परम तत्त परगास ॥१॥

वानि पंचमी अमर फल आतम ब्रह्म दमास ।
अंतक इंद्री अमनि के प्रानहु के प्रतिपास ॥२॥

तमब तसल्लिह तालिवा पे गुफ्तम् औसाफ ।
रज्जब सैर समुंद है मिसलथि नुरंद मुसाफ ॥३॥

इति श्री रज्जब जी की साखी सम्पूर्ण समाप्त ।

सुंचि वेली सो वेली सो, निपजै माल यु भेली सो ।
बाहक बीज भाव स्यौं बाह्या अंकुर आदि उवेली सो ।।टेक।।
बन छोड़ युकति माहिसा माली निरति किया निन्दमली सो।
पाग प्रकास ताक तत ठोरू सुख रटण बिसवेली सो ॥
अहि निसि वेलि बधै विधि साथी, वाड़ न विघैं बहेली सो।
फहम फूल फूली फल कारन सन मधुकर मिलि आवहि सो ॥
वाड़ी बिरह बिघन कछु नाहीं मृग माहै नहिं आवहि सो।
बागवान पुनि रहै वधिक बिधि बैरी बेलि न भावहि सो ।।
फल हरि दरस सता तहि सामै रसवारे भ्रीसावहि सो ।
यन रज्जव जुगि जुगि सों जीवै ऐन अमरफल खावहि सो ॥७॥

सुचिम सेव सरीर मैं कोई गुरमुखि जाणै ।
मन मिरतग तन पैठि करि, पति पूजा ठाणै ।।टेक।।
पश्चिम पाट कहु को रचै सति सेवा सावै ।
बिबिध भांति बहु बंदगी बिचि ब्रह्म बिराजै ॥
सांच सील जल सापड़ै सुचि संजम सोधा ।
ब्रत उनमनि अहि निसा मन मनसा बांधा ॥
पाती पंच चढ़ाइ लै सत सुकृत सुगंधा ।
धूप ध्यान ध्यावै दिया यहु आरंभ दंधा ॥
घंटा घट रट राम की तासी तत ताला ।
वाणी बेण मृदंग मत सब सबद रसाला ॥
सरबस लै आगे धरै, मनि भोग सो सावै ।
जुगि जुगि जगपति आरती जिव न्यूठणि भावै ॥
दीन लीन सांचै मतै हर के हंकीता ।
भयभीत मयानक भगत सों निरगुण भ्यौना ॥
सारी सेव सरीर मैं सब करै बखाना ।
रज्जब राम रजाइ यूं यन जोति समाना ।।८।।

संतौ मनमोहन मिलि नाव ।
ज्यूं बिस वसुधा आगी माहीं निकसि न मरमण पाव । टेक।।
ज्यूं वृक्ष बीज परसि वपु बहनी बसुधा गाहि समाव ।
उदै अंकूर कौन विधि ताको फलै अग न्धियावै ॥

ऐसी समझि सयाना यहु आतम अगम पयाना ।
यूं चलि चौथे आवै सो परमपुरिष को पावै ।
तहां पंथ पथिक पति ऐकै यहि रमिबै रंग अनेकै ।
जन रज्जब रहु पाई, सो आतम करै न जाई ॥३॥

संतो वसुधा बिरिछ समाई ।
अदभुत बात कही को मानै कौन पतीजै भाई ॥टेक॥
मूल डाल सौं अधिर अंभूपा ऐसि कहां बिलंबावै ।
तरुवर हुआ बीज मांहि बीस्या बिहंग न बैठन पावै ॥
पहुता पत्र फल फूल नाहीं त्रिभुवन धूंध प्रकासै ।
दीरघ द्रुम दीसंगा कोई छाया तिमिर न नासै ॥
अकलि बिरष फटिक क्रम नाहीं पारजात पद पूरा ।
जन रज्जब सौं जुगि जुगि निहचल सबकी जीवनि मूरा ॥४॥

संतो अदभुत खेल अगाधा ।
सो खेलै कोई ऐक साधा ॥टेक॥
जो गगन गासि का सोधै सो पंचनि को परमोधै ।
जो बाइ बंध गहि लावै सो बित बापि न दावै ।
जो तेज माहिं धूप राखै सो महिमा कौन सु भाखै ।
जो पाणी मैं घृत काढ़ै सो मति सबतैं बाढ़ै ।
धर पृथ्वी धुणि दूवै, सो रज्जब रामहि बूझै ॥५॥

अब मोहिं नाचत राखहु नाथ ।
चारि पहर चारयूं जुग नाच्यो पर परबसि पर हाथ ॥टेक॥
तृष्णा ताल पखावज पावक स्वर स्वारथ सब बाजै ।
मनूं नर कुमति उपजाई राग्या रागर दोष निवाजै ॥
नाना नग पहरि पग नूपुर धधम चरण चलावै ।
चौरासी घट भय रेग लाई सब संगीत मिलावै ॥
चौरी फिरथा नाच मन मानी हुरमी हेत सु हारी ।
गगन भूमि पाताल पर पग थील न मही मिलारी ॥
रज्जब रज्जा रजा की रगम नहिं थौल न पूंजन पावै नाम ।
राम राम दरस तन धाम पूगो सो दीज प्रतिहात ॥६॥

मुंधि बेसी सो बेसी सो, निपजैं माम यु मेली सो ।
बाइक बीज माय स्वैं बाझ्या अंकुर मादि उदेसी सो ।।टेक।।
जल सोइ पुपधि माहिसा मासी निरति क्रिया निज्वर्मसी सो।
पाम प्रकास ताक तत तोक स्प रटण बिसबैसी सो ।।
महि निसि मेमि बमे निधि सागी, बाइ म बिपै बहेसी सो।
प्रहम फूल फूली फल कारण मन मधुकर मिलि आवहिं सो ।।
माही बिम्ह बिपन कछु नाहीं मूम माहै नहिं मावहि सो।
बागबान पुमि रहै बधिक बिधि भेरी मेमि न मावहि सो ।।
फल हरि दरस सदा तहिं मागें रखवारे म्योसावहिं सो ।
जन रज्जब सुमि सुमि सों बीबै ऐन अमरफल खावहि सो ।।७।।

सूधिम सेव सरीर मैं कोई गुरमुखि जाण ।
मन मिरतग तन पैठि करि पति पूजा ठामै ।।टेक।।
पञ्चिम पाट कहु को रचे सति सेवा सामै ।
बिबिध भांति बहु बंदगी बिधि ब्रह्म निरामै ।।
सांच सील जल सापड़ै सुचि संजम सांधा ।
बत उनमनि अहि निसा मन मनसा बांधा ।।
पाती पंच चढ़ाइ कै सत सुकृत सुगंधा ।
धूप ध्यान ध्यावै बिया यहु मारंम धंधा ।।
घंटा घट रट राम की तामी तत ताभा ।
बाणी बेण मृदंग मठ सब सबद रसामा ।।
सरबस ले मामे घरे भजि भोग सो मागे ।
जुगि जुगि जगपति आरती जिव पूठणि मागै ।।
दीन लीन सांचे मतै हर के कडोता ।
भयभीत भयानक भगत सों निरगुण न्यौता ।।
सारी सेव सरीर मैं सब करै बखाना ।
रज्जब राम रजाइ यूं जन पोति समाना ।।८।।

संतो मनमोहन मिलि नावै ।
ज्यूं बिल बघूला भाषी माहीं निरखि न भरमण पावै ।।टेक।।
ज्यूं बृछ बीज परखि ज्यु बहनी यसुधा गाहि समावै ।
उवै अकूर कौन बिधि ताको कैसे अग दिखावै ।।

स्वाति बूंद ज्यों सीप समानी सो फिरि मगन न आवै ।
अति बसि कंवल केतगी बींधे आन पहुप नहिं भावै ॥
अम्मसनेत सुई ज्यों पैठी सो बागे न सिवावै ।
रज्जब रहै राम मैं मन यूं समरथ ठौर सुभावै ॥९॥

यूं मन निरलग ह्वै रहै तौ मारै नाहीं ।
माया मैं न्यारा रहै जिव जगपति माहीं ॥टेक॥
ज्यूं मुरदा अरथी पड्या बरतणि बहु बाणी ।
औरौं की भांवरि भई उन कछू न जाणी ॥
निहकामी न्यारा रहै, प्रतिमा परि खेलै ।
बरतणि बरतै विगति सौं उर आप न मेलै ॥
बाजीगर की पूतली बाजीगर हाथैं ।
रज्जब रांम स्यूं रहै, नहीं औगुण साथैं ॥१०॥

अधिक अमेकी प्रान है सति साध सिकारी ।
ध्यान बान करि कंवल मैं धुनि धनुहीं धारी ॥टेक॥
आखेट वृति आतम मई, दिसि दया सु सोपी ।
बन बसुधा नौखंड परि, बुधि बावरि रोपी ॥
बैठे मूल सु मारनै पारधि परि प्रामा ।
पंच पचीसो मृगमा सापे सुकि साना ॥
अंमि अहेड़ी आफरे, उर अवनि अड़ाई ।
मारे न्यावज सोधि सब कुलि करम कसाई ॥
ऐसे दुष्ट सु ऊबरैं तन मन धुन द्रोही ।
जन रज्जब कहै राम जी सौं पावै मोही ॥११॥

रे प्राणी यहु खेलि सिकार रे ।
मन मृग ढूंढि स्यावजहु मार रे ॥टेक॥
मन मृग मारि तीस तहिं लार रे, चेतनि चीता स्याहि परि डार रे ।
गुण गण हंसती अनस अहार रे तृष्णा तीतर बाज बिचार रे ॥
केहरि काम अधिक अधिरार रे, सारदूल सुमिरन भुलि जार रे ।
या आयुध सुधि समझि सिभार रे, जन रज्जब सुनि ह्वै उठि पार रे ॥१२॥

रे मन सूर संत क्यूं भाजै ।
मुहमिस भयूं मरण थे डरपै तौ दूहू पांवड़ा लाजै ॥टेक॥
उलटप् उमड़ कहौ क्यूं पावै जब लग दर्शहि न भाजै ।
मरवौं मानि जीवतौं बाहिर जनम मरण भय भाजै ॥
जे सेवग संकट सौं डरपै तबै स्वांग कहां छाजै ।
देह उठाय फौज मैं आपै तब सब बीर बिराजै ॥
धरि दस जीति सकल सिर ऊपरि सूर ससि तारे गाजै ।
रज्जब रोपि रह्या रण माहीं, नाँव नगारा बाजै ॥१३॥

रे मन सूर संक क्यूं मानै ।
मरणे माहिं एक पग ऊमा जीवन जुगति न जानै ॥टेक॥
तन मन आशा ताकौ सौंपै सोच पोच नहिं आनै ।
छिन छिन हाइ जाइ हरि आगे तौ भी फेरि न बानै ॥
जसे सती मरै पति पीछे जलतौं जीवन जानै ।
तिस में त्यागि देह जग सारा पुरिष नेह पहिचानै ॥
मल सब सकल सौंज सिर सहता दूरि कारिज परिवानै ।
जन रज्जब जगपति सोइ पावै उर अंतरि यूं ठानै ॥१४॥

रे मन सूर सम क्यूं भागै ।
ताथ मरण मांहि हरि आगै ॥टेक॥

सूरा सिर धरि खेले तब राम रंक करि पेले ।
जब दूजा निसि नाहीं तब डाकि पड्या दल माहीं ।
निरआसह कोई जीवे तब सार सुधा रस पीवे ।
ते चाकर चित माहीं जे चोट मुहैं मुहि खाहीं ।
जब उतरि उतारैं जूझ तब व्यापक सबहीं सूझे ।
जब सूरा सिर डारै तब रज्जब राम सुधारै ॥१५॥

रे मन ऐस राम कहीजे ।
मरण डरै मरि प्राण पतीजै ॥टेक॥
जैसे सती सकल तजि बोलै निहचल राम कहै नहि डोलै ।
जो पहुचै सिर त्याग सो रण संग्राम न भागै ।
मरजीवा मरि समुंद समाई सो रज्जब मग मिलनी जाई ॥१६॥

संतौ मरनै मंगल मीठा ।
सो गुरमुख बिरलै दीठा ॥टेक॥
जो प्रथम मांझ ते मूये सो राम कहण कू हूये ।
दूजै देह जु त्यागी सो आतम रामहि लागी ।
तीजे आतम भूलै तिनि सुरति सुपाया मूलै ।
चौथे अंत न कोई तहां रज्जब येक न दोई ॥१७॥

पहले दुख पीछे सुख होई ।
ताको सहज कहै चन कोई ॥टेक॥
ज्यू जीभहि पैठावै पाठ अहनिसि दुख अंतरगति गाठ ।
पड़े पाठ पीछे सुख आणि सहजै पड़े जीभ कौं वाणि ।
ज्यू कुरंग कसणी मैं आणि दगध्यू तजैं बाहिली बाणि ।
संकट पड़ि मृग मनिया मेल पीछे भया सहज का खेल ।
जैसी बिपति बाज सिर होइ तिसि तिसि त्रास रहै मिसि साइ ।
पहलै कठिन कसौटी बाइ पीछे मुकता भावै जाइ ।
मन इंद्री ऐसी बिधि साधि सबसौं तोरि नांव बिच बांधि ।
रज्जब संत असहज समाइ पीछे मिलै सहजै पौं जाइ ॥१८॥

जीव जुदा जगदीस मैं सो जनि जाना ।
अतरि ही अंतर रह्या माया ममिमाना ॥टेक॥
ज्यूं आंधिर परचै आंखि है पै अरथ न आवै ।
त्यू प्राणी प्यंडहि रचे पति परख न पावै ॥
सुंनि सरूपी राम हैं ओंकार सु आभा ।
बिन पावृग अटक तहां विट बूद सु लाभा ॥
प्रान प्याइ रस पोलिया पिया पशू भाया ।
रज्जब कीड़े कहत के कण स्वाद न पाया ॥१९॥

सतो मम न्यारा मत माही ।
सागी सबद सीप सतगुर की पापी परसै नाहीं ॥टेक॥
साधू ग्यान महा मिश्री मत हंस खाय गट कीने ।
मीठ मंगि सु मास बिकाणे अति काटि सो दीन ॥
बैठा बिसम्भर माती माणिक मन क मूत पिराय ।
भरम परग अर बगर दीसैं प्राण प्रबीण सु रोय ॥

मो मन फन्क हुरी बस हीरा सनमुख सोई रंगा ।
जन रज्जब पड्द सो पलकै काडै कपटी अंगा ॥२०॥

राम राइ अइया मन अपराधी ।
जोइ जोइ बात जीव छिटकावै सोई उलटि उमि नाषी ॥टेक॥
जासों कहौं पलक मति परसै साइ फेरि इन सामी ।
निस दिन निकट रहत नित निरखत मन की भात न लाषी ॥
येऊ मन जाष कीव परि बैठा पंचयाण सर साधी ।
भावै नांहि सबद सुणि तेरा काटि रह्या यू कांधी ॥
छल बल बहुत ग्यान गुन उर मैं और महा मन स्वादी ।
रज्जब कहै राम सुणि भुगणी कृपा करै मन बांधी ॥२१॥

राम राइ महा कठिन यहु माया ।
जिनि मोंहि सकल जग खाया ॥टेक॥
इन माया ब्रह्मा से मोहे संकर सा अटकाया ।
महा बली सिष साधिक मारे तिनका मान मिराया ॥
इन माया पट दरसनि लाय बातनि जग बौराया ।
इन वस सहित चतुर जन पन्डित तिनका कछू न बसाया ॥
मारे बहुत नांव सू न्यारे, जिनि यासों मन लाया ।
रज्जब मुकति भये माया सो जागहि राम छुड़ाया ॥२२॥

राम राइ राखि लेउ जन तेरा कोई नांहि दुपि बल मेरा ।
मन मैमत फिरै माया संगि घरि आवै नहि घेरा ॥टेका॥
पंच प्रपच प्राण माहि पैठे घर ही मैं घर घेरा ।
निस दिन निमप हाल नहि न्यारे देह रहे दिस डेरा ॥
नाहरि विपन बहुत विधि बैठे परकीरति विच पेरा ।
सुनहु पुकार मुरति कर साई दुख दीरघ बहुतेरा ॥
ये सब मार मिहरि सौं भाजैं तब जाइ होइ निबेरा ।
आन उपाय कोउ माहि जिन की जम रज्जब सब हेरा ॥२३॥

भगति भावै राम भगति भावै होहु कृपाल तो प्रान पावै ।
स्वर्ग पाताल मधि मोक्ष मागौं नहीं और कछु दाम नहि संग भावै ॥टेक॥
भक्ति भो हरन भगवान बसि भगति कै सिद्धि नव निधि रिधि भक्ति माहीं ।
मा दउ दातार करतार करतामई दास क आस उर और नाहीं ॥

भक्ति मैं मुक्ति पदारथ सब सहित भगति भगवन्त नहिं भेद भीना ।
परम उदार पसाव सो कीजिये, दान दीरघ पावै सु दीना ॥
भक्ति भंडार भीतरि भरी सकल निधि तुम बिना कौन मधु मौज होई ।
रज्जब रंक कौं रहम करि दीजिये और ऐसा न दातार कोई ॥२४॥

संतौ स्वांग मारिये सेबै ।
झूठा रोष करै मति कोई काम चप्रकृता देबै ॥टेक॥
दाढ़ी मूछ कसे करि कोमे कामिणि रूप बनावै ।
मारी ह्वै मारी कौं भुगतै यूं अपराध कमावै ॥
काया राखि राखिब कारण गुर शहनादे छाये ।
सो देवल दस बार लुटाई सकल सबाइ समाये ॥
काठौं पढ़ि माटी के लीये कहु किन विषै कमाई ।
मिरतग स्वांग मोहि इन भगतौं रज्जब भगति समाई ॥२५॥

संतौ स्वांग सरै का काम ।
सींच सुफल साचे मधि चमता मिस्तारै निज नाम ॥टेक॥
सील रहै संजमि के प्राणी भगति किये यौं पारा ।
ध्यान गहै तन मन कौं मोरे बामैं क्या उपमारा ॥
दीन हुये अन्तरमति नाधै सेवा सब सुभमाई ।
प्रेम प्रीति परमेस्वर मानै भेषौं में क्या माई ॥
छाजन भोजन सिरज्या चहिये बिन रचना कछू नाहीं ।
तौ ये वरन करै किस ऊपरि क्या है दरसन माहीं ॥
नांवै तिरै तिरगुणी माया नाइ निरंजन पावै ।
जन रज्जब बिन नांव बिहूणा झूठा मूठ बनावै ॥२६॥

संतौ स्वांग करै क्या प्राणि ।
नांव बिना नाहीं निस्तारा और सकल विधि हाणि ॥टेका॥
स्यौ बिरंचि मुनि नांव दिढावैं नावैं नारद सेपा ।
उनकी समझ नाइ मन लागा कौन करै भरम भेषा ॥
बेद कुरान दिढावैं नावैं नावैं साध सयाना ।
सोई नांव निरताय लिया निज कहो करै कहु बाना ॥
नावैं लिय सरै सब कारिज माइ निरंजन रीझै ।
जन रज्जब बिन नांव बिहूणा कोटि स्वांग नहीं सीझै ॥२७॥

संतो भेष भरम कछु नाहीं ।
कछु दरसन छपाणवे पाखंड मूसे परपंच माहीं ।।टेक।।
स्वांग मलिस सम्पूरन दीसे मृगत्रिसना मन धावै ।
नीव नीर तामैं कछु नाहीं दौड़ि दौड़ि दुख पावै ।।
सीत कोट माहि छिपि बैठे कहौ चोट क्या होई ।
ऐसे विधि दरसन मैं बैठे, त्रास न खाइया कोई ।।
सकल चित्र चिरमी की पावक मन मरकट सब सेवै ।
जन रज्जब आशा नहिं उतरे उर आंधे जिव देवै ।।२८।।

दरसन सोच जु साईं दीया आपू आप उदर मैं कीया ।
पिछला सब पाखंड पसारा ऐसे सतगुर कहै हमारा ।।टेक।।
सुप्रति झूठ जु बाहरि कानी कपट अनेक हाथैं बांटी ।
मनमुखि मुद्रा मिथ्या सींगी भरम मगौहा धीगाधींगी ।
कपट कला बैनहु अगि ठाटी फाड़ि कान फोकट मुखि माटी ।
परपंच माला तिलक जुवानें इहां ही आइ देही परि ठानै ।
पट दरसन खोटे कसि कीने अनिभल आइ इसापरि सीने ।
जन रज्जब सा मानै नाहीं पैसी छाप नाहि इन माहीं ।।२९।।

सतो आवै जाइ सु माया ।
आदि न अंति मरै नहि जीवै सो किनहू नहि जाया ।।टेक।।
लोक असंख्य भये जा माहीं सो कहि गरभ समाया ।
बाजीगरि की बाजी ऊपरि यउ सब जगत भुलाया ।।
सुन्नि सरूप अदल अविनासी पंच तत नहीं काया ।
औतार अपार भये आभू ज्यू दसत दृष्टि दिखाया ।।
ज्यू मुख एक देखि है दरपन मोमों दस करि गाया ।
जन रज्जब एसी विधि जानै ज्यू था त्यू ठहराया ।।३०।।

अवधू कपट कला एक भारी मू सतगुर सागि दिखारी ।
पट दरसन दीरघ ठग बैठे काम र्ता व्यापारी ।।टेक।।
स्वामी सबै स्वांग दे सीने कै विधि नजा धारी ।
ऐसी सांटि भई सब ऊपरि खींच सिरोमणि हारी ।।
बांधि लिये बस बस दिखारे तर दीरघ बनमारी ।
ऐसे परपा काम है बंग माना पासि पसारी ।।

कुसि बांधे कृतिम सौं कसि कसि मन बच करम बिचारी ।
सरग नरक अरु माय मही परि, यू ठगि करी ठगारी ॥
सुर नर नाथि दिये गुंठप् ठसि पीठप् छाई छहारी ।
जन रज्जब जो इनसौं मुकते तिन ऊपरि बलिहारी ॥११॥

संतो ऐसा यहु आचारा ।
पाप अनेक करै पूजा मैं हिरदै नहीं बिचारा ॥टेक॥
चींटी दस चौके मैं मारै भुण दस छाँडी माहीं ।
चाकी चूल्है जीव मरै जो सो समझै कछु नाहीं ॥
पाती फूल सजीव ही तोड़ै पूजण को पाषाणा ।
पवन पतंगे दुहि आरती हिरदे नहीं बिनाणा ॥
सारे जनमि जीव संघारै यहि खोटे षट कर्मा ।
पाप परचंड चढ़ै सिर ऊपरि, नांव कहावै धर्मा ॥
आप दुखी औरौं दुख दायिक अंतरि नाम न जान्या ।
जन रज्जब दुख करै दृष्टि बिन बाहर पाखंड ठान्या ॥१२॥

संतो प्रान पषान न मानै ।
परमपुरिष बिन पाखंड सारा तहां न आसति आनै ॥टेक॥
सिमिना सैल सगे सुत बंधू सौंपे मुकति न भावै ।
सो स्वामी संपुट मैं बांधे घरि घरि मोल बिकावै ।
जाका इष्ट अवनि नहिं छाड़ै सेवग सुरगि न जाई ।
यामैं फेर सार कछु नाहीं भरम न भूलौ भाई ॥
बांधे कंठि हमारे बासै ओस्यूं पावक पाणी ।
रज्जब घड़े सुनार सिलावट सो सकलाई जाणी ॥१३॥

संतो कहै सुनै कछु नाहीं ।
जब लगि जीव जंजाल न छूटै बिकल बिषै सुख माहीं ॥टेक॥
करै अनीति मगन माया मैं पढ़ै अगम की बाणी ।
सो बिपरीति संत नहिं मानै झूठि माहिली जाणी ॥
मातें सीखि ब्रह्म ह्वै बैठा निरभय बिषै रमावै ।
पुहप् सौं परपंची प्राणी साखि अगम की ल्यावै ॥
पद साधिन सिध साधिक बोलै इंद्रिन है अपराधी ।
नहिं धरि नाव नहीं निज निरमम देह दसा नहिं साधी ॥

जो कछु करै अजान अग्यानी सोई समझि सयाना ।
जन रज्जब वार्सौं का कहिये देखत खोस मुसाना ॥३४॥

हेरि हेरि हरै हरी हिरदै की हरै ।
राखण की राख प्रभु फेरण की फेरै ॥टेक॥
ताकि ताकि ताके मनहु त्रिगुणी मैं न्यारा ।
उरझे सेती सहित माइ सुरझे सौं प्यारा ॥
देखि देखि देखे दिल दूजे महि धीजै ।
मन वच करम त्रिगुण के सोई सुणि सीजै ॥
परखि परखि परसै तहाँ पति पारिख पूरा ।
रज्जब रज तज काटई हरि हेरि हजूरा ॥३५॥

सुणि संसारी सीख कौं मति भूलै भाई ।
जेहि पथ प्रीतम पाइये तहि मारगि जाई ॥टेक॥
छिपिया सौं बिगता रही मति करै सगाई ।
मूसा मिन कौं भिस्तू मेल्है भटकाई ॥
सुरही स्यघहि क्यू बनै सो सोधिर खाई ।
भइया मूढ़ अग्यान मन घरि बैठा आई ॥
जो जजास जीव सौं कटपा सो फरि न साई ।
जन रज्जब गत ऊपर, बित मूस न खाई ॥३६॥

करि न कुसंगति आतमा गुर ग्यान बिचारी ।
सकल बुरे का मूल है सुणि सीख सु सारी ॥टेक॥
चोर जार बटमार है बहु करै बुराई ।
संगति करि संकट सबै नीकै निरखाई ॥
काया संगति कपट मैं गन मनसा मसी ।
प्राण पाप पूरण करै पंचनि की सैनी ॥
माया मिलि मैले सब सब लोक मंझारा ।
जन रज्जब रज ऊगरे, रटि राम नियारा ॥३७॥

हिन्दू तुरक गुणी रे भाई काहू से मति होहु दुसराई ।
जीवा हाइ उपारा देखा किया न काहै चाई ॥टेक॥
मारहि जीव साध बिन मौन्न मनमुखि नाम नरामै ।
भगा लिपू सगोग प्राणी यहु न टलैगी हाम ॥

पग की पीड़ असम करि उन्हा दुख उपरि सुलगाया ।
सत पुकार सुणी सांई ने हजरत दांत तुड़ाया ॥
जौ की रोटी भाजी सेती मुहमद उमर गुजारी ।
थामें ध्यान खबरि का मांगे यूं करि फिर बनवारी ॥
रिखि रहते अंगसि आइ बैठे कड़े कड़े फल खामे ।
घटा अगनि भुगती सौं टासी जीवन जगति सतामे ॥
हुये हमालि खोलिया साध बेअजार सुखराई ।
जन रज्जब उनकी छाया मैं मिहरि दया तिनि भाई ॥३८॥

म्हारी मन्दिर सूनौ राम बिन बिरहनि नींद न आवे रे ।
परउपगारी ना मिलै कोई गोविन्द आनि मिलावै रे ॥टेक॥
बैठी बिरह निष्फल न भाग अविनासी नहिं पावै रे ।
इहि बियोग जागें निस बासर बिरहा बहुत सतावै रे ॥
बिरह बियोग बिरहिनी बैठी घर बन कछू न सुहावै रे ।
दह दिसि देखि भयो चित चकित कौण दसा दरसावै रे ॥
ऐसा साथ पड़या मन माहीं समझि समझि भूखावै रे ।
बिरह बाण घट अंतरि लागे घाइल ज्यूं घूमावै रे ॥
बिरह खाइ तन पंजर छीना पीव को कौन सुनावै रे ।
जन रज्जब जगदीस मिले बिन पल पल बरस बिहावै रे ॥३९॥

औवू सुरही सकवि संभाली ।
दह दिस बिमन बाघ बसुधा मैं मीच मया करि टासी ॥टेक॥
नौखंड माहिं फिरै चरनोही सात समुंद बसयाना ।
तन भय गाय परम नहिं सारै समझी ग्वाल सयाना ॥
स्वारथ सींग समागम छाता थाबीन रुदरि अस्थाना ।
ध्यावे बच्छ सु पांच पचीसौ राग दोष सब ठाना ॥
मोह की साठी हेत हांकि लै बेतनि पगि रखवारी ।
ऐसे संवा जासि जाति करि कारिज सार भारी ॥
भ्रमम उधेरी उलटि अकासहिं गांव नाम सु पराई ।
बाइक बच्छ दोह सुनि सीतल संतोष सरोवर पाई ॥
कामधेनु ह्व काम न व्यापै दूध दरस निज पाना ।
जन रज्जब है भय धनु सो पीवे अमृत पाना ॥१॥

काम करम बसि का नहीं कहु काहि बताऊं ।
जे आये ते सब भये सुर साज न पाऊं ।।टेक।।
ब्रह्मा। बिश्न महेस सेस सब मीष भसारा ।
कोई पसि कोई बासती यहु एक बिचारा ।।
चन्द सूर पाणी पवन धरती आकासा ।
षट दरसन अरु सकल सौं सब सुनिये बासा ।।
अंतक मुक्ति आकार सब येक भोसा माहीं ।
जन रज्जब जगदीस भजि जग आते माहीं ।।४१।।

आई आंधी अकल की अभिअंतर देसा ।
बरषि बाहि सब उड़ि गई अहिये नहीं लेसा ।।टेक।।
कृष्ण बड़ाई के पड़े रज राजस उड़ी ।
परकीरति पषी मुये सैमान गु सड़ी ।।
कर्मन जोड़ा उड़ि गयो सुधि बाबरि आये ।
हानि मानि सारी चली भाये मनभाये ।।
सुमति सरीर समूह तैं पट पड़र मांगे ।
बादलि बिरह बिगासिये मनौं झर लागे ।।
अनल अनलि सू ऊमटे उर अवनि सु धाई ।
रज्जब नेपै नांव की आस्मा अघाई ।।४२।।

संतौ बोध बिमल बरदाई ।
ज्याति पांति जिब की नहि माने परसत होत सहाई ।।टेक।।
दृग बनां जिमि देलि दिवाकर, तम तारो गुलि जाई ।
ऐसे ज्ञान अज्ञान उदायत उर आविश रमनाई ।।
इंद्र मकसि धरि ऊपरि अरपत मटि बधि करत न भाई ।
नीर ध्यान के मति मति यके अरु तक सत निरनाई ।।
निज दृष्टी माही तहां दुबिधा पंथ तस परि पाई ।
रज्जब रही वहां सपु दीरप समता सुरति समाई ।।४३।।

सुनि याउ पेद की पनि पोमि समान ।
दह दिसि दौड़ै दूरि कहु उर घर गति जाने ।।टेक।।
मागौन कहै भगवंत हम भोन गुपि पूरे ।
सुरग नरक मधि लोक मैं मत मानत दूरे ।।

अगुण नृगुण एक येक है, नित निगम बतावै ।
यू आतम उरझी उरै सो सुलझि न आवै ॥
ऐसा समझ न मागई व्याकरण विचारा ।
जन रज्जब सतगुर विना जिव होय न पारा ॥[illegible]॥

## • राग मासी गौड़ा •

आलिम दिवान तेरा कोइ नाहिं वदी मेरा ।
सब राज गुनहगार बंदा क्या हवाल मेरा ॥टेक॥
बंदी बाहिर गुनाह नेकी नहीं नेरा ।
मांव मैस निगरपेस पुर दरोग देरा ॥
साहिब खुद ख्वाब करद माफिस मछुवेरा ।
बदी बिसियार फैल होइ क्यू निवेरा ॥
तरसम पुरसीस दोस बाहिर अब मेरा ।
रज्जब विचार कर पुकार, और रहु न सेरा ॥१॥

सतगुर घर आरा हो सतगुर घर आरा ।
प्राण पोष धाम दोष अगनि के अहारा ॥टेक॥
ज्वाला जल माहिं डारि सब समुद्र खारा ।
मीन मगन अगन मधि अभिरज अमोहारा ॥
री प्रसंग दगध होत धरनि नीर सारा ।
है है हैरान है हरी मठार भारा ॥
रज्जब यहु कहैं काहि कौन गुमनहारा ।
देख कोई कोटि मधि अगनि का पसारा ॥२॥

रामहि नाम मन सीनो ।
गुर परसाद परम रस पूरण प्राण पियूष सु पीनो ॥टेक॥
गन्द समाधि सुरति दरसावस भाव भगति करि भीनो ।
अतरि गगन मगन मन मातो यहु आरंभ उर कीनो ॥
आदि अकर गुरगुरी गरज्यो रजनि दरस दिन दीनो ।
रज्जब राम रट निसि बासर आप उचित दग दीनो ॥३॥

## * राग गौड़ी *

गुर परसाद अगम गति पावै ।
पलटै जीव ब्रह्म कै मावै ।।टेक।।

हरि भृङ्गी गुर कंक समान  मारत तन मैं भये जु प्रान ।
चंदन राम गुरू गति बास  भेदै भेद नहीं बन दास ।
ब्रह्म सूर गुण किरणि प्रकास  रज्जब मिट जल परस प्रकास ।।१।।

गुरमुखि सिख गोब्यंद मैं जाई ।
ऐसे परचा अमर ह्वै भाई ।।टेक।।

सूरिज सता बई नभि नीर  ज्यू सबद समाइ सुन्नि मैं सीर ।
दीप जोति मिल तम प्रकास  ज्यू पवन प्रसंग निरंतरि बास ।
ब्योम गगन मति मारुत माम  ज्यू जिव सिव ह्वै उनमनि साथ ।
सबद सुरति मन आतम ध्यान  ज्यू प्रान ज्ञान गलि पद निर्वान ।
यू अंजन पलटि निरंजन होइ  रज्जब दास जाइ सग जोइ ।।२।।

इहु परदे परचे सब जाहि ।
गुर परसादि परम पद माहि ।।टेक।।

जाइ पविन पसमा गुर दीज  तब दयाल का दरसन कीज ।
सबद सलिल मा नैन निहारै  इहि सपिष रावन मन मारै ।
अधिक अहार अभीरण होई  बूटी बैन परै पुनि सोई ।
रज्जब अगनि जले की जाइ  ज्ञान अगनि जैसे क जाइ ।।३।।

ऐसा सतगुर सोधिर लीजै ।
जाकी संगति जुगि जुगि जीजै ।।टेक।।

करम भरम धोखा धुर तोरै  तीरथ बरत ग्रहति त्यो जोरै ।
निहकामी गोब्यंद नियारा  सुमिरण करत निमाटनहारा ।
निरपख रहै राम गुण गावै  भरम भय पर पीति न लावै ।
दस अवतार भजि तिस तारा  अदिनागा नर अंतरि राखै ।
मन सन नाव निरंजन रामा  प्रेम मगन पीवै रस माया ।
बैरागी सगि पंथ पराना  सब विधि समरथ साधु सुजाना ।
जन रज्जब ता गुर का सरना  जीव का मटै आवन मरना ।।४।।

आज्ञाकारी बोलैं साध ।
आदि अंकूर गुरमुखी गरजे सुनि सुनि सबद करैं अपराध ।।टेक।।
साही संत चढ़े गिर गोब्यंद चिरधी हेत पुकारै ।
माजि भजी भैभंजन साईं त्यूं जमदूत न मारै ।।
बामी बंब बजावै मंधू जागणहार जगाये ।
जो सुधि चलै सो पार पहूंचे रहतौं चित्त भुलाये ।।
परमपुरिष परब्रह्म बुलाये नर निस्तारनहारा ।
जन रज्जब जड़ सुधि करि सूतै चेरया चेतनिहारा ।।५।।

राम् रस पीजिये रे पीये सब सुख होइ ।
पीवंत ही पातिग कटैं सब संतन दिसि जोइ ।।टेक।।
निस दिन सुमिरण कीजिये तन मन प्राण समोइ ।
जनम सुफल साईं मिलै जिव जपि साधौ दोइ ।।
सकल पतित पावन किये जे लागे लै लोइ ।
अति उज्जल अघ उतरैं कलिविष रासे धोइ ।।
इहि रस रसिया सब सुखी दुखी न सुनिये कोइ ।
जन रज्जब रस पीजिये सतउ पीया सोइ ।।६।।

संतो मगन भया मन मेरा ।
अह निस सदा एक रस लागा दिया दरीबै डेरा ।।टेक।।
कुल मरजाद मेड़ सब भागी बैठा भाठी नेरा ।
जाति पांति कछु समझै नाहीं किसकूं करै परेरा ।।
रस की प्यास आस नहिं औरे इहि मति किया बसेरा ।
स्याब स्याब याही त्यो लागी पीवैं फूल घनेरा ।।
सोरस मांग्या मिलै न काहू सिर साटै बहु तेरा ।
जन रज्जब तन मन दे लीया होइ धणी का चेरा ।।७।।

नांव सिखाय निरंजन स्वामी ।
अंतर मेटौ अंतरजामी ।।टेक।।
तुम सबही के हो प्रतिपाला तो सुमिरण दै दीनदयाला ।
तुम कहियो मनसा के दाता तो मन मांगै नांव बिधाता ।
रज्जब जाचक हरि दातारा भजन पसाव करो करतारा ।।८।।

विरद विराजै मोपम लाइक ।
सेवक की सुणिये सुखदाइक ॥टेक॥
अधम उधार पतित के पावन ऐसी सुणि लागे गुण गावन ।
करम कटा भय मोचन स्वामी अंतर मेटी अंतरजामी ।
तुम प्रभ गंजन होहु कि नाहीं ये दूंदर गरजै घर माहीं ।
असरन सरन अमापहु मापा तो निरभारहु दीजै हाथा ।
दीनदयाल गरीब निवाजे सदा सुयस की सुणिय वाजे ।
विरद तुम्हारा तुम्ह सिरि भारा, जन रज्जब की सुनहु पुकारा ॥९॥

प्रानपति आये न होइ, विरहिन अति बेहाल ।
बिन देखे जिव जात है अब बिलम्ब न कीजै लाल ॥टेक॥
बिरहिनि व्याकुल केसवा निस दिन दुखी बिहाइ ।
जैसे चंद कमोदनी बिन देखे कुम्हिलाइ ॥
अति गति दुखिया दमयि ये विरह व्यथा तनि पीर ।
मरी पलक मैं बिनसि है ज्यूं मछली बिन नीर ॥
पीव पीव टेरौं पिक भई स्वाति सरूपी आव ।
सागर सरिता सब भरे परि चात्रिग कै नहिं भाव ॥
दीन दुखी दीदार बिन रज्जब पगि बहाल ।
दरस दया कर दीजिये तो निकसैं सब साल ॥१०॥

भाई रे संत जुगत जगि ऐसे ।
जैसे कंवल नीर त न्यारा राम सनेही तैसे ॥टेक॥
ज्यूं दधि बिलाय माखण मधि काढ़ै उलटि मिलै तब कैसे ।
तैसे साप सकल गुन न्यारा बहु रस बनि बिषि बैन ॥
ज्यूं पाषाण पानि महिं परसे कमपि गय जलि पैसे ।
त्यू रज्जब जन माहिं निरन्तर मणि भुजग मुखि जैसे ॥११॥

यूं निरपषि निज दास कहावै ।
निरपषि नांव निरंजन गावै ॥टेक॥
भाव भगति पट दरसन न्यारी निरसंगि साम ध्यान धुनिधारी ।
सत जन सुमिरण जु जहानै प्रेम प्रीति काऊ पनिगानै ।
दया धरम साधौ दिमि कहिये रज्जब छिमा गरीबी गहिये ॥१२॥

राखै राम रहै जन सोई ।
बस वरष का चलै न कोई ॥टेक॥
जसे जननि जननि नें कीया सूकरि निज लगि जीव सु जीया ।
संकट सकल माहि सों खेले जिन सौ हरि किरपा करि खोले ।
बिविध प्रकार बिघन सब टाले पे साँई करि सुरति संभाले ।
प्यंड ब्रह्मंड पिसणि पचि हारे जन रज्जब जगपति रखवारे ॥१३॥

साधू प्राण पुष्टि यूं भाई ।
मन भगवंत काल कूं खाई ॥टेक॥
मोर मस्त महि बीछू ग्रासि आतम उदै भयै गुण रासि ।
अगनि अहार ज्यू चन चकोर त्यू जिव जौरा जीत्या जोर ।
यूं मन इंद्री भुगतै प्राण सोई बीर वहै संत सुजाण ।
अजरहि जारै मेटै दोष रज्जब सदा सजीवन होय ॥१४॥

सोई सूरा सो बलिवंत ।
इंद्री मरि दल जीतै संत ॥टेक॥
जीन काम क्रोध अहंकार आसा तृष्णा गरदनि मार ।
गुण गयंद काया कौ मारि, परकीरति पैदल करै जारि ।
पंचो जोधा जीतै सूर आपा आगी काढै दूरि ।
मन मवासी मारै जाइ रज्जब सूर सोइ सति भाइ ॥१५॥

सिरजनहार करै सु होइ ।
जीव बिचारे बस नहि कोइ ॥टेक॥
इक राना इक रंकउ पाये मसे पुरे ज्यूं भगवंत भाये ।
एकौ पाये छत्र स्यंघासन एकउ हाथि न फूटा बासन ।
एको पीछ पलै हजार एकउ नाहि नहीं पैजार ।
... गुर बिगसै गुनरासी एक दलिनी दुख की पासी ।
माला अरु समझि गुण पावै जन रज्जब नवी मन भावै ॥१६॥

मनो विष विषयनि हार्म ।
पपो मन पागि माया रस सीप्या गुप्त्य न नार्म ॥टेक॥
[illegible]
मागुर सा ... मव गाय दे ह योह म नार्म ॥

यह मन दूध दही ज्यूं जामै कामिनि कांजी माहि ।
बात बणाइ कहीं को कामी जीवन भीजै माहि ॥
बिष बिलास सदा दुखदाता देखौ भुगतनहारे ।
जन रज्जब जुगि जुगि जग माहीं साधिक सिद्ध बिगारे ॥१७॥

मन की प्यास प्रचंड न जाई ।
माया बहुत बहुत बिधि बिलसै त्रिपति नहीं निरताई ॥टेक॥
ज्यूं जलधार अखंडित अवनि पल पलटन सौं ठहराई ।
तैसे यहु मन मरघा भूख सौं देखि परखि सुधि पाई ॥
असन बसन बहु होम अगनि मुख नहिं संतोष सिराई ।
ऐसी बिधि मन की है तृष्णा बुझती नाहिं बुझाई ॥
भूख पियासि संगि ले सूता सो सुपिनै न अघाई ।
यहु सुभाव रहै मन माहै तृष्णा तरु न घटाई ॥
मन माया सौं कबहूं न धापै सतगुर साखि सुनाई ।
जन रज्जब याकी यहु औषधि राम भजन करि भाई ॥१८॥

अकलि बिना आपा अति होई ।
बुधि बिन बल सु करै सब कोई ॥टेक॥
ग्यान बिना गरबै मन भारी गोब्यंद कहिय गर्ब प्रहारी ।
मति बिन मसिति माहि मन भीने गीनऱ्यास बिसै मन दीने ।
कुमति न जानै जीव जोरा भायो नहीं प्रतीत निचारा ।
ऊरा उरमिनि जाको जानि रज्जब गुर गोबिन्दहि जानि ॥१९॥

हूठो हटिरा तोरै मानत नाहि, गुर उर बाइक ।
भांति भांति मन को समझावत समझत नाहि नाहि मन मूरख ।
सुतो सुधि हीन बिषै रस ग्राहक ॥टेक॥
च्यार पहर पशू गति बीतै सांची सुनत नाहिं दुखदाइक ।
माया मगन फिरत निसि बासर काम करत दोजिख की लाइक ।
सठ हठ चाल चलत दमहू लिषि राख्यो रहत नाहिं पग धारक ।
जन रज्जब जंजाल जकड़्यो मन छांड्या सकल सृष्टि को नायक ॥२०॥

मांय बिना नाहीं निस्तारा और सब पाखंड पसारा ॥टेर॥
भरम भय भोग्य यन आसा दान पुन्य गर गग की नागा ।
जग तप साधन गगन मूना न बिन ग्यान सर्व अनूना ।

पान फूल दूधाधारी मन मनसा बिगरे सब ब्यारी।
कासी करवत गिरते गिरना हेम उसासन मूरख भरना।
नाना बिधि धारे परम धर्मा हरि सुमिरन बिन करस न कर्मा।
जन रज्जब रत मत अंकारा प्रान प्रवीन सु उतरत पारा ॥२१॥

निरगुण राम न आवै जाई।
सगुण फिरि फिरि करम कमाई ॥टेक॥
नृगुण राम न जामै मरई, सरगुण संकर जो तन धरई।
नृगुन राम औतारै नाहीं सरगुन जीव फिरै जम माहीं।
निरगुन स्वामी सरगुन दासा साधू संत कहैं गुन तासा।
सरगुन रूप तिलोकी आई जन रज्जब निरगुन निधि पाई ॥२२॥

जाति जुगति गुर देखै नाहीं।
मिलहि प्रानपति प्रीति ही माहीं ॥टेक॥
नाम कबीर दादू जन तारे नांव नेह नौखंड उजियारे।
सधना से नरकीता घोरी हरि हित सीझे हैं कुल कोरी।
आदि जैदेव अति रैदासा भाव भगति काटे भ्रम पासा।
जन रज्जब करुनामय केसौ पेम नेम भजि मानि अंदेसौ ॥२३॥

सतगुर बिन समिता नहि आवै।
नीच ऊंच निगुरा सु दिखावै ॥टेक॥
एक पवन एक ही पानी बुधि बिन बीच बैरता ठानी।
एकै आतम एक सरीरा समझि बिना बहु अंतर बीरा।
सौंज सब बिधि एक बनाई, दुबिधा दुरमति हेरै भाई।
सबकै नख सख रोम बिचारा एकै सबका सिरजनहारा।
गुर के ग्यान माहि सब एकै रज्जब अंध अज्ञान अनेकै ॥२४॥

## * राग आसावरी *

गुर का कह्या करावहु साईं।
य बाग मर मनि गाई ॥टेक॥
गुर की आग्या मैं मन राखौ दीनत्याग दुरमती मारौ।
गुर की सोग सनमुख कीजै समरथ साहिब मद दत दीज ॥

गुर का ज्ञान चलावहु मोसौं यहु अरदास करौं प्रभु तोसौं।
गुर की गति मति माहै मारी रज्जब मांग भीख भिखारी ॥१॥

संतो देख्या अदभुत खेला।
मच्छी मध्य समंद समाणा अजा स्यंघ सौं मेला ॥टेक॥
धावित माहिं अकासहु दीप्या दीप समानी मोती।
ऐसी हुई कही को क्षमतैं दीसै सो मण होती ॥
आमू बूंद असम सो बरसै सीग कल्याण चलावै।
चींटी माहिं पकहु सौं पैठी ढूंढ्यो हाथि न आवै ॥
परवत उड़ी पंखि घिर बैठी राहु केत खिष खाये।
जन रज्जब जगपति के मारग पंगुल परि चढ़ि धाये ॥२॥

संतो मीन गगन में मरच्यो।
निरमल ठौर निसाण बजायो सौ जलनिधि सौ भाज्यो ॥टेक॥
चकवा चकवी रैनि मिले हैं, चात्रिग चिता समाना।
माखी सौ मकड़ी मिलि बैठी पीवै अमृत पाना ॥
परवत ऊपरि पहुप प्रकासी भोला मन मिल माया।
आंमौं ऊलगि तिणका ऊग्या गुरमुखि सो मरठाया ॥
दादुर पियो दामिनी सूती सुणि सतगुर की बाणी।
जन रज्जब यहु उलटी रचना बिरलै पुरषौ जाणी ॥३॥

संतो यहु गति उलटी जाणी।
मूरति माहिं देहुरा आया सुणि सतगुर की बाणी ॥टेक॥
बीरज माहै बृच्छ समाणा हांडी कण मैं पाकी।
कूवां भरै कूंभ में पाणी बहुत न आवै ताकी ॥
बहु बूंद में घटा समाणी थाह थीजुली सेती।
बदनि अकास भए ताही मैं भपम चात्रिमांहि सेती ॥
मानिर माहै पोथी बैठी बंचन बीज बिसामा।
जन रज्जब यहु अगम अगोचर गुरमुखि मारग जाना ॥४॥

संतो कण चाबी कौं पीस।
तामे पर सार कछू नाहीं गुर प्रसाद सो दीसै ॥टेक॥
दीपक जम्य पतंगे माहीं मूस मीनी खाई।
कौड़ी कुंजरि मारिग टारयो हिली सु हाथा जाई ॥

माकडि पकड़ि कुहाड़ी फाटरा तिणकै ठेवा षावी ।
दीन दादुरो अहि आरोगै माछी बावणि दावी ॥
अदभुत बात उलटू क्यू आवै यहु सब उलटी सारी ।
जन रज्जब सो परतषि देखी कुही कबूतरि मारी ॥५॥

सतो यहु गति बिरला बूझै ।
गुरुप्रसाद होइ यहु जाके ताही कूं यहु सूझै ॥टेक॥
आंधी अनंत दीपनैं दावी दीवा बुझि नहिं भाई ।
जाकै द्वार दीप था ऐसा तिनि यहु कीरति गाई ॥
सलिला सकल समंद सो पैठी कंवल कोस मैं आई ।
ऐसा एक अचंभा देख्या नदी कवल मैं न्हाई ॥
पृथ्वी सकल प्रजा पुनि सारी ले आकास बसाई ।
जन रज्जब अमरपति की किरपा घरि घरि होहिं बधाई ॥६॥

औधू अकल अनूप अकेला ।
महापुरिष माहै अस बाहरि माया मध्य न मेला ॥टेक॥
सब गुन रहित रमे घटि भीतरि नाद ब्यंद मैं न्यारा ।
परम पवित्र परम गति जेले पूरण ब्रह्म पियारा ॥
अंजन माहि निरंजन निरमल गुण अतीत गुण माहीं ।
सब्न समीप सकल बिधि समरथ मिले सु मिलि नहिं जाहीं ॥
सर्व्वंगी समसरि सब ठाहर काहू लिपति न होई ।
जन रज्जब जगपति के लीला बूझै बिरला कोई ॥७॥

अवधू यहि बिधि जुगि जुगि जीजै ।
दह दिसि उलटि आव घर अपनै अमी महा रस पीजै ॥टेक॥
देही माहि देह थैं न्यारा गाव निरंजन न्यारा लीजै ।
आरंभ यहै रटौ निसिबासर कारिज और न कीजै ॥
आसन माहि अनंत सुधा रस आपा रहत रमीजै ।
जे कछू आप माहि कण सारा सो सब मामहिं दीजै ॥
आपा भूलि भूलि मन मागै रहते रहता रीझै ।
ऐसे अमर होइ जन रज्जब सांचा कारिज सीजै ॥८॥

मन रे करि संतोष सनेही ।
तृष्ना तपति मिटै जुग जुग की दुख पावै नहिं देही ॥टेक॥
त्याग्यू तजै नांहि सो सिरज्या गह्या अधिक नहि आवै ।
तामैं फेर सार कछ नाहीं राम रच्या सोइ पावै ॥
वांछे सरग धरणि न पहूचै प्रीति पताल न जाई ।
ऐसे जानि मनोरथ मेटहु समझ सुखी रहु भाई ॥
रे मन मानि सीख सतगुर की हिरदै धरि वेसासा ।
जन रज्जब या जानि भजन करि गोव्यंद है घरि वासा ॥९॥

मालिक मिहरि करी भरपूरि ।
काफिरा करि कतल केसो दुस्मरा सिस दूरि ॥टेक॥
रहम मैं रिप मसक तालिक गरब गंजन भूरि ।
इहै नसब तालिब पुकारे रामु नांव हजूरि ॥
जानि राह जाहिर सुमी मैं नांहि कोई दूरि ।
बीच ही बटमार कसे रहे मारग पूरि ॥
फरजंद की फिरियाद फारिग नफसरा करि चूरि ।
रज्जबा अरवाहि आतुर रहो मिलि मामूरि ॥१०॥

माया मांहि भग्या हरि जाइ ।
समस संत देखी निरखाइ ॥टेक॥
जैसे चंद कमोदिनि नेह जल बिछुरे पुनि त्यागहि देह ।
जैसे सीप स्वाति रत होइ सागर बिन जीवै नहि सोइ ॥
ज्यूं तरवरि प्राणी की आस धरती बिछुरै मूल बिनास ।
काया माया तजै न कोय रज्जब मन सनान सिधि होय ॥११॥

गुर के गमन दुखी सिष सारे ।
सब मुख निधि न बिलसनिहारे ॥टेक॥
सरवन सुखी सुनत मन बानी नैन दुखित झारै यहु पानी ।
दुखी रसन सुनि बातें करते सीस दुखित गुर चरननि धरते ।
तन मन दुखी तु करि नंबारे, अंतरध्यान भये गुर प्यारे ।
जन रज्जब रोवै दुख मादू, परमपुरुष बिछुर गुर दादू ॥१२॥

## * राग टोडी *

भगति अखंड करै हरि मांहि ।
एक मेक अरु दूसर नांहि ।।टेक।।
ज्यूं सूषिम गुण आत्मांहि, है भासहि दूसरे नांहि ।
यूं मन अगपति एकै होइ ता ऊपरि भजिवे कौ दोइ ।
जैसे राग अकलि मिलि येक जब चाहै तब भिन्न अनेक ।
ऐसे जीव ब्रह्म के आगि मन मिल औ सांई साथि ।
ऐसे भगति अखंड अपार दादू कौं दीनी करतार ।
रज्जब रटेसा विले मांहि, मात भये अरु भजते चांहि ।।१।।

ऐसे गुर गोबिन्द अगाध ।
भखिम अनंत निपावहिं साध ।।टेक।।
ज्यूं चकमक पाहण परसंग अगिम अपार उपाइ अभंग ।
ज्यूं दिनकर दर्पण विधि देखि प्रगटै अनल रूप सु बिसेखि ।
ह्वै दीपक मैं दीपक जोइ रज्जब जोति मत महि होइ ।।२।।

साधु संग भक्ति रंग गुर प्रसादि पावै ।
परम प्रीति परम रीति परमपुरिष गावै ।।टेक।।
सतगुर के दरस परस दीरघ दुख भागे ।
करम काल विषम ब्याल बहुरि नांहि लागे ।।
अघस नांव अगम ठांव आनंद भरि बासा ।
सकल सिद्धि अकल बिधि सतगुर संगि वासा ।।
अधिक भाग सिरि सुहाग सांई संगि खेलै ।
जग रज्जब गुर प्रसाद जीव ब्रह्म मेलै ।।३।।

सांचा गुरू दिखावै राम ।
निर्लोभी तत तत निहकाम ।।टेक।।
परमारथि परमोधै प्राण बिषिया मांहि न देवै जाण ।
काम प्रसिद्ध करै मन लाइ स्वारथ संग सरकि नहिं जाइ ।
दीरघ दसा देहि न्सि मांनि त्रिगुण रहति निगुण निज छांनि ।
ज्यामति मैं सीर्झ सब मौर ता स देइ नांव निज ठौर ।
नद सम फेरि करै निज रूप विषय विकार काटि गृह कूप ।
जीव मांहि जीवनि स देइ यूं रज्जब सतगुर करि सेइ ।।४।।

मोमी गुरु कहै सुनि राम ।
मन माहै सूषा सहकाम ।।टेक।।
जैसे बधिक बाण गहि लेइ, मुखि टाटी भीजण कौं देइ ।
मूठी तसि आवै जो प्राण सो जिव सहै न बाहरि बाण ।
जैसी बिधि मग मांड ध्यान अन्तरिगत औरै कछु आन ।
जो मनसा मन धीजै आइ, ताही कौं बैठे गटकाइ ।
जीव बधेरा लूक लगाइ सिप स्वान सब लेइ निकाइ ।
जन रज्जब जो परवै प्राण ताही कौं लागा सो बाण ।।५।।

नांव निरंजन प्राण कहै ।
पंथ गहै दुख द्वंद बहै ।।टेक।।
अकल अमर स्यो आइ रहै काल कलक सिरि माहिं सहै ।
सुमिरन सलिता माहिं बहै, द्व विधि दुविधा मेटि रहै ।
अगम अगोचर ज्योति रहै जन रज्जब जगि नाम इहै ।।६।।

राम सौं रता राम सौं मता ।
राम रसायन प्राण पीवता ।।टेक।।
राम सौं लीन राम सौं मीना राम रटनि उर अंतर कीना ।
राम सौं संगा राम सौं रंगा राम सनेही मित्र अभंगा ।
राम सौ मीठा सब मे दीठा अंतरजामी आतम ईठा ।
राम सु प्यारा प्राण हमारा जन रज्जब कहै फेर न सारा ।।७।।

मेरो मन रातौ माई प्राणप्रिया के संग ।
मौज अनेक अनूपम साखी चोल चरन कै रंग ।।टेक।।
मिहरिम जीव रहम की रहणी मन बुधि सुरति सुरंग ।
रज्जब साल साल की स्यो मिल जुगि जुगि अबल अभंगा ।।८।।

आव रे हरि आव रे ।
उर अंतरि यहु भाव रे, यहु अवसर यहु दाव रे ।।टेक।।
यहु भरोसा नाहिं सन्देसा जीवन कैसा बाव रे ।
ताला देखी पीव अकेली रैन दुहेली आव रे ।।
अबला अधीरा पंजरि पीरा नैननि नीरा आव रे ।
रज्जब नीरा बिरहै मारी तुम परि वारी जाव रे ।।९।।

कहर काम राखि राम मैं अनाथ तेरा ।
करि सहाय राम आइ, अरि अनंत घेरा ।।टेक।।
मदन काम विषै प्राण आतम उर घेरा ।
क्रोध, व्याधि अति असाधि, रोका निज डेरा ।।
विविधि भ्रंम सदा संग उर अंतरि मेरा ।
काम काल करि बेहाल स्वामी नहिं फेरा ।।
विषै वास मनहिं पास राम करि निबेरा ।
जन रज्जब दीन लीन नाही बल मेरा ।।१०।।

तू साहिब सबल हमारा ।
यहु रोक्या प्राण तुम्हारा ।।टेक।।
विरह विचार परसि नहिं कबहू दूदर अधिक अपारा ।
परगट गुपत गुपत हरि परगट सेवग दुखित तुम्हारा ।।
संसा सबल सदा ही व्यापै पलक पलक पर मारा ।
पंच पहेली चढ़े अधिक ह्वै जीव अबहु करि मारा ।।
बड़ी पुकार सुरति करि साईं, समरथ, सिरजन हारा ।
जन रज्जब जिव जाइ जंदि मैं स्वामी करहु सहारा ।।११।।

यों पावन पतिति उधारि ।
हम अपराधी आदि अंति के साहिब लेहु सुधारि ।।टेक।।
दीनदयाल दीन सुखदाई सेवग सोच निवारि ।
काम क्रोध व्यापै विधि अंतर देही दूदरि टारि ।।
पंच पचारैं पल पल औरैं छीनित मांहि निवारि ।
लीयो आइ जंदि जसि कीये बाहुडि बिरद संभारि ।।
सेवक सदा संभारे स्वामी तैं अपनी उनहारि ।
जन रज्जब परि परम कृपा करि, भाखा अंतरि वारि ।।१२।।

हरि भाव मैं नहिं भीना ।
पंचो सखा पंच दिसि खेलैं मन माया रसभीना ।।टेक।।
कौन कुमति लागी मति मेरे परम अकारिज कीना ।
देखो उरसि सुरझि नहिं जान्यो बिषम बिषय रस भीना ।।
नहिंप महा विकल मति अपनी बहु बैरिन मन सीना ।
आतम राम सनेही अपनो सो मुपिनो नहीं चीन्हा ।।

आन अनेक आनि उर अंतरि, बहुत भांति तन छीना ।
जन रज्जब ज्यूं मिलै प्रगट गुरु जगत माहिं जिन चीना ॥१३॥

गुनहगार गुनहगार ।
लेखा कछू नाहिं पार, ऐब हैं अपार ॥टेक॥
बहुत नैन बुरे फैल बेहद बदकार ।
अवनि रोम लिखि दरोग बदी बिसियार ॥
सरक नीर बूंद तीर, नेकी बेजार ।
बहुत दीस मन बदीस पावै क्यूं पार ॥
बहु गुमान तजि गुमान माहीं अखत्यार ।
रज्जब रसूल गुफ्त सूल सांई सत्तार ॥१४॥

भाइ मिलै भगवंतहि आइ ।
येहु बिना कोइ नाहिं उपाइ ॥टेक॥
प्रथमी भाव भगति का मूल सुकृत सब डाली फल फूल ।
नाव चढ़े भौसागर पार, जैसे नावहिं नीर बिचार ॥
ज्यूं पंखी परि गगन अकास त्यूं भावहि चढ़ि चरनि निवास ।
जन रज्जब जगपति की आस प्राण पुरिष की भाव बिलास ॥१५॥

सब सुख की निधि आये साध ।
करम कलेस कटे अपराध ॥टेक॥
दरसन देखि किये डंडौत जब उतरे अंकूर उदोत ।
परतछिमन देते दुख दूरि, परलोकिक मेतैं सुख पूरि ।
भगती कथा सुनत सुख सार, साध सबद महिं उतरे पार ।
सांचे संत सजीवनमूरि, रज्जब तिन चरनन रज मूरि ॥१६॥

सुनि लै सांची सीख मनं जपि राम जिनं सब पाप हरं ।
जग सूं तोरि जोरि हरि सेती गृह दारा सुत त्याग वनं ॥टेक॥
बिमता बिरचि सकल गुन न्यारा सूषिम लेस्टा पाप धनं ।
कारिज सरै समझि मन सुन्दर, सतगुर साधू साखि वनं ।
बिषिया छाडि परै भय सारा दुख दीरघ अधिकार सुनं ।
निहकामी सीतल ह्वै बैठे उर अंतरि लै गांव वनं ।
रहते संगि राखि लै रसना नाव अल्प यहु आइ तनं ।
जन रज्जब रामहि रटि लीजै औसर समझिर एक छिनं ॥१७॥

डर है रे मुझ डर है रे।
पल पल आयू घटै तन छीजै जम बैरी सिर पर है रे ।।टेक।।
बादल बिपति बीजुरी मनसा बिबिधि बिघन का भर है रे।
चौरासी लख जीव जवासे तेरी केतुक जर है रे ।।
आपा अगनि अनंत दौ लागी पंच तत सब तर है रे।
मिहरि मेघ बिनु कौन बुझावै तन मन मूति मुसर है रे ।।
दीरघ दुख दीसै दसहू दिसि मीच सु सबराचर है रे।
काल कसाई प्रान सु पसु य सबके सिर परि कर है रे ।।
त्राहि त्राहि यहु त्रास देख कर हरि सुमिरन की हर है रे।
जन रज्जब जोरमू टारन कौं एक राम कौं बर है रे ।।१८।।

भय है रे मुझ भय है रे ।
बाहरि भीतरि बैठि सु साईं जीव कहां लूं जैहै रे ।।टेक।।
मनसा मलम चौस सोई बीतौ रैनि परीतम म है रे ।
जामण मरण जांहि जीव गोते दूसर मारीने है रे ।।
जनम जुहार जीव सोई सोहा आपा अगिन सुतै है रे ।
घर घर बारणि सुरति संन्यासी गुण घण माण युघ है रे ।।
चौरासी चौपड़ि फिरि आयौ अब देवै को पैहै रे ।
करनी हीन होइ सोइ कांची चोट चहू दिसि सैहै रे ।।
जुगि जुगि जीव काल को भखन जम धाया नहिं संहै रे ।
जन रज्जब यू समझि सयाने छूटन कह हरि लैहै र ।।१९।।

पारै पारै पुकारै सोई ।
वार पार की खबरि न कोई ।।टेक।।
पार कहै सोई सब वारा समझि सोन कछु करो बिचारा ।
भमो भरम करमूनि सु वारा तीरथ बरत सु मोल मसारा ।
जप तप साधन बैसी वोरा सरग पताल उनी मैं वोरा ।
रिधि सिधि सर्ब सुबैला आसा आगम निगम जगत मैं बासा ।
परम पुरुष गुरु सबतैं आगे रज्जब वार पार यूं त्यागे ।।२०।।

कारण कारिज सम भया भाई ।
सतगुर मैं माटी समझाई ॥टेक॥
कारण माटी कारिज भांडा ग्यान गुरू फूटा भ्रम आंडा ।
कारण गिरिवर कारिज मूरति ताऊ मैं भूली सब सूरति ।
कारण करता कारिज देही, रज्जब भ्रम मान्या सु सनेही ॥२१॥

यूं निरपखि मन भया हमारा ।
इन दून्यूं का देखि पसारा ॥टेक॥
पाला पहुर हसदी मारै मारीहू कछू नाहीं ।
ऐसे समझि तजे सब बंधन भया पहूरै गम माहीं ॥
बरत किर्यूं रोजे रिख मारै हम मैं कहा बड़ाई ।
ऐसे जानि तजे सब बंधन संकट पारि छुड़ाई ॥
देवलि आउ मसीति मरै जलि यामैं क्या सिधि पाई ।
ऐसे समझ रहे दून्यूं सौं उर अंतरि स्यो लाई ॥
दाम देवठो गोर गुमानी गाड़ैं माण मसाण ।
ऐसे जाणि बरपा बीड़े मैं दून्यूं रहे निकाण ॥
एकहि तम्बू एक बम बांधै टरै न रोकि मड़ी ।
ऐसे समझि रहति मन रज्जब दून्यू त्यागि खड़ी ॥२२॥

प्राण परखि बिन खोटा भाई ।
मकसि आंखि दिब दिष्टि सु नाहीं ।टेक॥
प्रथम परख बिन पंथ मम्यामी तापरि ठगनि ठगाई ठगनी ।
परख बिना पति पंथ भुलाना परखि बिना मम मूल न जाना ।
परख बिना मनोरथ सीने पारख बिना भेष बहु कीने ।
पारख बिना तीरथं कावै पारख बिन बहु देह बहावै ।
पारख बिना सु कष्टै कामा पारख बिना तैतीस मनामा ।
पारख बिना अवतार अराधै पारख बिन कांकर कंठ बांधै ।
पारख बिन बैकुंठ बिलासा पारख बिन रिधि सिधि की आसा ।
पारख बिन सोइ प्रान अनाथा रज्जब पारिख परम धन हाथा ॥२३॥

## * राग गुण्ड *

गुर गरवा दादू मिल्या धीरप दिल धरिया ।
दरसन परसन होत ही मंजन मल गरिया ।।टेक।।
श्रवणि कथा साची सुनी संगति सतगुर की ।
दूजी दिल आवे नहीं जब धारी धुर की ।।
भरम भुजागल भांघ दी, संध्या सब तोड़ी ।
सोच सगाई राम की छे तासौं जोड़ी ।।
सतगुर के सिवके किया जिनि जीव जिवाया ।
सहज सजीवनि करि लिया साचे संगि लीया ।।
जनमु सुफल तब का भया बरनौं चित लाया ।
रज्जब राम दया करी दादू गुर पाया ।।१।।

नटनी निरखि निहारि लै मन माहि समाना ।
मन इंद्री निज नांव सौं ऐसी बिधि ध्याना ।।टेक।।
बरत चढ़ी बहु देखता तन मन चित बांधी ।
सहजि समानी डोरि मैं बहु दिसि की आंधी ।।
मांवरि भरि चौकसि लई बेतनि चढ़ि बासा ।
तन मन तामैं रमि गया नांहि नजरि तमासा ।।
ऐसे सुरति नचाइ लै हरि आगै खेला ।
रज्जब राम उमंगि करि दे दर्सन मेला ।।२।।

ऐसे गुर संसार मह सुणि समझि बिचारा ।
जे चाहै उपदेस कौं तौ पूंछि पसारा ।।टेक।।
चौरासी लख जीव का संधिन लै माहीं ।
माया मिलि मन्दी भये पर मेले नाहीं ।।
अजस मता उर लीजिये गिर तरवर ताकी ।
जहां रोपे तहं रहि गये सुणि सतगुर साखी ।।
चंद सूर पाणी पवन धरणी आकासा ।
रज्जब समिता पूंछि लै पट दरसन पासा ।।३।।

एक नांव भजिबे मैं भेद ।
कोई एक पावै संत मरजेव ।।टेक।।
जो ज्यूं भजै तहीं त्यूं होइ सहस सहस का हासिल जोइ ।
प्रथमैं नांव भजै संसार, कर माला करबी संगि सार ।
मन मैं नहीं एक इकतार तौ इहि नांव मृतग ब्योहार ।
दूजै सहस नांव की आस भजिबे मागा सासैं सांस ।
अंतरि ऊंच उठै सब ओर, इहि निधि मागि रहै सब ठौर ।
तीजै सहसि पंच घरि पूरि, पंच सुभाव काढ़ि दे दूरि ।
जब उपजै अंतरि यज्ञ माहिं, तब पहुचै संसा कछू नांहि ।
चौथे सहस जाइ जब सेइ नौसै उमटि नांव मैं देइ ।
नौ निधि निपजि रहैं तन माहिं, तब प्राणी का दालिद जाहिं ।
पूरे सहस पंच परि जाइ रोम रोम रटि राम अघाइ ।
जन रज्जब जुगि जुगि यहु ठाट, सतगुर कही नांव निज बाट ।।४।।

ज्यूं पहले पीछै त्यूं होइ ।
कारिज सरै सति करि जोइ ।।टेक।।
तीन मास बरस्यूं कछु नांहि, छाव समंगल चौथे मांहि ।
पहलै भवण लेइ नहिं भास पिछले सबणि परे बेसास ।
मुंहमिल भये माहिं कछू नीति रज्जब रोपि रहे रण जीति ।।५।।

मन जाम्यूं पीछे कछू नाहिं ।
ऐसे समझि देखि मन माहिं ।।टेक।।
मन दीपग देही तैं जाइ तबहीं तिमिर भरै घर आइ ।
मन आथिर देही लय जाणि मिथ्या लग आथिर बुझाणि ।
मन प्राणी त्यागैं तन थंभ तब रज्जब मिरतग परसंग ।।६।।

चेतनि चित चोरै कहां जाइ ।
निद्रा नेह मुसैं घर आइ ।।टेक।।
ज्यूं रजनी मध रवि परगास तारे सकल भये बस नास ।
जब मंदिर माहैं मंजार, तब चूहे त्यागे घर बार ।
तिमिर कहां जब दीपग जोइ जन रज्जब जामे यूं होइ ।।७।।

नेह निरंजन सौं नहीं सब अंजन प्यारे ।
बइयर सौं बइयर मिल्यूं सुत कौं नहीं पावै ।।टेक।।
पारब्रह्म कौं पीठि दे किस देई सेवा ।
माया सौं माया मजै सब झूठी सेवा ।।
गुण गहि गुण सौं पूजिये तेती सब झूठी ।
जल बूडत जल कौं गहै मन मूरिख मूठी ।।
सकल बिकसि बाहरि रहे गुर ग्यान न पाया ।
जन रज्जब साँची बिना यहु विधि मन भाया ।।८।।

मेरे मंगल मन माहि भये वीरज दुख मेटे ।
अंगि अंगि अति उछाहै, दादू गुर भेटे ।।टेक।।
पारस परसत ही कंचन भई काया ।
फिरि कलंक लागै नहीं सतगुर की छाया ।।
सबद संग भवन लागि कीट भृङ्ग कीये ।
जनम फेरि दुख नबरि अपनैं संगि लीये ।।
दादू गुरु दृष्टि मान आतम जल काढे ।
जन रज्जब धरती छै अकास चाढे ।।९।।

आज हमारे भये अनन्द ।
मिले संत भागे दुख द्वन्द ।।टेक।।
मंगलचार मगन गुन गावै अमृत धार बेर कर लावै ।
सुखसागर घरि संत बिराजै, महा पतित जीव आइ निवाजे ।
अधिक उछाह कह्यो नहिं जाई, किते महिमा कहूं बड़ाई ।
आदि अंत के कारिज सारैं, जन रज्जब आये मौ प्यारे ।।१ ।।

आवैं मेरे पारब्रह्म के प्यारे ।
त्रिगुण रहित निरगुण निज सुमिरत सकल स्वांग गहि डारे ।।टेक।।
माला तिलक करै नहिं कबहू सब पाखंड पचि हारे ।
साचे साध स्तुति सारी गति सकल लोक मैं सारे ।।
नाम प्रताप परपंच न मानै पट दरसन सौं न्यारे ।
भजि अमर्यत भेष सब त्यागे एक साच के गारे ।।
जिनिकै दरसि परसि सुख उपजै सो आये बलि हारे ।
जन रज्जब जगपति सौं ऊंचे प्राण उधारणहारे ।।११।।

## * राग मलार *

राम बिना सावण सह्यौ न जाइ ।
कामी घटा काल ह्वै आई, दामनि दगधै भाइ ॥टेक॥
कनक मवास वास सब फीके बिन पिय के परसंग ।
महा विपति वेहाल लाल बिन लागो विरह भुवंग ॥
सूनी सेज हेत कहु कासों अबला धरै न धीर ।
दादुर मोर पपीहा बोलै ते मारत हैं तीर ॥
सकल सिंगार भार ह्वै लागे मन भावै कछु नाहिं ।
रज्जब रंग कवन पै कीजै जे पिव नाहीं माहिं ॥१॥

ब्रह्म बिन निस दिन बिपति बिहात
दरसन दूरि परस पिय नाहीं नहिं संदेस सुनात ॥टेक॥
पीर प्रचंड खंड करि नावत बैरी विरह विख्यात ।
साईं सुरति करी सुन्दरि दिसि सोत न स्वंम सकात ॥
नख सख सूल मूल मन बेधत बरनत बनै न बात ।
ज्ञानी ज्ञान लाल बिन लपटति सो क्योंहू न बुझात ॥
सब सुख हीन दीन दीरघ दुख बिसरी पांवर सात ।
रज्जब रही चित्र पुतरी ह्वै मानहु सतरंज मात ॥२॥

## * राग केदारा *

मन रे सीख सतगुर की मानि ।
ब्रह्म सुख दुख रूप माया कही आखर हानि ॥टेक॥
भजि अनन्त अनन्त आनन्द अलख अमह बखानि ।
सकल संत सब सोधि साधू कही तो सौं छानि ॥
अमर अधर धरादि विनसै तासि तुसि कर कानि ।
सांच झूठि बिचारि कीजे मिहरि के दीवानि ॥
मुरति प्राणी प्राणपति भजि सकति संकट जानि ।
यास वसतो कीजिये मन रचि न रज्जब रानि ॥१॥

मन रे गहौ गुरमुखि पंथ ।
सकल बिधि सब छोल कारिज उनमनी से संध ॥टेक॥
सबद साधू सीस धरि करि रटण आतम रंध ।
ग्यान मारग गवन करतें अमर आतम कंध ॥
मन महंत सु मानि मन क्रम परहु गोरख ग्रंथ ।
एक आतम लागि एकहिं वहू दिसा कै अंध ॥
पेष भेद अभेद पंथनि निकसि नांव सुनंध ।
मिलै रज्जब जोति जीवहिं, जाइ तनु बरु गंध ॥२॥

मन महु मानि मुगध अचेत ।
समझि सठ हठ छांडि मूरिख कहत हू करि हेत ॥टेक॥
देह झूठ सु परत पल मैं सई क जम लेत ।
काल कर करवाल काटैं बेलि ले सिर सेत ॥
सीत कोटर सुपिन संपति सुनहु महु संकेत ।
छिनहिं मै सब छांडि जैहैं मारि मूठहिं वेत ॥
मात पित सुत सखा बांधव सकल कायर खेत ।
करि करणि यूं परयो रीतौ खोलि देखो नेत ॥
त्यागि धन तन गेहु गाफिल सीख सतगुर दत ।
रज्जबा जम जोरि लैहैं देस मोहड़े रेत ॥३॥

संतहु अगह गहे गुर ग्यानि ।
मनसा बाचा कबहुं न छूटै बैठा ये निज थानि ॥टेक॥
चंचल अचल भये बुधि गुर की मनहिं मनोरथ भानि ।
अस्थिर सदा एक रस लाये माते अमृत पानि ॥
बहुतै रहे मानि मति गुर की समझि परी उर आनि ।
पंच पचीस स्वादि सब छूटे ले लागे जो तानि ॥
थाके अथक परे पंगुल ह्वै चंचलता दे दानि ।
जन रज्जब जग मैं नहीं पसरैं गुर बाइक सुनै कानि ॥४॥

है हरि नांव सौ सब काम ।
आदि अंत सु प्रान तारन बिषम जलधि जहाज ॥टेक॥
प्राण पोषण पंच सोषण फेरि मंडण साज ।
गुणहु गंजन पीर भंजन देत अबिचल राज ॥

सुकृति आगें कुकृति भाग सुनि भजन की गाज ।
उरधु मंडण अधहु खंडण देखतें कुल भाज ॥
धरे काटण अधर बाटण जीव की सब साज ।
नांव नौका परम टीका रज्जबा सिरताज ॥५॥

ऐसा तेरा नांव बहु गुनवंत ।
सकल विधि प्रतिपाल प्राननि आपि निवाजे संत ॥टेक॥
सेस संकर विष्न ब्रह्मा ओंकार रटंत ।
सुरनि सति सुमिरन बतायो मागि भूत करंत ॥
हरि अराध सु हरत पापनि आतमा उधरंत ।
गिर्नू कीते ज्ञान मारैं सिष्टि साधू सत ॥
आदि अंतिर मध्य मनपा नांव ठांव चढंत ।
जाहि जलनिधि उतरि आतम जीव ऊंच अनंत ॥
सकल विधि सुख रासि सुमिरन मनंत काज सरंत ।
रज्जबा क्या कहै महिमा भजन विधि भगवंत ॥६॥

है हरि नांव नरनि कलंक ।
पतित पावन प्रान परसत राव सुमिरो रंक ॥टेक॥
नांव चन्दन लागि पलटत धव धमी बस बंक ।
होत सकल सुगंधि संगति बास दुरगंध टंक ॥
नांव पारस लाग लोहा भेंटि मेटत अंक ।
साध सागा हात फेरत विकत मंहग टंक ॥
अराध आपदि जीव रोगी राखि पथ्य निस फंक ।
रज्जबा यूं रहै निसि दिन होत निमल निसंक ॥७॥

ऐसा तेरा नाव नियाना करैं को बकन बखाना ।
ब्यो विरचि सुक आदि सेष मुख है न परमाना ॥टेक॥
नेत नेत कहि निगम पुरारत साइ न जाना ।
रज्जबा कहा कहै इक रसना आनत हैराना ॥८॥

नाव बिन मन निरमल नाहिं होइ ।
आन उपाइ अनत भय नाम बहुत भाति करि जोइ ॥टेक॥
जोग जग्य जप तप व्रत संजम करता है सब कोइ ।
धर्म नेम दान पुन्नि पूजा तीर्थ्या गुण्या न कोइ ॥

भेषर पंथि माँहि पर बाहरि, ग्यान अग्यान समोइ ।
ग्यानी गुनी सूर कवि पंडित ये बैठे सब रोइ ॥
भरम न भूलि समझि सुणि प्राणी यहु साबुण नहिं सोइ ।
जन रज्जब मन होइ न निरमल जल पाखा नहिं धोइ ॥९॥

भजन बिन भूलि परयो संसार ।
पच्छिम काम जात पूरब दिसि हिरदय नहीं विचार ॥टेक॥
बांछै अधर धरे सौं भागे भूले मुगद गंवार ।
खाइ हलाहल जीवो चाहै, मरत न लागै बार ॥
बैठे सिला समंद तिरन कौ, सो सब बूडणहार ।
नांव बिना नाही निस्तारा कबहु न पहुचै पार ॥
सुख कै काज धसे दीरघ दुख ताकी सुधि नहिं सार ।
जन रज्जब यों जगत बिगूचै इस माया की लार ॥१०॥

हमारै सबही बिधि करतार ।
धरम नेम अरु जोग जागि जपि साधन साँई सार ॥टेक॥
पूजा अर्चा नवधा नांवैं सोधि कियो ब्योहार ।
तीरथ बरत सु नांव तुम्हारा और नहीं अधिकार ॥
बेद पुराण भेष पष भूधर, तुम ही सिरि पर भार ।
बुधि बबेक बल ग्यान गुसाँई और नहीं आधार ॥
सकल धरम करतूति कमाई, सब तुम ऊपरि धार ।
जन रज्जब कै जीवनि रामा निसि दिन मंगलचार ॥११॥

नाह बिन निसि बिधमनि की जानि ।
बिरहनि बहुत भांति दुख पावै सकल सुखौं की हानि ॥टेक॥
ससि नहीं संक कलंकी जातै काहू की नहिं कानि ।
बिरह मीच मैं भामनि बैठी ज्यों गावत है आनि ॥
तारे तरु निगमनि सिरि ऊपर, ससि जम्बू पहिचानि ।
वेसौ दुख दाइक बसहू दिसि नी सब बैरी जानि ॥
महल मसान सेज मइ स्यंघनि मारुत मीच समानि ।
रज्जब राम बिना रजनी दुख कैन्ह नहीं बखानि ॥१२॥

याब निसा न क्यूं हूं घटत ।
दीरघ रैन भई विन बरसन आतम रामहिं रटत ।।टेक।।
एकस रन अधिक अरिहुम ते तारे तीर सकि तकि क्यूं घटत ।
चंद्रहि चद याम क छूटत मास्त मैक न हटत ।।
जामनि जुग प्रमाण अति याकी क्यमनि कंत बिना क्यूं कटत ।
रज्जब रुदन करत करुनामय बिगसि बिगसि उर फटत ।।१३।।

बेगि न मिलो आतम राम ।
प्रात अनम ममास मदमुत सेत हू हरि नाम ।।टेक।।
भूख भंग अभंग भ्यंना गिनत छाँह न घाम ।
मघ अमघ महु भाम भूमी भ्रमि सु आरणि ग्राम ।।
विरह पीर सु नीर नतो महा विहुवल बाम ।
ठगी सी ठिक ठोर बिसरी को करै गृह काम ।।
दीन दुखित अनाथ अबला गये यहि बिधि जाम ।
मास गुत्र मु बिरह बिसर्‍यो रहै अस्थिर धाम ।।
और कहत सु और भावत नहीं मन मति थाम ।
रज्जबा रही रोज हांसी ज्यों सती सत ठाम ।।१४।।

सखी सुन्दर सहज रूप देखि स जगत भूप प्रानि मैं प्रानपति मुकुन्दी के हीरा ।
बैठी क्यूं मवन नारि कही सो श्रवनो धारि, निकट माहे निहारि मन निते मीरा ।।टेक।।
बिधि सौं बिलोकि बाम सेइ सइ साजन राम पूरन सकल काम यापनि सो धीरा ।
उठी तू आतुर बाइ पूजि लै परम पाइ, अंतरि अनन्य भाइ पीरन की पीरा ।।
बिमल बह्म अंग सरबंगी सर्व संग साधि ले आरमा रंग हिरदै को हीरा ।
रज्जब मामिनी भाग आदि को अंकूर जाग देहि जो सेज सुहाग मीरनि को मीरा ।।१५।।

माधो करी क्यू न सहाइ ।
तुम बिना कोई और नाहीं कहू तासूं जाइ ।।टेक।।
काम बैरी क्रोध बैरी मोह बैरी माहि ।
पच मारै सो न हारै क्यू हरि आवो नाहि ।।
काया बैरी माया बैरी परकिरति भरपूरि ।
दीन की फिरियाद सुनिये करो यै सब दूरि ।।
तिगुण मारै मै न मारै मोहि मारै काहि ।
बहुरि तुम कहा मान करिहो जन रज्जब जब नाहि ।।१६।।

## * राग मारु *

दुख अपार बिन दीदार ऐसा कछू नाहीं।
बिकल बुद्धि नाहिं सुद्धि मृतग भई माहीं ॥टेक॥
सुख बिलास सकल नास आतम उर भाग।
मध्य पीर नाहि धीर बिरह बान लागे ॥
बहु बियोग परस सोग डगमगति डोलै।
नाहिं चैन बिरह बैन, व्याकुल भइ बोलै ॥
तपति पूरि नाहिं दूरि मिलिये सुखदाई।
रज्जब की बलगि आइ प्रगटौ हरि माई ॥१॥

सखी सुन्य मैं दुख साधि लियो।
महा निठुर अपनै रंग रातौ सोई कंत कियो ॥टेक॥
जाके बिरह बसी मन माहीं सब जग त्यागि दियो।
सो पुनि पिय परसै नहिं ताहीं अजहू हारी देखि हियो ॥
जगपति मिले न जगत सुहावै फाटौ दिल न सियो।
द्वै दुख देखि भयो चित चकित बिषहू न बांटि पियो ॥
कहिये कहा कवनि मति उपजी मनि मानै न बियो।
जन रज्जब रवि रूप न पावै धृग धृग येहु जियो ॥२॥

सखी सुनि कैसे रहिये।
हरि बियाग बिरहन तन कासौ कहु कहिये ॥टेक॥
बिरहनी बियोग सोग रैनि दिवस दहिये।
दीरघ दुख देखि देखि कौन भांति सहिये ॥
बिरह पीर नैन नीर तामें बहिये।
दीसत नहीं सो जहाज जो बूड़त गहिये ॥
देखौ दुख मीन भीन चात्रिग चहिये।
जन रज्जब जीवहि क्यू जीव नाहिं लहिये ॥३॥

सखी हू बिरहै घेरी।
साहिमत नहीं मोहन मय सुख की सेरी ॥टेक॥
बिपति राज बैठे माज दीन दुखित टेरी।
बिरहे की आन दान दोही फेरी ॥

बिरह आगि मनहु लागि जरत देह मेरी ।
बरसत नहीं मिहरि मेघ, दहू दिसि हेरी ॥
जनम जाइ मिलहु आइ चेरी तेरी ।
रज्जब को दरस देहु राखहु मेरी ॥४॥

सखी हूं मोहनै मोही ।
कन कन कै काटि लीनी ऐसे द्रोही ॥टेक॥
भूली सब काम धाम तन मन बोही ।
असन बसन बिसरि गई सूका सोही ॥
भवनहु भावी भषारि समझ्या भोही ।
जन रज्जब जोये बिनु, रंग बिरोही ॥५॥

नाह राती हो सु तेरे नाह राती हो ।
पंथो पिय पिय करै भई प्रेम की माती हो ॥टेक॥
लीन भई लिखना ससौ जो कर्म की काती हो ।
चलता बैठता सूवता सुख तेरी माती हो ॥
नांव सवा ले मेहु सों नाना बिधि माती हो ।
देखौ भाग्य उनै भये पाई पूरन माती हो ॥
जो भजि भजि साधू भये सो मैं सई पाती हो ।
जन रज्जब बसि राम कै दई बीरच दाती हो ॥६॥

नाह रंगी हो तेरे नाह रंगी हो ।
नैनौ नाह न देखिये एता दुख संगी हो ॥टेका॥
पीव पीव टेरौ रैन दिन दीदार उमंगी हो ।
सो दीदार न पाइये यू नारि न पंगी हो ॥
सुमरि सुमरि सुधि बुधि गई कहि कहि सरबंगी हो ।
बन बन ढूंढ्यो रोवती पीय है किस संगी हो ॥
नांव छाड़ नाह का भई गति अपंगी हो ।
रज्जब रजनी यू गई कब मिलिहौ संगी हो ॥७॥

जागि रे जपि जोबनि भाई ।
काहे सोवै नींद भरि, उठि अवधि आई ॥टेका॥
सौंज सिरामनि सब गई कछु ठौर न साई ।
काया कुन्दन सारिखी कुमि बादि गमाई ॥

कौम ठाट किस क्रम की यहु चित न भाई ।
अंतक उमा बम चिनें कछू नाहिं अलाई ॥
यहु अवसर बहुरघ्य नहीं मन मुनि घुनि लाई ।
रज्जब ढील न कीजिये उर अंध उठाई ॥८॥

रे मन राम रटि अघाई ।
अगम गुफम सुमिरन कर छन मम ल्यो लाई ॥टेक॥
जागि जागि सकल त्यागि काल कठिन खाई ।
यहु बिचार सुमिरि सार भाव असप जाई ॥
बिरचि बीर बिषै सीर देखी निरताई ।
हरि संभालि सीस पाणि ऐसो तन पाई ॥
साधु साखि मांव माखि अंसरमति भाई ।
रज्जब रमि राम नाम आतुर उठि धाई ॥९॥

सेवग राम कारे सतगुर की सुधि धारि ।
राम नाम उर राखिये भाई, आतम तत उजारि ॥टेक॥
बीन हीम कुं कीजिये, जीव की जीवनि सोइ ।
समये सुमिरन कीजिये यहु औसर नहिं होइ ॥
सांई सनमुख राखिये सदा सुरति इक तार ।
ऐसी बिधि बंध उतरै भाई धुनि धुनि मगलचार ॥
भगति अखंडित कीजिये अगम अगोचर ठौर ।
जन रज्जब जगदीस भजि भाई अति आतुर उठि दौर ॥१०॥

कठिन काम भजन राम करिबे कौं कोई ।
एक आध सुमिरि साध बावे मत होई ॥टेक॥
बिकट बाट बहुत घाट मारगि मरि चलना ।
कोटि माहिं एक नाहिं अरि अनन्त दलना ॥
अवस पास नाहिं स्वास गवन मुनिन न्यारा ।
यहु बिचार आप मारि चलै चलनहारा ॥
अति अपार हरि दीदार बीचि बिषम भारी ।
रज्जब कोइ एक जाइ, बेही गुम मारी ॥११॥

## • राग भैरू •

मार भली जे सतगुर देइ ।
फेरि बदल औरै करि लेइ ।।टेक।।
ज्यूं माटी सिरि करै कुम्हार, त्यूं सतगुर की मार विचार ।
भाव भिन्न कछु औरै होइ, ताथे रे मन मारन जोइ ।
जैसे लोहा घड़ै लुहार कीट काटि करि लेवै सार ।
सूबै मारि मिहरि करि लेइ तौ निपजै फिर मारन देइ ।
ज्यूं सागी संकट मैं आणि साधी करै सीरगर आणि ।
मनि ताड़न का नाहीं भाव जे तुम्ब टुटि जाइ तौ जाव ।
ज्यू कपड़ा दरजी के जाइ, टूक टूक करि लेइ बणाइ ।
त्य रज्जब सतगुर का खेल ताते समझि मार सब मेल ।।१।।

ऐसा सतगुर भेद बताया ।
आपा मेटि मिलै हरि राया ।।टेक।।
ज्यूं अति नींद मिलै मन जाइ तब मन की रामति सब जाइ ।
जथा बबूलै आंधी मेल तब ताका मामा भ्रम मेल ।
ज्यू पाला गलि पाणी माहि तब रज्जब दूजा कछु नाहि ।।२।।

।

सत निरंजन दीनदयाल ।
पेड परस पूजी सब डाल ।।टेक।।
स्यो बिरंचि सब दव दयाल जेत सेया श्रीगोपाल ।
नबी सामि सब पीर पसारा सेवग सहजा सबहु पियारा ।
सिष माणिक सबही मूल पाया जेते जीव जगतिपति पाया ।
मूल बिना डाली सब नाहि रज्जब समझि लागि रमु माहि ।।३।।

कलजुग कपट कर्म का रूप ।
पहुप पाखंडी भये भूप ।।टेक।।
पाप प्रधान लोभ सोइ तसकर, अग अग्यान अनंत उमराव ।
परपंच प्राण मांण मनरथ की भरम भुवन बरतै यहु भाव ।।
कपटी केलि करै कलि माहीं खोटी लसक खुसी तिन संग ।
झूठ मु मीत सांच सौ बैरी ऐसी बिधि कलिजुग का रंग ।।

नाम वाम चालै यहि अवसरि कोई वणिज करो संसार ।
खोटे खरे न परखै प्राणी गुण इंदी गरजै सु विकार ॥
लंपट चोर चौधरी दीसे ठग ठकुराई कीं सु आज ।
जन रज्जब कलियुग सो ऐसा कैसे सरै सु आतम काज ॥४॥

## * राग ललित *

गुरु गुन का कछु अन्त न पार ।
अलप बुद्धि का करौं बिचार ॥टेक
दुख दरिया दुखी दिसि टारे सुख के संग यार्हि मैं डारे ।
बिबिधि बिलास बिषै फंद जारे ये कारिज गुरू किये हमारे ।
भांति भांति के काटे सास जन रज्जब गुरु किये निहाल ॥१॥

बिनती सुनी सकल पति साईं ।
सो सेवग पहुचे तुम ताईं ॥टेक॥
च्यंतामणि प्रभु च्यंत निवारो चरन कंवलि चित अंतरि धारौ ।
काम धेनि कलपतर कैसीं अंतरजामी मानि अवेसी ।
जन रज्जब की दीजे दादि तुम बिन और न आवे यादि ॥२॥

## * राग बिलावल *

जिनि जिनि जब हरि नांव रटै रो ।
आदि अंति मधि मुकत भये सब अखिल अभै मन प्रान खटै रो ॥टेक
मानव जाति गये भव उतरि उर अंतरि यहु भाव डटै रो ।
सदा सुखी सोई सौं सनमुख प्रेम पिया सौं नाहि घटै रो ॥
अवभुत बात कहै को मुख तें हरि हीरौ हिय हेम बटै रो ।
मंगम मुदित मध्य मन माहीं दुख दीरघ दिल दूरि छूटै रो ॥
कुसल कल्याण जीव को जुगि जुगि जम के कागर कर्म कटै रो ।
जन रज्जब जग मैं नही आवें जपि जगदीस संसार सटै रो ॥१॥

नांव निरंजन निरमला नर के मल धोवै ।
सकल पतित पावन भये कोई जाति न जोवे ॥टेका॥
जैसे जल थल जगत की तिस तृष्णा मेटै ।
त्रिपति करै तिहु लोक मैं जा जीवहि भेटै ॥

ज्यूं औषधि बुख को दवै सबहिन सुखदाई ।
बिधा बिसै बप बिकस है पख राज भुलाई ॥
ज्यू बोहित बूझै नहीं कोई बरण बिचारा ।
जन रज्जब कुल कोर के सबकौं करै पारा ॥२॥

महिमा सुणिये नांव की साधौ श्रुति भाखी ।
जहां जहां संकट पड़े सुमिरण की राखी ॥टेक॥
प्रथमि पेखि प्रहिलाद कौ निज निरखौ रामा ।
भुव भजन की भीर की मैं भंजन रामा ॥
नांव सु दीपग राग है, जहि जोति प्रगासै ।
आन कष्ट कुम रागणी तिन तिमिर न नासै ॥
नांव सु नर हरि जिव मांहै तन आतम रामा ।
रज्जब जप तप जोग जगि यहु होइ न कामा ॥३॥

हरि हिरदै आया तबै जब और न आवैं ।
देखि दिवाइर कै उदै तम ठौर न पावै ॥टेक॥
चंदणि बीस न ठाहरै जब गरड़ पधारै ।
ऐसे अरि उर क्यू रहै प्रभु जी पांव धारै ॥
स्यंघ सबद सुणि जात है सारंग सब डारा ।
त्यू गुण गण भाजै सही हरि हेरि पियारा ॥
अगनि उदै होनी उठै गुण भार अठारा ।
रज्जब बिसै बिकार यूं मिसे राम पियारा ॥४॥

सोई साध सराहिये जाई सक्ति न राता ।
मगन गलित मोम्यन्द मैं गुर ग्यान सु माता ॥टेका॥
प्रथम पंथ पावन करै परलोक सु साधै ।
सुखदाई सब आतमा अगाध अराधै ॥
राम दोप राखै नहीं गुण औगुण न्यारा ।
परम पुरिष पूरे मतै परमेसुर प्यारा ॥
भेष भरम भ्यासै नहीं उर आतम दिष्टी ।
पंखि पाखै परपंच से सब जारे पिष्टी ॥
सरण नरग संसै नहीं तीरथ व्रत त्यागी ।
आदि अति सब सोधि करि कै अविमति लागी ॥

रज्जब राम पिछाणि से जो जोमिग आया ।
सारा साध सु सेइये, गुर ग्यान सखाया ॥५॥

सारा साध सु सेइये परमेस्वर प्यारा ।
आदि अंति मधि एक रस मह जु असवारा ॥टेक॥
फूटे मैं सारा रहै बहते मैं रहता ।
ऐसे अगम अतीत कौ अंकूर सु सहिता ॥
अजन माँहि निरंजना निरगुन गुन माँहीं ।
भगवन्त भगत एक सों मन भाग मिलाहीं ॥
प्यण्ड ब्रह्मण्ड परै रहै इन माँहि अकेला ।
रज्जब पूजि सु पाइये मुनि मुनियर मेला ॥६॥

पतिब्रता के पीव बिन कोई पुरिष न आया ।
एक मनी उर एक सों मन अमन्त न साया ॥टेक॥
ब्रह्म बींद को बस करै बामा ब्रतधारी ।
सदा सुहागिण संग रहै परमेसुर प्यारी ॥
प्रेम नेम न्यारा नहीं निज निरगुण नाहा ।
अगम निगम सुन्दरि करै सत सील सु साहा ॥
आज्ञाकारी आतमा अविनासी मागै ।
जन रज्जब रस राम सों पूरण बड़ यामै ॥७॥

हेरत हूं हरि नाम तुम्हारो ।
दीनदयाल दया कर दीजै संतनि जीवन प्रानअधारो ॥टेक॥
जीवन बिन बिब कैसे जीवै ज्यूं पानी बिन मीन बिचारो ।
चात्रिग ज्यंत रही घन वरिया त्रिषावंत पिव पीव पुकारो ॥
कारिज कहां सरै कहु कैसे जे सीपहि नहिं स्वाति सहारो ।
मन मोती कैसे करि निपजै घन समुद्र अति माहि पसारो ॥
बालिक दूध वेगि नहिं पावै नेही दगध होत परहारो ।
जन रज्जब कैसे करि जीवै नांव बिना यहु हाल हमारो ॥८॥

जागो जागो जीव जनम जाइ कौन नींद सोसी ।
भजिये भगवंत राइ तजिये माया उपाइ ऐसौ तनि ठौर साइ देखौ दृग खोली ॥टेक॥
सतगुर की सुनहु कानि सांची जिय माँहि मानि होती है परम हानि हारी निरमोली ॥
ऐसो अवसर बिहाइ करि लै कछु भगति भाइ कांधे पर जम रिसाइ सीस साधि रोली ॥

सूतें ही कवन हेत आये देखौ न सेत टूटहिंगे मूंड खेत छाड़हु मति भोली ।
सासष कहि रहे साग वह दिस बम वीन्हीं आग जन रज्जब जागि मान होती है होली ॥९॥

भगति जाति कौं क्या करै सुणियो रे भाई ।
बेटी सहारै बाप कै जहं भेजै तहं जाई ॥टेक॥
नाम कबीर सु कौम थे कुल रांका बांका ।
भगति समानी सब घरहु संतनि कुल नाका ॥
लघु कुल छोगू छीप थे कीता सु कमेरी ।
भगति भेद राख्या नहीं किन कै घर फेरी ॥
बिदुर बांदरा बंस से सो भगति न छोड़े ।
नीच ऊंच देखै नहीं ममतामे मोड़े ॥
आदि मिसीं जैसे देव को रैदास समाणी ।
सो दादू घर पैठीं मधू रही निमाणी ॥
रज्जब रोकी ना रहै आज्ञा ले आई ।
राव रंक समि भगति कै भाव धारण पाई ॥१०॥

* राग सोरठि *

मन रे राम न सुमिरयो भाई ।
जो सब सन्तन सुखदाई ॥टेक॥
पल पल घरी पहरि निसिवासर ऐसे मैं सो जाई ।
अजहू अचेत नैन नहीं खोलत आव अवधि सो आई ।
बारह पाम बरष बहु बीते कहि धौं कहा कमाई ।
कहत ही कहत कछू नहीं समझत मति एको नहीं पाई ॥
जनम जीव हारयो सब हरि बिन कहिये कहा बनाई ।
जन रज्जब जगदीस भजे बिन बहु दिसि सौं जग गाई ॥११॥

रे सुनि कोली प्रान हमारा तू कर लै काम संवारा ।
कर गहि बैठि गमी बुधि सीजै बिरला मता तुम्हारा ॥टेक॥
नौसे पूरि निरंतर ताणा भाव भगति करि भेवो ।
मांडी मिहरि तेल तत निरमल प्रेम छाट दे लेवो ॥
बैठि बिचार सुणि कमी कद्रम की धरव सूत भरि सीजै ।
मन चित लाइ किरित करि कोली तार न टूटया दीजै ॥

बामै माहि बस्त बित ऊंचा ज्यू उस हाटि बिकावै ।
लेऊ राम महा अति चौकसि और न नीकै आवै ॥
ऐसे समझि बुणी रे बुणकर फेर उलट नहीं आवै ।
रज्जब रहै राम भरि रेखा दरस दाति बित पावै ॥२॥

मेरो नाह निकुल निज ज्ञानी हो ।
कहा कहौं कछ कहत न आवै प्रगट गुपत महि छानी हो ॥टेक॥
अतरजामी अंतरि देखो सासो कहा दुरानी हो ।
बकत्र बनाइ कहै बिष औरै यापरि अरज न मानी हो ॥
सरबंगी समझै सब ठाहर जो नख सख मनि मानी हो ।
रज्जब रुचि भरि कैसे पाव गनि गोब्यंद नहि जानी हो ॥३॥

## * राग बसत *

मति वासे रे मति वासे ।
निरमल भगति प्रेम रस पीवे देह गलित गुन गासे ॥टेक॥
बिरह दरीबै भाजन बैठे पल पल पीवै प्यासे ।
बिसरे देह गेह सुख सम्पति माया बोझण झासे ॥
माठी भाव सुधा रस निकस सुरति मंडी तिस नासे ।
मगम होइ पंचो मिलि बठे निमष सक नहि भासे ॥
महि मिलि सदा एक रस लागे वठि इकंत निरासे ।
रज्जब परम सरनि तिन सेरा ले रस रूप बिलास ॥१॥

बसंत बन्यो लसो गोपाल ।
अतरजामी सुनि दयाल ॥टेक॥
बप बन मारे राम राय रमहु राम औसर बिहाय ।
पंच सखी करि रही सिगार रमो राम लावो नहि बार ।
सब अंगम हारे सरस काम जाम राइ अब मिले राम ।
तन मन मगन क उछाह बन रज्जब पाय गुनाह ॥२॥

रुचि आइ माधय रमि बसंत ।
यहु जाग जागि परि आव कंत ॥टेका॥
औसर अजब अनूप बार तापै मदरि टाड़ी करि स्यंगार ।
मब गवना का रागिये मान यह दरस पियासी देहु दान ।

सुन्दरि चाहै सेज संग अंतरजामी दे उमंग ।
तब दरसन दसै अघाइ यहु परम निकट लीजै लगाइ ।
अति गति आतुर अहीं माइ यहु आयु अलप रजनी बिहाइ ।
अब नारी का निरखि नेहु बिपति जानि हरि दरस देहु ।
दयासिंध दीजै निवास इस महा पतित की पूरि आस ।
तब सीबीसरि होइ भाग जन रज्जब पावे सुहाग ॥३॥

सुखी सुख सेज म चाहुडी रे ।
सु नेही दुख मांडी रे ॥टेक॥
न देवै प्रेम पियाला रे, कहावै दीनदयाला रे करै किमि येतला टाला रे ।
न देवै अंग अयानी रे सुनेहु ना जीवनि आनी रे, सुसहुवै दुख निहानी रे ।
कहु किन्हे दुखनी बाते रे राख सेष सघाते रे, सु रज्जब बरणे जाते रे ॥४॥

## * राग कामुडा *

राखिव राम सनेही आवहीं ।
तन मन मगन होइ परम सुख आनन्द अगिम मावहीं ॥टेक॥
अधिक उछाह मुदित मन भरें बहु विधि चौक पुरावहीं ।
बसि बसि जाउ अघाउ न कबहू प्रेम मगन गुन गावहीं ॥
सकल सुहाग भाग सुन्दरि के मोहन रूप दिखावहीं ।
जन रज्जब जगदीस दया करि परदा खोलि मिलावहीं ॥१॥

कबै हौं देखि हौं हरि चरन ।
मन करम बचन जांव बलिहारी जे पाऊं सिर धरन ॥टेक॥
सारंग भई सकल तजि सजनी नांव रटन उर करन ।
तन मन सकल करी न्यौछावरि जे आवै पति घरन ॥
सुरति सीप सोई सब मांगै नांव स्वाति हो सरन ।
जन रज्जब की बिपति दूरि करि आइ मिलौ दुखहरन ॥२॥

भगति करि लेहु प्रानपति साम ।
ऐसे समझि नेकि उर अंतरि और सकल तजि क्यास ॥टेक॥
जिन जिन भगति करी केसौ की ते सब भये निहाल ।
मन बच करम जानि मन ऐसे नांव निकट गोपाल ॥

मोंव नेह केते पति परसे तोरि सकल जंजाल ।
ऐसे थापि थापि रटि रज्जब संत मिले इस चाल ॥३॥

निहचल को निहचल ह्वै भजिये ।
चंचल मति चंचल सब तजिये ॥टेक॥
रहतें कौ रहता ह्वै रमिये मनिषा जनमि वादि क्यों गमिये ।
अस्थिर सौं अस्थिर ह्वै रहिये बहते संग काहे कौं बहिये ।
पोतहिं पोत मिले तब सेवा जन रज्जब भजि अलख अभेवा ॥४॥

मन किन तजहु बिषिया बट ।
हटकयूं रहत नाहि हरि हार्यो बिष खेत बूंदे चरणी भट ॥टेक॥
मगन मुदित मन बहुत दसहूं दिसा राख्यो रहत न गांव निकट ।
श्रवनौ सुनत नाहिं मति मोरी रोम रोम लागी रामहि रट ॥
चंचल चोर चरन निज मूस्यो ससकहि लाइ किये खाली घट ।
सतगुर साध वेद बुधि बरजत दहै तहीं कहत सकृत निघट भट ॥
बिबिधि भांति मन कौं समझावत इस न गह्यो सुंवरि ललिता तट ।
रज्जब र्‌यंद रूठि रह्यो हरि सौं पुकारि पुकारि प्रान तोरी लट ॥५॥

अरे मन करि रे सूपिम त्याग ।
सतगुर सबदि समझि उर अंतर, मेल्हि मनोरथ माग ॥टेक॥
मान अनेक ध्यंत तजि चेतनि परम पुरिष सौं लाग ।
सकल ग्यान गुन समझि सयाने भाजि दसौं दिस भाग ॥
सरग पताल जंजाल छाड़ि मन तोरि जगत सौं ताग ।
सकल अनंत बिलोकित चारचु बिबिधि बासना दाग ॥
सुपिने की सम्पति करि संग्रह सब समझौगे जाग ।
जन रज्जब जगदीस भजन करि जे सिर मोटे भाग ॥६॥

अरे मन भजि रे आतम राम ।
कारज इहै करौ मन मेरे इहि औसरि इहि धाम ॥टेक॥
मनिषा जनम मानि मन माहीं कह्यो निरंजन नाम ।
पंचो गुन पंचौं दिसि रमिहैं करि लीजै निज काम ॥
ऐसे समझि तजौ मम मूरिख गृह दारा धन धाम ।
जन रज्जब जगदीस भजन करि बीने चारघू जाम ॥७॥

मन मानि सीख मेरी ।
त्रिगुण त्यागि निर्गुण लागि मनसा गहि फेरी ॥टेक॥
पंच बंधि अगम संधि रैनि दिवस टेरी ।
सबसे केलि ब्रह्म भेलि परम गति नेरी ॥
सकल झूठ देह पूठ ध्यान मैन हेरी ।
रज्जब जोष मन प्रमोष रिद्धि सिद्धि चेरी ॥८॥

मन प्रीत प्रीत कीजै ।
अगम रूप तत अनूप गोब्यंद भजि लीजै ॥टेक॥
जनम जाइ करि उपाय छिनि छिनि छिनि छीजै ।
यहु बिचारि सुमिरि सार अमृत रस पीजै ॥
सुनहु कान तजहु मान सीस ईस दीजै ।
रज्जब सूर हरि हजूर जुगि जुगि जुगि जीजै ॥९॥

पिय के आइ बैठी न्हाइ बिगसत ज्यूं जाइ ।
मौसत साजे स्यंगार पलक पाट खोले द्वार देखन हरि धाइ ॥टेक॥
रावी रति सेज लागि नख सख सब सौंज भागि
प्यारे पीव की सुहागि भागन कौं पाइ ।
ऐसन के सकल साज कामनि सब किय काज
जोसन की छोड़ी लाज धामहि रमाइ ॥
धीरक मन महल जोइ ठाढ़ी पति ध्यान होइ
कब आवत कहै कोइ साम के राइ ।
विविध भांति साज सूर प्रीति पंच पीक पूर
रज्जब धन है हजूरि मिलिय प्रभु आइ ॥१०॥

तन मन लागि रहत निज नाहा ।
निस दिन दुखी पुकारत पिय पिय दरसन देहु करत हूं छोहा ॥टेक॥
नख सख पीर पीर नहिं तुम बिन दीन दुखित दीरघ दुख दाहा ।
सयन सनेह भेद नहिं सुख कौ लाल बिना माहीं जग माहा ॥
अंतरि अगनि अरायन पिय पौ बिपति बिछोह बिषमि मैं बाहा ।
रज्जब रहति एक रंग कामिनि जन्म सिंगार कंत बसि दाहा ॥११॥

परम प्रान सुखनिधान रहत कौन थान ।
बिरहनि बेहाल सास अंतरगति बिरह काल देखे बिन अधिक सास सुनहु पिय सुजान ।।टेक।।
कब की हौं दुखित राम बीती निस च्यारि जाम
तुम पूरन सकल काम होत है जु हरि बिहान ।
गिलहु आइ परम राइ, मति गति औसर बिहाइ
हिरदै नहिं दुख समाइ, हारी प्रभु मान ।।
पिय बिन फीके स्यंगार सूने गृह दुख अपार
कुसुम सेज होहिं अंगार बीरब दुख भान ।
कासौं यहु कहै मारि बैठी सब जनम हारि
रज्जब कौं मिलि मुरारि बीज जिय दान ।।१२।।

मिहरबान करि असान राखौ रहिमान ।
बदी बदकार फैल दिल दरोग बहुत मैल कैसे तुं सैर सल आवै जमू जान ।।टेक।।
तुम बिन साहिब सुमार पंचौ मिलि करि गुबार
दरबबद करि पुकार, सिकसता सु बिहान ।
कैसे करि गुजर होइ बिकरि फिकरि नाहिं कोइ
पहुचै महि कपट दोइ देखौ दीवान ।।
दुसमन देखौ दिल मांहि कबहू नहीं दूरि जाहि
बैठे मौजूद मांहि बैरी सैतान ।
सांई सुणिये फरियादि बंदे की वेहु दादि
रज्जब हैं सामे आदि हाजिर हैरान ।।१३।।

अहो देव नांव निरंजन तेरा ।
यू प्राण पियासा मेरा ।।टेक।।
पिय दीन दया करि मीज निज नांव निरंजन दीजै ऐसे प्राण पतीजै ।
पिय दीन दुखी यहु चाहै कब नांव निरंजन बाहै यहु जनम सुफल इहिं माहै ।
तुम दाता सुखदाई यहु नांव लिमिल चलि आई दिल देहु निरास न जाई ।
पिय जनि जीवनि यहु पावै तेरा नांव निरंजन गावै जन रज्जब बलि जावै ।।१४।।

राम रंगीले के रंगि राती ।
परमपुरिष संगि प्रान हमारौ मगन मसित मदमाती ।।टेक।
लागै नेह नांहि निरमम सौं गिनत न सीली ताती ।
डग मग नहीं अडिग उर बैठी सिरि धरि करवत काती ।।

सब बिधि सुखी राम ज्यूं राखैं यहु रस रीति सुहाती ।
जन रज्जब मन ध्यान तुम्हारे, बेर बेर बलि जाती ॥१५॥

मुझे लागै नांव पियारा ।
सब संतनि कै जीवनिमूरी मेरे प्रानअधारा ॥टेक॥
नांव नाव जग जिवनि तारि कै भौसागर करै पारा ।
परवा छोरि प्रान पहुचावै दरसन का दातारा ॥
सब सुखरास बिलास बिमल रस बिपति विदारनहारा ।
जन रज्जब रटि नांव निरंजन छिन छिन बारंबारा ॥१६॥

* राग काफी *

मुझे भावै नाम ही चंगा ।
नौखंड मांहिं नांव निस्तारा भगति मुकति ता संगा ॥टेक॥
जोगि जागि जग तप ब्रत नावै और न आवै अगा ।
भरम करम करतूति कसौटी बैठे नहीं दिल दंगा ॥
साध बेद गुर नांव दिढ़ावै कहै ग्यान की गंगा ।
जन रज्जब रुचि सौं रत नांवैं अहिनिसि भजत न भंगा ॥१॥

मुझ लागै नांव रस मीठा ।
और सकल रस रुचै न आतम सकल रसाइन दीठा ॥टेक॥
तन मन सकल सौंज दे पायो नांव निरंजन मीठा ।
परम पियास प्रीति सौं पीवत प्रान पियूष सु ईठा ॥
हरि रस रसिक पिवत सिर ऊपरि निडर निरंकुस दीठा ।
रज्जब सुमिरि सुधारस लागा देह जगत सौं पीठा ॥२॥

पीय हूं तेरे रंग रंगी ।
परम सनेह लग्यो मनि मेरे सुधि बुधि गल्या चंगी ॥टेक॥
तन मन प्रान धरो तुम आगे चूक न राखी अंगी ।
सकल बंधाइ माह माया ममि सबण प्रांण उमंगी ॥
निस दिन संग संग सुख पाऊं सुनि बजार यचंगी ।
रज्जब जन तेरे रंग रंगनि दाइम काइम संगी ॥३॥

## * राग कल्याण *

बिनती सुणिये हो निज नाथ ।
समिता सकति महावल आतम इहि औसर गहौ हाथ ।।टेक।।
चोस्यूं चल सफरी सुसिसन सब माहि मगर मन मारनहार ।
गर्व मोह् बसचर सु पचीसौ बिरच बिचारी बार ।।
त्रिगुन भंवर भयभीत तरंगै संसै सोच संबूह सिवार ।
च्यंता तट मन ध्यान धारमय रज्जब कीजै पार ।।१।।

दीन की सुनिये अरदास ।
प्रान पुकार करम करि केसव काट कठिन क्रम पास ।।टेक।।
ब्रह्मा बिष्न ईश तेतीसौं बसौं म तिनके त्रास ।
आदि अंत मधि मुकति करौ तुम यौ जीवहि बेसास ।।
और ठौर नाहीं ठिर ठाहरि मोचन मौ ग्रह रास ।
जन रज्जब जिव जड़्यौ जंजीरनि निरखत निकट निवास ।।२।।

कालि रे राम के बागै ।
करि लै निरति निरंतर निस दिन और सकल संसारहिं त्यागै ।।टेक।।
तन मन सकल सौंज सिर सहिता ताहू मै विकता बैराग ।
यूं मन लेह लाइ उनमन सों ज्यू चकोर चंदा हित लागै ।।
सब रस रहित रसिक रमितासौ ब्रह्म बिचार बिवै सत मागै ।
परवनि पानि समान सुरति धरि चरन कमल ऐसे अनुरागै ।।
ऐसे कालि निरंजनि नाम अंजन नहू नींद सौ त्यागै ।
जन रज्जब जमपति यू परस आइ मिल उस बिछुटै बागै ।।३।।

तीनि रूप आशा अंकूरि ।
हरिमुख गुरमुख मनमुख दूरि ।।टेक।।
हरिमुख हिरदै हरि सौं लागै गुरमुख गुद संगति सौ जागै मनमुख मूढ़ महा निधि रूप
हरिमुख हिरदै हरि का वास गुरमुखि ज्ञान गुणों परकास मनमुखि जीव जनम का मा
अंकूर हरिमुखी है बस काम गुरमुख माहि अंकूर उग्हाम मनमुख होत महा मधि का
त्रिबिध रूप अंकूर पिछान हरिमुख गुरमुख मनमुख मानै जन रज्जब साधू सो जानै ।।

## • राग नट नारायण •

तुम विन तुमसी कौन करै ।
और दान दत वैसी कोरा मापरि नाहिं परै ।।टेक।।
कलि कुल हीन निकामिल आतम सा प्रभु आप भरै ।
यौ अधिकार अपार अमित अति सुर नर पाइ परै ।।
पाप प्रचंड प्रान मै पहले सो हरि सकल हरै ।
महा मलिनि ऊजलि करि भाखयो अविगति अंक भरै ।।
नर नारायन होत नाव बसि सुमिरत एक घरै ।
रज्जब कहा कहै यहु महिमा सुत पित कंधि धरै ।।१।।

बिनती सुनिये सकल सिरताज ।
सब की आदि सकल प्रतिपालक सदा गरीब निवाज ।।टेक।।
मौ अरदासि पासि प्रभु राखौ सारौ सेवग काज ।
आतम रामहिं कौन मिलावै काहि कहूं तुम बाज ।।
यौ अंतरि मेटो इहि अवसर अंतरिजामी आज ।
बारबार बहुरि नहिं लहिये नर नाराइन साज ।।
त्राहि त्राहि कहिये कहि मागै पुत्र दुखी पितु राज ।
रज्जब रतन करु करुनामय वहौ विरद की लाज ।।२।।

न्यन्दक नरक निवारत नरकौ ।
कहै अनीति अधिक अघ सारै पारिस उतरत परकौ ।।टेक।।
ज्यूं धुरही सुत सो तनि चाटत मुखि मल लेप न धरकौ ।
यूं निन्दक माता मत धारै काज करत घर घरकौ ।।
ज्यू सूकर सति सूल बिहूने हात सुधारस हरकौ ।
त्यू रज्जब न्यन्दक करि निरमल धोवत कारो खिरकौ ।।३।।

मोसौं पतित न पापी और ।
प्रथम देह धरि नाव बिसारो अरु तरुनी तन त्यौर ।।टेक।।
चरन बिमुख चूक्यो यहि अवसर करत दसौं दिसि दौर ।
देखौ हरख परख हूं हारे, सरण नरग नहिं ठौर ।।

अति अपराध क्रितघनी प्रानी दे दे पायो कौर ।
सो प्रतिपाल पिछाणि पीठि दे भहि चोरी भयो चोर ॥
बहुत ग्यान गुन सिखे सांच बिन गहत झूठ झक झौर ।
रज्जब कहि राम जी के सुक सब गुनहिन सिरिमौर ॥४॥

मेरे मन मति हीन न मानी ।
सतगुर सीखि विविध परि दीनी प्रगट कही बर ग्यानी ॥टेक॥
साधु बेद गुर साखि सुनावत सुनि सठ दीनी कानी ।
अधम अग्यान अनीत अंध गति भरम भेद सब मानी ॥
भांति भांति मन कौं समझावत मनहु लीक जल पानी ।
सो मति समझि भई यह मन की कहिये कहा बखानी ॥
नमो नमो हारे मन आगे कौन कुमति है सानी ।
बन रज्जब जुग जुग यह जीव मू रह्यो एकमनी ठानी ॥५॥

अलकहि कौन कलै कल माहीं ।
आदि अंत मधि महा पुरिष सब पारहि पावै नाहीं ॥टेक॥
ब्रह्मा आदि बिचारत थाके संकर सोच सरीरा ।
नारद सहित सकल सिध साधिक कोउ न लहै तट तीरा ॥
सेस सहस है रसन रटत नित परम प्रमान न आना ।
नेत नेत कहि निगम पुकारत तेऊ है हैराना ॥
ब्यास परे खट दरसन खोजें कोऊ खबरि न पावै ।
अगम अगाध अगन गति गोब्यंद रज्जब काग कहां धावै ॥६।

प्रभु मेरो पूरन है सरबंग ।
सेवग के संदेह दवन कुल दिखरावत रुचि रंग ॥टेक॥
चरन ब्योत तौ बितव चरन मैं सुरति फिये सब सीस ।
श्रवन नैन नासिक मुख रसना जितहि तितहि जगदीस ॥
भुज भावहि भगवंत भुजा भरि उर रूपी बहु अंग ।
पेट पीठि पहिचानि सु पावत निकट सु न्यारे संग ॥
मरकै मेह नकस नख सख करि, माहिं सु नजरि दिखाये ।
जैसे सीत कोट सुनि अस्थल रज्जब पेखि न पाये ॥७॥

आये मेरे प्यारे के प्यारे ।
दरसन देखि दृगनि सुख पायो नख सख सौं ठारे ।।टेका।
मंगलचार मुदित मन मेरे, मोहन म्यंत पधारे ।
अंगि अंगि आनंद अति वाढ्यो मेही नाहिं निहारे ।।
परम पुनीति प्रीतम पति पेखत पावन प्रान हमारे ।
सुख सागर सौं सैन सनेही मिलत महा दुख टारे ।।
प्रान सु पीव जीव की जीवनि जोवत कारिज सारे ।
श्रीपति सहित सकल बसि जिनिकै जन रज्जब सिरधारे ।।८।।

• राग जैतश्री •

दुखितवंत कारनि कंत ।
परम पीर मन अधीर मौसल सब मूलै चीर नैनौ नित श्रवत नीर बिरहै बपु हंत ।।टेका।
दीरघ दुख रह्यो छाय दुसह मति सह्यो न जाइ
कासौं यहु कहौं माइ, बैरी मैमंत ।
दसवें कुल भागि भाग देखि सखी मेरे भाग
प्यंड प्रान होत त्याग नाहिं तंत्र मंत्र ।।
बीचें बीच बहुत भार तन मन सिर बहुत भार
प्यारे पिय बिन पुकार सुननि जिम अंत ।
रज्जब भनि राखि नेहु नारी को निरखि नेहु
हरि उमंगि बरस देहु सीचै नहीं अंत ।।१।।

पिय के प्रेम बांध्यो नेम ।
यहुं बिधि पानी गंभीर पीवै नहीं दास तीर, चित चातिग पेम ।।टेका।
अंतरगति यहु विचार परसै नहीं आग बिकार
सुमिरै हरि बार बार, मन माने मति पेम ।
अंबुज ज्यू अंभ स्थान मन मयंक रहै ध्यान
करै हो सु साधु पान तन मन गति नेम ।।
सीप ज्यू समुंद बास बारि बूंद सौं निरास
एक स्वाति सुरति प्यास उर बोले नहीं हेम ।
रज्जब भनि भनि भाव करत बंदि चित चाव
मंगल मन मध्य भाव सकल कुसल खेम ।।२।।

गोब्यन्द राखि सकल नाखि ।
सतगुर की श्रवनि धार बेदहू बिलोकि पार,पंचन कौं पटकि मार सब संतन की साखि ।।टेक।।

ऐसो कछू और नाहिं सेवा समि जगत माहिं,
जासौं अघ दोष जाहिं निस दिन सो भाखि ।

जपि लै जीव जगतमौरि अंतरगति अगम ठौरि
आतुर दिन रैनि दौरि पहलैं ही पाखि ।।

चरन कंवल बांधि नेह जीवनधन सुमिरि सेह
सुत दारा त्यागि गेह अमृत रस चाखि ।

रज्जब भजि मानि मोख भगति रूप मानि मोख
दीजैं मन नेग लोम सौंपी सिर साखि ।।३।।

गोब्यन्द पास सुख बिलास ।
श्रवन सुखी सुनत बैन बदन जोति निरखि नैन आतम राम मिलत चैन मगन मुक्ति दास ।।टेक।।

परम पुंज परत हाथ बिबिधि भांति भरत बाथ
सर्व बोल साईं साथ पूरन मन आस ।

जीव ब्रह्म बनत खेल रोम रोम करत केल
रस रूपी रेल पेल पाये निधि बास ।।

सघन कुसल साईं संग अति उछाह अंग अंग
दरस परस हूं अभंग जनम सुफल तास ।

जीवनमूरि हरि हजूरि बिमल रूप प्रान पूरि
रज्जब प्रगटे अंकूरि आनन्द बारहू मास ।।४।।

* राग धनाश्री *

# आरती

आरती तुझ ऊपरि तेरी ।
मैं कछू नाहिं कहा कहौं मेरी ।।टेक।।

भाव भगति सब तेरी दीन्ही ता करि सेवा तुम्हरी कीन्ही ।
मन चित सुरति सबद सब तेरी सो तुझ कै तुझ ही पर फेरी ।।

आत्म उपजि साँच सब तुमतैं सेवा सकति नाँहि कछु हमतैं ।
तू अपनी आप प्रानपति पूजा रज्जब नाँहि करम कौं दूजा ।।१।।

आरती आतमराम तुम्हारी ।
तन मन सेवा साँच उतारी ।।टेक।।
दीपक दृष्टि गुरु की दीनी घंटा घट धीरज धुनि कीनी ।
ध्यान धूप हित की कहि झारा पाती पहुप अठारहि भारा ।
मल सब चन्दन नान्हां घाँटैं केसरि करनी सोहरि छाँटै ।
ऐसी बिधि उर अंतरि सेवा जन रज्जब क्या आपैं भेवा ।।२।।

आरती अकगति नाथ तुम्हारी ।
करि कहा जानै सुरति हमारी ।।टेक।।
अपणैं पाट प्रभू आप बिराजैं सेवग उर आसण कहा साजैं ।
पहुप पाणि अंगि अंगिनमावैं हम कहा पाती प्रीति चढावैं ।
जोति प्रकास सकल उजियारा ज्ञान अगिन का दीपक बारा ।
सुष्मि सरोवर सलिल अनंता काया कूंभ कहा भरै संता ।
अहिनिसि अनहद गोपि सु गाज घंटा झालीघर कहा बाजै ।
सकल साँज साई कन साँची रज्जब आरती करहि सु काची ।।३।।

आरती कहु कसी बिधि होई ।
साँज सिरोमणि सारी खोई ।।टेक।।
प्रथमि पाटि उर बैठे औरे परमपुरुष कौ नाहीं ठौरे ।
सामा बापु बही बिधि बाई ज्ञान दीप सिस दिया बुझाई ।
स्वाद सिखा परि घंटा फूटी पवन चंवर डांडी धुति छूटी ।
पाती प्रीति पहम परि डारी फहुम फूल की माल बिसारी ।
ममंता चोरि लियो चित चंदन क्यूं कीजै अरचा प्रभु बंदन ।
ठाकुर खड़े कोड़ि की खड़िया खोस्यो खस खट पैंडा पड़िया ।
रज्जब मांगे साँच सु दीजै अंतरजामी आरती कीजै ।।४।।

यूं आरती गुरू ऊपरि कीजै ।
जामे आतमराम लहीजै ॥टेक॥

ज्ञान ध्यान गुरु माहिं पाया विषम विषय सो प्राण छुड़ाया ।
दुख दरिया माहिं त काढ़्या मोष जहाज जीव लै चाढ़्या ।
माया मोह काटि मन धोवै परम पवित्र गुरू तैं होवै ।
जिनि अंमो प्राणपति सेवै ते सब भेद गुरू दिस देवै ।
जन रज्जब जुगि जुगि बलि जावै गुरु परसादि परमपद पावै ॥५॥

पद भाग समाप्त ।

रज्जब जी द्वारा रचित—

# सवैया भाग

## श्री स्वामी दादूदयाल जी की भेंट का सवैया

### निरपषि निज का अंग

भगवान जु भावे माहिं विभूति सगावै नाहिं पाखंड सुहावै नाहिं ऐसो कछू भाल है ।
टीका मास मानै नाहिं जैन स्वांग वानै नाहिं परपंच प्रवानै नाहिं ऐसो कछू हास है ॥
सींगी मुद्रा सेवै नाहिं बोध विधि लेवै नाहिं भ्रम वित देवै नाहिं ऐसा कछू ख्यास है ।
तुरकी तौ खोदि गाड़ी हिन्दुन की हद छांडी अंतरि अजर माड़ी ऐसो दादूलाल है ॥१॥

निरपषि निज अंग मिलै न काहू के संग रंगे जु हरी के रंग सुषम हंस ज्ञान है ।
पास माहिं पास काढ़ी दोऊ पथ रही ठाढ़ी साधि से अधिक माड़ी प्रवीन विज्ञान है ॥
नीच ऊंच छांड़ी दोइ आतमा मई जो कोइ ऐसी विधि रमै सोइ अधिक सयान है ।
कबीर जैसे पंथि धायो कीट भृङ्ग होइ गायो ऐसी विधि पति पायो दादू जी सुजान है ॥२॥

साह ये बचन स्यन्द सिकन्दर ये कस मस अमिट करारी ।
रवापति साहि गये पत्र बाहि मटै न मिटयो कछु सेव खुमारी ॥
बसी सब हद मु आये बेहद फोर कियो धुद बीच दरारी ।
रही रज रेप मुनी ससि सेप हो ऐसो भमो कसि दादू पधारी ॥३॥

हलै न चलै न पिछै न डिलै एसो रोपि रह्यो बसिवंत बिहारी ।
भटयो न मिटयो न बटयो न मुटयो जब मायार भामि गये पषि हारी ॥
हसायो चलायो बुलायो न डोलई देखहु साध सुमेर ते भारी ।
हो दादुव साधुव आनि अनादि सिरोमनि देखि भयो बलिहारी ॥४॥

बयो हरि नाम गरीब कौ राज मिल्यो सब साज हो छत्र छबीले के सीष बिराजै ।
जहां सम मान तहां सग नाम मममम्हु नाम सबद निसान प्रगट बाजै ॥
उठे सब सास दयू भरि काल रह्यो बिचि सास हो ध्यान मयंद चढ्यो सिरि गाजै
हो दादू को राज गरीबनेवाज अमाव क साज हो रज्जब रंक क पूरण काजै ॥५॥

मोसस तारे को तेज गयो घसि एकहि सूर की तावहिं देखत ।
बाधे अनेक गये सुनिबेसौं जू एकहिं मन्त्र की मोरहिं मेलत ॥
यूं लोग अनेक अकेलो है दादू धी एकहु अंट घने घत घेलत ।
कोटिक गाइ गई जु दसौं दिसि एकहि स्यंघ की आंख्यूं पेलत ॥६॥

मन से मयमंत उछारे अकास कौ फेरि परे नहिं ऐसे ते मार्थ ।
नौ कुली नाम ज्यूं कीलि करंड मैं ऐसो प्रकार इंद्री अटि राखे ॥
सरीर सरोवर सूर ज्यूं सोखे मनौ दरियाव अगस्त ज्यूं चाखे ।
हो दादू दयाल कहु कौन ओपम मेरे बिचारि बमेन मैं भाखे ॥७॥

एक के एक किये जु अनेक सो पेखि पुरातन सोधि सधाई ।
अनंत अनीति उठाय उरहु सौंधी आसम राम के पंथि चलाई ॥
नारि पुरुष को नेह रह्यो बमि मानौ हनौ सनै हाकि सुनाई ।
हो रज्जब दादू के काम न की कछु ब्योरि बिचारि कही नहिं जाई ॥८॥

बेद कुरान की बोध बिलोक मरंम करंम मैं नाहिं बह्यो है ।
भेषर पच्छि रहे सब भच्छि गये सब भच्छि निरखि निरंजन पंथ गह्यो है ॥
औतार अपार गये केइ बार सु देखि तिन्हों बिधि माहिं बह्यो है ।
हो रज्जब रत अनत अनूपम दादू न पूजे को बंद सह्यो है ॥९॥

मरेहु परे सु करे जु कटाछि मैं माया छबीले की तेहू न छीने ।
गाव न ठांव न गांव न मान मैं तेउ जी चंवक ज्यूं सब बीने ॥
बहेहु रहे जु अहे अपने कर काल के गाल से सो महि लीन्हे ।
हो दादूदयाल कृपाल कृपा करि रज्जब देखि अचंभि जु कीन्हे ॥१०॥

दादू सो दाम नहीं जुग देखत कुंभ दलिद्र को तोरनहारी ।
रंक सो राग भये दिसि देखत आपद फेरि तक्यो नहिं हारी ॥
जु जासु कृपा करि ते भये ईसुर गांव सो बित्त चढ्यो कर सारी ।
हो रज्जब संत सुखी सब संगित दादू मिलै मन मंगलकारी ॥११॥

नांव की ठांवर मीति को आगर ज्ञान की पंथ बढ़ै मुखि मागे ।
सांच सींव सुदिढ़ सुमेर सी सीम की साख मंडी मुख आगे ॥
समाद समुद्र सुगंध को चंदन पारस रूप मन करम लागे ।
हो रज्जब राम दयौ दत दादू को अंग अनंत बडे बड़भागे ॥१२॥

औपमा अनंत भाइ, काहू पै कही न जाइ
कहै कहा मन बनाइ, कौन अंग के समान दादू जी बखानिये ।
चंद मंद है समुद्र येक येक माहिं दंद
तहां न आनंदकंद मांझ मैं सोभा समानि कोऊ नहीं जानिये ॥
पारस पोरस न सति कामधेनु पसू गति तिनमैं नहीं भजन मति
सतगुर छमि सति रूप इनमैं क्या जानिये ।
सु कछु माहिं जगत माहिं पटंतर कौ कहूं नाहिं,
सेष त्रिगुन मैं समाहिं जन रज्जब गुर गोब्यंद मन करम मानिये ॥१३॥

दादू गुरू के गुनो महिं अन्त जु कौन समानि सो अंग बखानौ ।
उरै उन्मासि सु जोति अंकूर नछित्र न जामे नहीं नमि जानौ ॥
भूवमि छेह धरसि बिरारत नीरही तीर समुंदि समानौ ।
हो रज्जब आमहु थोर रुति गति मौन को पार महंत बिसानौ ॥१४॥

बीनती कौन करै तुम सेती जु कौन के भाग भयो तुम लाइक ।
कौन कला गुरदेव बुलाइये कौन कै मुखि बन्यो ऐसो बाइक ॥
कौन कै प्रीति प्रचंड भई उर आपरि धीम करै गज नाइक ।
रज्जब रंक रिझावे कहां कहि आप सौ आनि भयो सुख दाइक ॥१५॥

बीनती विकट बात कैसे करौं गुर तात सु कछु न मुख बीम जाहि कै बुलाइये ।
तैसी माहिं भाव सेष जाहिं रीझे गुरदेव प्रीति पानि कौन आमि ठौर तैं हुलाइये ॥
सर्ब अंग हीन दीन चाकरी करे न बीन कौन भांति मान दान जोर कै भराइये ।
कहत कह्यो न जाइ रज्जब रह्यो न जाइ दादू जी दयाल होइ पयानी दिसाइये ॥१६॥

दादुर पिक मोर दीप चंद मास सकल दीप चाहैं सब सुख समीप जीवनि जगि भावै ।
तिन तरु बेल्यो बिलास किरनि कुसुम कष्ट नास, चाहैं जु चकोर दास कब मयंक आवै ॥
चकवा चकवी सुप्यंद दृष्टि इष्ट कंवल कंत रवि प्रकाश रयन अन्त जगत को जगावै ।
तैसे दादूदयाल कीजे सब की संभाल दरस परस ह्वै निहार रज्जब सुख पावै ॥१७॥

सेवग संतोष काज परमपुरिष आये आज पूरये सब सति काज पावन मन कीने ।
जिनको जिनूकी लाज सो पधारे सीस ताज उपजै आनन्द राज पाप दुख छीने ॥
बैठाये मांझ महाल दिये हैं सकल साज पूरी की पूरी निवाज राम नाम दीने ।
दीसै दीरघ साज दादू गुर गृह बिराज संकट दुख सकल भाज अपने कर लीन्हे ॥१८॥

दादूदयाल के संगि सदा बसि राम रँगीले दसौ दिसि ठाढ़े ।
जिनके प्रताप प्रपंच गये भजि भेष भरम से मांझ सो काढ़े ।
महां परचंड निसंक निरंकुस सरगुण रूप सु सीस न बाढ़े ।
रहति कहति सबै बिधि समरथ रज्जब राम भजन सौ गाढ़े ॥

दादू की मात बुलाये पिता हरि बालिक बास सु गोद सो धारे ।
सांई समीर समो बन दादू, चहूं दिसि चाहिग चित पुकारे ।
बादित आप सरोवर दादू की सोखत ही सफरी सिष मारे ।
हो दादू के गौनि दुखी सिष रज्जब प्रीति प्रचंड सु अंतरि जारे ॥

दीनदयाल दयो दुख दीनमि दादू सी दौलति हाथ सो लीन्ही ।
रोस अतीतनि छौब कियो हरि, रोजी को रंकून की वृति छीनी ।
गरीबनेवाज गरीब हुते सब सतनि सूम अती मति कीन्ही ।
हो रज्जब रोइ कहै यहु काहि, तु माहि तु माहि कहां यहु कीन्ही ॥

## गरीबदास जी की भेंट का सवैया

दादू के पाटि दिपे दिन ही दिन दास गरीब गोब्यंद को प्यारौ ।
बालजतीर अमम को जोगी सु सूर सधीर महा मन मारौ ।
उदार अपार सबै सुखदाता हो संतनि जीवनि प्रानअधारौ ।
हो रज्जब राम रच्यो जिय जानि के पंथ को भार निबाहनहारौ ॥

दादू प्रसाद पुरातम चीरी गरीबी की मोह गरीब के साथि है ।
तीर्थ तुरंमि चढ्यो मनि चेतनि ज्ञान चौगान सु हेत के हाथि है ।
काया मैदान बंदगी बंटौ भये खोड आइ सु संतनि आथि है ।
हो रज्जब पंच पचीस न पूजें भई हरिहु हद दई दीनानाथि है ॥

गरीब के गरब माहिं दीन रूप दास माहिं
आये न बिमुख वाहि आनन्द को रूप है ।
दादू जी के पाट परि बैठायो जु आप हरि
उपज्यो सु बीर भरि भगति भौमि भूप है ॥
यौवन मैं राख्यो जत पूनवान पूरि मति
राम रंगि प्रान रति निरमैला निरूप है ।
आतमा को रज्जदास पठयो दीनदयाल
पंथ के तिलक भाल रज्जबा अनूप है ॥

## गुरदेव का अंग

सीर सतगुर मैं सब सिक्खन की नीति की बात कही निरताई ।
साखी दयो गुरदेव सु ग्यान मैं भाव भगति की खानि बताई ॥
दृष्टि सौ दान दियो दत दीरघ जोति मैं जोति लै जोति जगाई ।
हो रज्जब मेल्यो सुभाग मैं भाग सो छाजन भोजन की कहा भाई ॥१॥

## बिरह का अंग

उठी उर आगि बिरह की आगि गई मम लागि भई तनि कारी ।
पीर प्रचंड भई नवखंड जु, धीरजि बिहंडि गई सुधि सारी ॥
भई चकचाल कहै बिकराल नहीं कछु हाल सु ख्याल बिसारी ।
हो रज्जब रोइ कहै पिय जोइ दुखी अति होइ बियोग की मारी ॥१॥

हो पीय बियोग तजे सब भोग न भावहिं भोग भई बनबासी ।
जु भूषन भंग दिगंबर अंग रंगी इहि रंग अभाग उदासी ॥
बैराग की रीति गई तन बीति भई बिपरीति दुखी दुख भासी ।
हा रज्जब राम मिले नहिं धाम भये सब जाम कहो कब आसी ॥२॥

दुखी दिन रात परी बिललात कहू किस बात जनम की जाती ।
जु मोह के सुख भये सब दुख बिना पीय मुख बिलखत छाती ॥
भई सब भेस न आये नरेस जु माही अदेस परी उर काती ।
हो रज्जब कंत सु सेत हैं अंत जु हेत सो हेत धरी जिये जाती ॥३॥

परी सर माहिं निकस्स नाहिं बिना दरबाह कहो कहा कीजै ।
होसा उसास रहै तिस पास जु देखि निरास नहीं घर धीजै ॥
पल पल पीर सु होत गंभीर, धरै कहा धीर छिन छिन छीजै ।
हो रज्जब रट्ट भई जरि मट्ट जु पीय परट्ट दरस न दीजै ॥४॥

हो प्रभु बियोग ब्रह्मंड मैं सोग भयो जिय जोग सबै दिसि रोवै ।
नहीं नमि धीर परै बहु नीर, सही उर पीर घटा तन गोवै ॥
फिरै ससि भान समीर समान रहै नहिं ठाम दसौ दिसि जोवै ।
पिरै गिरधार कहै पतझार सु पोसहिं बार क्यों रज्जब गोवै ॥५॥

हरि बियोग बिघन मूल अंतरा अनंत सूल,
पति परदै पाप मूल मन बच क्रम मानी।
बिरचि बाँध बिपति झास गुपत कंत कीन्हो कास
सनमुख माहीं मु साम सुन्दर त्रिय जानी॥
अबोलमो अमी सु सार पीठि महत मार
मन मरोर मीच मार या समि नहिं आनी।
धीरज कुछ दिस न ठौर तुपक तीर तरक त्योर
बैन बाग कहुत और रज्जब बन मानी॥१॥

## सवैये सूरातन के

जे पर सूर सहै सु महूरत साहिब सेम तहाँ सिर डारै।
बाहर देखि खरो तेहि ठाहर सूर संग्राम मरै भरु मारै॥
सरीर को सोच करै न डरै कछु, मारनि माहिं अरथ् सलकारै।
हो रज्जब राम कै काम तजै तन ताहि निरंजन नाव बधारै॥१॥

सबद की साँगि लगी जेहि आँगि सु मारहु जो सोइ स्वादहि जानै।
ज्ञान की चोट रही नहिं ओट हो हाथ लहीम परष् पहिचानै॥
सुबुद्धि को सेल गुरू गहि मेल हो मारि लियो महा संघम पानै।
परयो सोइ घाव मिरयो मन राव हो रज्जब पैंड न छांडहि जानै॥२॥

सिंहिनी सुमति काढि जे हुलै जुगति चाढि,
बैन बाम धाई बाढि सतगुर साईं।
कपट करम फोरि कुमति करी कौ तोरि
मीकस्यो पैलीजीवोरि ऐसे कसि बाईं॥
निज ठौर लागौ तीर लायो श्री अमेकी बीर
लागत रही न बीर पानीहूं न बाईं।
ऐसी विधि मारयो बाम तम मन कियो चान
अंतरि बेध्यो मु प्राम रज्जब अज्जब चोट रह्यो जेति माहईं॥३॥

गम्भीर धीर बिरचि बीर, खेत मैं गभाईं।
रोपि पांव जुद्ध चाव सूर बीर आये दांव आप मरै मारईं॥
सरीर की सुरति छाडि मित मैं अमल चाढि पिसण माथ तेग काढि फेरिहूं न सारईं।
जु त्याग दे सरीर धाम रज्जबा सु राम काम राखईं जु एक नाम सो कबे न हारईं॥४॥

सूर स्तंभ छेरे खाइ तासौं न कीजै उपाइ,
देखत सिहूंकि खाइ सो न जुद्ध कीजिये।
दारू के भुवन माहिं पावक ले संगि जांहि
तिनकी सु आस नांहिं बावहीं जरीजिये ॥
हिमगिर क लागि कोटि वेत हैं निदान कोटि,
उबरेये कौन कोटि देखें तें गरीजिये।
वसी विधि ह्वै अयान साधु सो न मांडि ज्ञाम
रज्जब की सुनहु कान ज्योतामनि मथि माग कास की न लीजिये ॥५॥

मजै संसार सगै न पुकार न होइ करार सहै न विचार हो नाव अपार सु एक सहैगो।
पंपी हजार उडैं सब डार सु आवनहार रहै न करार अकासि अनल ज्यूं एक रहैगो ॥
चले बहु संग सु देखन जंग न भावै अंग ह्वै मूरति भंग सती ज्यूं सतो कोइ एक गहैगो।
चले बहु पूर सु बाजहि तूर गये भग मूर रहे रन सूर ही रज्जब राम कोइ एक गहैगो ॥६॥

## साध का अंग

साध की दृष्टि सा साध को देखिये जे होहिं आप सों आपिन सामी।
दीप उदीप सो दीपक पेखिये प्रान पतंगने जोति यूं जानी ॥
चन्द्र कराति सर्ज्ज पवि पान्हि चारि चकोर सुधा रवि मानी।
हो रज्जब मूरहि सूर दिखावत बात प्रगट रहै नहीं छामी ॥१॥

संत प्रताप मिलें जिव संतनि पाव पसाव विना नहि पावै।
कंवलि की बासि गई बलसी कम संगि सुगंध तहीं मसि आवै ॥
सीतल अंग महा भ्रिङ्ग सौरभ पाइ परमल को अहि भावै।
हो रज्जब देखिहै स्यो बस बंबक मूनी हुई मुति अंगहि लावै ॥२॥

साध मिलें तो सुधा रस पीजिये आतम आनन्द होत अपारो।
ज्यूं ससि देखि मुदित प्रमोदनि कूची लागै खुलै जु किवारो ॥
हो सीर सी संपुट स्वाति सों ऊबरै रोजो खुलै अब देखिये तारो।
रज्जब रैनि गई चकवा की ज्यूं आइ मिल्यो मानो सूर पियारो ॥३॥

साध समागम होत ही पाइये राम को नाम सिरोमनि साचो।
निरमल ज्ञान गोप्यन्द की ठाउं कंचन होत पसदू के काचो ॥
तामहिं फेर न सार मम करम साध के संगि कोई नर राचो।
हा रज्जब सुग सदा सतसंगति जीवहिं नामें नहीं जम आचो ॥४॥

पाप प्रचंड कटै सतसंगति पानी पषान सों पाप न जाहीं ।
चंदनि संगि सुगंध बनी सब नीब सुगंधि न बागहु माहीं ॥
चंबक माहि सुई सब चेतनि सों मल और पषानहु माहीं ।
पारस लागि पलट्ट्न लोह ज्यू रज्जब त्यू न सुमेर सिमाहीं ॥१॥

साध सचित्त सो काम सरै सब माहीं अचित्त सों कारज सीझै ।
समीर सरोवर ग्राम सुखी सब सूक सरोवर में कहा पीजै ॥
वरिषत बारि भले सोइ बादर नाहि जु नीर घटा कहा कीजै ।
हो रज्जब माह सु पाथर प्यारो पै नीर सु माह पषान न सीजै ॥६॥

सुध बुध आप भजै भगवंतहि श्रेष्ठ काज अनन्त के सारै ।
विप्र की मीच भई अपने जिव सूर संग्राम किते नर मारै ॥
पावक आप पचै ज्यू पतंग हो चूहे की आगि घने घर जारै ।
हो रज्जब पान तिरै अपने अंग बोहित बीर बहुत सब तारै ॥७॥

## साध मिलाप मगल उछाह को अंग

वेस दसा बनि भोम सु अस्थल मापरि जीयनि संत विराजै ।
दरस परस कटै सब पातिग काल अंकाल निरखत भाजै ॥
प्रेम कथा सुनि हासि सुखी सब नांव निसान प्रगट बाजै ।
हो रज्जब भाग उदै मिलि साध सो संत प्रताप सबा सब गाजै ॥१॥

ज्ञान के थान अनेक के बासन देस क्या के दया करि आये ।
आनन्द के कन्द बिलास की रासि मुकतहु के समंद समाग सौं पाये ॥
भगति की भोमि भंडार भजन के पेम के पुंज मिले मन भाये ।
प्रान के प्राभर जीव की जीवनि रज्जब देखि दरस अघाये ॥२॥

उत्तिम ठौर अतीत को वासौं जु, साध समाइ न मध्यम कै घर ।
मानसरोवर सी निधि छाडि कै हंस रहे कत आइ बसी पर ॥
विविधि प्रकार क बाग बिना अलि केतग बेर न्नौ कैर कली हर ।
कोकिल कीर आवै रची रज्जब माहि समान न आकहु केसर ॥३॥

## उपदेस का अंग

आप सौं होइ सुतौ कछु कीजिये जोब न होइ सु राम के सारै ।
सूर सु दोस न नैन मुदे परै औलौं न प्रान पमक उधारै ॥
मेघ सौं मान कह्यौ कहा कीजिये जो खेत की सौंज किसान धारै ।
हो रज्जब त्यों सुनि सुमिरन बाहिरै साहेब साध कह्यौ कैसे तारै ॥१॥

आनन काई सो सार हु सीतल सार की आमि सु औषदि मारिये ।
अंकूर मैं बीजरै बीज हु चीकनी बीज अंकूर सु पावक जारिये ॥
सासरि बाढ्यो रही बढ़िबे सौं जु, उगिबो बाइ जे छूत उपारिये ।
हो रज्जब मुक्त कुटंब के छांडे कुबुद्धि के छांडे सो कारज सारिये ॥२॥

सरीर को मान करै सन्यासी जु, जोगी सोई जुग जुगति सारै ।
दरवेस सोइ जहि देह न ध्यावै बोध सोइ जु बम्ब बिसारै ।
भगत सोई सब भूलै बिना हरि जैन सोई जोइ जीव उधारै ।
एसे गिनान मिल भगवतहि रज्जब राम न स्वांग सो तारै ॥३॥

देह धरे तन मैं मम निहचल तीन प्रकार परगट पेखतु ।
अति गति सीत सरोवर मेभत पानी पषाण सो आहि बसेखतु ॥
ज्यू असु उभौ रहै अति चत्रक चातर वौर नहीं कछु देखतु ।
मूसो ज्यूं पारो पिये पग पंगुल रज्जब राम न रखै सिय भेखतु ॥४॥

नींद के नेह नूमून भयो नर सास उसास की भाम न भाकी ।
पंथी का प्रान परयो तम नींद है, पाइ सु दुइ रहै कपि साखी ॥
राहर केत ग्रसै ससि सूरिज बासनि सास रहै नहिं राखी ।
हो रज्जब प्याऊ मे प्रान गयो यो मैं नग हींगि जियो वाहि बासी ॥५॥

वे परि साधू के साची जु उपजै तौ कहां मायार मोह करैगो ।
ज्यू ससि सूर घटा मधि उन्नत तौब कहां कछु बाभै अरैगो ॥
कंवल को बास परयो पगि हाथी के तौ कहा बैरी को काम सरैगो ।
जर सुमेर समुंद मैं डारिये रज्जब सो धरि जाइ परैगो ॥६॥

एक को ठौर सही उर अंतरि, माया रहै भावै ब्रह्म बिचारै ।
ज्यू मुख कीरी कै येक कनी को जु बूबो गहै जब दारु हु मारै ॥
तिमें परि बूव रहै सुमि एकहि, तापरि मौर कह्यौ कैसे धारै ।
हो ज्यूं कि हूं बाइ तरंग हूं ज्यू ही की रज्जब साम्हो हिलोरी न मारै ॥७॥

हीरे के दीवे सों आगि न लागै जु विष को स्वाद कहौ कहु काई।
जरी जेवरी सों प्रसंग जग बुनै कोऊ विमंम के नीर कहा तिस माई॥
मश्री के सूति सितारौं न नीपजै सीत के कोट को ओट रहाई।
हो रज्जब साधु को सोग न व्याहै अगम को संत कहा करै माई॥८॥

## सुकृत का अंग

देत ही देत बयो जु उगावत भावत है भगवंत भलाई।
कृपास कबीर दई निज दोवटी ताही तें ताके जु बारवि आई॥
भान की पौढ घनें दई विप्रहि बीज बिना सु कितपि न पाई।
हो रज्जब रंग रह्यो वियदान जु, दादूदयाल पईसो दे पाई॥१॥

## समिता सिदाम का अंग

जैन जोग अरु सेख सन्यासी भगत बोध भगवंतहि भावें।
बावत बीच परें घर क्यू हो अंकूर उगै होइ ऊंचे ही आवें॥
नौ कुली नाग परे नौखंड मैं पंथ महे सोइ चन्दनि आवें।
दसौ दिसि नीर वहै सलिता सब रज्जब सोई समंद समावें॥१॥

काष्ट लोह पषान की पावक एकहि ऊपर एकसी तातो।
वृच्छ अठारह भार बहु विधि प्रान कै पान मधुर मधु मातो॥
मंच अनेक अनेक ही जाति के या मत एक जु नीर संघातो।
हो रज्जब राम को नाम भजै जु सु आतम एक जु एक सौं रातो॥२॥

साम के सुद्ध भये मन पंचो तो जाति कुजाति को अंक न कोई।
चंदन अंक भुवंग न भामई चंद की अंक चकोर न जोई॥
अंक बुरी नहिं हंस अमेवी को स्वाद के संगि गई सब सोई।
हो रज्जब अंक विचार न वोहित जापर प्रान पारंगत होई॥३॥

जाति कुजाति भई सम सारिखी मांब निरंजन मैं जब आये।
तांबेर लोह को अंतरभागो जी कंचन होत है पारस लाये॥
भार अठार ज्यूं झांखर अंग लै चंदन संगि सुगंध बहाये।
हो रज्जब भागि मैं आगि भये सम काष्ठ के कुल भेद नसाये॥४॥

जाति कुजाति र उत्तिम मधिम जाति के ओरि न भोति को क्योंहूं ।
बैरी भली नहिं सोनर मोह की पाइ परे कहु पंथन झोंहूं ॥
नींद को मास म कौन अंधेरी मैं सूर विना सुख नींदहिं स्वैहूं ।
हो रज्जब राम मिलै नहिं एस सु, जीसों न प्रेम की योहुयो क्वैहूं ॥५॥

हींदू की हद्द न ताब तुरक्क की मुद्रा की मानि न मौनि सुहावे ।
मामाम मेमत जीव सबी सब गरम गति मसम न मावे ॥
गुरड मूंठ नंगि गनहिं कछू, मूड मुगध मु मूड सुधावे ।
पपापप भीन न भूसे समेयो रज्जब राम रटै सोइ पावै ॥६॥

कौन कुलीन को देवम फिरयो ज कौन कुलीन के बारधि आई ।
कौन कुलीन की सख बजायो रे कौन कुलीम के बेर सु खाई ॥
कौन कुलीन के गाति अनेऊ हा कौन कुलीम सु देषि कसाई ।
हो रज्जब राम रचै नहिं जातिन प्रीति प्रसंग मिलै हरि भाई ॥७॥

## मसम प्रसाप का अग

केलि को माम भयो फल लागत कागद मास भयो फल पाये ।
पार को नास भयो पुनि ऊगति बीखनि नास भयो सुख आये ॥
फप को नास भयो फल आवत रैनि को मास भयो दिन आये ।
हो तनहिं नास भया जन रज्जब जामण मरण जगपति ध्याये ॥१॥

## पीव पिछाण का अग

घरेही को ज्ञान घरेही को ध्यान घरेही के गीत भरे घर गावे ।
घरे को बमेक घरे को विचार, घरे को ही नांव वही के दिखावे ॥
घरेही की बात घरेही की चरंत घरेही की बात अनेक मिलावै ।
घरेही सु लैन घरेही सु दैन हो रज्जब राम घरे ताही बतावे ॥१॥

कहै सब हद गहै सब हद बेहद नहीं उनमान मै आवै ।
गुडी की उड़ान डोरी के प्रवान हो पच्छि सु डोरि में डोरि ही आवै ॥
तीर को आन जहां लग पान जुदैद को गौन पैड़ बस पावै ।
सरंग की चाल जहां लग पास हो रज्जब डामुस दौर का पावै ॥२॥

## साखी भूत का अंग

लोक लियेर लिपै महि लोकनि प्रन कौ प्रानर प्राननि न्यारो ।
ज्यो जल जीवनि मीन जलचर नीर न सींरह सैन सहारो ॥
मारुत मैं पब बनर मावर, थाइ बिरंचिर हीर अपारो ।
सूर सु दूरिर नैननि नीरो हो रज्जब येही अमेक बिचारो ॥१॥

स्वान सिसा समिता सोइ सोइ जु सूकर स्वंघ सु सींमि सचावे ।
देवसि धम्भर मूरति क मधि खानि छवीसौ सु संति की खावे ॥
मौरिर मोर गयंद मैं गोब्यंद सेवग संत कहां कहां जावे ।
हो रज्जब राम रह्यो रमि सारे मैं रूपहि छांडि अरूपहि पावे ॥२॥

## सोच चाणक का अंग

भिक्षुत रूप धरयो बप बाहिर भीतरि भूल अनन्त बिराजी ।
ऊपरि सौं पनहीं पुनि त्यागी जु माहि भिषा तिहु लोक की साजी ॥
कपट कला करि लोग रिझायो हो रोटी को ठौर करी देखी ताजी ।
हो रज्जब रूप रच्यो ठग को बिय साध भले सब मालिर पाजी ॥१॥

निराम रहै मद मयन सों हित देखि महंतन माया जु त्यागी ।
टोपीर कोपी को नाहि कछू मनि प्रीति प्रचंड अजाचहु मागी ॥
मति मति ध्यान धनादि सौ कीजिये लोभ सु नाइन कौडियहु मांगी ।
हो रज्जब दूमंद कपट छिपावत साधन को सब दीसत नागी ॥२॥

निरासनि रूप करै निस बासर दास की आस कै बाम न आवै ।
सेवग सेव रचै तहां बैठि जू बिरकत बात अनेक चलावे ॥
गावै है चारि मैं चित अटक्यो हो चीस की नाई तहां मंडरावे ।
हो रज्जब और के और कहै कछू आपनी दुख दसा मैं दिखावै ॥३॥

निरगुन रूप दिखाइ दुनी कहु देखहु लोभ ठगो ठग सारे ।
कोपीर टोपी गरें गर मूदर, मानौ फकीर बजार उतारे ॥
जैसी जुगति जगत सुसी सब तैसी मसूल के स्वांग संवारे ।
हो रज्जब दास दुनी के भये उर बामे फिरामी के बेचनहारे ॥४॥

रोग के जोग सौं लोग रिझाई, होहीं बसौ करि इंद्री जित कीनौ ।
भने धन धाम सहे बिन धाम अगम सुनाइ कहै तप लीनौ ॥
सौभाग की भूर भये सुख दूर कहै कछु आनि देहि दुख दीनौ ।
हो रज्जब दुख दसा मैं बनाइ कहीं कौ प्रसंग कहीं कर लीनौ ॥५॥

अमल कर्म जोग चलै जगि मारगि तासौं सलक सुखी किन होई ।
संसार के सेरे सबै लिये स्वामी जु, काहे को रोस करै कहु कोई ॥
तहि मधि पाग मुदित ज्यूं मेदनी मोद मयै मन भावु मिलोई ।
हो रज्जब प्रान पुलै प्रथि पंथि प्रीति प्रजा परलोक सौं खोई ॥६॥

सुध बुध को काम धरै सतसंगति खेचर स्यंव कबे नहिं छीजै ।
नागर नींब को दूध सौं पोषिये देखहु जात सुभाव न छीजै ॥
खार समुंद न होइ सुधारस पाहन पानी हो माहि न भीजै ।
स्यैसा कुटिल करै कू न ऊजल रज्जब रंग क्यौं सबहि दीजै ॥७॥

तेल की कूपी न तेल सौं कोमल नीकी नरम हूं और अघोरी ।
माइ के दूध महा बलि ध्यारी गाइ गई अपने बलि बौरी ॥
मनिधो विष और मनिप को उतरै सर्प समीर सदा इकठौरी ।
हो रज्जब सुख सदा सुरतैं बकतैं के बिनास कदे नहिं त्यौरी ॥८॥

सबद की चोभ रहै न अचेत के काटि सुमै कछु हापु न आवै ।
भुअंग अनेक धसै बिल पैसें जु पीछे न आगे सु पोसि सखावै ॥
मीन अपार बसै जल माहिं, पै खोषि न संधि कहीं कोइ पावै ।
पंषी अगम्य उड़ै बहु बाइ मैं रज्जब पीम सु फाटि न जावै ॥९॥

दसा करि दीन दिखानी बकै कछु होई कहा कछु कानि करैगो ।
पोखे घी बान बनावै बिना बलि ऐसेव गैंडा हो क्यूंब मरैगो ॥
तूपक पूरि पली तौ न पावक फूंक कै फूका फोर करैगो ।
बूटी न बेद टटोरत पाती हो रज्जब सो कैसे पीर हरैगो ॥१०॥

पाल मै चोर की बोलिबौ साध को ऐसै न साध कै मोलि बिकाइगो ।
हंस की बोली सु सीली जु काग नै तौब कहा कछु हंस कहाइगो ॥
पोथी की पानी सही जड़ पंथि मैं तो सब सास्तर सोधि मैं आइगो ।
पंखी को पंख धरयो नर कै सिर, रज्जब सो न अकास को जाइगो ॥११॥

का पद साखी कवित्त के फोरे पै माया की साँज न जोरी जु जाई ।
रसना रस नैन निरखि दसौं दिसि नासिका बास गई सपटाई ॥
इन्द्री अनंग सुन श्रवना गये माहिं गये मनि सुद्धि न पाई ।
हो रज्जब बात बहु बिधि जोरी पै आतमराम न जोरी रे भाई ॥१३॥

कहनी रहनी बिन काम न आवई अंध वपू दीप लै कूप टरैगो ।
नर तैं सुनि नांव भयो मुक खारो न तौब कहा कछु काम सरैगो ॥
विद्या धनत्री की सीखी जु यान्नि मृये की विष न कोई हरैगो ।
साध सबद असाधनै सीख हो रज्जब यूं नहिं काम सरगो ॥१३॥

कहै कछु और गहै कछु और लहैगो साई जामैं चित समायो ।
कहै मुखि राम गहै करि काम हो मासीनैं अंति भरसहीं पायो ॥
वरषू सब गांव उठी मुंह ठाम हो मान कहै कछु नाहिं सिरायो ।
पट की पाहि जगावत गोरख हो रज्जब जोगी को टूकहि आयो ॥१४॥

साखी कही सु कहा कहि साखि कहै जो सिलोक सुलोक न पायो ।
जोरे कवित्त न वित्त जुरया तत्त गमि गम गति माहिं न आयो ॥
गाथा गरंथि प्रथ्यो नहिं गोव्यंद पाठ पढ्यौ पद मैं न समायो ।
हो रज्जब राम रटे बिन बादि सवारि सबैमै सु नहै न सबायो ॥१५॥

कूहरि यूं सबरम न कहरि फूहरो भूवर सो न बुझीनो ।
अरिलो उचारि अरयो न उरंनरि आरज की सु अरज न कीनो ॥
गाहन गाह गह्यो न तन मन छंद कहै छप छेद न दीनो ।
हो रज्जब पंथ परा पग पंगु चलत चोगई है मतिहीनो ॥१६॥

बैन बेजर्म बिक समुधा मैं जु अंध अज्ञान कहै गहै सोई ।
रमती सौं माड़ी पाडी सौं ऊपर देखत दृष्टि कहै सब कोई ॥
जड़ कहै जाहर पंगी का सामी सुने सुनि बैन अचंभो जो होई ।
हो रज्जब बीप सुसे को बडो कहैं सठ संसार मैं मति न सोई ॥१७॥

अध अचेत अज्ञान के आगर मान की आन कहै मुख माहीं ।
साध असाध असाध को साध जु सुद्ध सरूप सुरति मैं नाहीं ॥
मन अज्ञानि को असति को समहि प्रान मैं पंच प्रपंच की छाहीं ।
नीति अनीति अनीति सौं नीतिग रज्जब जानि जमैपुर जाहीं ॥१८॥

सेवग अंध आनंद गुर पायो सु कहा ब्रह्म की बाट बतावै ।
पानी की बूड़ छो पानी ही पाकरै ऐसे मतै कैसे पार को जावै ॥
बाहर अंतर हीण को भेटिबो ऐसे उपाय न पुन्न ह्वै आवै ।
दीपक छांड़ि पतंग जु भूल्है मैं हो रज्जब चैन किसौ इक पावै ॥१९॥

झूठे गुरू ग्रह कोटिक त्यागि कै सांचे सतगुर को सिर नावै ।
काठ को नीकस्यो कोठै न ठाहरै भोम को धाम जु सुक्षि समावै ॥
कूवै को काढ्यो रहै कहि क्यारी मैं नीर निहारि सु सूर मैं जावै ।
हो रज्जब रोक्यो रहै न बमेकी जु, सेइयो ताहि जु राम मिलावै ॥२०॥

मोटे अभाग उदै भये जीव के साध समागम सौं छै छूटी ।
मनो गढ़ घाड़ सौं भेरि परे अरि दुंग मैं नीर की सीर न फूटी ॥
रोम अपार महा दुख संकट ताहू मैं गांठि गई खुलि खूटी ।
हो राम भजन बिना सतसंगति रज्जब खानि मैं बाहु सी टूटी ॥२१॥

गुर तैं बिरचै सिष होइ दुखी अरु सो कोइ ठौर न ठाहर सूझै ।
भूमि तैं पाइ उठाइ धरै कत काहे को काहि वृथा कोइ बूझै ॥
मीन जै मान कै जाइ जलै तजि बाहरि आइ तबै दुख बूझै ।
काग कुमति कै बोहित छाडि हो रज्जब रांड न अस्थलि सूझै ॥२२॥

नहीं व्रत बंध फिरै उर अंध उळझे जु कंध कहो कहा कीजै ।
गुरु छुत हंसि रमै बहु भंति गई गति मंति नहीं धन दीजै ॥
महा धुन मेटि भये घस पेटि छिपै नहि मेटि सु कौड़ी न भीजै ।
हो साध सौं तोरि अगम सौं मोरि लगी बहु जोरि सु धूल्ह मैं दीजै ॥२३॥

## माया मधि मुकति का अंग

अरधम बरती अपार मन मैं माहीं अगार,
बैठे हैं करि बिचार एक अंग लागे ।
सूरे का सुनहु भेस संपति बहु करत केस
मन मैं कोडी न मेस पल मैं पटकि आइ बाहर भागे ॥
देखि ले सती सु अंग माया सम्मूह संग
मन मैं लागा न रंग पीव प्रहार होत ही देखत गृह त्यागे ।
साधू यूं कंवल माह दह दिसि पाणी अथाह,
रज्जब सिर चढ़ि न जाइ मुरझावै ज्यूंत मोट माया जल मागे ॥१॥

वास निरास रहै दिसि माया की आइ मिलै मन ताहि न भावै ।
उदधि की बिधि न नेह नदयू सौं जु माहि मिल्यूं नहिं स्वाद समावै ॥
सुन्नि की मुन्नि ज्यूं आमेर धोम सौं घेरैं घटा घटि मैं मन न भावै ।
हो वाय के भावन बास रुचै कोउ रज्जब सो न तहाँ ठहरावै ॥२॥

## स्वांग का अंग

तिलक सौं तिलक देइ छापे सौं अथाइ लेइ रूप सौं रूपक लेइ कहा कीर्यों आइयो ।
काठ माटी मन लाइ झूठे सेती झूठ गाइ धरे सौं धरयो रिझाइ कौन मैं समाइयो ॥
नित्यप्रति मांझि न्हान प्रीति सौं पूजि-पषान सुधि सेती खाइ खाम कौन पति पाइयो ।
स्वांग सौं सरीर मांझि सांच सौं सनेह छांड़ि रज्जबा बनम मांझि देखतें ठगाइयो ॥१॥

स्वांगी सरप फिरैं चितकाबरे काहू के सैन न काहू के साथी ।
बानी बनाइ बिगूचे विये सौं जु, पुन्नी न पीठि मिटै नहिं माथी ॥
भूखू भी भेप धरयो पसु की गति सूकर स्वान मरै विष बाथी ।
हो रज्जब चित्त किये चित चंचल बैल दिवाली के ईव ज्यूं हाथी ॥२॥

भेषि असेस मिलै नहिं भाई रे बौसौ न जीव जगतपति पावै ।
गनेस गोरख नाद न मुद्रा पै सिद्ध प्रसिद्ध सु वेस कहावै ॥
द्वादस पूंम गुरू दत्त थापे सु देखि दरसन कौम बनावै ।
हो रज्जब सेस सुखदेव स्वांग न औसे सु थोदरि मैं स्यो मावै ॥३॥

## अज्ञान कसौटी का अंग

छाया के छेरे खिरै नहिं पंषी जु सांवि के मारि क्यों ब्याल मरैगो ।
काठ के काटे कटै न हुतासन पानी पीटे क्यूं मीन मरैगो ॥
हो गोरो ह्वै ऊंन्र बांभिये गादह ऐसे अज्ञान क्यूं काम सरैगो ।
काया की नास न नासिये सो मन रज्जब यूं न गुमान गिरैगो ॥१॥

सठ के हठ तजै पट पानही साथ सौं छोय संसार सौं रागी ।
दावै दिखावै क्यौं होइ दिगंबर कोपीर टोपी कुमति कै त्यागी ॥
मानि मिसन मसे पग मागे हूवै माटी भरे सु अज्ञान अभागी ।
हो रज्जब रीझ्यो देखै रस रोसहिं कौम कपटि कसौटी है नागी ॥२॥

हिमालय गरेर हुतासनि पैसे जु, मन कौ मान रती नहिं छीजै ।
सीस करोत समंद के झंपिबे गर्व गुमान सु नैक न भीजै ।।
दीपक देह सुभाइ तपै क्यूं मन मैवासी सु छंट न सीजै ।
हो काया के कष्ट करौ कोड क्युहू जु, रज्जब राम बिना नहिं सीजै ।।३।।

कायो तन मन आसिरै ऊतरै, औसौं सुरति सरीर मैं सानी ।
मूल की ऊख बहार ही ऊतरै मास त्रिसा कि गई पिये पानी ।।
सीत की मार उबार हूं अम्बर भाम घनै कौ छेवाइ लै छानी ।
हो रज्जब वोटहि चोट टरी सब पानी हि त्यागि कहां ठग ठानी ।।४।।

## असारग्राही का अंग

औगुन लेत तजै गुन माछिन आमहीम छिरवै कै न फूटे ।
दीप को कोल्हू ज्यूं अमृत तांहि, अचेत न है दिल घोघरे खूटे ।।
चालनी चून तजे तुस राखरै, वामैं छिद्र सहंसक छूटे ।
हो रज्जब भाटी मैं वाकस ठाहरै ऐसे अग्यानिहु औगुन लूटे ।।१।।

## काम का अंग

काम सौं राम रसे रम रावन यन्त्र अनंग से ईस नचाये ।
बीरज क बंधि बास विरंचि जु नारद ने सुत साठिक जाये ।।
मीच मदन मे मारि मी मेदनी बूडहिं बात तपा तेज खाये ।
हो रज्जब काया न कूप रहै ठग तांहि ठगे सु निरंजन माये ।।१।।

तिरिया की त्योरी मैं देखत ही नर सुन्दर सीस गमाइ गये हैं ।
नारी जु नाग भये नर दीपक देखत दृष्टि बुझाइ दये हैं ।।
ज्यूं गज देखि बिभ्रम्म की हस्तिनी हो रज्जब बित्त लुटाइ भये हैं ।
मनौ कपि काठ की पूतरी देख हो रज्जब बित्त लुटाइ भये हैं ।।२।।

यूं नारी के हेत हुते नर सारे असप सुखी दुख होत अपारा ।
मच्छ मुगद की मीच न सूझई स्वाद के संगि हूं माहरि मारा ।।
ज्यूं बग बुद्धि बिना बप हारत चूक नालेर न जीवनहारा ।
हो रज्जब मूस मरै सुख लालच बाती चुराइ किये तन छारा ।।३।।

मारी कि छाया मैं नाग रहै पकि जद्यपि जाय समागम नाहीं।
ज्यूं नर नींद निकट ही आवत मीठै तैं खारी ह्वै छामहि नाहीं॥
छाया मैं नीपजै काठ ह्वै कोमल बृक्ष पषान ह्वै मिलाप न जाहीं।
हो तीन प्रकार त्रिया तकि त्यागिये रज्जब रंग महीं मह्ये नाहीं॥४॥

## बेसास का अंग

साधू संतोष माहिं बरतनि की च्यंत नाहिं, आवै सब सहज माहिं आसा बिन हूवै।
भाबे ज्यूं अजर अंग नाहीं कछू सुरम संग गृह गृह अगनी उमंग पोषत त्यो धूवै॥
रहते हैं संवर माइ करते नाहीं उपाइ पावैं तेउ बास बाइ मारी बिन हूवै।
जैसे मिरतग अचेत नाहीं कछू लेन हेत असन बसन मानि देत रज्जब ज्यूं मूवै॥१॥

## तृष्ना का अंग

लोभ सु पाप पाखंड प्रपंच छंबर बन्ध सु बन्ध उपावै।
अनीति उपाधि अमेलै उदंगल स्वारथ सैसि समुंदि समावै॥
धाकर चोर ठगाई वट कूट भूप मगल सु भांड मंडावै।
हो सीत न घाम गिनै न निस दिन रज्जब चाहि चिता सु जरावै॥१॥

लोभि भये सकल जंत तिहू लोक हूहै संत भूख को सेवै अनंत सिध साधक देवा।
एक भगति मुकति आस कोई रिधि सिधि प्यास बहुत सबद फुरत दास दीन लीन सेवा॥
तृष्ना तप कष्ट देख कामना सु पाठ भेख स्वारथ संगीत रेख हूदे हिरनि हेवा।
असुर खानि च्यंत चाहि प्रान प्यंड पेखि पाहि,बम रज्जब भाहि भाहि कैसी कलि सेवा॥२॥

## सबद का अंग

अनादि अबिगति तैं ओंकार उपाइ ब्रह्मंड सु प्यंड संवारे।
सबद की मांडर मांड मैं सोई जु गोइ गुरू सिष सुरति सुधारे॥
वाइक बंधि चलैं बिधि सोइ जु देव दयास बचन सु हारे।
मांधिर मांहि अगम सुगंम हो रज्जब बैठि सु बैन बिचारे॥१॥

## जरनै का अंग

सुनहा सठ हठ रटै बहुतर पै कूंजर कै कछू कानि न आवै।
जंबुक जीव पुकारे अनेरे पै स्यंघ न काहू हो स्वास को धावै॥
मूरहिं सनमुखेह खेह उड़ावतैं तौब कहा कछू मैल समावै।
हो रज्जब राम रटैं निसि बासर मूरिख भूखि भसै सचपावै॥१॥

## काल का अंग

मारि बुदबुदे गोरे कि माव तिन परि बूंद कहा ठहराव ।
ज्यू सीत के कोट सभा ससि मडल सैन सुपिन सीधे न समावै ॥
बारु बार मिवयारि मूंठी भरि, मांहि महूरत मैं चलि जावै ।
हो तारो तुटे रवि अंतर बीजुरी रज्जब जोति बिसम्य न लावै ॥१॥

## लालसा का अंग

ग्यानी कौं गौन दसौं दिसि एक सौं पंथी उड़ कहीं ओर अरैगो ।
जस के पग सीस सब दिसि सारिखो प्यास पीर सब ओर हरैगो ॥
सूर सौं मंमस ओर उजागर, सीत अंध्यारे कौं सोधि चरैगो ।
सोहरी कौं घाट समस्त ही पार मैं रज्जब लागत पाव परैगो ॥१॥

पापर पुग्नि तो ग्यान सौं देखिये ग्यान कौं पाप न पुग्नि दिखावै ।
राइर मेर सौं सूर सौं पेखिये सूर कौं राई न मेर दिखावै ॥
धाम की सींज सु दीप सौं देखिये दीप कौं सींज न कोई लखावै ।
हो रज्जब धात परखि पिछानिये धात न कोई परखि सिखावै ॥२॥

पाथर गाइ परघु खर बाम्यो जु फाटे बिना कहां फूल को बासै ।
भाइस भेद परे पर पूरन याही तें ताको भयो न खिमासै ॥
मदिर मध्य बिराइ बुरी गति पानी प्रवेस पनिग निवासै ।
सो रज्जब राम सौं राइ परे न्मि देगत काम करै परगासै ॥३॥

दुष्ट की हासीर हेत हुवै भर तामहिं फेर न सार जु कोई ।
ज्यूं सठ सर्प डसै पसु मानस पेट न लाइ मरै जिय सोई ॥
करै कवि कवि बुरे दिन बइयूं क धाम बिधंसि सु ठाहर खोई ।
हो रज्जब मूस मनोरथ मोद क चीर को रूठ हानि न होई ॥४॥

कुसंग सौं संग भयो सबही कौं जु देखहु मान महातम आई ।
संग गुमान गयो सबहीं जबही जाइ खार समुद समाई ॥
उदधि उपाधि करी न हरी कछु रावन संगि सिला जु बंधाई ।
हो रज्जब रग पडै न कुसंगति सोधि बिचारि तजी जिन भाई ॥५॥

## स्वामी रज्जब जी की भेंट के सवैये

परचो गभीर धीर बुद्धि अनंत पंथ धीर, बानी बिग सुलो सीर वक्त सौं बखानिये ।
साखी है ब्रह्म भेद कीयो नीके अभेद संसौ करि सकल छेद पहुचे परवानिये ॥
ऐसो सोई दृढ़ मत सुमिरै सति स्यंत कंत निरखै निज परम सत संतन मैं मानिये ।
समझै हैं सकल घाट स्वामी गमि अगम बाट चैन कहै परम ठाट रज्जब जगि जानिये ॥१॥

महा बलवंत चढ्यो गुर ज्ञान जु सूर संग्राम अडोल है हीयो ।
केसरी स्यंघ ज्यू काम परै परि येक अनेकहु जाइ न लीयो ॥
जु स्यावस स्यास गये दसहू दिस देसत माझि पयानो जु दीयो ।
हो रज्जब अज्जब राम को सेवग आकिल एक अलक्ख को कीयो ॥२॥

मान सौं ज्ञान प्रकास महा मुनि सोम से सीतल बूंद अमी है ।
बानी मनू निधि सिद्धि गनेसर बुद्धि महा जिस करम समी है ॥
सील हनू सुखदेव की गोरख ब्रह्म अगनि मैं देह दमी है ।
सेस समान तजन फरस ज्यूं रज्जब औराम राम ठमी है ॥३॥

ज्ञान अनन्तर ध्यान अनन्त हो बुद्धि अनन्त दई न समावै ।
बमेक अनन्त बिचार अनन्त हो भाग अनन्त सिन्धू जहि मावै ॥
सिद्धि अनन्तर निद्धि अनन्त हो रिद्धि अनन्त रहै नित हावै ।
सब बोल अनन्तर पाप को अन्त हो पेम कहै गुर रज्जब सावै ॥४॥

### छप्पय

बिद्यावन्त अलेख अती पढ़ि जोबन बालं ।
महाराज मानियो भेंट लै मिलै गुआलं ॥
अठ सिद्धि नौ निद्धि पेखै ऐन जमी माहु आगे ।
भगति राज सिरताज भयंकर दूतर भागे ॥
सकल बोल सोभा लिये एकनि अग पेख्या अज्जब ।
पंम हेम नैना हुये दरसण देख्या रज्जब ॥१॥

ज्ञानवंत गंभीर सूर सावत सुलक्षिण ।
पंच पचीसौं पेलि भरम गुण इंद्री भक्षिण ॥
दुरजन द्वंद दल दमे मोह मद मच्छर माया ।
काल रिप सब पेसबै कीन इकरज्जी काया ॥
मस्त मान गुर ज्ञान मैं बोध बुद्धि मे अरि हतै ।
ध्यान अडिग धर धीर धर मन रज्जब पूरै मतै ॥२॥

बुधि अनन्त बहु प्राण थाणि मुखि अमृत भाइक ।
ज्ञान अगम गमि किये साध संतौ सुखदाइक ॥
धीर वीर भ्रम भ्याम सीम समिता सतसंगा ।
आदि अन्ति महिमिसि रहै रसि एकणि रंगा ॥
विमप उदर उज्जल बदन परम साध पति परखिया ।
जन रज्जब निहकंप अस निरमम गंगे सा निरखिया ॥३॥

* वेद भेद बाखाण कुराण कैद तुरकी ।
अथिर थर वोपम मत माहु न फोरकी ॥
जोगेसुर सिद्धान्त ज्ञान सब अममौ सारी ।
भटती चारणी भगति विमति नौधारी ॥
षट माया सुर सपत भे प्यंड ब्रह्मंड भ्मोरे किये ।
सब थंभ राम रज्जब रता प्यादू मुर दसवी विये ॥४॥

## कवित्त नीसणी बंध

एक ब्रह्म भाभार दोइ गुण तजे त्रिगुण तनि ।
च्यारिउं जुग बसि पच छह रस छाड़ि दिये मनि ॥
सातो धात सरीर जोग आठौ मैं जाणे ।
नौ नाड़ी दस द्वार येक दस मारग पाणे ॥
बारह अमुस बाइ वप सैं रस तत मागे रहै ।
चौदह बिद्या पति पन रहै सो रज्जब सुमिरण गहै ॥१॥

एकल सूर सुभट वियो कोइ हृदय न हरि बिन ।
तीन ताक की नाथ च्यारि सब जामि सबी चिन ॥
पंच तत्त तिण सेव छग मनि उनमन नामा ।
सपत धात अठ सिद्धि नवै निधि बाटी आगा ॥
दसमी भगति दिल परि मंडी न्यारा छइ क्यूं भय मत ।
बारध कला रवि रज्जब इसौ प्रकास पति राम रत ॥२॥

---

* इस पद का शुद्ध पाठ नहीं मिला ।

## कवित्त छत्र बंध

है करता भगति हेत तबै सनकादिक तिनि सत ।
छांड़ि रस रती छके रहै सो जोग जुगति रत ॥
समझि द्वार वीरध बसि करि कृष्ण सुकस पत ।
जास रतन जपि जाप रहै सिस मत सुरपि भव ॥
निमष मार अवभू चिहुर बस मस सस सौं कहै ।
अमर वास वोपम अनंत जन रज्जब सिरि छत्र है ॥१॥

## सवैया

मारुत तैं भयो जैसे हनू मुनी महाबीर जत मत ओर जोग जमति परवानिये ।
मन्त्रि कायपिनहू तैं वत भयो रिप राइ ताकी सोम सरवरि कौन उर आनिये ॥
मछिन्दर तै भयो जैसे गोरख ग्यान की गंम सिद्ध चौरासी नौ नाथन में मानिये ।
तैसे भयो दादू तैं रज्जब अजब रूप भगति कौ भूप मलै कल्यान बखानिये ॥१॥

जती हनूमान किधौं सती हरिचंदहू से परे कुल कांपिबे को बिकरम बसेखहीं ।
ध्यान जैसे ईस अर ग्यान गति गोरख से कथा कीरतन सुकाचार समि लेखहीं ॥
दत्तात्रेय से मुनी अरगुनी रिष नारद से दुर्वासा से बैन सुतौ ऐन करि देसहीं ।
दादू जी परतापि येते रज्जब अजब मंस और हैं अनन्त कहि सकत न सेषहीं ॥२॥

रसनाहू मांगि ल्यू सहसफनी सेस हू पै जासौं गुर रज्जब को सुजस बखानिये ।
नैन जाइ जाचौं सक्र बक्त्र हू बिलोकिबे को जासौ सब सोभा उर अंतर मैं आनिये ॥
सहस बाहु पै जाइ गाहक ह्वै मांगौ बाहु, जासौं सेवा सौंज जु सहस बिधि जानिये ।
संकेस पै सीस लेइ बंदन करू कल्यान तौ है अगाध अति साध नहिं मानिये ॥३॥

पावन सोमाव गुर दिस की जु रुचि होत पावन सो पावहिं पंथि जब धावहीं ।
पावन सोई पै नैन देखियत ऐम अंग पावन सोई पै सीस चरननि नावहीं ॥
पावन श्रवन तब सुनियत मुग्व बैन होत कर पावन जु मन को लगावहीं ।
राम रोम पावन परसे गुर रज्जब को गये सब भय भव आगि से बिलावहीं ॥४॥

## कवित

अरक जेम उजास सुधा सरवै जिमि ससि हर ।
पावस ज्यूं पालग धरा धारत जिमि मणि धर ॥
मिक जिम बास सुबास गहुर गे संम गिणीजै ।
आसण ध्रू जिमि अचल मूम जिमि गुरु मणीजै ॥
कामधेन सुर कल्प समि पारस पोरस पेखिया ।
च्यंतामणि च्यंता हरति रज्जब अज्जब देखिया ॥१॥

गिरापती जिमि मेर सहू सरपति जिमि साइर ।
सुरापती जिमि सक्र ग्रहपती जिमि देवाइर ॥
उडियमपति जिमि चंद मवी नौसे पति मगा ।
धातपती सोबरन भुमापति कलप सरंभा ॥
सिद्धनाथ पति गोरख ज्यूं मुनि पति वस प्रमाणिये ।
रज्जब अज्जब साधपति दादू पंथि वखानिये ॥२॥

अकल सभ्यास अभार अकल मिज ज्ञान उचारन ।
अकल प्रीति रस रीति अकल मति नेम अधारन ॥
अकल जत सत अकल अकल मत सीस सुजाणं ।
अकल नव बिश्राम अकल रहिता रहिमाणं ॥
अकल त्याग बैराग अगि अकल भाव भाया मसा ।
रज्जब अज्जब गति अकल अकल सिद्धि आपै मसा ॥३॥

### कवित्त छत्र बंध

रिषि मस हंस नर सरिस धरनि ताइ वेद भेद धुनि ।
तवति राग सुबस माया छवति गति जोग जुगति मुनि ॥
बवति नाम हरि जाम बठम मारुत की जिसहिं ।
अग्नि मुबण आतम बहनि ससि कला सरब कहिं ॥
जस पुराण बाण जुमति रचति बिसवा जोग करि ।
बंदे सिव सनकादि सुर रज्जब अज्जब छत्र भरि ॥१॥

### कवित्त कवल बंध

श्री श्री सद्गुरु परहरण स्वाद बिष बाद बिदारण ।
प्रीति माहु बिसंभरम रसण रंकार उच्चारण ॥
जगत बिसत सजरण जप जम तपहु उबारण ।
धीति प्रकीरति किरण प्रीत भण धीत सिधारण ॥
रज्जब गुर मैं सुख सरण जीवहु पल न बिसारण ।
सर्ब पाप ताइ हरण दान दरसण पावै करण ॥

### सवैया

कुरान पुरान कहे वेदहू सास्त्र बिधि संघ सार सुत जाके पूजीहु को साज है ।
अनभै बनिजे अंग सेहु मांडो कान अरथ सबाई मफौ येतो कोई साज है ॥
जेउ जेउ निजे जाइ खोटी कोउ नहीं लाइ बोलत बचन सुघ पुण्य ही पाज है ।
व्यास सुकदेव ब्रह्मा इहां औतरे आइ रज्जब दयाल सुत ब्रह्म को बजाज है ॥१॥

### छप्पय

दरसन दादूदयाल पषति प्रगट जन ।
रज्जब पारस परस दरस सकल दुख हरन ॥
परम धरम परवान आन मारग सब भंजन ।
करुना स्वंयु जहाज अखिल सुपद बिस्तारन ॥
मन संकलप विकल्प असमि दुख दुन्द निवारन ।
निरलेप निरंजन गुण मगन माहन अघ नासन ॥१॥

### सवैया

संतन सुकबि संत साहस सधीर धीर जानै पर पीर सिद्ध समानि मैं मानिये ।
परम उदार सब जीव उपगार कर स्वंयु वारपार जाकी कीरत बखानिये ॥
दादू दरियाय उपदेस गेह रामि नाम मगन निरंजन गुनम नित मानिये ।
गुन को निधान सविधान पुरबन धाम ऐसो जन रज्जब प्रसिद्ध जगि जानिये ॥१॥

ज्यू बसि मन के आयत धीर जहां जस जो तहां तस सूझे ।
ज्यू धर्मराज के काज कर सब दूत अनेक रहैं छिड़ हूंजे ॥
ज्यू नृप के नर तेज तें अंगत पाग रहै नर माइ गहू के ।
ऐसी ही भांति सबै दृष्टांत हो आगे ठाढ़ रहै रज्जब जू के ॥२॥

संध्या समै ज्यूं सबै सुरखी भर आवैं चली जैसे भच्छ के रागें ।
भूपति कौ अपमानि कुनी जु अनीति विसारि सुनीति सौ लागें ॥
मोहन ज्यूं बसि मंत्र क बीर प्रमाति घटा घट सार कौ भागें ।
घन ज्यूं घिरि यूही कृपा के सबैं दृष्टांत आये रहैं रज्जब आगें ॥३॥

त्यागि वदू हरिचंद पटंतरि मांगि ज्यू इन्द्र कुबेर भंडारी ।
रासि वदू मुनि नारद से अनुरागी सदा सिव ज्यू भ्रम धारी ॥
ज्ञान वदू गति गोरख की पुनि ध्यान वदूं ध्रुव ज्यूं दृढ तारी ।
रज्जब अंग अनन्त अपार सु मोहन देखि भयो बलिहारी ॥४॥

सूर ज्यू सूर ज्यू संगि उज्जल चंद ज्यू सीतलता तनि भारी ।
पवन ज्यूं सुगंध सत्त पुनि पारस ज्यूं पराक्रम धारी ॥
सुधीर ज्यू धीर न हीर भने धन छीर सुधा पर पीर निवारी ।
रज्जब अंग अपार सु मोहन देखि भयो बलिहारी ॥५॥

मणि ज्यू मुखि सर्प सदा लगि ही रगहीन मिली अहि के विष सौ ।
बड़वानल वारि मैं न्यारी सत्त पुनि लोह मैं सूत खिरे निकसौ ॥
नीर मैं कौसर नीर जुदे नभि ते जल के रंग अंगि बसौ ॥
ऐसे रज्जब अज्जब मांझ मझारि न मोहन मेल भया छिल सौ ॥६॥

आयो साधि सूर अंगि नूर भरपूरि छिपे लोधि सब अरिन के अखारे उठारे हैं ।
मारघो है मदन सु सदन की न सुधि कहू क्रोध सेन लोभ फरि दारन झकारे हैं ॥
ठौर ठौर राम राज कीनो बाबू दास केर्ने मोहन मेवासी मारि पाइ पीसि डारे हैं ।
रज्जब दहार सौं पहार फाटि पैड़ भये काम क्रोध लोभ मोह मूल ज्यू उखारे हैं ॥७॥

रज्जब के परस को छूर्व वा प्रताप ऐसो पाप के पहार मानो फाटे हैं पराकि दै ।
जुगि जुगि जिव जम डारि दंडी धाम होती लांकम के खपि सास फूटे हैं खराकि दै ॥
गौतम की तरुनी करनी ज्यू कृपाल भये सांचे हैं सराप टूटे ताठि ज्यू तराकि दै ।
मानि के गयद चढ़ि मेहैं मोहन मन ऊंचे आसमान जाइ बैठे हैं फराकि दै ॥८॥

जती हनुमान से न सती हरिचंद सम तेजवंत सूर से न रंभ न सबज से ।
अचल सुमेर से न मेर से न धनी और समाई समुद्र से नमत न कबज से ॥
गोरख से जोगी न वियोगी महादेव सम रूपवंत काम जसे और न अजब से ।
मोहन मंडा मैं उजाग साम्ह सारे भसे गोरख से जुड़े जोगि मानी न रज्जब से ॥९॥

## गीत

तुरक सिरताज पति साह दिल्ली तणौ हिंदू वा सीसि सिरताज राणौ ।
राज सिरताज अवपति जु आवेरिरो यू पंथि दादू तणें रज्जब बाणौ ॥
अष्ट कुल परवता मेर सबसे सिरै नौ कुली नाम सिरि सेस सहु जाणौ ।
नौ लख तारा इण सिर ससि जु सबरै सिरै त्यू पंथि दादू तणौ रज्जब वड वाणौ ॥१॥

हिंदुवा हद होइ बका सांधि गीता कही तुरकवां मुसाफ सुणि राहि मूकी ।
अध्यातम अनमै बिंदी भगति भापा तिंदी तठै रज्जब कथा परि आंट चूकी ॥
पाव पतिसाहरा परसि चाकर चक्यूं असि थको परसि परभात फूल वाहि ।
आनरो ज्ञान सुणि थिर न आतम भई रज्जब री कथा सुणि पड़ी अनि आंहि ॥
मूंछ भागी सबै भेट अस सो भई प्यास भागी सबै नीर पीयो ।
रज्जब री रहमतै फहम भाणौ सकल भकस रटि मोहनौ रंक जीयो ॥२॥

## कवित्त

नग सिर सोमा सु नीर नीर सोमा सु मृणालं ।
सोम निसाकर निसा दिवस सोमा सवितालं ॥
मैं करि सोभ गज्यंद्र तुरंग सोमा सु सतांई ।
अवनि सु सोम अनीस सील सोमा प्रमदाई ॥
हंसन करि सोभंति सर मोहन मनौ बसेखिया ।
दादूदयाल पंथ सोम सिर रज्जब अज्जब देखिया ॥१॥

## सवैया

पूरौ ही नामि अनुरागि बैरागि पूरौ पूरौ ही ग्यान अरु ध्यान व्रत सत सौं ।
पूरौ ही साहिबी मं सावधानी पूरौ परसिम पूरौ ही पीर पायो दादू राम रत सौं ॥
पूरौ ही रहनी कहनी तैसौ ही पूरौ पूरौ पटै परम नीर निरखौ गुर मत सौं ।
मोहन मंगिमौ गावै दया कौ दान पावै रज्जब को रिझावै गावै गुन हित सौं ॥१॥

सवैया भाव समाप्त ।

## छंद जाति त्रिभंगी

### सुमिरन का अंग

दोहा बंदौ गुर गोव्यंद मुखि प्राण उधारणहार ।
जन रज्जब जुगि जुगि सुखी किया अगम उपगार ॥१॥

प्रथमे पग गुरदेव के मन मस्तग उर धार ।
जन रज्जब ताके सबद समस्या सिरजनहार ॥२॥

छंद तौ नमो निधानं प्राण सु प्राणं करन बहानं जम जानं ।
देन सु दानं और न आनं खान सु खानं नहिं छानं ।
सकल सगानं सवमैं जानं लगे न मान सो तत्तं ।
दादू की दत्तं धीरज वित्तं रज्जब मन आपद हत्तं ॥३॥

नमो अपार निज निरकारं तारणहारं जन पारं ।
सारंग सारं जग बहि सारं म्यत हमारं सब धारं ।
ऐहि सिरि भारं सब सिरि धारं मंगलचारं सेवग सू राखं नत्तं ॥४॥

नमा सरामं पूरण कामं आतम ठामं जम जामं ।
निकुल निनामं पुरिय न वामं जीवन धामं पुनि पामं ।
सीत न धामं अगम सुधाम राजण नामं सो धत्तं ॥५॥

नमो सपूरं निरमल नूरं जगत जहूरं सब सूरं ।
सकल मकूरं नाहीं दूरं हेत हजूरं नहिं ऊरं ।
देणहि नूरं दाता मूरं बासिन पूरं भवि मत्तं ॥६॥

नमो गभीरं सब गुर पीरं धीर सु बीरं पर पीरं ।
निकट सु नीरं अग्र सल सीरं सिर्पं न बीरं हर हीरं ।
मीर सु मीरं धीर सु धीरं तट्ट न तीरं तहि रत्तं ।७॥

तौ नमो अथाहं येपरवाहं अगम अगाहं निगमाहं ।
मावन जाहं ठौर न ठाहं थ्यंत न थाह सौ ठाहं ।
अतिर अथाहं माहीं ग्राह साकि सु साहं पर पत्तं ॥८॥

तौ नमो सु अंगं रूप न रंगं सब सर्वंगं नहु पंगं ।
सुमिर सु संगं भसम अलंगं भूप अभंगं सो भंग ।
रूप न हुंगं वीरम वगं तुम्ह न तंगं अहि मर्त ॥९॥

तौ नमो अभंदं आनदकन्दं पूरण चन्दं सब छंदं ।
सुमिर सुरवं मते न मंदं तहि हृदं सब जग वदं ।
वेण सु पदं काटण फंदं दूर सु दुवं सिर पर्त ॥१ ॥

कवित्त नमो सकल सिरताज नमो सब संत सनेही ।
नमो परम गुरदेव नमो निकलंक सुदेही ॥
नमो गरीबनिवाज नमो निज दीनदयालं ।
नमो अनाथहु नाथ नमो पूरण प्रतिपालं ॥
नमो विरद नहिं पारब्रह्म स्यो कहे न जाहीं ।
जन रज्जब हैरान रहे तुव नाम सु माहीं ॥११॥

## गुण भेद भक्ति का अंग

दोहा रज्जब तांवा लोह पषि पारस है प्रभु भाव ।
परसे सो कंचन भये यहु निरपष निज दाव ॥१॥

पुरान कहै पश्चिम दिसा पूरब विसि कहै वेद ।
रज्जब दिया दीवान था सु गुरू बताया भेद ॥२॥

छन्द तौ वेद कुरानं उभै अयानं बहुसि बिलानं है तानं ।
है विस ठानं भ्रमति न जानं जगत भुलानं यहु छानं ।
रक सु रानं पवि बखान कीया तानं निज जानं ।
अरु जोष सु जानं वेद बखानं माय भानं चतुर बरण बांधे सब ।
दादू का सिष प्रीति न पथ भक्ति मारग रज्जब रब ॥३॥

जो भक्ति मारग रज्जब रबं तौ हींदू नहि तुरकं ।
हैं रहु चक माया मकक पाई अकक गुर दक्क ।
सूर न सकक डरै न धक्कं भक्ति मखतमक नहु चक्कं ।
उनमनि चकक प्राण सु पक्कं हासिल हकक अहि नक्क ।
द्वारिका मकक काश्या इक सब सुणि ढक्क ऐसी विधि साहिब प्रयं ॥४॥

तो ह्वै पष त्याग पाया भाग पथि सु भाग निज पार्गं ।
सो विधि बैराग यूं जगि जाग ताणा ताग जग राग ।
सब झूठि सुभाग षांभी षाग धोया दाग है भाग ।
गहि ज्ञान सु पाग निज करि नाग बैरी भाग सम कीया सबर्गं ।।५।।

तौ पर ब्योम निरालं अबमुत चालं मुगध मुरालं विगतालं ।
बेरे चालं कोमल मालं पैठास तहं रस आलं ।
प्राण सु पालं करम न कालं मति बालं भाग सु भालं ।
हरि सम्भालं टूटा सालं ऐसी विधि अमृत अर्पं ।।६।।

तौ उभै न रीतं पाई चीतं कारिज कीतं जगि जीतं ।
सो अगम अमीतं निरमम चीत इहि मत मीतं निज मीतं ।
मरम सुमीतं इहि विधि चीतं जाहा सीतं मनि चीतं ।
करि हरि हीतं दान सु दीतं नाहीं ईतं कहा होइ बाहू सम्यं ।।७।।

तौ गुर सब्द निरख्या नई देख्या तहं मह गई ।
माया का मई उतर्‍या तई ज्ञान गरई करि यई ।।
द्वै पषि हई देखी रई विधि वेहई सो पई ।
तो विस न दरई जाहा भई घटै न कई दीरघ गुर दीरघ खई ।।८।।

तौ सुन्या सु कर्नं पषि न पर्नं यहु मत मन सो धर्नं ।
जग मत भर्नं पकड्या रर्नं केतकम गर्नं है धर्नं ।
गुण गण हर्नं तिरै सु तर्नं नाही छर्नं सो भर्नं ।
ऐव न दस सहै न पर्नं सो विधि वर्नं ऐसी विधि जगमग नर्पं ।।९।।

ता समि नहि कोई त्यागी दोई गुरमुख जोई कहि होई ।
गापि सु पाई आतम जोई खस मत खोई यहु षोई ।।
मैवासा मोई जग मति बोई बास सु ढोई रिपु रोई ।
सब जग टोई न्याम सु सोई या तन मन भाड़ी सर्पं ।।१०।।

कवित्त मर नाराइन रूप निरषि निरपषि निज न्यारा ।
सौ जोगेसुर जान प्रान परबीम सु प्यारा ।।
आतम अगम अगाध नजरि गुण जुगम सु नाहीं ।
मधि मारग चलि चाल मिलै मोहन को माहीं ।।
येनहि सौं ह्वै उभ उभै गुण मटि सु येक ।
रज्जब षीज्या संत काटि भ्रम कुमी अमेके ।।११।।

## गुण छंद सूरातन के अंग

दोहा
माहि मारि गुणहु को बाहरि जग सौं जुद्ध ।
जन रज्जब सो सूरिमा गोपि रह्या कुल सुद्ध ॥१॥

सब सूरू सिरि सूरिवां जो जीतैं गुण जोध ।
जन रज्जब जूझार सो ताका उत्तिम बोध ॥२॥

छंद
तो पत्री मारं खेत बुहारं पाया मझारं महि सारं ।
उठे अपारं करते मारं ठाही ठारं सहि बारं ।
काटया क्रम कारं तीरथ धारं अंग अपारं विस ठारं ।
जीत्या सिरदारं उतरया मारं पाया पारं नांव मराजी यूं मेलं ।
दादू का चेलं पंथ सु पेलं रज्जब रिण जौरग खेलं ॥३॥

तो दमि सब खोटं काया काटं चौड़े चोटं घसि घोटं ।
काढ़े गुण खोटं बहु विधि बोटं राजस पोटं काढ़या सब सोटं ।
मंगल मोटं करम सु छोटं हृदि झोटं बांधी पुनि पोटं ।
माम्या टोटं वासन खोटं ऐसी बिधि आपद रेलं ॥४॥

तो सूर सुभट्ट करि खम दट्टं बैरी कट्टं गहि घट्टं ।
दुरजन घट्टं करि बहु बट्टं फेरि घरट्ट यूं दट्टं ।
दूदर घट्टं कीये पट्टं धाग सु झट्टं सो हट्टं ।
घेरे घट्ट मारद नट्टं मनम्त भवट्ट प्राण पिसण ऐसे ठेलं ॥५॥

तो खोये खल ल्याहं मही सु माहं ठौर न ठाहं रिण राहं ।
मिरवर गाहं गोपि सबाहं करै सु हाहं बनि बाहं ।
काटे दुख दाहं पड़ै न धाहं बेपरवाहं निज माहं ।
जस जुध भयाहं निकस्या डाहं सीया साहं करकिय सांधा खेलं ॥६॥

तो सूर समालं गहि करवालं भरि पर घालं अहि हालं ।
करम सु कालं मारे मालं पड़े न रालं गुन गालं ।
करि महचालं पिसण सु पालं बमुधा बालं बिपतालं ।
सब तोड़ै छाम निबाह्या सालं उठै न झालं सारे सनमुख यूं झेलं ॥७॥

तो नाठे ताप पासे पावं मारे रावं बहु सावं ।
बीरा रस चावं पाया डावं भागौ पावं है भाव ।
म्यप सु छाव करै सु धाय मिल सु बावं जस माय ।
अगम सु भावं साधी ठावं करै न जावं जीव ब्रह्म ऐसे मेलं ॥८॥

तौ भूपति भाजं कीये पाजं राखी लाजं सिरताजं ।
सिद्ध सु काजं पाया राजं गुण सिरि गाजं सब साजं ।
नहि अंदाज सट्ट न बाजं बन्धी पाजं उर आजं ।
माया भाजं ऊंचा छाजं अधिक अवाज तिहू लोक फूटा हेल ॥९॥

तौ भैरी बासं दूंदर वासं सांई भासं गुण प्रासं ।
पिसण अवासं फेरया बासं दोसी नासं महू सासं ॥
भुद्ध भुबासं कहिये कासं बीर विलासं नहि ह्रासं ।
प्राणी पासं भील तरासं बारहू मासं काटे क्रम करता केलं ॥१०॥

कवित्त करि सु जोम संग्राम जेमि पट पोहमि लेसी ।
सुभट सूर विख्यात सु नर नवखंड नरेसी ॥
दुरजन काढ़ि सु दूरि मारि मैवासा मोई ।
भ्रूण सु राखि रज रेख करै समसरि कहु कोई ॥
राज काज समरथ वीर वीराधि विराजै ।
जन रज्जब जगि जोध लोकि राखी भ्रम भाजै ॥११॥

## गुरदेव का अंग

अरिल घन सूर आकास अवासहि ज्यूं दिया ।
तैसें उर घर मद्धि गुरू गोब्यन्द किया ॥
टौर ठौर की वसत न सूझै इन बिना ।
रज्जब कही सु सांच सत्य मानी मना ॥१॥

देखौ गुर उर पैठि कौन कारिज करै ।
काढ़ै मोह मझारि मिलावै सब परै ॥
दीसै दीप दमास सुझै दिसि का धणी ।
रज्जब राम उमगि आप सौंपी धणी ॥२॥

मेघ बिना ज्यू मूढ़ मेदनी सब मरै ।
चौरासी की भूमि न उपजै क्या करै ॥
त्यू काया मधि काम गुरू मति बाहिरै ।
रज्जब प्यंड ब्रह्मंड कौन विधि ठाहरै ॥३॥

गुरु का काम न होइ सु काहू औवर्तै ।
मन बच क्रम तिरसुद्ध अहै मानी सुर्ते ॥
सब साधन की साखि बेद यूं जानहीं ।
रज्जब गुर परताप सीस परि रानहीं ॥४॥

गुर गोब्यंद समान सिष करि जानई ।
मन बच क्रम तिरसुद्ध इहै उर आनई ॥
तौ कारिज परिसिद्ध होत कहा बेर रे ।
सौ रज्जब इक माइ न करहै फेर रे ॥५॥

गुर गोब्यंद नी बाढ़ि इमहु को सूझई ।
औरू समझ्यो कोइ अकलि मैं बूझई ॥
मक्कै बड़ा जहाज माहि चढ़ि आइये ।
रज्जब पीर प्रसंग खुदा ही पाइये ॥६॥

कहिये गुर गोब्यंद पीर मम ह्वै खुदा ।
उभै उरहु मैं आप ऐम माहीं जुदा ॥
मारहि गुण सरीर मिलावहि जीव जो ।
रज्जब राम रहीम कही मैं सत्य सो ॥७॥

आतम सुनि समान गुरू बिन को गहै ।
पीव मिलै जिहि पाठि पीरही सौं पहै ॥
यहु न और तैं होइ दुहाई राम की ।
रज्जब सोच बिचारि कही निज काम की ॥८॥

पै पानी मिलि माहि हंस निरवारई ।
मधु मिश्रत बनराइ सु मधुरिय टारई ॥
सतिगुर सोधि सरीर करै जिव को जुदा ।
यहु न और तैं होइ पीर परि ह्वै खुदा ॥९॥

न्यारे आतम राम पीर परना बई ।
यहु इमही का काम इमहु ह्वै आवई ॥
नहीं त मैसा माहि निकट न्यारे सदा ।
रज्जब मेंटै माहि गुरु का हुदा ॥१०॥

अपने सिरवे दूरि हजूरि गुरु ग्राड़े ।
अतिर अवनि आकास आनि सु बटे बड़े ॥
साध वेद की साखि सु प्रगटनि बोलई ।
रज्जब साधित नमत न समसरि तोलई ॥१२॥

उभै अंग विधि ऐन मद माहुला न्हाई ।
मू आतम मे न्याम राम आतम नई ॥
पीर पदू दरम्यान देखि है विधि सुखी ।
रज्जब सौदा हीड़ मिटै नहीं गुरुमुखी ॥१२॥

गुरु बिना गोव्यंद सग्रा नहीं जीव का ।
देखा सोधि बिचारि मता हरि मीव का ॥
जस नस कपड़ा देह किये की आव रे ।
रज्जब राम न मिलै सकल सिरताज रे ॥१३॥

पहले बावन तीस सु अखिर जानिये ।
पीछै वेद कुरान सु बोलि बखानिये ॥
तैसे गुरमुख नांम जु प्राणी पाइहै ।
रज्जब पंथी सोई सुंनि मुर जाइहै ॥१४॥

पच तत्त के पंथि पच तत्त आवई ।
तैसै गुरिमुख मांग परम रस पावई ॥
तालहु मे की असत सु गूंगी कर चढ़ै ।
पद रज्जब ऐसै जानि नीर पर्वति मढ़ै ॥१५॥

ज्यूं कौतिग बंदि जीव गहन गति पेखई ।
तैसै गुर के ज्ञान प्रगम पद देखई ॥
दूरहि दरसै सिद्धि सोधि की आवती ।
रज्जब सहिये राम संत पद पावती ॥१६॥

खोजी बिना न खोज सु काहू कम कढ़ै ।
है पै नर असवार फौज कहि विधि चढ़ै ॥
वित्त बिना बाजार न्हाथि क्या आवई ।
रज्जब तैसे राम न गुर बिन पावई ॥१७॥

बिना पुरिष परसंग न सुत कारण रहै ।
ऐसैं गुर तैं बिमुख सु गोब्यंद क्यूं लहै ॥
तामै फेर न सार उभारी बात है ।
रज्जब साधू साखि कहै सब वेदहू यूं कहै ॥१८॥

सकती सुख भर सीत अमहिं तन हेम ज्यू ।
आतम मन सु कूप बंधे बप वारि यूं ॥
सतगुर सूरि जे तेन बिरह बैसाख रे ।
बहै नैन नदि पूरि मिलै सुत मात रे ॥१९॥

रचक रूप गुरदेव सु पंचूं कापड़ै ।
सब विधि सब संजोग मिलावहिं वापड़ै ॥
ऐस उज्जल होइ सु बागा जीव का ।
रज्जब सभा समाइ दरसनी पीव का ॥२०॥

मीच ऊंच पद माहिं गुरू परताप तैं ।
सो निरखे निरताइ सु अपनै नैन मैं ॥
देखौ बिसि रैदास सु कीता कौन रे ।
रज्जब धनि सतसंग पुनीत सु भौन रे ॥२१॥

पीर पैगम्बर भये पीर पदि आवतें ।
यहु न और तैं होइ सु राना रावतें ॥
मालिक मसक सहेत मुरीदहिं देत हैं ।
रज्जब रीती ठौर भरी भरि लेत हैं ॥२२॥

होत मुरीद निहाल सु मुरसिद मौज तैं ।
दुख दालिद्र सु जाहिं सलि मानी सु मैं ॥
पीर प्राण प्रतिपाल पियारे पीव के ।
रज्जब कृपा कटाक्ष काम हैं जीव के ॥२३॥

गुरु गरीबनिवाज अनाथी नाथ है ।
निरधार्‌न आधार अकेलूं साथ है ॥
परम पठंगा प्रान जीव की पेखिये ।
या गमि और न बाट सु रज्जब देखिये ॥२४॥

नांव निरूपम गुरू मरजू निस्तारना ।
माधौ मन्दिर धामि सु साधू धारना ॥
पीव पौरि मैं पैठि मन्दिर मैं आइये ।
रज्जब अज्जब ठौर न इन बिन पाइये ॥२५॥

गुर की दया दयाल सुदरसन देत हैं ।
सुत सन्तन की बात तात सुनि लेत हैं ॥
पूरे पीर पलास सु ईहि सौंधे सदा ।
रज्जब साधू धूरि तिनहु पाई विदा ॥२६॥

मरहिं अमर करि संग मित्र दल जीवहीं ।
जावण मरण सु नाहि परम रस पीवहीं ॥
यहु सब गुर परसाद भगति भगवन्त सौं ।
रज्जब तन मन देहि लेहि जो तोहि सौं ॥२७॥

सुकृति के प्रतिपाल कुकृतौ काल हैं ।
मारहिं कुदर लोभि सु दीनदयाल हैं ॥
सतगुर बिन ये काम जीव के को करै ।
रज्जब मन मकान फेरि उलटा धरै ॥२८॥

गुर के नाम समान न नौखंड पाइये ।
सुरगलोक सब सोधि पताली आइये ॥
सुर नर सबही बांधि न पावै ओपमा ।
रज्जब अज्जब मौज सति मानी मना ॥२९॥

पाये गुर घर थान वसित सूना रहै ।
देखै सृष्टि सुवृष्टि भिखारी हू कहै ॥
एक नांव मैं आप सकल ले रमि रह्या ।
रज्जब पीर पलाय सोइ प्राणहु सह्या ॥३०॥

गुर गोव्यन्द अगाध सु महिमा क्या कहूं ।
मन बुधि सबद न माहिं अलह गुन क्यूं लहूं ॥
यहु उपमा उनमान सु बोलि बखानिये ।
रज्जब प्रभुता पीर प्रमाण न जानिये ॥३१॥

जुगि जुगि गुर परताप सिष साँचे बड़े ।
पंदहु परि पग धारि अगम ऊँचे चड़े ॥
गुर दादू की दाति रज्जबा है सुखी ।
औरौ भी आनन्द सु बैठे गुरमुखी ॥१२॥

## उपदेश चेतावनी का अंग

यहु पूरा उपदेस भवन भुमि धारिये ।
सौंज सिरोमणि पाइ वृथा क्यूं डारिये ॥
यहु औसर यहु बेर न कबहू पाइये ।
रज्जब सोधि बिचारि राम गुन गाइये ॥१॥

नर नाराइन देह गांव की सीर रे ।
तामैं बारंबार कहै गुर पीर रे ॥
त्यागि अनेक अयान एक उर आनिये ।
रज्जब रटिये राम समय ये आनिये ॥२॥

मनिषा देह स्थान जीव कब आइहै ।
चौरासी के फेर दुलभ पुनि पाइहै ॥
तकि औसर ततकाल राम रस पीजिये ।
रज्जब बिसवा बीस बिलम्ब न कीजिये ॥३॥

अकलि सु आतम चोर मनिष अस्थान रे ।
नर नाराइन होत देख दृढ़ मान रे ॥
चौरासी के माँहि षु बहुतै बप बसी ।
रज्जब तन कै तेज न मूरति हरि मिली ॥४॥

यहि काया अस्थान भजन की ठौर है ।
चौरासी सब माँहि न ऐसी और है ॥
तामैं कीजै काम राम रट लीजिये ।
रज्जब येही बेरि बिलम्ब न कीजिये ॥५॥

रज्जब अज्जब सौंज सु सुमिरण लाइये ।
नर नारायन रूप सु बहुरि न पाइये ॥
काया रतनहु मास रैनि दिन गुर रटे ।
कीजै सोइ उपाइ जु यहु गोविन्द घटे ॥६॥

विविधि भाँति की देह उधारी लेत है ।
अवधि पूरि सो आप आपनी लेत है ॥
ऐसहि जानिर जीव विलम्ब न कीजिये ।
रज्जब रटि घटि राम सु लाहा लीजिये ॥७॥

कौड़ी लगै न कोरि सु सुमिरन रावरे ।
ऐसा सोधा नाव न लेही बावरे ॥
सांस सुरति का काम राम रटि लीजिये ।
रज्जब परम पियूष प्रान किन पीजिये ॥८॥

नांव इसहि ले जाइ उसहि आने यहीं ।
सुमिरन समि न दमास कष्ट कोई कहीं ॥
ऐसा आतम राम भजन करि होत है ।
रज्जब रटिये राम परम्या निज पोत है ॥९॥

जप तप संयम दान सीस करवत धरै ।
साधन कष्ट अनेक देह दहणा फिरै ॥
प्रगट गुपत पुनि और नाम बिन कीजिये ।
रज्जब बिन भगवंत कदे नहिं सीझिये ॥१०॥

सुकृत सब सुख मूल भजन सुनि कीजिये ।
मनिषा जनम सु मौज सुफल करि लीजिये ॥
यहु औसर यहु बेर बहुत नहिं पाइये ।
रज्जब बिछुरे देह न परि गुन गाइये ॥११॥

इहै सीख सुनि लेहु न भूलो बावरे ।
मनिषा देही मौज न लहिये दावरे ॥
यहि औसर यहि देह मांज निज लीजिये ।
रज्जब समझि अचेत विलम्ब न कीजिये ॥१२॥

सारे सांस सरीर सु सुमिरन ओख रे ।
अब सम आये माहि पुरातन रोग रे ॥
रक्षै उभै अस्थान नांव महि आवई ।
रज्जब ऐसे जानि अबहि किन भावई ॥१३॥

## काल का अंग

मिनखें पंचो सत आदमी कौन है ।
एक बिना को और अवनि को गौन है ॥
काम करम वसि माहि सु मोहि मताइ रे ।
रज्जब मीतहुं अन्तकाल पुनि आइ रे ॥१॥

मर्ते मेदनी मारि उपाई सृष्टि है ।
सब की मिरतग रूप सु देखी दृष्टि है ॥
मीचहि लागी मीच न जीवन पाइये ।
रज्जब ऐसी जानि राम गुन गाइये ॥२॥

## सुमिरन का अंग

सुमिरन सब सुख मूल मूल क्यूं भूलिये ।
तेज पुंज के होत भजन करि झूलिये ॥
सीझें हिन्दू तुरक येक निज नांव सो ।
रज्जब रटिये राम प्राम की ठांव सो ॥१॥

सब जग देख्या जोइ न सुमिरन सा कछू ।
अमर औषदी येहु लेहु रासिर पछू ॥
रज्जब रोग अपार सु छिन मैं जाइदै ।
भाग भले तहि माल जु रुचि सौं खाइदै ॥२॥

एक नांव की ओट कोट भारी टरहिं ।
इग्री अरि दस काम दस धीरज धरहिं ॥
सुख सम्पूरन अपार सु जुगि जुगि पाइये ।
रज्जब रुचि सौं राम रैन दिन गाइये ॥३॥

मै भंजन भगवंत भजै भय भानई ।
गुन इन्द्री क्रम काल निकट नहीं आनई ॥
टूटै सुर जंजाल न जिव जग मैं परै ।
रज्जब अज्जब काम जु जब सुमिरन करै ॥४॥

सब संतन का धाम नाम मैं देखिये ।
अमर अभै पद ठाम सु आहि बसेखिये ॥
काल करम की चोट न सुमिरन मैं सही ।
रज्जब साधू साखि बेदहू यूं कही ॥५॥

मंगल कल्यान आनन्द सुमिर सुख होत है ।
दुखी दीरघ सब जाहिं बहुत ही जोत है ॥
कीजै क्यूं न अघाइ भजन सुणि राम का ।
रज्जब क्या गुन कहै सर्ब ही काम का ॥६॥

सुमिरन सब स्यंगार सुकृत तो देखिये ।
धामहु फेर न सार सु बीर बसेखिये ॥
भाग भलेहिं तहि माल भजन भूषन किया ।
रज्जब तिनहु सुहाग सत्य सांई दिया ॥७॥

छसै सहस इक्कीस माल मनिया करै ।
हृदय हेत कै हाथि रैन दिन सौं फिरै ॥
यहु जोगेसुर जाप जीव जो जानई ।
तौ रज्जब निज नाह कहौ किन मानई ॥८॥

बाजै नामि अस्थान सु नौबति नाम की ।
सो सुनिये सब लोकि धवाज सु ठाम की ॥
देखि कहां की बात कहां सौं आनिये ।
रज्जब छिपै न नांव सु गोपि बखानिये ॥९॥

एक नांव की संगि मराइन बोलई ।
भजनी की सी भाइ बोसाये बोलई ॥
ये सुनि कानन बात सु आनन आइया ।
रज्जब तिनकै पास परम गुर आइया ॥१०॥

सुकृत रूप सरीर मजन भूषन करै ।
सुन्दर इह स्यंगार सु पिव का मन हरै ॥
तन मन साबति राखि रिझाया राम कौ ।
रज्जब धनि धनि भाग करी इस काम कौ ॥११॥

जिव कौ नांव जहाज सु करता ने करथा ।
बिसम समुद्र सरीर सु ताकै सिर धरथा ॥
चढ़ै सु प्राणी पार सुमि पुर जाइहै ।
रज्जब अज्जब दरस सु जुगि जुगि पाइहै ॥१२॥

सुमिरन करै सु सन्त सही सुख पाइहै ।
मन बच क्रम तिरसुद्ध सु हरि गुन गाइहै ॥
यहु आमल अस्वाम सु मंगल जीव का ।
रज्जब सीझै मांव रैन दिन पीव का ॥१३॥

करी आतमा राम बेलिये कहि रटै ।
मसिफ लागि अल्लाह सु पीर पर्गबरै ॥
नमो नमो निज नांव सु महिमा को मई ।
रज्जब अलप सुबुद्धि येक मुखि क्या कहै ॥१४॥

निरफल कवे न जाइ तरोवर नांव का ।
नेह नीर सौं सींचि निरन्तर ठौंव का ॥
जुगति जतन करि राखि बाड़ि बैणहु करी ।
रज्जब फल हरि दरस आंखि बोड़ी भरी ॥१५॥

## दया का अंग

इहै दया पुनि सत्ति सु जीवन मारिये ।
मन बच क्रम तिरसुद्ध पिसुनता टारिये ॥
सब सुकृत तिन कीन मिहरि मनसा धरी ।
रज्जब रीझे राम रही दया अमकरी ॥१॥

जो न जिमाया जाइ सु जीव न मारिये ।
सिर साटै सिर लेइ सु क्यूं न बिचारिये ॥
लेखा लेइ खुदाइ ज्याव क्या दीजिये ।
पीछे भारी होइ सु पहल न कीजिये ॥२॥

ऐसी सोच बिचारि मास क्यूं खाइये ।
हांसे टलै सु नाहि अन्त दुख पाइये ॥
रज्जब वणिक बिचार न कबहू कीजिये ।
आपा पर समि देखि दया विधि लीजिये ॥३॥

दया परै नहिं धरम न सुकृत देखिये ।
मिहरि मया मधिमाहिं परम निधि पेखिये ॥
या समि और न अंग साखि सारे कहैं ।
भाग भले तेहिं जान जीव जो यहु लहैं ॥४॥

सकल भले का मूल दया में देखिये ।
धरम धाम पुनि पड़े तेही में पेखिये ॥
सुखदाई दुख दमन मांझ में है मया ।
रज्जब मज्जब काम सु दिल लीजै दया ॥५॥

बड़े दिमन की दया बहुत सुख पावई ।
सा सहस गुण होइ तहां फिर आवई ॥
तामहु फर न सार मया मन कीजिये ।
रज्जब खाब न होइ दोष मोहि दीजिये ॥६॥

कोटि भांति कल्याण दया दरसावहीं ।
उनकी मया मनुष्य और सुख पावहीं ॥
हुये हुमायसों ऐन आरमा यहि मती ।
रज्जब उनकी छांह सु निपजै नरपती ॥७॥

दया धरम की बात गात जेहि जानिये ।
तामैं बीनबभाल सत्य करि मानिये ॥
सब सुकृत तेहि ठौर भलाई मासही ।
रज्जब मिहरि सु मोक्ष आप परगासही ॥८॥

दया रूप दिल होय तो मे कारिज करै ।
निरवैरी सब जीमन सो मारे मरै ॥
काहू मला न देइ न सो फिर पावई ।
रज्जब जग जगदीस सबन कूं भावई ॥९॥

दया बुझावै परम दुष्टता बिस हरै ।
उर गिर पत्र बिसेष कठिन कोमल करै ॥
आपा पर समि एक आतमा जानई ।
उपजै परमारथ सु पीर पर मानई ॥१०॥

बैरागर की खानि मिहरि की है मही ।
सुकृत सुयस अनन्त सु मग निपजै सही ॥
महा भरे भंडार सु भागे सब भला ।
रज्जब या उपरान्त कही क्या है भला ॥११॥

## बिरह का अंग

दुखी सकल संसार बिरहणी दुख भरी ।
काम मिलन बर मारि अमिल अगनी जरी ॥
चौरासी बिन चन सु मुंह मागे मुवा ।
रज्जब चाहै राम दुखी दीरघ जुवा ॥१॥

बिरह बिथा तन पार पीर नहिं जिय मरै ।
ज्यू मांनी मधि पात तजि, मन यू फिरै ॥
दगन बिन पराग बियागिन बावरी ।
रज्जब कृत्या नराद कवहि ह्वै रावरी ॥२॥

गनी गुन गमि गीर गुपा एग मरमही ।
पीरन प्राण रिपुर गरै मन हरनटी ॥
सामन बाम बिमेन बिरह बनु बाहिरा ।
रज्जब रम बिन हार उभे गुन बाहिरा ॥३॥

दुख यहु निज तन माइ दुखित मन वसि नही ।
दौरैं दिसि दीदार न दीसैं सो कहीं ॥
ये पीरा परचंड जीव जरता रहै ।
रज्जब विविध वियोग कहो कासौं कहै ॥४॥
।
बिरहिन व्यथा बिछोह दरस दारू रटै ।
मानहुं रोगी रोग औषधी सौं कटै ॥
ज्यूं नर बूड़त नीर नाव सु चढ़ाइये ।
रज्जब क पे हाल हेरि हरि आइये ॥५॥

।।

## चाणक का अंग

मुख ही परिगासे और मध्य मन और है ।
यहु पूरण परपंच सांच केहि ठौर है ॥
दगाबाज ठग ऐन सु देखि न धीजिये ।
रज्जब तिनका संग कबे नहि कीजिये ॥१॥

सिष्य न होये आप सिष्य औरन करै ।
यहु पूरण परपंच ठगारिन सौं परै ॥
पूजत बहु दुख होय पुजाये सौं दुखी ।
रज्जब कही बिचार सु निगुरा मनमुखी ॥२॥

## अज्ञान कसौटी का अंग

अगणित कष्ट अनेक अज्ञान न कीजिये ।
नाम बिना नहि ठाम दुलावैं छीजिये ॥
मृग तृष्णा का नीर सु मरकट आगि रे ।
रज्जब रीता सांच झूठ दे त्यागि रे ॥१॥

अज्ञानी कसि देह न मन कूं मारि है ।
ज्यूं संकट मधि सर्प विपहु अधिकार है ॥
तैसे सठ हठ देखि न कबहू लीजिये ।
रज्जब परखो प्राण प्रपंच न भीजिये ॥२॥

## बीनती का अंग

भरे अघर का सुख दान दीवान का ।
दीया लीया जाय सपिंड पराण का ॥
बहु विधि धन वियोग सु काया हंस के ।
रज्जब दे सब तुमते जाय तुम्हारे अंश के ॥१॥

छंद जाति त्रिभंगी समाप्त ।

# बावनी भाग

## प्रथम बावनी

बावन आषिर यहु बिस्तार आषिर सहित सु बिनसनहार ।
निरआषिर सो इनमैं नाहिं, रे मन समझि तहां बसि जाहि ॥१॥

ओंकार आदि है माया तामैं तीन्यूं लोक उपाया ।
उनाये मैं उपज्या सोइ जिस घटि ध्यान धणी का होइ ॥२॥

कक्का केवल पकड़हु बाट कर करवत ले करमहि काट ।
कामे सौं ऊजल यौं होइ बिबिधि बिकार ध्यान सौं धोइ ॥३॥

खख्खा खाली खेलहु खेल खलकहि छांड़ि खसम सौं मेल ।
खोंचि खुली पट षोहणि खाव खारै समंदि भूलि मत जाव ॥४॥

गग्गा गरब गुसा गुन गालि गही गरीबी गुरमुख चालि ।
गरजै गगन गहर धुनि होइ, भरि मैदान मारि लै गोइ ॥५॥

घघ्घा घरही मैं घर बात घर के घेरि बड़ी यहु घात ।
घूघू ह्वै बोलो मत बैन साईं सूरिज ऊग्या ऐन ॥६॥

नन्ना नीको निरमल नूर सो निधि निरखि जाहु मति दूर ।
नमो नमो निज निरमल देव निसिबासुर करि ताकी सेव ॥७॥

चच्चा चित चिंतामणि राखि चंचल ह्वै दीजै नहिं नाखि ।
चद चरन करि नैन चकोर चेतनि ह्वै चाहो वहि ओर ॥८॥

छच्छा छोड़हु छोटी बाणि छेहु कहा सुणि छारहि छाणि ।
छड़ि छड़ि छटि करहु छैधीन छम बस छैरै छूंदर दीन ॥९॥

जज्जा जागि जीवनि जसि गाइ जिव जोग्यूं जुग जुग की जाइ ।
जाणि बूझि तजि जग ब्यवहार, निसिबासुर जप जै जैकार ॥१०॥

झज्झा झटपट कीजै काम झूठि झांडि झुकि भजिये राम ।
झांये पड़ि झोसे मति जाहु झूरि झूरि पिव सो मिलि जाहु ॥११॥

नन्ना नारायण औतार निरगुण सुमिरण मानहु बार ।
नै नीचा ह्वै मासो दोइ मिरखि निरंतर न्यारा होइ ॥१२॥

टट्टा टूटी जोड़हु संधि टूक टूक से उनमनि बंधि ।
एकटक अटल रहै दरबार टोटा टाली फेर न सार ॥१३॥

ठठ्ठा ठिक ठाहरि ले सोधि ठोकि ठोकि पंचौ परमोधि ।
ठंठणपाल होइ मति रहै, ठाल ठोठि मनमुखी बहै ॥१४॥

डड्डा डिढ़ डोरी उर राखि, डगमग डिम डील सौं नाखि ।
डिगे न डर डीजै दरबारि, अडिग अडोल सो उतरै पारि ॥१५॥

ढढ्ढा ढांढे की मति त्यागि, ढूंकि ढूंकि हरि सेती लागि ।
ढहि ढाहै तोड़हि मति पाव, ढाढ़स करि गोविन्द गुण गाव ॥१६॥

राणारिण जोमा सब जोइ, बरण रैणि हरिकी की होइ ।
रैणाइर रसकै मैं न्हाव ऐसे रंक राणा ह्वै जाव ॥१७॥

तत्ता त्रिगुण तिरौ ततकाल तकि औसर तीखी गति चाल ।
ताइ तत्त तसकरि तनि त्रास त्राहि त्राहि करि तामस त्रास ॥१८॥

थथ्था थिरक्यूं थोड़ी बेर थान थीति लै मातुर हेर ।
थरसलि थूल न थोथी थाप थकित होइ बैठो मत बाप ॥१९॥

दद्दा दूखी दसा न देख देखौ दगधि दाल रज रेख ।
दाइम दिल मैं देखौ नूर दीनदयाल रहै भरिपूरि ॥२ ॥

धध्धा धनि धनि धरिये ध्यान धुकि धुकि सेहु गुरु का ग्यान ।
धरि धीरज धुनि धरमहि साव या परि और नहीं कछू दाव ॥२१॥

नन्ना नीका है निज नांव नित नौबति बाजै बलि जांव ।
नासै पातिग निकसै तेज नारी नाहु अमोलिक हेज ॥२२॥

पप्पा पीव पुरातन जान प्रेम प्रीति पूरी उर ठान ।
परमेसुर का सहिय पास पाप पुंज पल माहैं नास ॥२३॥

फफ्फा फहेम फकीरी सेहु फिरि फूटै बमि मम मति देहु ।
फोकट फकटै दीजै त्यागि फारिक ह्वै फारिक सौं लागि ॥२४॥

बब्बा बिरचहु बिषै बिकार बोध बिमल बुधि अन्तरि धार ।
बैन बिसम्भर बारह मास कबहूं न होवै बंध बिनास ॥२५॥

मम्मा भूलि न मोमन माहु भरमि भरमि गोते मत खाहु ।
भीतर भूख काटि सब देहु भजि भगवत भलाई लेहु ॥२६॥
मम्मा मरणौ है संसारि मानि मुगम माथै परि धारि ।
ममिता मान मल मन धोइ मोहन सुमिरथ मंगल होइ ॥२७॥
जज्जा जोवहु आतम राम जुरा जोर करि जीतैं जाम ।
जोग जाइ जन की नहि जीति जावण मरण जीव भैभीत ॥२८॥
रर्‌रा रोमहु मूसहु हार, रोम राम रटि राम अपार ।
मह रस रीति सकल सिरमौर रीती रहै न कोई ठौर ॥२९॥
लल्ला लाराच यौंही जाणि लूं लैलीन लाल उर आणि ।
लोक अलंकि छंधि यू जाहु लांबी लगणि लाल को लाहु ॥३०॥
बोब्बा बैसी बोर न बाव उमटा उर अंतर भरि भाव ।
बारि बारि उस अमर जीव, उमंगि उमंगि उत्तिम रस पीव ॥३१॥
सस्सा सुमिरण करौ सदाहि, साच सील उर अंतर माहि ।
सूधे मारग मैं थिरि देहु सो साई अपणा करि लेहु ॥३२॥
पप्पा पिवमत करि इक तार पड़े रहो पासिक दरबार ।
पान पजाना पीछे नाहि, जसे बाउरि पोटी माहि ॥३३॥
सस्सा साई सिर पर राखि सतगुर साधु कहैं सब साखि ।
सुमिर सनेही समझो वास सुख के स्थम माहि कर बास ॥३४॥
हहा हरि भजि हरि ही होइ हंसहि हंस मलि नहि दोइ ।
हूपे होइहै साधू घेत हूं हुसियार करो हित हत ॥३५॥
बावन अक्षर ज्योंरे वीर, निरअक्षर सौं नाहीं सीर ।
जन रज्जब केसो मन माहि जा कछु इन अंकन में नाहि ॥३६॥

## बावनी अक्षर उद्धार

दोहा बावन अक्षर ब्रह्म भजि बेला बावन वीर ।
मन सिख मानहु मत यहु कहै प्राण गुर पीर ॥१॥

बावनी ओ अक्षर ते ओंकारा ओ आराम आतम उर धारा ।
उत्तम गति अक्षर ओ माहि, उनमन लागि अनन्य मन जाहि ॥२॥
कक्का केवल है करतारा कलि कुसमल सौं काटणहारा ।
नाम दहै बरजो मनि कोई केवल कहता केवल होई ॥३॥

खख्खा खालिक अक्षर खेवै खिलक माहिं खलकहिं जो खेवै ।
खलकमंथ खाहुणि सुनि आहीं खरतर खेत सुखै खैमाहीं ॥४॥

गग्गा गुरु गोविन्द गहि ज्ञाना गुप्त गात गत मत सुगराना ।
गरक गूझ गहनी यू भावै गग्गा गगनहिं ध्यान लगावै ॥५॥

घग्घे घन सुंदर घन श्यामा घण नामी का करहु बखाना ।
घणहु घणा घण लोक घणेरा यू घग्घे आखिर सब घेरा ॥६॥

नन्ना निराकार करि नेहा निर्गुण सुमिरि सफल निज देहा ।
नर नारायण करै सु नना नीकी बात मान रे मना ॥७॥

चच्चा चिदानन्द चित राखी चिन्तामणि चवि चंच सु भाखी ।
चित्र चारि चपि चारो आये चरणकमल चच्चै सु समाये ॥८॥

छछ्छा छह दर्शन प्रतिपासा छिन छिन छत्रपती सु संभासा ।
छैसछत्तीसा छाना माहीं छत्तीस वस्तु सु छछ्छै माहीं ॥९॥

जज्जा जपि जगपति जगजामा ज्यूं जीव जड़े माहिं जम हामा ।
जूना जोगी जस पुनि ईसा जज्जै माहिं सु जन जगदीसा ॥१०॥

झझ्झा झीणहु झीणा सांई, झीणा ह्वै झीणा जस गाई ।
झिलमिलि उपजै झिल सु माहीं झाखी बसत सु झझ्झे माहीं ॥११॥

नञा नरहरि निशिदिन गावहु रे नर निरालम्ब यूं पावहु ।
नूमस नूर सुनि राखी नैना आखिर मिलै मैं निज ऐना ॥१२॥

टट्टा टरै नाहिं सो राजा, तासौं टिकि रहि टरै सो काजा ।
मानहिं टेके टेक जो धारी अक्षर टट्टै वस्तु पियारी ॥१३॥

ठट्ठा ठाकुर ह्वै सो ठाकुर मन वच कर्म तहि ठाहर चाकर ।
ठाकुर नाम सु ठट्ठे माहीं ताते ठट्ठा त्यागै नाहीं ॥१४॥

डड्डा डाल मूल तेहि माहीं अडिग अडोल बसे सब माहीं ।
डाल दहै तासौं डिढ रहिये यूं डड्डा अक्षर धरि गहिये ॥१५॥

ढढ्ढा ढारग जगत ढहाना तो ढिग ढूंढि लेहु मति काना ।
ढेर अनन्त ढूढे न दिगारा आप रहित ढढ्ढै मझारा ॥१६॥

णाणा णावण होय न रहिये णणहु णाणा सो भिज गहिये ।
णोण अनन्त णास नी आणा अक्षर णाण माहिं समाणा ॥१७॥

तत्ता त्रिभुवन है निज सारा ताहि तजे जिव का निस्तारा ।
ताकूं नाम धरे रहु सीसै तत्त नाम तत्त मैं दीसै ॥१८॥

थथ्था थाप उर थापण सोई थापें थाह न आवै कोई ।
थूल थूल थिति बाहरि नाहीं थानि थानि थिति थथ्थै माहीं ॥१९॥

दद्दा दाइम काइम दाना दीनदयाल सहीं सो जाना ।
दीनबन्धु दूजा कोइ नाहीं, दीरघ दौलत दद्दै माहीं ॥२०॥

धध्धा ध्यान धणी का कीजे, धरणीधर धुन अन्तर भीजे ।
धरम धार लेख मैं माहीं, धन्नि धनि धू धध्धै माहीं ॥२१॥

नन्ना निकुल निरबंसी काया, नित निरवाण नाम त्यों लाया ।
नांव अनन्त उचारण कीके, सहस नांव नन्नै मैं नीके ॥२२॥

पप्पा पारब्रह्म पद पूरा, परम तत्त अप अविनिभूरा ।
पुरषोत्तम पावन जेहि नांवा परा परी पप्पै मैं ठांवा ॥२३॥

फफ्फा फहीम का फारिक ध्यावै फल रस रूप सोई फल पावै ।
फहमि इहै जो फकीरी गहिये फूटै माहि सु फफ्फै कहिये ॥२४॥

बब्बा बीसम्भर बनवारी बिमल रूप व्यापक बुधि धारी ।
बेहद बिपुल सु बिमन बिलासा बस्त बित्त बब्बै बिधि बासा ॥२५॥

भभ्भा भगवंत भाइ भणीजे भूरि भाग भगवान गुणीजे ।
भूधर भूत भेद कछु नाहीं भली बस्तु सु भभ्भै माहीं ॥२६॥

मम्मा मनमोहन मनि धारी मुखि माधौ कहिये सु मुरारी ।
महाराज मधुसूदन बोले अक्षर मम्मै बसत अमोले ॥२७॥

जज्जा जगमोहन जस गावो जपत जोति जगबन्धन धावो ।
जम का जस जोरावर जाना जगत रूप जज्जै सु समाना ॥२८॥

ररा रमिये राम रहीमा इहै आप धनि जीव फहीमा ।
रसिया से रसिया हूं रहिये रस रूपी सु ररै मैं लहिये ॥२९॥

लल्ला लाइक है निज लाला लच्छी बर लोकहु प्रतिपाला ।
लघु सो लघु दीरघ सो अगाधा मायिर लल्लै मैं सो साधा ॥३०॥

वव्वा वो है सिरजनहारा ताहि गहै जाका निस्तारा ।
उनमनि लागि सु मह बिधि सोही यह वह वहत होदि यहु वोही ॥३१॥

दद्दा समरथ सिरजनहारा सुखनिधान श्रीपति सिर धारा ।
सरबंगी सबही सिरताजा आपिर दद्दै माहीं बिराजा ॥१२॥
पप्पा एक पुदाइहि ध्यावै चतुर पाम सों जीवन आवै ।
पोटी त्यागि परा से मर्के यूं पप्पै आपिर पद छकै ॥१३॥
संस्या स्याघो साहिब सांई, श्रीधर श्रीरंग की सिर नाई ।
ससा उसास सुमिरिये रामा आपिर ससै करि सब कामा ॥१४॥
हहा निसिदिन हरि हरि कहिये हरि हरि कहत सो हरि ह्वै रहिये ।
हुण हद सोई सब हुवा हेरि हंस हदै महि जुवा ॥१५॥
एक लागि आपिर सब सीझै सरबंगी सब ठाहर रीझै ।
पावन परस पाट सब पावन रज्जब रोग उतारया बावन ॥१६॥
औषधि मैं आपिर सब लागे ये पचास प्राणहु थे त्यागे ।
अब आतम आपिर आपिर प्यारे, अनमापिर आपिर सो उधारे ॥१७॥

## ग्रंथ पंद्रह तिथि

सतगुर ग्यान उदै सो सूझी यूं पंद्रह तिथि तन मैं बूझी ।
अमावस उर अमत अधेरा तहां सहाय भया गुर मेरा ॥१॥
परिवा पीठि दई तम मूसा प्रथिमी माहि उदै करि सूसा ।
परम अंकूर प्राण मैं जागे परमपुरिष की सेवा लागे ॥२॥
दूज सु दम दम सुमिरन कीजै द्वै द्वै दोजक दह निस धीज ।
सौ दिस उगी दोइज चंदा दिन दिन दीसै अति आनन्दा ॥३॥
तृतिया तिरिगुण होइ तन तावै तृगुण तोरि तहि तनै समावै ।
त्यागे बरनि ताके आकासा तहां न कोई तस्कर आसा ॥४॥
चौथि सु चेतनि ह्वै चित माहीं चंचल चोर सु आवै नाहीं ।
चूकै चकै न आये दामैं चरनकंवल देखन का चावै ॥५॥
पंचमी पंचू पलटै प्राना पल पल पीवै प्रेम सु पाना ।
यहु पतिव्रत प्रान को आसा प्रीतम परसै परम प्रकासा ॥६॥
छठि सु छेन छिन छाटै सोई ताहि न छलै छलावै कोई ।
छाबया रहै छानि रस पीवै छत्रपती की छाया जीवै ॥७॥
सातैं सपत दीप के सागर सोखे होइ अगस्त उजागर ।
सदा सुसीलह सुमिरण सारा सनमुख सांई संत पियारा ॥८॥

आठैं इस्ट सु अंतरि राखै अस्टधात काया कुल नाखै ।
अष्टांग जागि मैं आतम लोटै अष्टसिधि दासी पांव पलोटै ॥९॥
नौमी निकुल निरंजन भावै नौधी नग्रि न नौखंडि आवै ।
निरमल नांव निया पुनि गाजै नित नौतति निज ठाहर बाजै ॥१०॥
दसमी दौलति दसवें द्वारा तहं दृग देखै देखनहारा ।
दरगाह बैठा दरसण होई दह दिसि दीसैं दीरघ सोई ॥११॥
एकादसी एक दिसि ध्यान येकमेक ह्वै रस रुचि मानै ।
एक अधार एक की गावै यूं ह्वै एक एक को पावै ॥१२॥
द्वादसि द्वादस लहरि बिलोवै द्वादस अंगुल वाई धावै ।
द्वादस द्वारि न दे दुख सासा द्वादस मास मगन मतवाला ॥१३॥
तैरस तै तत सार बिचारै तृष्णा त्रिगुण तजै तसकारै ।
तोलै तुल संतनि सम पूरा तौ त्रिभुवनपति लेहि हजूरा ॥१४॥
चौदसि च्यंता चाल चुकावै फिर कबहूं चर्म दृष्टि न आवै ।
चरमकमल चित चित ले बाना चौदह भुवन भया सोइ राना ॥१५॥
उन्यूं पूरा ह्वै मन चल्या परसै गये परम गुरदेवा ।
पाये पास पखारा नाहीं परमपुरिष मैं प्राण समाहीं ॥१६॥
मावस कला सपूरन सारा सब बिधि देखै राम पियारा ।
गुर दादू दिनि रैन दिखाये जन रज्जब घट भीतरि पाये ॥१७॥

## अथ सप्त वार

वार वार गुर बदन कीजै रैन रहित दिन दिन रस पीजै ॥टेक॥

आदित वार आदि सो भेदू काहै कूं री मनिया देहू ।
सो सोधी करि समझि बिचारी आदू रचना अंतरि भारी ॥१॥
सोमवार समिता पर आणी मत सत समझि समाधि सु ठाणी ।
सरवस दे सुधा रस लीजै सहज सुषमना भरि भरि पीजै ॥२॥
मंगलवार मगन गुन गावै महापुरिष मंदिर मैं पावै ।
मधि मुरलि मन माहि उछाहा भाग्य भागि मिलै निज नाहा ॥३॥
बुधवार बुधि बहुत बधानै विमल ज्ञान व्यापक बिध जानै ।
तन सरवरि जिन पहुप प्रकासा बसनी बैधे बसत सु बासा ॥४॥

ब्रहस्पतिवार बिकल कृषि वारे बसि बीच मन धाम बुहारे ।
बप मन माहि विसम्भर प्यारा वित बस तीर न करि क्यौहारा ॥५॥
सुक्रवार सब सूषा कीजे सौंज सुफल सुमिरन सु मरीजे ।
सनमुख सांई थाव अनन्ता सदा सुखी सो साधू संता ॥६॥
थावर भक्ति सु थानिक आई पाये पल बाहर नहिं जाई ।
थोथी तज्यू भई थिति थाथा थोरा बहुत होत हरि साथा ॥७॥
बारंबार करहु यहु कामा अनुदिन सुमिरौ केवल रामा ।
सपत वार सुमिरन में रावै गुर परसाद सु रज्जब भावै ॥८॥

## अथ गुरु उपदेश आतम उपज

गुर उपदेश सरै सब कामा आतम उपज मिलै पुनि रामा ।
गुरमुखि दीवौ दीवा होवै आतम उपज भये पुनि जोवै ॥१॥
गुरमुखि अगिन आनि दौ सारे आतम उपज बंस घस जारै ।
गुरमुखि माता सुत पै पान आतम उपजि गऊ बछ बान ॥२॥
गुरमुखि नर चंदन कौ पावै आतम उपज तहां अहि बावै ।
गुरमुखि सीप स्वाति रत होती आतम उपजि भये गज मोती ॥३॥
गुरमुखि नट बरछी को छोलै आतम उपजि कौकिला बोलै ।
गुरमुखि को कीरति बहु पानी आतम उपजि मीन कम बानी ॥ ।
गुरमुखि घटा सबद घन बरसै आतम उपज घटा बिन बरसै ।
गुरमुखि कूप मंचै जल पीजै आतम उपजि ओव पुनि पीजै ॥५॥
गुरमुखि सूर पेखि विठि पीसा पीत बाह उपजैं सो सीसा ।
गुरमुखि ज्ञान गुरम तरि मरिये आतम उपज माप हित हरिये ॥६॥
गुरमुखि मेत्र बढ़ाये आंधा मुतियाबिंद उपज विठि बांधा ।
गुरमुखि कान मूंदि सु बौरा बहरी बाह सुनै नहिं सौरा ॥७॥
गुरमुखि इंद्री काढ़ै खोजा आतम उपज होंज पुनि रोजा ।
गुरमुखि बांझ आतमा मारी बांझ बिया पुनि होइ बिचारी ॥८॥
गुरमुखि पंखा सीतल बाई सहज चलै ठंग करि आई ।
गुरमुखि सप सबल सुनि धाइस आतम उपज भये जम राइल ॥९॥
गुरमुखि गारस मसत समाना आतम उपज महानंद जाना ।
गुरमुखि हांहि सकल सन्यासी आतम उपज सु बस उदासी ॥१०॥

गुरमुखि जैन तिर्थंकर ध्यावै आतम उपजि नेम स्यो लावै ।
गुरमुखि भगत मयतिपति परस आतम उपजि गुरू गुर दरसै ॥११॥

गुरमुखि सोम इष्ट कौं भावै आतम उपजि सोम पति ध्यावै ।
गुरमुखि बहुत ज्ञान से माते, आतम उपजि गुरू पुनि राते ॥१२॥

दोहा इन दोन्यूं मति एक गति लघु दीरघ कोइ नांहि ।
रज्जब दीनदयाल के दोनों अंगि समांहि ॥१३॥

## अथ अविगति लीला

अविगति की गति उलटी भाई सो काहू पै लखी न जाई ।
यहां अंस जीव क्यों होई, वाही अंस मिलै क्यू साई ॥१॥

ज्यू प्रगट हुतासन काष्ट विनासा सोई पावक काष्ट निवासा ।
अघरज एक अजब बन माहीं पावक बीज बुझावै माहीं ॥२॥

सावन भादौं समंद घटावै रुति मये पुनि ताहि बंधावै ।
ज्यूं अघर अकास कुसन मैं औसे पाणी सौ कैसे पड़ि खोसे ॥३॥

सतगुर संगि सिष सठ कौ कीजै बिन गुर जीव ब्रह्म मैं सीजै ।
बोवै कुमारि कागदा कीज यू उलटी गति देखि पतीजै ॥४॥

उन बरषा रुति बिनहिं बधावै जोई अकास को दौ लावै ।
हांडी मैं कनकोड़ा राखै ता अविगति की उलटी साखै ॥५॥

पाहण माहि प्राण को पोषै मुक्ता मरै भूप कै दोषै ।
जा बहनी सौं जगत जरावै सो करि पुनि चकोर चुगावै ॥६॥

जैसे केस किष्न होइ सेतैं ता अविगति का उलटा हेतैं ।
सारी मांड अमर धरि राखी सखि हरि सूर अकासौ साखी ॥७॥

जीव रचे सो होई न कामा उलटी और करै कछु रामा ।
प्रभ गंजन गोप्यम्ब बिनामी झाम देय अपनी पुनि ठामी ॥८॥

सरबंगी सब ठाहरि न्यारा मन बच करम न जाइ बिचारा ।
अविगति की गति लखी न जाई नेति नति कहि वेद सुनाई ॥९॥

दोहा अविगति अलख अगम्य है चित च्यंता नहिं जाइ ।
जन रज्जब सब यू रहे ठग के लाडू खाइ ॥१०॥

## ग्रंथ अकल लीला

सेवग पूछै साहिब रामा कौन प्रकार किया यहु कामा ।
कै मनसा करि मांड मधारी, कै गुण रहित भई यहु सारी ॥१॥
इष्ट बिना यहु सिष्ट न होई झूठी बात कहै मति कोई ।
बिन चिन्ता बिश्राम उपाया ज्यूं तरवरि लगि दीसै छाया ॥२॥
ससि मैं सुरम सु दीसै नाहीं कंवल केल सर हित सुमि आहीं ।
त्यों पर आतम आतम सारी समरथ इच्छा रहित संवारी ॥३॥
चन्दन चाहि सु चित्त न बंधी भार अठारा भई सुगंधी ।
यों क्रम रहित करता क्रम कीना ऐसी बिधि यहु प्रान पतीना ॥४॥
चुंबक कब चंचल मति सांची जाके संग लोई सब नांची ।
ऐसे अचल चलाये प्राना समझै कोई संत सुजाना ॥५॥
बादल बिजुली बूंद बाइ सुन्य सरीर सु उपजै आइ ।
त्यूं निरगुन थैं सरगुन रूपा अकल निरंजन अमल अनूपा ॥६॥
सर्मद सुरति बिन बसचर जागे राग दोष क्रीड़ा हत लागे ।
पाप पुन्नि पानी कौ नाहीं ऐसै ब्रह्म सकल घट माहीं ॥७॥
आंखि अनंत आदीत आधारा देखैं बिबिधि भांति ब्योहारा ।
भले बुरे मैं नाहीं भाग ऐसै राम राम की आग ॥८॥
दीपग जोति चुथारी सारे एक जीतै एकौ धन हारे ।
हरष सोक मैं नहीं उदासा त्यू परमेसुर प्रानहु पासा ॥९॥
नींद निवास मनोरथ आमे अकरम करम सु खेलि समाये ।
संकट मुकति समाधिहि पूरी इहि बिधि जीव ब्रह्म भरि पूरी ॥१०॥
बाइ बंध बप बिघन अनेकैं मारुत माहि न जानै एकै ।
त्यूं सकल गुणहु निरगुण आधारा बीचि बस्त नहि लिपै बिकारा ॥११॥
ज्यूं सुफल बिरछ जग सेव्या बासा काम कोष करि तिनका मासा ।
इच्छा रहित हुस्या मत हेठैं ज्यूं जगपति जग माहैं सेठै ॥१२॥
कमल कतधनी देखी दीठी जामैं उतपति ता बस पीठी ।
मारि बिमुख मनि सोग उछाहा यू सुख सागर मैं जिव बाहा ॥१३॥
सकल प्राण पिरथी परि मेला नाना बिधि के खेलैं खेला ।
धरमि न धारैं तिनके रंगा त्यू पर आतम आतम संगा ॥१४॥

दरपन मैं दीस सब देखा ताकूं भार नहीं दुख लेखा ।
यू गुण रहित सु अंतरजामी सा माहीं खेल सब कामी ॥१५॥
अगनि अठारा भार समीपा स्वादहु संगि स्वाद नहिं छीपा ।
यू अंजन माहिं निरंजन आपै ताको परसी पुनि न पापै ॥१६॥
मनि मन मनस्त भूल मधि येके अरस परस अरु न्यारा यमेकै ।
ऐसी विधि दीसै जगनाथा सब थैं न्यारा सबकै साथा ॥१७॥
मन भुजंग ज्यूं माहैं रहई उमैं परसपर गुण नहि गहई ।
त्यूं तन मन माहै तत सारा गुर प्रसाद सो किया विचारा ॥१८॥
तुम समानि नाहीं उनमाना त्रिसम संधि क्यूं करो बखाना ।
अकह ठौर यहु तुमहु कहाई गुर दादू परसाद सु पाई ॥१९॥
सकल करै कम माहिं न आवै परम भेद पूरा जन पावै ।
सरबंगी समरथ मति न्यारी जन रज्जब तापरि बलिहारी ॥२०॥

## प्रथ प्राण पारिख

प्राण पुरिष की पारिख पाई जा गुण मिलै ताहि समि माई ।
ज्यू अस पैठि इख गुड होई पोसत परस अफीमो सोई ॥१॥
अठार भार माहि जब पैठे गुन समान स्वाद ह्वै बैठे ।
जैसी विधि यहु रंगत नीरा स्याम सेत ह्वै राता पीरा ॥२॥
ऐसी विधि आतमहु पिछानी ता धमि तुमि जाहि गुन सानी ।
सीत लागि जस हेमौ होई, अगनि प्रसंग ऊस्न पुनि सोई ॥३॥

दोहा आत दृष्टि करि देखिया आतम उदिक सरूप ।
सरगुण मिला सगुण सही निरगुण मिलि निज रूप ॥४॥

बावनी आतम भाव एक सों ऐसा जा गुण मिलै ताहि गुण तैसा ।
एकै भाव राम यहु परसै राग समानि भाव विष दरसै ॥५॥
सोई भाव पढ़ै बहु वामी बेद कतेब भाव ह्वै बानी ।
नाना बिधि हुनर ह्वै धावै गुन समानि ह्वै बीच सतावै ॥६॥
एकै भाव पंच रस भोगी सोई भाव उलट पुनि जोगी ।
नाना बिधि देही उन भावै यहु पारिख पूरा जन पावै ।
जिमि अंगूं प्रानी पति मेला ते सब अंग भाव के खेला ॥७॥

दोहा आतम परसी मगनि समि पस मार्गी तस अंम ।
जन रज्जब जिव फटक गति धरथा अमर ह्वै रंग ॥८॥

## अथ उतपति निरनै

उतपति निरनै कीजिये गुर दादू के ग्यान ।
नाद ब्यंद यहु एक है, कै कछु भ्यान विनान ॥१॥
आदू आप अलेख के आतम ओऊंकार ।
सोवे तनि वड़ पंच करि पैठा निकसनहार ॥२॥
काया पुतरी काठ की हूले मही दस पांच ।
आतम मयुरी और बी आइ नचाया नांच ॥३॥
टूटा सुंदरि साइ धलि सुकम सु किरची सार ।
भाई चंबक चेतना मुये मिलावणहार ॥४॥
रज वीरज तन काठ कठ मूने सबद न कोई ।
छाया जोड़ी जीव सा यों मिलि बेलें दोइ ॥५॥
वप बसुधा माटी मदन माता चक्र निवास ।
सुत सरीर दीपक रच्या आयो और उजास ॥६॥
काम काठ करि नीपज्या उबर उदधि क माहिं ।
वासिक बोहित बपू चलै प्राण पवन जे नाहिं ॥७॥
गुडिया गवी चूग बी मिरतग माता पेटि ।
बाव बोलते बाहुरीं उठे न उइसी मेटि ॥८॥
बालक खलावरि नीपजै मात पिता पौ मारि ।
मारुत रूपी माहिमा औरै फूकि विचारि ॥९॥
सार सरीरो नीपजै देही दर्पण पूत ।
प्राण पड्या प्रतिबिम्ब ज्यों वह औरै अवधूत ॥१ ॥
दोति कंठ मसि मंत्र मल कागद कामिन ठौर ।
सेवनि लिंग सरीर को सवद समाना और ॥११॥
बाबा बादल मा मही बीजहि बूंद प्रवेस ।
निरमि समानी मूरतें वह कछु औरै वेस ॥१२॥
जैसे सुमिरण सुरति म त्यूं देही मैं हंस ।
मिरतग जीवे देखतें गुर गोविन्द के अंस ॥१३॥

अनपढ़ आंखि अनग मति येक रूप उनहार ।
पाठ रूप पढ़ि प्राणियां विविधि भांति व्योहार ॥१४॥
ऐसे तन अरु वाहि है ज्यूं स्वास सबद मे राग ।
उमैं अनामित देखिये जैसे मस्तग भाग ॥१५॥
पाणी रूपी पिंड है, सीत सक्ति जिव जान ।
ह्वै मिलि तामैं कुंभ बलि समझै संत सुजान ॥१६॥
समुद्र सुन्दरी नीपजहि सुत सीप सरीर ।
याव्रम बूंद अकास की स्वाति सरूपी नीर ॥१७॥
चूरी पीता पहाड़ की मात माटुरी मेल ।
पलटै पारस प्राण मिलि वहु कटु औरै बेल ॥१८॥
विरछ बीज माता पिता मरभक उदर अंकूर ।
पलटै चंदन चेतना और बास बलि नूर ॥१९॥
मात पिता तिल रूप है सुत सरीर विधि तेल ।
फहुम फूल मिलि मगन ह्वै पलटया औरै मेल ॥२०॥
धर गिर रूपी मातु पितु, चेतक चकमी धातु ।
छाप छतीस छाप दई करजे लागी बात ॥२१॥
नारी पुरुष सु काठ तन लटटू चकरी धाम ।
डोरी डिढ्ना मिल्र मलि अवम चलाये चाल ॥२२॥
लोह नार निगी सुतन तहां सूई सुत होय ।
नेत्र लाग क ताकलू वो है औरै कोय ॥२३॥
मणियां औरै जाति का औरै कुम का ताग ।
पिंड प्राग ऐसें मिले नारी पुरुष सुहाग ॥२४॥
अवन कही तम पादही उपजी रीती ठाम ।
जीव समाना जुगति सो गोरखधंधा नाम ॥२५॥
दोहा गोप्य बात गोविन्द की सहे न मन मति संत ।
रज्जब पाई रहम सो सतगुर के उपदेस ॥२६॥

## अथ गृह बैराग्य बोध

रूप उवाच गृही नाम करि पूछिया सुनहु विमति बैराग ।
कहा घटे सुन्दरि किये कहा बढ़े करि त्याग ॥१॥

बैराग्य उवाच बैराग्य बुद्धि गहि बोभिया सुनहु गृही कछु ज्ञान ।
तुम नारी के बसि भये हम अबंधनु स्वान ॥२॥

गृहस्थ उवाच तुम अबंध कैसे भये कहो बिगति बैराग ।
हम बिषिया बपु सो करी तुमहि मनोरथ लाग ॥३॥

बैराग्य उवाच जैसी चोरी मन करै तैसी जे तन होइ ।
रज्जब तोहि सड़ाकि दे सूली दीजै सोइ ॥४॥

गृहस्थ उवाच जे मन से चोरी करी तो पीछे को साहु ।
मन रज्जब मूठी दसा किसका ह्वै निरबाहु ॥५॥

बैराग्य उवाच मन सरवर तन पाल गति जल तरंग नहिं जाय ।
रज्जब रोपै पालि पग उलटि उमंग समाय ॥६॥

गृहस्थ उवाच जे मन तरंग ना चलै कहौ काम क्यूं जाय ।
रज्जब झरता देखिये उलटा क्यों न समाय ॥७॥

बैराग्य उवाच काम गया तौ का भया बिन नारी परसंग ।
रज्जब काया कुम भरि, ऊमर गया अनंग ॥८॥

गृहस्थ उवाच कहा कुम जड़ की दसा रज्जब रुचि नहिं माहिं ।
यहु तन मन चेतन दसा सहज काम क्यूं जाहिं ॥९॥

बैराग्य उवाच सहज काम ऐसे गया ज्यूं लोही नकसीर ।
रज्जब जोक जोंक गति कसि काढ़े कुम हीर ॥१ ॥

गृहस्थ उवाच गिरही मति स्तुति किये धनि धनि तू बैराग ।
कामिनि सौ तुम पर हरी कनक लता तुम लाग ॥११॥

बैराग्य उवाच कामिनी ज्योति समान है कनक रूप परकास ।
पचन पतंगा ज्योति मैं रज्जब रहै उदास ॥१२॥

गृहस्थ उवाच कनक कामिनी एक मति दोनो दम्भमहार ।
रज्जब तोड़ै राम सौं बिगता कहा बिचार ॥१३॥

बैराग्य उवाच जो कामिनी कनके तजै सो क कसक न भेम ।
रज्जब यहु बैराग्य बुधि दोन्यू चित्त न देय ॥१४॥

गृहस्थ उवाच बहुत भांति करि देखिये गृही जु सेवक अंग ।
रज्जब स्वामी बिरह बुधि यहु इनका परसंग ॥१५॥

बैराग्य उवाच अबिगति गति गोबिन्द की रज्जब लखी न जाय ।
सेवक को स्वामी करै स्वामी सेव समाय ॥१६॥

## ग्रंथ पराभेद

प्रथम प्राण परम गुरु पावै परमपुरुष का भाव उपावै ।
परम भेद सो देइ बताई, तब परै अंग अंगनि सुधि पाई ॥१॥
जन्म परा गुरु घर सिष जामैं छूटी परा देव मिल मामैं ।
मन मैं राग सु उपजै नाहीं बालक उपज्या निज मत माहीं ॥२॥
भाव परा भगवंतहि जानै भेद परापर बरतहि छानै ।
भक्ति परा भगवानहि भावै भाग परा ऐसी निधि पावै ॥३॥
सेवा परै सु सेवा भाई ब्रह्मंड पिंड तै अगम बताई ।
सेवक सेवा माहि समाव सा फिर योनी द्वार न आवै ॥४॥
नाम परै बहु नाम कहावै जामैं आपहि आप न पावै ।
तब तहां वस्तु रहै भरपूरी ज्यों दिन आये रजनी दूरी ॥५॥
परम धर्म कीजे सो भाई जा भीतर कामना न काई ।
परम पवित्रहु पुनि पुनि सोई जा माहैं बांछा नहीं कोई ॥६॥
परम ज्ञान जेहि गर्व न भावै गहर गरीबी माहि समावै ।
परम विचार मुक्ति हूं माया परमपुरुष प्राणी तहि पाया ॥७॥
ध्यान परा जु निधानहि धारै सो प्राणी कबहूं नही हारै ।
मास्त बिना मस्तकती होई भेदी भेद लहै यहु कोई ॥८॥
तीरथ परापरी सतसंगा जिनमें अगम ज्ञान की गंगा ।
संयम परा जु पापो धोवै मन का मैल कुमिम का खोव ॥९॥
परम सूर इंद्रिन सों झूझ ज्ञान संग धारा कूं बूझै ।
सत महु ब्रह्म अग्नि में जरिये मरण परा जो जीवत मरिये ॥१०॥
धावन मंदिर मंदिर सों परै स्याही सुत उपजै अरु मरै ।
चतुर दसो कै परै सु विद्या परम बोध ता भीतर मिथ्या ॥११॥
देने परै प्रभु दिस दीजै लेणे परै बंदगी लीजै ।
देण लेण या ऊपर नाहीं समझ समझि सैयमि माहीं ॥१२॥
जीवन परै जीवना साई आतमराम जु मिश्रन होई ।
मिलै बसे वल होय अनंता समझै समझ्या साधू संता ॥१३॥
राज परै सो राजहि भावै माया त्याग सु ब्रह्म समावै ।
साज परै रागी तेहि साजा जीव सीव मिलि सार बाजा ॥१४॥

ठाहर परै सो ठाहर साची पिंड ब्रह्मंड परै सो कांची ।
यही स्थल सो प्राण समावै सो फिर मिथ्या माहिं न आवै ॥१५॥
दर्सन परै सु दर्सन सांचा, सतगुरु मुहड़े सुखी सु बांचा ।
जो दीसै सो माया दिखाई ठांवी ठौर न सो ठहराई ॥१६॥
ठाकुर परै सु ठाकुर ईसा, जिन सिरजे चाकर चौबीसा ।
आदिनरायण बेदहु गाया, स्याणहु साधू सो ठहराया ॥१७॥
सबैं परै सरब सो सारा ज्यू त्यू परै सो ज्योति अपारा ।
निर्गुण परै सु निर्गुण रहिता सुखिम को सुखिम नहीं गहिता ॥१८॥
बलहू परै सो बल बलवंता वा समि ओर नहीं कोई जंता ।
पल मैं ब्रह्मांड मानि संवारे ताके ओरहि वार न पारे ॥१९॥
अगहु परम सु ब्रम बताये गुरु दादू परसाद सु पाये ।
जन रज्जब यहु किया न देखा भूरि भाग्य जो पावै भेदा ॥२ ॥

## अथ बोध चरीबै

बोध अनंत चले क्यू जीव सुनहु संत परसै क्यूं पीव ॥१॥
प्रथमहि देह पाप का मूल बाद सकल डाली फल फूल ॥२॥
तैसे मैं भिपजै क्यूं प्रान सकल संत मिलि सुनहु बखान ॥३॥
बहुत भांति बहु ज्ञान अपार तिनमें मिलै न तिरजनहार ॥४॥
ज्यों क्यों करै तहीं क्यू मार कैसी विधि ह्वैया सु उधार ॥५॥
जैरु गहै रहनी की रेखा तौ मो सम तुल्य और नहीं पेखा ॥६॥
जैरु कछु करनी मैं आवै सौ आपा करि तत्काल लटावै ॥७॥
जैरु कदे तुरकी रहि आये सौ करै खून तिनके फरमाये ॥८॥
जैरु गहै जोगी की छाया तौ चेतक नाटक बहुत बताया ॥९॥
जैरु गहै भगवां की ओटा तौ आपा अधिक मान सिर पोटा ॥१ ॥
जैरु गहै ब्राह्मण की किरिया तौ ब्रह्म छाडि भरम मैं परिया ॥११॥
जैरु पंथ जैनहु कै आवहु तौ पाणी माहिं चौबीसौ ध्यावहु ॥१२॥
जैरु गहै भस्म के भेखा तौ स्वागहु पहरि सांच नहिं पेखा ॥१३॥
जैरु गहै पट बरसन संगा तौ साहिब माहिं स्वांग सों रंगा ॥१४॥
जैरु गहै खेचर गति जामा तौ प्रगट सींग अर पसू समामा ॥१५॥
ज तीरथ करै आदि दे जेते तौ भ्रमि मुवा हरि सों नहिं हेते ॥१६॥
जैरु करै साधन के करमा सो सब छूटाय गये न भरमा ॥१७॥

जेरु गहै घर वन सू मेला तौ अंतरगति हरि सों नहिं खेला ॥१८॥
जे कासी करवत गहै गरेहि मारे तौ जग सौं रुचि राज संमारे ॥१९॥
जो ध्यान धरे हरिजी की ओरा तौ मांगि लेय कछु और ही ठौरा ॥२०॥
जे नामहि भजै मिस्त के मांई तौ साहिब विन संसै मैं जाई ॥२१॥
जे नामहि भजै मुक्ति की चाहि तौ ता समि सठ कछु कहु काहि ॥२२॥
यू लैलीन भगत ह्वै जांच तौ साहिब बिना बसाया पांच ॥२३॥
जेरु करे कछु ऐसा सोच तौ आगम निगम नाम बिन पोच ॥२४॥
जेरु समाधि लगावे आप तौ खोटा भाव ब्रह्महू आप ॥२५॥
दोष अनन्त कहां लौं कहै, परि येते दोष सकल जग बहै ॥२६॥
येते दोष रहित भजि राम जन रज्जब केवल निष्काम ॥२७॥

## अथ जैन अजास

सुनहु सत यहु जैन अजास कर्म कपट की बांधी पास ।
नाम निरंजन सो मन माहि भूमि रहै चौबीसो माहि ॥१॥

द्वादस दूने भूखे आय जु आतम खाइ आपने भाय ।
यहु मोटा कीया व्यभिचार क्यू छोडै मयमंत भरतार ॥२॥

तांबा लोहा पलटहि अंग सदा सु सुनिये पारस संग ।
पर सोने सोना करे न होय तौ यहु छकि म सदगति कोय ॥३॥

जती कहावे चढ़े अजास देस देहुरे कीन्ही सास ।
तिन आरंभो थार न पार परहि प्राण सिर पाप पहार ॥४॥

सेत रजै सुभि हीने जाहिं, आमे पाथर बोलै नाहिं ।
मारहि जीयहु आवत जात वहां चढावै फूलर पात ॥५॥

पाथर पूजहि जती न जाय गृहियों को सो देय दृढाय ।
विष समान गुर ह्राय न लेय शिष्य मुख कूं शुभाशुभ देय ॥६॥

वैस्य वर्ण समझे नहिं बात जैन जस्यौ मैं मोटी भात ।
आप न पूजै तिनहिं पुजावै फींटे फंफ फलोदी आवै ॥७॥

दया दृढावै दुष्ट सरीर मरतौ देय न मोचन नीर ।
करै पंथी सतगुर कन जाय कहै पुनय कपिये मिलि खाय ॥८॥

ज्यूं बिन परीछै रहट सरूप पाणी परै सु भीतर कूप ।
एसा धर्म सु दीस जैन सुनहु सकल ये सांचे बैन ॥९॥

माफ न कपती जीव विचार रमैं देसान्तर कोस हजार ।
काचा पानी भेंटैं माहिं पसते पैठैं नदियों माहिं ॥१०॥
श्रवण मास सहर की भील मारे जीवहु मीसै मीच ।
उनके हेत उपाड़े हांडी मरहिं बाप जीव पूरी भाडी ॥११॥
पृथ्वी अप तेज नभ पवन तिनके जीव सु टाछै कवन ।
बाहर भीतर येही पांच तिनमैं सारे नाचहिं नांच ॥१२॥
मैसी मनसा मनसा भेस लागहिं पाप उपारहिं केस ।
मनमथ कर्म करैं घट माहिं धर्म दृष्टि देखें सो नाहिं ॥१३॥
सेखें पाप सु उतरैं नाहिं चोरी चूक जड़ी बिच माहिं ।
एकहि भव उतरैं सु दूरि चौबीसौं सुमिरे भग भूरि ॥१४॥
हाथ न कौड़ी हृदये कौड़ि कठे बनियों सौ मन जोड़ि ।
बिन विस्वासी फेर न सार भिक्षा मांगहिं द्वै द्वै बार ॥१५॥
असन बसन सब वाछे लहि फासू कहि कहि फींटि दहिं ।
फासू कहिये तेती बात बिष्टा अक्तर बाहर जात ॥१६॥
रिष मूरिख फासू करि लेहिं परके धणी पाप सब देहिं ।
यहु पाखंड कह्यो समझाय सा अब रासि कौन घर जाय ॥१७॥
अन्न पानी चाये सों मांग सोई सांझ सवारे मागैं ।
गीली भाजी दोष लगावैं पाकी पत्तर माहिं धरावैं ॥१८॥
निविध मारियन सिर सम हाथ फोडपा पीछ दोस न कोय ।
ऐसे कपट घणे घट माहिं संसारी सो समझैं नाहिं ॥१९॥
नौ बिधि बाडि सु बामा बोडे करी करी रज्या सब तोड़े ।
बाजे मूड़ नाम बिन नीव सिर ऊपर गूणी महि मीच ॥२०॥
मागि अनन्त मुग सब नाहिं मूये सौं दीजै ताहि माहिं ।
सरस बरत की फोडी पाग जन रज्जब जम जैम जंजाल ॥२१॥

बावनी भाग समाप्त ।

# कवित्त भाग

## गुरदेव का अंग

मैरामर मय बिमौ भष्ट कुल पारस परियहि ।
कल्पबिरछ बमराइ फूल फल अमर सु मरियहि ॥
सपत समुंदहु सुधा सोइ सलिता सु तलावहु ।
पीवन को सु पियूष कहीं मारग दुर आवहु ॥
मगर पुरी बैकुन्ठ बिधि च्यन्तामणि घर घर मिणे ।
रज्जब गुर पूजा सु जब नांवै सरभरि मा मिणे ॥१॥

गुर को दीजै कहा परम निधि जिनतें पाई ।
भाव भगति भल भीख गिरा गोरख ज्यूं गाई ॥
सांच सील संतोष दृष्टि बल धीरज दीन्हा ।
जीव जड़ भा जग मांहि काटि कम मुकता कीन्हा ॥
सकल अंग सांई सहित कौन मौज ऐसी करै ।
दादू दीनदयाल बिन रज्जब रीता को भरै ॥२॥

गुरु हंस मधुरिष पुनहु चम्बक ज्यूं सारा ।
तन मन कार्दहि सौंपि फिरबि कंचन ज्यूं पारा ॥
करहिं सुबाई करम ताहि न्यारे बिमि बोवहि ।
रज मागी पट प्रान रजक जिमि कसमल खोवहि ॥
गुरु बैद रोगहि हरै मरजीवै स्यावहि सुधन ।
जन रज्जब बलि बलि सदा पंगी ज्यू पसटहि मुतन ॥३॥

परम पाद गुरदेव परम सो प्राण प्रमान ।
परम पिता पर प्राण परम सौ मीत बखानें ॥
परम निधी दातार परम भंडार लुटावै ।
परम सुख दे सबनि परम सौं भेद बतावै ॥
परम सिद्धि सानिन सिता परम मुकत मुक्ती करै ।
परम सुरीती ठौर परि गुरु खेम रज्जब भरै ॥४॥

मणि पनिग पत्री बिहंग उड़हि गुटिका मुख धारं ।
प्रतिरहिं तुम्बी सु नांव पेलि पाषाण सु पारं ॥
सिष सु बिचार परि प्यंड भार अचरज हैरानं ।
मुहरै सु ताव महिं अगनि लाग दिव देत न पान ॥
गुरदेव साथ दीजै सु माष यहु मांगत का मुष्टिका ।
रज्जब बमति गुर ग्यान मति कर बावन जिमि सष्टिका ॥५॥

कूप छांह गज पंक मूस पारा पी पंगुल ।
साधन समीर मर मींद सधै सरवै महिं अंगुल ॥
अनंग हणौ मिरचम कपूर पम्बक बस माले ।
अहमम चक्काव्यूह महां बन वाइस चाले ॥
मुरै बैद पारा सुमन गरुड़ भुअंगम् कर गह्या ।
निष सु पाज तोरे भवंर रज्जब परि पंची रह्या ॥६॥

चंद कमोद अथाह असिहिं कद कंवल बुसावै ।
दीपक दिलि म पतंग आप अहि चंदन आवै ॥
सभितह समुंद निरास धूम आकास म आसा ।
घर उर ध्यान न धाम होहिं घर बड़ा तमासा ॥
मुकर मनोरथ कौन मुख पाठों पाठ न भावई ।
रज्जब गुर बेसास बिधि सिरज्या सिर सो आवई ॥७॥

जोगी जोग बखान सीस गनिका सु सुनावै ।
सूम बुझावै पुन्न कौन कै हिरदै आवै ॥
अंध अंध कर गहै नारि रोगी सु टटोरै ।
अतिर तिरावै अतिर बूड़ि सोइ औरहि बोरै ॥
सकल अंग भंग सु गुरू किये काज कहु कौन सिधि ।
आप मरहिं औरहि अमर रज्जब करै सु कौन बिधि ॥८॥

बस्ती पूजै आस सरणि जेहि थका न माव ।
सो राजा प्रतिपाल सकल परजा सु पावै ॥
बैद सु खोवै रोग राग जेहि दीपक जागै ।
सोई तीरवाज चोट निहसाण सु लागै ॥
खोजी खोज न चूकई सो सराफ परखै खरा ।
आतमराम मिलावई रज्जब सो गुर सिर धरा ॥९॥

## उपदेश का अंग

श्रवन परीक्षित रूप सबद सुखदेव सु गावै ।
पवन भजन प्रहलाद मनसा श्रीपदम सु धावै ॥
पूज भरट पृथु प्रेम अकर अंकूर सु वंदन ।
हत दास हणवंत प्राण पारथ सु प्रीति पण ॥
बलि ज्यू बलि बलिहारि करि रज्जब रामहि दीजिये ।
इहि प्रकार नौधा भगति आतम अंतरि कीजिये ॥१॥

आतम अगम अकास भवनि तेहि बसै बिसभर ।
मन पवन ससि सूर प्रीति परिदक्षिण ऊपर ॥
तारे दास तहां चमिहिं संत तहँ सेवग सारे ।
इंद्री आभे पंच गगन मैं गुपत सु मारे ॥
खिवै न मनसा बीज सलिल नहीं सरबैं मेस ।
धन रज्जब भुप संत देखि लै सूषिम देसं ॥२॥

मति मुराल मधुरिप बारि बनराइ सु ध्यानहिं ।
देखि कबूतर काम पंथि पत्री धरि मानहिं ॥
चर न जाइ पमिग स्वाति फल सीप सु मोड़ै ।
अजा न बैठे बूप रूख रैणी कर जोड़ै ॥
आदम सनास परसै मनिष स्थान बरत विन ठानिया ।
रज्जब ममिया देह धृग आतमराम न जानिया ॥३॥

देइ अमर फल बारि तर्बं पारस च्यंतामन ।
कामधेन सरकमप काटि आवै सु कहा बन ॥
गुरू सजीवनि छांड़ि पाइ पोरस सिर काटहिं ।
ग्यान रसायन त्यागि बीर बहुते बित छाटहिं ॥
चकक चककवें तें भया छाप सलेमा खोइये ।
मनिसा देही हरि विमुख रज्जब हानि सु रोइये ॥४॥

उड़ै कपूरहिं देखि सोनकर क्यूंही आवै ।
छितिया परै समुंद सोषि कैसी विधि पावै ॥
कदली एकहि बार फूल फल होइ सु होई ।
कागद ऊपरि अंक दूसरे लिखै न कोई ॥
सती सिंगार सु एकहीं योसा गये न पाइये ।
त्यों रज्जब मनिषा जनम हरि भजि ठौर सु लाइये ॥५॥

सीत कोटि संसार झूठ सुपिना रिष रागी ।
मृग जल जगत सरूप माया मरकट की आगी ॥
सकित सलिल के झाग अज कुच कंठ निकाजे ।
कहा सु विगत उजास वाल वालू गृह साजे ॥
अति अयाम कपि कूद मन कृत्रिम काष्ठ सु पूतली ।
रज्जब रैन भुजंग रज अहि अपार आतम छली ॥६॥

भय अंधूप औतार एक सुर ईश्री हारै ।
पुनि गोते बिन ज्ञान जीव जम जोनि सु डारै ॥
करमि भिरमि कुल गात लात सबकी सिर लागहिं ।
बिपति बिहंग बिहार देखि मनिषा उड़ि भागहिं ॥
पसू खानि परबस सदा बिबिधि बिपत्ति कासौं कहै ।
रज्जब जोगिम जाहि जगि जे मनिष देह उनमन रहै ॥७॥

## मिलाप महातम का अंग

आज त्रिगम धनि उदित आज दरसे जगदीसं ।
आज दलिद्र दुखि दूरि आज दीरघ दत दीसं ॥
आज भाव करि भगति आज पुनि पेम प्रकासं ।
आज अगम सब सुगम आज रस राम बिलासं ॥
आज काज सारे सरहिं आतम आंग्यूं पेखिया ।
जन रज्जब मानिन जनम त्रग साधु सौं देखिया ॥१॥

आज अगम आनंद आज उर पूरी आसं ।
आज सकल संताप आज बिधि ब्रह्म सुबासं ॥
आज सु परम पुनीत आज आतम मधि एकं ।
आज गुपत बित प्रगटि आज अंकूर अनेकं ॥
आज नीच ऊंच निरखि भाग जनम फल लेखिया ।
रे रज्जब साधू दरस दुखमंजन सुख देखिया ॥२॥

## साध का अंग

पारस पलटै लोह बनी संगति ज्यूं बावनि ।
बारि पाल्ली बिबिधि पैठि गंगा मधि पावनि ॥
कंचक हलबल लोह भाखि आवित संगि खेलहिं ।
रोगी होहिं निरोग ओषधी मुख मधि मेलहिं ॥
साधू संग महाजन भनि जथा स्वाति सीपहिं परी ।
रज्जब छांह रमाइ सिर त्यूं सतसंगति की घड़ी ॥१॥

## साध परीक्षा का अंग

अगिनिहि चुगै चकोर पेखि बड़वानल पानी ।
समुंद जीव जग आगि बात नाहीं यहु छानी ॥
पारस तिरई नीर हेरि हीरा नहिं बूडै ।
बिन पंखिन हैरान पंख ज्यूं गुटिका ऊडै ॥
घटा सजीवनि ज्यूं उलटि उदित उम्हालै छीमिया ।
जन रज्जब यहु साध गति उलटा चलै सु औलिया ॥१॥

## माया मधि मुक्ति का अंग

कंवलि सीप बसि जुदे बसहिं मधि ज्यूं मुख माहीं ।
बड़वानल पुनि बीजि बारि मधि भीजहिं नाहीं ॥
दरपण मैं प्रतिबिम्ब सुभि सबही घटि न्यारी ।
लोई रंगे न सूत देखि अचरज है भारी ॥
अठार भार अगनी रहित सूर ससिल ले दे जुदा ।
यूं रज्जब साधू सुकृति मिले अमिल माया मुदा ॥१॥

## निरपषि मधि का अंग

काफिर ईमा नाहिं जिमी आहिर अग आनै ।
चलहू दीसै धुवा पेखि काठे प्रषि पानै ॥
ममनि उभै गुण रहित करहु कुछ ग्यान विचारा ।
मास्त मद्धि सरीर निरखि निरपषि निज न्यारा ॥
रज्जब रवाहिं आकास दस सौंहींव इलम पढ़िये वरक ।
इन पंचों सौ प्याव यहु तो क्यू कहिये हींदू तुरक ॥१॥

फक्कर स्वात सुवाइ तुरक हींदू न कहावैं ।
पारस तांबा मोह नांव सोना मिलि पावैं ॥
निरपषि मोती होइ पेखि पंषि सीपहि न्यारा ।
पषि उपजै मुक्ति सर्प जहर जोड़े सु मझारा ॥
कलम खंदु कुस दोइ मिल अलिफ मतीत अलाहिदा ।
बीज वासि रज्जब सु रबि ह्वै अंकूर फल विसि विदा ॥२॥

## अनेक समिता का अंग

अठार भार इक अगनि एक धूवां इक धरनी ।
एक सु मधुपे एक बनी तंबा बहु बरनी ॥
एक बहुमी बहु बीज अनंत आभौ एक पानी ।
कुसि भूषन गरि कमक पात्र पहुमी महिं खानी ॥
चतुर बरन घट दरसि मधि एक रूप एकहि मिले ।
रज्जब यह समिता सुरति समझे साध सु मिलि चले ॥१॥

## मजन प्रताप का अंग

सूर तेज तम तार मोर चदन सु भुयंगा ।
सुमत सुपक की तरास बिरख सब तजै बिहंगा ॥
सीत कोट जिमि माम आनि जागे ज्यूं सुपिना ।
गुरु द्वारे विप दूरि ओपधी रोग सु अपना ॥
स्यंघ हेरि सुरही गई ओसे आवित देखि भ्कारि ।
रज्जब अघ ऐसे रमहिं हिरदै आवत नांव हरि ॥१॥

मुक्ति ब्रह्मा कुल किमस मींकको मांझव आया ।
बेद व्यास सु मच्छिद उमै मंछी ध्रमि जाया ॥
सारंगी के पेटि साम सींगीरिषि होई ।
हनू अंजनी मधि कुल सो कारन नहिं कोई ॥
बालमीकि धमई जनमि गरुड़ पती पंषी कुलै ।
रज्जब जाणी जाति सब ब्रह्म भजन सारे भलै ॥२॥

रका नाम कबीर सेन सधना कुल हीना ।
पदम परस रैदास धना नापा सुक मीना ॥
षांगू दीप सु जैन कीता सु कमेरी ।
विदुर बावरा बंस जाति सबही जगि हेरी ॥
सुकल हंस से गोत मत नीच न कोइ न लै करै ।
रज्जब भजन प्रताप मैं सकल बंस सिर पर धरै ॥३॥

खार समुंद कुल सुधा सहुत अजरी मधि आया ।
अहि मुक्ति मणि उतपत्ति पाठ कहि ठाहर आया ॥
मंजारी कुल भेव पदमणी नीच धराणै ।
सूर वीर कोइ जाति अपछरा घर बूरे आणै ॥
सीसै सुत क्या जण्या कागद निपजै टाट के ।
रज्जब हरि भजि गोप जग पलटै अक सिलाट के ॥४॥

पूछा पाव न जाब समुझि सो सिला तिराई ।
धारदेव नहिं लवै हरी सूली झोड़ आई ॥
बेत हेत नहिं कोइ धनै सय कोई मानै ।
राम नाम निज ठौर करै मूरति पै पानी ॥
रज्जब निरतम धेनु जिये धम पग लगै न गाइ के ।
छाप सु छीपे की परी हिरदै राना राइ के ॥५॥

## पीव पिछाण का अंग

मादिनरायण अमर भेव मागोत सु खोजहिं ।
सिधिधि भांति सप धारि डारि अगि नाहिन होमहिं ॥
द्वै द्वै गुण सों रहित भजे सिध साधिक मार्गहिं ।
पूरे पुरष पिछाणि सु रत मत तासों राखहिं ॥
सांचे पावहिं सांच नित रज्जब रीत विचारिये ।
परम पंथि प्राणी चलहु रहते की रह धारिये ॥१॥

## सनेह का अंग

नेत्र कमल ससि सूर पूरि हाजिर हित माहीं ।
पाप पुन्नि की करहि चोख निस अंतर नाहीं ॥
कहीं सूर कहि सती बरण बिच बिघन बिसाने ।
ममो ममो निज नेह जनम जहि मीच न आने ॥
साध सिद्ध सोई सहित हित चित मैं भावे करे ।
मुये जिवावे संभई सो रज्जब वांये करे ॥१॥

## पतिव्रत का अंग

अस्थि अनल आकास अवनि ऊपर मठ मांडहिं ।
ज्यू जोगी मृग सींग अनेक विघ्र न छांडहिं ॥
बाइस बास न तजहिं स्याम हित सदन गोसाईं ।
गही सु त्यागहि नाहि बीर बंधहि जे बाई ॥
हारिल ज्यू लकरी लगनि ससि चकोर आस्यू गहै ।
रज्जब गुर गोबिन्द सों सिष एसै पतिव्रत रहै ॥१॥

मणि भुजग जल मीन सेम सारस पतिबरता ।
सारंग दीप सु स्वाति नेम निस दिन मनि धरता ॥
नर माया मग मेह किरणि सूरज के संगा ।
सती कंत कै साथि मानि तन करै सु भंगा ॥
तरवर छाया ससि कमल बरत सु ऐसा जाणिये ।
गुर गोविन्द सों इहि सुमति रज्जब पतिव्रत ठाणिये ॥२॥

आदित संगि उजास सुधा ससिहर अनुरागै ।
वाई बादर बूंद बीजुली सून्य सु लागै ॥
ससितहु समंद सनेह बनी बसुधा के संगा ।
खग मात्रा की भगति भवन आधिर के अंगा ॥
सबद उबै संजोग मधि धनु अरु घटा सु देखिये ।
जन रज्जब यूं राम सौं सोई पतिव्रत लेखिये ॥१॥

## सरबगी पतिव्रत का अंग

सूर सेस दिसि एक दृष्टि सबही दिसि देख ।
काइम कथा अनेक सगमि चूकै नहिं लेखै ॥
चक्र धास चौगिरद बाइ सूधा नीसानै ।
विगति बघूलै फेर गौन गगनहिं दिसि ठाम ॥
अंकुर बीज बूटी बिधा पत्र रोम रमि ठौर लिये ।
जन रज्जब यू राम सौं सरबगी पतिव्रत किये ॥१॥

## आज्ञाकारी का अग

नित्य नेम पतिवरत कृत्त उत्तिम तिमि कीनै ।
हित सनेह रस रंग इष्ट आज्ञा पग दीनै ॥
सबद मैड मरजादि बंदगी सेव सुधारी ।
बुधि बमेक मति सांच बहुत की बात बिचारी ॥
सेवै चूक न चोट कोइ धरम धारि सब भले ।
जन रज्जब तिनि सकल किय गुर आयस सिर धरि चले ॥१॥

## आज्ञाभगी का अग

ईसर आज्ञा भंगि रासि रतनी विष पाया ।
ज्यूं ही रावन सीत सीक लोपै सु मराया ॥
हजरति हुक्म सु हति करी काकै मैं कैसी ।
हठ मूसे का हेरि सहित कोहतूर सु तैसी ॥
पाषाण ज्यौंह गोदावरी मजाजीम महि रानिया ।
चक चकवै चाट तहि रज्जब सबद न मानिया ॥१॥

## सारग्राही का अंग

हंस गहै निज पीर वनी मधुरिप मधु काढ़ै ।
अलि ज्यों परिमल लीन पुहुप पखुरी महिं डाढ़ ॥
धंवक धुनि ले सार पुन पारा ज्यों कंचन ।
त्यों ततवेता तत लेहि प्यंड पर हरि गुन पंचन ॥
छाज नाज कन काढ़ि ले गऊ दूध ज्यों अच्छ मुख ।
त्यों रज्जब गुन कौं गहत आपा पर उपजै सु सुख ॥१॥

## असारग्राही का अंग

चलनी कोल्हू ईख कणहिं तजि कूकस राखहिं ।
मीन मैल मुख गहैं पाइ परमल को नाखहिं ॥
घोवण धावण लेहि जैन तजि निरमल नीरा ।
धिरचै बावन बास निरखि सो नरक सु कीरा ॥
कीचड़ त्यागि सु दूध घन मींडक माता की चही ।
रज्जब विधि बूटी बिषा यू औगुण लेगी वही ॥१॥

## पारिख का अंग

गहण वेद बैंदग रोग नीरस सिर हारें ।
सूवठ धममर धास खबरि नहिं निसि लनि वारें ॥
स्वाम बरत अब कूप पनिम परमल गति जानें ।
निस वाइस बिन स्याम बोलि सोइ बिबन बखानें ॥
सहदेव न समझी स्वाम गमि सुत संकट माता पगहु ।
रज्जब सींगें न सींग मग ए आगम जानें पगहु ॥१॥

रैन घोस नहिं दुरहिं दुरहिं नहिं चंद प्रकासा ।
दामिनि दमकि न दुरहि गोपि नहिं उर की आसा ॥
छिप न स्वै स्वेवास गहन गति सब कोइ जानें ।
इंद्र गाज वइ नासि बोलि छूटे नहिं छानें ॥
जग जानें जामण मरण उगै बीज सु बोइये ।
त्यू रज्जब मन माहिली कहो कौन बिधि गोइये ॥२॥

ओछल दीप न दुरै पुन पानन के खाये ।
घास भुसेरी आगि छिपै नहिं सौंधा लाये ॥
जल सर सीसी माहिं पानि पातर सु लखावै ।
अमल न छाना होइ निरखि जब नख सख आवै ॥
जन्त फटकरी उघड़ै अम रज्जब जल मह जथा ।
तैसी विधि मन माहिमी बाहरि दीसै है तथा ॥३॥

घर उर मैं रिधि रहत प्रगट मस्तक मधि दीपै ।
साँच न दुरई दिव आप अगनी नहिं छीपै ॥
होय ऊन भरि पूत जथा बीतै सु कुवारी ।
कहु क्यूं गोये जाहिं महा मंगल मन भारी ॥
सिध सकट आमे खड़ी सकति सिद्ध सो आठ की ।
रज्जब छिपै न माहिमी बसै रसना पाठ की ॥४॥

## सबद का अंग

सबद होइ सब सिष्टि सबद सबही घट माहीं ।
सबद रूप गुरदेव सुरति सिष बाहरि नाहीं ॥
सबदै बेद कुरान सबद सब सबद पढ़ावै ।
त्यो सबदी का भेष सबद सबदहु सु बतावै ॥
प्रगट सबद संजोग लग पुनि बिजोगि गुपता रहै ।
रज्जब कहिये कौन सों सबद भेद बिरला लहै ॥१॥

सबदौं मैं निधि सकल मुक्र गोव्यंद बतावहिं ।
सब संसौ सब कहा सबद सोधे सब पावहिं ॥
उलझे सुलझे सबद सबद सब संसा भागै ।
सबदहिं माया तजहिं सबद सुणि ब्रह्म सु लागै ॥
आदि अंति मधि मोक्ष मैं सब कारिज सबदौं सरे ।
रज्जब साधू सबद धनि धनि सुरता श्रवनौ धरे ॥२॥

पूनी बिना न सूत तार मकरी सग होई ।
बादल बिना न वारि बूंद बरसै नहिं कोई ॥
सोवत सुपिना होई जगे बिनसै सोइ बापर ।
बरी बरी घटि माइ मिरहि निकसै माँहि आपर ॥
तथा सबद संजोग सग उदे असत बाइक कही ।
रज्जब फेर न सार यहु सत्य सत्य मानहु कही ॥३॥

गात बात निज ग्रान सीस तहिं समझि सुजाना ।
नैना निरति सरूप सुरति श्रवन स्वाना ॥
नासिक पवन मुख मंत्त कंठ भाषा सु छतीसै ।
कर धमेक उर रुचि जीव जगन्नीसर बीसै ॥
रज्जब पग पावन विसहिं रसन रसातल डोलई ।
सूता अचेत आसन सु भूप चल्या सु उठि जब बोलई ॥४॥

सबद मिलै संसार सबद सुणि पख समावै ।
सबद मरै सब स्वांग सबद बठ सठि का भावै ॥
सबद करै षट करम सबद सब बेद अराधै ।
सबद संगि कृमि कष्ट सबद साधन सो साधै ॥
सबद माहिं सारे मरम सबद संगि सकट परै ।
जन रज्जब निज सबद का साध सोध बिरला करै ॥५॥

## भैमीत भयानक का अंग

करै बरत परि बाट निरख नटनी भय मेला ।
बाइस बैठि जहाज रह्या उड़िबे का खेला ॥
उभै स्यंघ विधि भख्या अहार सु पोखि न पावहिं ।
नमो नमो डर रूप कीट भ्रंगी ह्वै भावहिं ॥
चोर जार भैराव नित थिर न उकासहिं सो कही ।
रज्जब साँई सोंच मधि गुण इंद्री ऐसे रही ॥१॥

## मधुता का अंग

मधु अंमुरी निज छाप पेलि पंषनि मैं पावहिं ।
त्योंही ससिहर सेष वेस सबही सिर नावहिं ॥
अरभक सीज गोद मात पित सुखी सु रावहिं ।
कली सु केरी संगि फूल फल तरवर मावहिं ॥
मधु मूरति नित कंट सिरि दीरघ सरूप वासहु जुदा ।
यावन तरु मेवा मधुर जन रज्जब पाया मुदा ॥१॥

## कसौटी का अंग

मैंहदी चंदन चाहि समझि सुरमा कषि केसरि ।
कंचन पमी कपास कसै काष्ट कंघी सिरि ॥
मसि कागद तिल ईख छीर पारै पच पेलं ।
असु कसि ऊखल केस काच कसि चसमा देखं ॥
लोह तार अप्तकण कमिक सकल कसौटी करि भलै ।
यू रज्जब रामहिं मिले जो गुरमुख कसणी चलै ॥१॥

कर कुम्भार कस खाइ पहुम पातर ह्वै आई ।
मेलमि सीस कटाइ कान कर ठौर सु पाई ॥
बलरि चढ़े सु तार निकसि अंतर मैं सारे ।
जिभ्या वाज कुरंग पाठ पीड़ा सहि प्यारे ॥
सास कठि दीर्घ वर्षहिं सतजुग अगमि सु सोलहा ।
रज्जब मिपजहिं सिष्य गुर कठिम कसौटी ह्वै अहा ॥२॥

## मिरतग का अंग

मारचा पारा सार रोग रोगी का टारै ।
बैठे मृतग जहाज अतिर आतम ह्वै पारैं ॥
जीवत बूडहि जलहिं मुवा तिरि ऊपरि आवै ।
मृतग महातम देखि कम कपड़े पिड़ पावै ॥
मृगग न खेलैं मीच बिन आदि सबद एसैं कहैं ।
रज्जब रमिये रैन जिम सांई सूरज तौ लहैं ॥१॥

## बेसास का अंग

अंडे कूंजी मनस पोष कैसी बिधि पावहि ।
असम कीट अहि करंड असन केहि ठाहर आवहि ॥
पहले मनहु सु पीर पुनिहू पीछे ह्वै माता ।
अजगर ठौर अहार देहि ऐसें प्रतिपाला ॥
बर अम्बर पहरावहीं भार अठार आभे अनत ।
मूरसि मुरवे पट सहै रज्जब गहि बेसास मत ॥१॥

## तृष्णा का अंग

तृष्णा नग नम भूख अवधि मुद्रा नहिं मेरी ।
ज्वालामुखी सु आगि हुटत नहिं असन सु हेरी ॥
सलितहु समंदि समाव सलिल संबई धसि जाहीं ।
बड़वानल रुचि नीर अरुचि कहु दीसे माहीं ॥
तिण तृष्णा सुपिनै बढ़ी सो सूती नहिं भागई ।
रज्जब है संतोष सुख हरि सुमिरम जिव जागई ॥१॥

पेट काज तजि लाज हेरि हुनर सब साचे ।
पट बरसन पुनि पाठ निरति नर राम निवाजे ॥
नाज काम भूपति नरहु नर सीस नवावहिं ।
भूख भोज पतिसाह लेण धरणी को धावहिं ॥
सुत पुत्री सिर देहि सब अन्न काज अनि अमि करे ।
रज्जब ऊंडा उन्र मति करणहार बिन को भरे ॥२॥

## काम का अंग

काम राम हलधस्त काम रावण घर खोये ।
अनम सु ईसर ठ्ये बीज ब्रह्मा जु बिगोये ॥
काम कचरि कीचक किये इंद्र गौतम घरि आये ।
मैन मछिन्दरि मोहि साठि सुत नारद जाये ॥
भरथर भरम्या बूब मधि कहु सुरति कैसे चली ।
रज्जब मारे धोम रिव अति गति मदन महा बली ॥१॥

## रहित का अंग

रहित गुरू गोरख अनंग जिमि अमर जु मारया ।
लपमण लागं सुवृत रहित बसि रावण मारया ॥
सुकजती आकास असुर सारे सिर राखें ।
पति रघ गरुड़ वसेसि भेद धारयू मुख माखें ॥
कम स्याम मारे मदन बैर बहोड़े बाप का ।
रहति हेत हणवंत हव रज्जब मोल न माप का ॥१॥

ईख मिठाई रहित रहित पानहु मधि लाभी ।
जत मत नैनहु जोत जैन इंद्री यहि पासी ॥
नग पाणी मिर मोल संख मौ जाइ सुगधी ।
वावन मेमक यास अवस जिनि इंद्री मन्थी ॥
रज्जब रीझि सु रहित पर मोर पवि मस्तग चढ़े ।
निरखि मेन बिन धेन नाव कन्ह किनही कढ़े ॥२॥

## स्वांग साघ मिरने का अंग

मनिप भये पापान सिद्धि गोरख सो पाई ।
भई भरथरी भाइ हरी सूली हूं आई ॥
सहा जलंधी जोग पृथ्मि माहैं प्रतिपालै ।
अजैपाल के चक्र कौन करनी अग चालै ॥
सहे उसटे धूधमी चौरगी कारज रसहि ।
जन रज्जब बहु बस्त बस दरस दसा बहुतै करहि ॥१॥

अम जोखम् नहि सांच पहम प्रहलाद न पीरा ।
गिरवर गिरत न मीच विविध सकट नहिं नीरा ॥
गरड़ द्वार मुनि नाव जहर बिष जोर न हुवा ।
कंचन बिम प्रहलाद अगमि धूंधवि तन भूवा ॥
पड़ग खंम माहीं निकसि बैरी बाप सु मारिये ।
रज्जब केहि दरसम दसा बाभिक समु सु उबारिये ॥२॥

मूरति दूध पिवाइ गाइ जन माम जिवाई।
देवल फेरि सुधारि पुनहु परि छान छवाई॥
अंतरिजामी सत्या स्वान मधि सांई जान्या।
गुगुल रूप ह्वै मिल्या सोइ धीपै पहिचान्या॥
अतुल रासि रकार निधि सनिसा सेज मंगाइये।
रज्जब कहि दरसन दसा ग्यारसि बिप्र जिवाइये॥३॥

मासद द्वारि कबीर आवतें जमि सव जामी।
तारकद रैदास जनेऊ जगति न छानी॥
पीछै बंदवा कुसी भवन कांडे पति राखी।
बिन बीजहि ह्वै खेत धना के साख सु साखी॥
नाई उबरघा मांब बसि सत्य न दिव दही घरहिं।
रज्जब सीझै साच मैं स्वांग झूठ तव अब करहिं॥४॥

बिलंद खान की बेर सुनी दादू ह्वै देखे।
साह पुरे कै समय उभै ठाहर पुनि पेखे॥
चीरी पलटे भक जहाज सु जलनिध काढे।
सामरि दादू हुस्ति रहे मैमत सु ठाढ॥
कूप स्याह कावी मुवा अद उर माइल मर जरे।
रज्जब साचे साघ के बिन वानै कारिज सरे॥५॥

## स्वांग साच का अंग

ब्योम बाइ ससि सूर सलिल धरणी मत लीया।
षट दरसन ये नाहि इन्हों को वरन न कीया॥
सेष भेष कहि कौन कौन सुखदेव सु वाना।
दत्त वेत महिं दरस गुरू चौबीस न छाना॥
सनक सुरन गुर ब्रहस्पति सुक्र जती सावै सदा।
रज्जब मर मग छाप बिन पेखि प्रान पाया मुदा॥१॥

चंदनि सर्प सु आहिं पंषि पत्री परि आवहिं ।
मधुरिप मधु ले सोषि हंस पय पानी छानहिं ॥
ज्यू जोगिग जिव पैठि गहन गहि ग्राह जिमाई ।
जामि जोहरी अधिक रतनि की पारिख पाई ॥
नट आसण देखे अमर सिसु पुरही ज्यू थण लिया ।
रज्जब सांचे साध यूं कहु किनि किनि थाना किया ॥२॥

बिम समाहु भरि सूल पहरि मगतरि पुनि अंगा ।
सजि सिंगार बर सती करै नौसत सन मगा ॥
मांडे मैंगल मल्ल सोइ सावहु बस होई ।
खरग सयामे वाहि मकस का फेर न कोई ॥
स्तुति सहति कंठ ले सु सुत पूत पियारे बाप को ।
रज्जब सोना साध सुध छोड़े नहीं सु छाप को ॥३॥

सादी सहित स्यंगार नारि नर मिलि फल पावहिं ।
नातहि रंग न रंग जंत्र षटितान न आवहिं ॥
होइ उन्त भरि पूत बहु दुख संधि सु ग्रंथी ।
माला बंदर बासि वारि बधी अणबंधी ॥
घटा सेत बहु बरन बिन्य बरषित बादल सब भले ।
रज्जब सीझें सांच मैं बिन दरसन दरसनि चले ॥४॥

गनिका सजहिं स्यंगार भेष बहु करिहि भवइये ।
चित्रे हस्ती बैल नाहि साधू पद पइये ॥
बामै रासवदेव पीर कहिये सीलहरिया ।
बहु कुम्हार घरि वही बाहि सु काष्ट बत करिया ॥
मुहर छाप पीतस धरी कसी मोह पर कीजिये ।
रज्जब धारे रूप बहु तिन समान नहि लीजिये ॥५॥

येक दिगंबर फिरहिं येक पहरैं सु बबंबर ।
येकहु पट पटकूल येक दीसैं सेतंबर ॥
येक सु भगवा करहिं एक पहरैं पट नीला ।
येक कपियों यूं माहिं येक मेसो यूं कीसा ॥
येक कंथा मुंडित जटा यको धुसी सुखावहीं ।
रज्जब कीये बहु भरमि आतम राम न पावहीं ॥६॥

## अज्ञान कसौटी का अंग

येक सु मूर्यौं मरहिं येक लाइकै हूं मारी ।
येक सु बकरी भरहिं येक हूं पवन अहारी ॥
येक सु नीली चरहिं येक कंदमूल सु खाहीं ।
येक सु पीवहिं दूध येक मन मेवहिं माहीं ॥
येक रूखा येक तेल लेहिं सुमिरन सुरति न ठाहरे ।
मनोबिरति जम ठगन कौं रज्जब यहु पाखंड धरे ॥१॥

पंच अगिन तन सहै सीत बरिषा जल माहीं ।
ऊभा द्वादस बरष बसेख सु बैठे नाहीं ॥
ऊर्ध्व मोटैं भोम नगिन हूं देह गरावहिं ।
अठ सठ तीरथ करैं बेद बहुणा रथ धावहिं ॥
अज्ञान कष्ट आतम परी गुफा सु बन कौं ध्याइये ।
जन रज्जब निज नांव बिन निरालम्ब नहिं पाइये ॥२॥

हेरि हिवालै गलहिं होहि पुनि झम्पा पाती ।
संकर सेव सु करैं सीस काटैं निज काती ॥
कासी करवत लेहिं कठिन कूंडी सु करावैं ।
काष्ठ मलहिं भैभीत बेलि बेही सु धरावैं ॥
सकल कष्ट हद मीच लग आतम सो सब आदरै ।
रज्जब राम न पाइये बिन आचिर एकै ररैं ॥३॥

## अज्ञान दान का अंग

कनक तुला चढ़ि दानि दानि पुनि गुपता दीजै ।
है गै पट परवाहि बिबिध बेदो गति कीजै ॥
कोटि गऊ कुरुखेत देहि दिनकर ग्रह बेलैं ।
अठ सठि तीरथ न्हाइ दान जग करै असेसैं ॥
भोजन भोमि भंडार दे सुत नारी उदकै धरम ।
सुमिरण बिन सीझै न जिव जन रज्जब पाया मरम ॥१॥

देइ रसाइन दान दान पारस पुनि कीजै ।
पोरस करै प्रवाह वस्त गिर कंचन दीजै ॥
सपत धात की खान देइ बैरागर संगा ।
तोयम निधि सब त्याग जहां निपजै बहु मंगा ॥
अवनि उदिक औतार विधि अब बिन दीनी क्या रही ।
पै रज्जब हरि नांव बिन जीव न सीझै सो सही ॥२॥

करामाति दे दासि सिध धरि सिद्ध सु दीजै ।
नौ निधि का परवाह कहीं ठाहर यहु कीजै ॥
कामधेनु का पुत्रि दत्त बीरछ करि देसै ।
च्यन्तामणि मन मंस उदिक कीजहि सु असेसै ॥
कलपबिरिछ संकल्प करि कंवला सहित सु दीजिये ।
रज्जब नांव नराय बिन दान असंखि न सीजिये ॥३॥

## सोच धाणक का अंग

सेहि अमावस दान गहण पावर को मांगहि ।
तजहि न रति मर उत मृतग मुक्ति मिसरि न खांगहि ॥
मूतग पातिग महहि पेखि प्रोजन सु करावै ।
कुम बेइ मिलि भगम देइ दिन जीव मरावै ॥
करम असोच उचिष्ट लेइ संक्या सोच न बामणहु ।
रज्जब माथे पाप सिर तोल माप माहिन मणहु ॥१॥

पलक सु काइहि घड़ी घड़ी काढहि पहरौं तहि ।
पहर दूरि दिन करहि ईस टारैं मासौं महि ॥
बारा पूरयूं बरस करहि सो तेरह मासा ।
द्वादस मूरिज चंद कहैं यहु बड़ा तमासा ॥
पलक घड़ी मद पहर दिन मास बरग सरकैं बबै ।
रज्जब बिप्र सु बाम बुधि फिरत फिरत देखें सबै ॥२॥

परसराम भरमाइ महीसुर भार सु लीन्ही ।
पुनि दूजै अवतारि देखि उर मात सु दीन्ही ॥
बिप्र रूप वप धारि उठे बलि सौं नहिं थोरे ।
देखि करे द्विज रूप करम के दंत सु तोरे ॥
प्रहलाद प्यंड पाछे सुपरि पूत बाप बिच क्या बरी ।
हरिचंद हेरि रज्जब रहसि ब्रह्म बंस सगति करी ॥३॥

## कुसंगति का अंग

राहु केत ससि सूर नूर की ठौर उठाई ।
रावन संगि समन्द सीस परि पाज बंधाई ॥
बंस बनी पापिष्ट नाव पर करगस तीरं ।
मनोदिक मद मिलत ख्वार मद भखन नीरं ॥
नीरज गये समन्द मिलि दूध देखि कांजी परे ।
रज्जब मज्जबता गई एक कुसंगति के करे ॥१॥

## सूठणि का अंग

मनसात मैस मंडाण मैस मस मूल सु मूलं ।
अस चल मस हूं फिरपि मर्माह् चित चाल सु धूलं ॥
मम मिष्टान्न सु मेस मर्साह् सांभरि सुत सीरं ।
मस मुखि मेहि अफीम मसौ मम भुगतै बीरं ॥
भूत हींग कहि कौन मद सूप सु चलनी सोधिये ।
रज्जब लीजै मेद मधु क्या अचार परमोधिये ॥१॥

## अपसलक्षिन अपराध का अंग

सारंग सुर सु बिनास मीन रसना रस बासा ।
पावक पेखि पतंग भंवर नासक विधि वासा ॥
पटक्ष्य बारुण बाघ मृगद मति मरकट सूवा ।
मूस पुरावत वाति पवंग पावक परि मूवा ॥
स्वान मोच दरपनि महल मकरी मूवि सु द्वार की ।
रज्जब मरहिं सिधौर बग पाया नही विचार की ॥१॥

## साधि रोग का अंग

धाम्नि न होई भास कहा ऊसर कै वाहै ।
मन कन पड़ै न हाथ दंति बूकस कै गाहै ॥
चंदन सिरै न बंस अध अंजन क्या होई ।
बहरे आगे धात बहुत करि देखो कोई ॥
असाधि रोग औषधि नहीं गांझा शानहि क्या करै ।
स्याम ऊन संग न रगहि रज्जब गुरू वपू पचि मरै ॥१॥

सांभरि सर तिर हेम वाग सरवर नहिं जामहि ।
मीन मांग खग पंच व्याल पसि पोस न तामहि ॥
कष्टिद्रय गडा वान छिदै नहि मक्र सु पीका ।
मम हंस हक मारि वारि दरमै नहिं छीडा ॥
हणवस होत हारी वियद्ध गोनी गुमनि सु गिरि पर ।
असाधि रोग औषधि बिना रज्जब भर सु क्या करै ॥२॥

## क्रोध का अंग

तामसि माला हाथ मथन उर अहरि सु आगी ।
राजस रस मन रोम बिना पायां रह्यु मागी ॥
सर्प जीव निम ठौर पसार अहार अगार ।
मीन गुनामा हाहि प्राण पाहण अहंकारै ॥
पर कर बन बन परि माप जारि जार गुनर ।
जन रज्जब मुनि जुगि दुखी प्राय गु पैठै क्रोध घर ॥१॥

राहु का मनि गुर गहन गति दाव बिचारै ।
रामानुज पतिमीर पर बिगि धान न मारै ॥
बनासुर अट बीज पर बामन नम धरि हरो ।
गोपी गिन प्रणाम करी कारन मैं फेरो ॥
देखो हृदयति दस निगि पाच्छ बरगा लीजिय ।
जन रज्जब मुनि गानि पर बैर न काह कीजिय ॥२॥

## अरमै का अंग

सलिता समंदि समाव मारि बड़वानल जारै ।
चौरासी के परस भमस धरनी सिर धारै ॥
भात गास सहि बिष्नु बिमा सलफहि सु बिड़ाई ।
गत उर में अहंकार जासु के हिरदै आई ॥
साध श्रवन सति सुन्नि समि कुबचन छल मस ना चलै ।
क्रोध काष्ठ नासति जहां जन रज्जब कहु क्या जलै ॥१॥

## परम अरणा बुष्ट दातार का अंग

सैल सीप पोरिस जु बैरि यों बित्त सु दीया ।
ईसर मेंहदी पान कष्ट रस रंग सु कीया ॥
बैरागर की खान त्रास तरवर फरदाता ।
रसना दंत न बैर पीर सरवै सुत माता ॥
बावन कुठार पारस घनहिं निधि दधि महणा रम्म करि ।
रज्जब औषधि मत्र ज्यूं करहिं आप उपगार मरि ॥१॥

## मूल बिस्तार का अंग

कुलाल पात्र तरु पत्र चलहिं जमघर सब होई ।
बावन निपजहिं बूंद बास बिमरी नहीं गोई ॥
चित्र चितेरे माहिं खानि निपजहिं सब नाने ।
ज्यूं साध सबै हरि जीव होहिं सो माहिन छाने ॥
उजास अमी नित सूर ससि किये न करतहु को करै ।
मब यापरि उमटी कहै जन रज्जब तासौं डरै ॥१॥

इति कबित्त भाग

रज्जब बानी सम्पूर्ण समाप्त ।

# वाणी-कोश

## अस्तुति का अंग

| | |
|---|---|
| निरंजनम् | माया रहित अलिप्त |
| पारंगत | पहुँचे हुए (विद्वान्) |
| सिजदा | दंडवत् प्रणाम |
| नौत | प्रणाम करता हूं |
| बिचि | मध्य बीच का |
| मुदित | प्रसन्न होकर |

## भेंट का अंग

| | |
|---|---|
| सांझि | शाम |
| चाति | दान |
| स्वाम्भु | डोमी (पार्वती) |
| परिमल | सुगन्धि |
| सहज शून्य | ब्रह्म |

## गुरुदेव का अंग

| | |
|---|---|
| देखतौ | देखते हुए |
| भाव | भक्ति |
| बेर न सार | कोई सन्देह नहीं |
| अस्थान | अवस्था स्वरूप |
| ब्योरन | ब्रह्म व माया का सम्पूर्ण विवेचन |
| धरे अम्बर | पृथ्वी और आकाश तथा सगुण और निर्गुण |
| हाक | उपदेश |
| मुहड़े | सामने |
| तलब | चाह |
| ततस्साह | शान्ति |
| तालिबां | आकांक्षी |
| दरगाह | आश्रम पूजा स्थल |
| रहमत | विभूति सिद्धि |
| दूतर | दुस्तर |
| मांझी | भीतर |
| सिदक | रोजा अधिकारी |
| रमिता | रमण करने वाला |
| मुरीद | आकांक्षी शिष्य |
| जिस्मजाना | जिस्म और मकान |
| सुरता | ज्ञान वृत्ति |
| तिहाँ | वहाँ |
| उत्पति | उत्पत्ति |
| अविगति | मन वाणी से अलग अगम्यकर |
| कोका | कभी |
| मावे | बावन |
| समिलाण | मिला हुआ सना हुआ |
| जाली | जोसना |
| पाली | प्रज्वल |
| कूंज | पक्षी |

संसार रूपी हिमालय पर परमात्मा रूपी कूंज जीवात्मा रूप अण्डा रखता है और यह मायिक सुखों की आसक्ति रूप बरफ से ढक जाता है फिर विरह रूपी वैशाख के आने पर सद्गुरु रूपी सूर्य का ज्ञान-तेज पड़ता है तब यह अज्ञान रूपी हिम गल कर नेम रूपी नदियों में चला जाता है और अण्डा रूप आत्मा परमात्मा रूप कूंज को मिल जाता है।

कूंज एक पक्षी विशेष है। कूंज और कच्छप अपने बच्चे से दूर रह कर उसे ध्यान के द्वारा पालते हैं।

कूर्मी दृष्टि मात्रेण पय मात्रेण कुक्कुटी ।
कुंजी सुधि मात्रेण हित मात्रेण सावका ॥

| | |
|---|---|
| सत्ति | माया |
| घूर्मै | घूमने के लिए |
| कें | मध |
| मुर | तीन तीस गुणों की गांठ जो शरीर में है उसे समर्थ गुरु ही खाल सकता है। |
| मोडा | शरीर |
| अहिबोदि | इसी शरीर में |
| अहिसु | इसी |
| हुमाय | हुमा पक्षी |

जिस व्यक्ति के ऊपर से हुमा उड़ कर निकल जाता है, वह राजा हो जाता है। हुमा पक्षी चामन यानी चन्दन तथा पारस इन्हीं का गुण सद्गुरु में होता है।

| | |
|---|---|
| जोम | इन्द्र |
| पुजना | समान होना |
| गरास | भूमि खिलरी |
| षट दर्शन | षट दर्शनी साधु |

दोहा—जोम सन्यासी सेवड़े
जोगी जगम सेख।
षटदर्शन दादू राम बिन
सबै कपट के भेख॥
(दादू बानी भेख का अंग)

| | |
|---|---|
| जोगी | नाथ सम्प्रदाय का साधु |
| जोध | बौद्ध |
| सेवड़ | जैन |
| जंगम | टोकरी बजा कर और मोरपंख सिर में पहन कर भिक्षा मांगने वाले साधु। |
| लोढी | गोल चिकने |
| राज | कारीगर |
| दरिया | समुद्र |
| बासा | निवास |
| परि | ऊपर |
| बादबान | जहाज का पाल |
| माट | बर्तन |
| लार | अग्नि |
| सिख | आग |
| बाल | मसक हवा की धौंकनी |
| मामूर | आरम काम मशहूर |
| पास | देहाभ्यास |
| काठ | अविद्या का मैल |
| घुस | लोहे की छावर |
| भाये | स्वभाव से |
| भंग | बर्तन इत्यादि |
| पुस | फूस |
| मसिष | मनुष्य |
| हाल | देख कर |
| कस्तरी | कस्तूरी |
| अनि | अन्य |
| मग | रत्न |
| बीच | काया पथ |
| बय | मीघन आयु |

कहते हैं कि सिंघल द्वीप में हनुमान जी कभी-कभी हांक लगाते थे जिसको सुन कर राक्षस लोग हिजड़े हो जाते थे। हांक का पता लोगों को पहले से चल जाता था इसीलिए उसके प्रभाव से बचने के लिए लोग तहखानों में छिप जाते थे। तहखानों के द्वारों पर स्त्रियाँ नक्कारे बजाती थी ताकि हांक की आवाज पुरुषों के कान में न पड़े।

| | |
|---|---|
| फुनि | सर्प |
| जाबी | चिड़िया |
| जाबि | जाबीपर |
| हरताल | हरताल में मक्खी जीवित नहीं रह सकती। |
| मारुत भख | सर्प |
| पंचमिरगे | पांचों इन्द्रियों के तिनके |
| भुइमि | मिट्टी या पृथ्वी |
| बारि | द्वार आश्रम |
| बैरागर | हीरा |

| | |
|---|---|
| मरजीवा | गोताखोर |
| मर्त | असम |
| हूल | हुलका देना |
| दरबै | डरै डरै |
| पोरसा | एक देवता विशेष जो कामधेनु अथवा कल्पवृक्ष के समान माना जाता है। |

पोरसा का मन्दिर प्रतिदिन आनेवाले अभिजित नक्षत्र में मध्याह्न के समय बिना रुके हुए विधिपूर्वक बनवाने के बाद उसका आह्वान किया जाता है। यह पोरसा (स्वर्ण प्रतिमा) पुरुषाकृति में सिंहासनस्थ हो जाता है। पूजा करने वाला प्रतिदिन पूजा करने के बाद उसके हाथ-पैर काट लेता है, दूसरे दिन वे हाथ-पैर पुन: उग आते हैं, इस प्रकार यह देवता निरन्तर सोना देने वाला है। किन्तु यदि कहीं भूल से उसका सिर काट लिया गया तो वह सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

| | |
|---|---|
| ससम भेद | सूक्ष्म ज्ञान |
| पालक | पुत्र |
| बिष | विषय रूपी विष फल |
| बिरचे | विरक्त होना |
| गूंठी | कर |
| तेह | वे |
| बांझ | बन्ध्या |
| मुरीदमता | शिष्य के लक्षण |
| बोछ | जिह्वा |
| मीठ | मिष्टा |
| फेन | फेन मिथ्या वस्तु |
| मध्यगामी | मध्य मार्ग वाला |
| अठारह भार | सभी वनस्पतियाँ |
| षट्मास | षण्मास |
| संमल गोला | नारियल |
| मुक्ति | मुक्त फल |
| बाम | से भिन्न |
| भोले | विचारशून्य |
| पठीले | अभिमानी |
| बच्या | ~ सीसा |
| नाखै | सम्बन्ध कराये बनाये |
| भुवाहर | तोड़ना |
| चीनी | मिट्टी का टुकड़ा |
| ठीकरी | मिट्टी |

गुरु सिख निर्गुन का अंग

| | |
|---|---|
| बंस | बांस |
| चकमक | एक पत्थर |
| झार | जिसना |
| कुभली | पृथ्वी |
| चौष्टि | चौंसठी संसार |
| बरहर | स्त्री |
| छोकरा | छिलका |
| जोय | स्त्री |
| माहि | भीतर |
| चीना | अन्न विशेष जो गोल चिकना होता है या चीना धान। |

गुरु सिख निदान निर्णय का अंग

| | |
|---|---|
| रहिता | रहित ( संसार से ) परमात्मा में रहने वाला |
| सत्भक्त | सत्यमित |
| सत् | ब्रह्म |
| जत | जती |
| मृतक जहाज | मूसे हुए काठ के जहाज के समान। |

दिव तप्त लोहे का गोला जो न्यायपति किसी भी अपराधी के हाथ में रखता था यदि उसका हाथ जल जाता था तो वह अपराधी समझा जाता था और यदि नहीं जलता था तो निरपराधी समझा जाता था।

| | |
|---|---|
| मोहरे | मोर के पंख जला कर एक प्रकार का तोला निकाला जाता था वही मोहरा है। |

| | |
|---|---|
| चम्पति | चिपकता है |
| मैसह | मूसलाधार वर्षा |
| चख चिहुर | जिसके नेत्रों से पानी निकलता रहता है। |
| रोम | रोमा |
| जेवड़ु | रस्सी |
| दूण | किमा |
| माकसी | कीच |
| बूरी | बेड़ी |
| हेत | प्रेम |
| मोरा | मोर |
| पौहुन | पशु, वाहन |
| रसना | विषयासक्ति |
| समुद्र सीप | अग्नि कीट |
| स्पावत | प्रसन्न होना |
| बकन | भीतर |
| इसक अला | भगवान में प्रेम |
| बिललाय | रोता है |
| जाम | प्रहर, दिन |
| हरद | हल्दी |

प्रीति इश्क का अंग

| | |
|---|---|
| बेली | साथी सहायक |
| मरकट | बन्दर |
| सुवा | तोता |
| अकल | ब्रह्म जो कल्पना से परे हो। |
| मंडे | भरे |

ब्रह्म अगिन का अंग

| | |
|---|---|
| वहनि | अग्नि |
| तोमूं | बस |
| भन्हें | तपन |
| पच्चीस | पच इन्द्रिया और तन्मात्राएँ |
| मखरी | मक्खी |

भयभीत भयानक का अंग

| | |
|---|---|
| रावन | बराव |
| सातक | सात्विकता |
| भूत | सेवक |

विरक्त का अंग

| | |
|---|---|
| तावे | तवक |
| संमर | पुष्ट |
| रामति | (१) चौरासी योनि संसार भ्रमण। |
| | (२) सन्त समागम। |
| | (३) सेवक के घर गुरु का आगमन। |
| बरतनि | व्यवहार |
| तस्कार | तिरस्कार |
| डीमा | मन का टकरा |
| सिलक | भार या बूक |
| रहति | ब्रह्मचर्य |
| जगपति | अधिपति |
| सुनि करि सौर | शून्य में अधिकार करना ब्रह्म साक्षात्कार। |
| बौ | बबा का वृक्ष |
| सालर | वृक्ष विशेष |

बबा की डाली टूटने से हरी नहीं होती किन्तु सालर की डाल टूट कर भी हरी हो जाती है। विरक्त जन सालर की भाँति ही रहते हैं, किन्तु बबा की भाँति टूट कर पुनः गृहस्थ नहीं बनते हैं।

| | |
|---|---|
| मुवोड़ी खाईस | कौवा सूखी मुर्दी नहीं खाता है। |
| पर | पंख |
| भुरट मुंड | कुश तथा कांटे |
| वीर | हे भाई |
| उनमनि | समाधि |
| अधर | निराकार |
| बरै | मायिक संसार |

सूषिम त्याग का अंग

| | |
|---|---|
| महलात | मन के महल |
| कुसमल | कलुष |

| | |
|---|---|
| बाबम्ब | वरमात्म |

सम्पति विपत्ति मम हुरन का अंग

| | |
|---|---|
| जाप | वामफल की लता |

सै का अंग

| | |
|---|---|
| ल्यौ | ध्यान |
| सबि लोक | बड़े लोक सर्ग आदि |
| ल्यौलार | लय में लगे हैं |
| झिर्रि | चर्चा जप |

सुमिरन का अंग

| | |
|---|---|
| धावै | ध्यावै |
| मंडाण | साजबाज |
| रैंणाइर | समुद्र |
| बोलता | प्राणी |
| बिसानि | विश्राम |
| परनाम | मयनाम |
| चापण | तृप्त होना |
| बाणिर | जान कर |
| आब | पानी |
| तुख | तृषा |
| झाव | बीच |
| बरियां | बिरियां समय |
| साबिल | सफलता |
| प्रिष्ठ | पीठ पर |

एक की पीठ पर मुम्य लगा देने से बस हो जाता है।

| | |
|---|---|
| चामली | चपलता |
| मर्म्म | निज का बाई भाव |
| पास पसारा | संसार के पास रहने पर भी। |

मजन भेद का अंग

| | |
|---|---|
| पैला | उस पार |
| संमूह | समूह |
| पास | नष्ट करके |
| प्रासहिसाल | खेत में खेत बैठ जाना |
| हेकू | हेकुमी |
| चड़स | पुर चमड़े का |
| मटुक | छूट |
| ठाकी | ठीक |
| मढ़ुठ | साढ़े तीन |

रोमावली साढ़े तीन करोड़ मानी जाती है।

| | |
|---|---|
| सरियत | कर्मकाण्ड शरीयत |
| तरीकत | पूजा भक्ति |
| मार्फत | संसार त्याग |
| हकीकत | साक्षात्कार (ब्रह्म का) |
| मनि | ध्याने |
| मेर | सुमेर विश्राम |
| सैती | से |
| मावली | माहिली आन्तरिक |
| मारूत मीक | मस्त हुआ स्वाभाविक स्वाद। |
| चूरा | चीर्ण |
| पाड़ा | भेद |
| वर | पति |
| ररै मम्मै | रकार मकार (राम) |

अजपा जाप का अंग

| | |
|---|---|
| मन माखिर | अक्षर अक्षर रहित |

कुरसा नाम का वारल बहांगीर द्वारा सम्मानित किया गया था। कुरसा एक पालकी में चलता था तथा हाथ में सोने का अंकुश रखता था। उसकी प्रतिज्ञा थी कि जो मुझसे हारेगा उसे अपनी पालकी में जोत कर अकुश से चलाऊंगा और यदि कोई मुझे जीत लेगा तो उसे पालकी व अंकुश भेंट कर अपना गुरु बना लूगा। कुरसा ने रज्जब जी के सामने यह चमत्कारक दोहा पढ़ा —

> दोहा—मुख अक्षर मुख सप्त स्वर,
> मुख माया छत्तीस।
> एते अमर जो करे
> तो मानों गु कबीस॥

रज्जब जी ने इस पर यह दोहा पढ़ा —

दोहा—मुख अक्षर मध सप्त स्वर
मुख मात्रा बत्तीस ।
ऐसे अक्षर उर भजन
मन अक्षर बमबीस ॥

रज्जब जी की प्रतिभा से मात खा कर दुरसा उनका शिष्य हो गया ।

| | |
|---|---|
| निनावै | बिना नाम का |
| अंक | अक्षर |
| पारामई | पारा रूप अपने आप उड़ जाना । |
| नाव पर नाव | नाम के पंख भी नष्ट हो चुके हैं । |
| नर तथा नग | हीरा हीरी को उड़ जाते हैं । |
| | नर गुटका द्वारा अमर रहता है । |
| ऊबट बाट | विकट मार्ग |
| काइना | सोना |
| मख मख | मक्खी मुह से नहीं बोलती यानी मक्खी का मुंह । |
| मूंस | मोहि |
| अबोला जाप | अजपा जाप |
| करसी | करेगा |
| अलाहिदे | इलाहिदे अलग |
| नाधिया | नदी |

ध्यान का अंग

| | |
|---|---|
| होहं | अहम् यानी मैं |
| सोहं | वह मैं ही हू |
| रुध्र | रुधिर |
| सप्त अष्ट | सप्त धातुओं का शरीर तथा आठवीं आत्मा |

नाम महिमा का अंग

| | |
|---|---|
| कृत मन | कृतकृत्य हो गया |
| नाईं | नाम से ही |
| कुदरत | कुदरत |
| बहु बड़ी | बड़ी से बड़ी |
| ईसान | ऐसा नहीं |
| मधु | यहाँ मन के उद्धार का सकेत है । |
| सारंग | मृग |
| करब | एक जंगली जानवर यानी तेंदुआ । |
| सांस | श्वास |
| सलक | अलग |

भजन प्रताप का अंग

| | |
|---|---|
| नाम | महिमा |
| बंदे | बंदगी |
| तमहर | अग्नि |
| धीमि | तलवार |
| महियल | महीतल |
| जल पर पाज | समुद्र पर सेतु |

सोहा तेल और दिव (गरम सोना) दोनो सत्यवादी को नहीं जला सकते ।

| | |
|---|---|
| पवन | पलड़ा |
| पावका | बादर |
| पतिम | पश्चम |

पवन ही सबों को प्रज्वलित कर देता है, बाद में उन्हीं की आग में स्वयं भी जल जाता है ।

साधु महिमा का अंग

| | |
|---|---|
| सौये | सृष्टि |
| तेम | उसी प्रकार |
| अंजन | माया |
| फर | फल |
| सुरस | अमृत |

| | |
|---|---|
| साँकड़े | नजदीक |
| तिपई | वह उपला जिसमें अग्नि रहती है। |
| नारेल | नारियल |
| ब्यारि | नष्ट करना |
| चूंथि | चुनना |
| बाबा | भगवान् |
| तिरखा | तृषा |
| परसन | प्रसन्न |
| सूकूं | सूखने पर |

## प्रसिद्ध साधु का अंग

| | |
|---|---|
| साच | किञ्चिन्मात्र |
| पनि | प्रश्न |
| लक्षिण | लक्षण |
| मह | प्रसिद्ध है |
| निरिहाई | निष्कामता |
| बिनाम | माया तथा भिन्न आदि |
| अहल | न हिलने वाले |
| मिसण | पैगुण्य पदविकारादि |
| तोर | शक्ति |
| बैले | अश्लील भाषण |
| उपाये | उत्पन्न किये |
| सोवन | स्वर्ण |
| अनि | अन्य |

## माया मधि मुकति का अंग

| | |
|---|---|
| सिरटा | मकाई का भुट्टा |
| चुपड़ | घी पात वाले पराठे आदि |
| अंधी सूधी | परोक्ष प्रत्यक्ष |
| कलम | एक वृक्ष विशेष को उखाड़ कर लगाया जाता है। |
| स्यम | संग जाना |
| चम | चमड़ी |
| कुरब्बर | करोड़ों |
| सिंधुर | हाथी |
| जई | नहीं |
| सित | चिता |
| मरि मधि | मध्य ही में मर जाता है |
| ताक | तैरने वाला |
| बरन | वरुण या समुद्र |
| माग | मार्ग |
| परवनि | पुरइन |
| तातर | सितार के तार |
| सिर | मिश्र |
| पत्त | गुह्य भाग |
| झूसले | आग |
| जल मंडली | काई |
| मुरा | सूखी |
| सुहाग | परित्यक्ता स्त्री |
| कमाद | कुम्हार का आवा |
| रर्री | माया रहित |
| सम्मा | माया रहित |
| आदि | जल पक्षी |
| बिजुका | खेत में मनुष्याकृति पोत |
| मनुआ | पोत |
| खपना | नष्ट होना |
| बुरा | बुढ़ापा |

## विचार का अंग

| | |
|---|---|
| रली | मिली |
| अथाम | सप्त धातुओं से आगे जीवात्मा। |
| सैरी | मार्ग |
| चाचा | पच्चे |
| पंज्या | दिमाग |
| बनहूरी | निवही |
| मसंदी | मसनद नहीं |
| केवलनिहार | विचारशील |
| मारी | हाथी |
| बासन्दरे | आग |

विनती का अंग

| | |
|---|---|
| बन्दु | प्रसन्न होकर |
| दीप | द्वीप |
| मिबड़ | मस्त |
| टोटी | टोटी को बच्चा टोटी बोलता है। |
| बिद भोर | विश्व भोर |
| मुरा | अविद्या मूला और तूला दो प्रकार की विद्याएं। |
| मैरी पाइ | दूसरी जगह से |
| मुबा | पहिचान |
| मीरी | मेरे मालिक |
| रिजक | रोजी |
| अलेख | परमात्मा |
| तुम जोगी | तुम्हारे योग्य |
| कमौड़ी | चमड़ी |
| भाड़ | बड़ी या भारी |
| कुबला | गन्दा |
| राम | बन्दर |
| सत्तक | कर्म करने वाला |
| श्रीमोर | लक्ष्मीपति |
| सत्र | सत्र |

संत सहाय रक्षा का अंग

| | |
|---|---|
| वैत | वैरम |
| मंगितों | याचकों |

एक वन में मृग-मृगी साथ सो रहे थे। दोनोंको पैसे के लालच से मारने के लिए बहेलिये ने एक ओर जाल लगाया दूसरी ओर आग लगाई तीसरी ओर कुत्ता और चौथी ओर को काट लिया इससे वह छिल गया और उसके हाथ से बाण छूट कर कुत्ते के जा लगा। इस प्रकार मृग और मृगी बच गये।

| | |
|---|---|
| बिषम बार | कष्ट के समय |
| मारज्यहार | काम क्रोधादि |
| दीप | गुरु और ब्रह्म |

पीव पिछाण का अंग

| | |
|---|---|
| हथलेवा | पाणिग्रहण |
| अर | घर |
| अपरबल | प्रबल |
| अभ्यागत | मिलना अथवा लगाना |
| पम्पि | भुकार या सम्पदा |
| अदि | कष्ट से |
| सत्याती | साधु |
| जाली | संसार |
| दस दूने बहुर | चौबीस अवतार |
| जुमल | द्वैत भ्रम |
| पद् अंग | जल सूर्य पानी पवन धरा अम्बर। |
| जोति | दीप |
| बसीले | बहाना |
| बाझा | बीच में डाल कर |
| पराय | माया संसार |

नामदेव के लिए मूर्ति फिरी था वो उठी बल में डाला हुआ सिंहासन पू बाहर आया।

पारसनाथ नेमनाथ को गोरखनाथ जिलाया था। ( माया मछन्दर की कथा )

साखी भूत का अंग

| | |
|---|---|
| ब्यर्तंतर | तना (पेड़ का) |
| महुंम | साख |
| सोवन मृग | स्वर्ण मृग |

बस बमक का अंग

| | |
|---|---|
| बलि | बल |
| मैउ | मेव |
| पुटका | एक पारा की गुटिका जो पूष को पाचक बनाने के लिए डाली जाती थी। |
| लपार | किञ्चित् |

समरथाई का अंग

| | |
|---|---|
| साँति | समा |
| किम | किरण |
| सौंपीबनमे | यह नहीं सौंपी |
| अगह् | पकड़ में न आने वाली। |
| बिसियर | सर्प |
| रवि | धूप |
| घोरन्धार | घोर अँधेरा |
| बिरष बास | वृक्ष के बैना |

चौरासी निशान निरर्नै का अंग

| | |
|---|---|
| दुलहा | फल जिसके बीच में दाने रहते हैं। |
| धूम | धीर्य अथवा मदन |
| मिरतु | वहिरन |
| इला | पृथ्वी |
| परप्ना | प्रदेश |
| सोनाखि | नष्ट करक |

मधि माम निज स्याम निरर्नै का अंग

| | |
|---|---|
| चमाक | चलने वाले |
| उर वार | इसी पार |
| उनवास | पृथ्वी जिसमें उनचास पवन घूमते हैं। |

| | |
|---|---|
| पैंडा | मार्ग |
| बाजुन | बातिन यानी दिल |
| मघ | मार्ग |
| नापैद | छिपा हुआ |
| सम्बल | मात्रा व्यय अथवा सामग्री। |

गबी का अंग

| | |
|---|---|
| मामर | गह्वर |

आतम निरर्नै का अंग

| | |
|---|---|
| निसि धमहुर | रात्रि का इन्द्र धनुष |
| लीनहु मोरता | उसकी ओर तल्लीन होने से। |
| सिरजीमर | माहे को साफ करने तथा साम लगाने वाला। |
| घोलि | हंस स्वरूप |
| कटुंब | कुटुम्ब |
| कलित | कमल स्त्री |
| असति | बीन |
| चतुर मालि | चारों वर्ण के |
| कैसि | कैसा |

ग्रान परचै का अंग

| | |
|---|---|
| संधि लाल | सम्बन्ध के संकट |
| माएो | मयाचे |
| घना | बिना |
| बहो | बनी या न |

हैरान का अंग

| | |
|---|---|
| गहले | प्रमत्त |
| मीच सींव | मीच और दीवार |
| मुस्का | बड़ा |
| सहिंचान | पहिचान |
| बिलौर | बिल्लौर, पत्थर, स्फटिक |

| | |
|---|---|
| आब | आग |
| मिलूं | छोड़ |
| बले | भला |
| बिरचूं | बिगड़ने पर |
| पाइक | सेवक |
| निमडि | निपट जाना |
| मारत | मूढ़ |
| अपूठे | पीछे |

पश्च परीक्षा का अंग

| | |
|---|---|
| ब्याड़ि | घर का आंगन |
| कुलरना | कसरत |
| काम | सम्मान |
| खोज | चिह्न |
| बुधि | वो वाला |
| पाव | पाणि हाथ |
| हंस | आत्मा |
| सार सुत | लोहे की कणिकाएँ |
| गराब | बिलक्षण |
| निसान | खेद रहित |

प्राण परीक्षा का अंग

| | |
|---|---|
| बिलों | वृक्ष समूह |
| पट | समान |
| बहुमत | ब्याधि |
| सकस | सक्षम |
| सुलाल | बीच छिद्र |

परा पश्यंती मध्यमा बैखरी वाणिया।

अपारिख का अंग

| | |
|---|---|
| कुटें | कटता है |

तोते के बोलने से क्या लाभ? क्योंकि वह उसे समझता नहीं है।

एक ठग ने एक तोता साहूकार को बेचना चाहा। उसने उसकी बड़ी प्रशंसा की और मूल्य के रूप में एक-लाख रुपये मांगे। साहूकार ने तोते से प्रश्न किया कि क्या तू लाख रुपये का है? उसने लाख कह दिया। साहूकार ने तत्काल एक लाख रुपये दे दिया। बाद में साहूकार को पता चला कि तोता केवल रटी हुई बात कहता है। इस प्रकार साहूकार के एक लाख रुपये बिना परीक्षा के व्यर्थ चले गये।

| | |
|---|---|
| मिसर | सोना |
| सूतो | बालक |

अज्ञान कसौटी का अंग

| | |
|---|---|
| कूकस | चोकर |
| बेबे | प्राप्त |
| बिगर्यू | बिल जाय |

मूसा साहब मौत के डर से भागे तो जहाँ जाते थे वहीं कब खोदते लोग मिलते थे। एक स्थान पर कब्र की खोदाई पर मूसा साहब बहुत करने लगे और नापने के लिए ज्योंही उसमें लेटे तो लोगों ने दाब दिया।

| | |
|---|---|
| नचहिन | नष्ट नहीं |
| बबारे की जली | बीजांकुर का नोक |
| माव | मायो |
| बीता | छाया चित्र |

सेवा निष्फल का अंग

| | |
|---|---|
| चिति | बाती |
| प्रब | पर्व |
| मातक | पाप |
| बराम | ग्रहण करता है |
| बौक | प्रणाम |

गर्भ सिद्धान्त का अंग

| | |
|---|---|
| कोरि | एक जाति जो मिट्टी खोदने का काम करती है। |

उपदेश चेतावणी का अंग

| | |
|---|---|
| बीती | हृदि |
| मयण | मोम |
| माजरै | समस्या |
| पासिक | पापी व्यभिचारी |
| इश्क इलम | प्रेम कला |
| समभाना | समान नहीं है। |
| बाई देना | : परित्याग |
| वपई | बजार करे |
| मुजरा | नमस्कार |
| कामण | कामिनी |
| असत | अस्त करके |
| संवाहि | पूरी तरह पकड़ कर |
| मसाण | मुर्दों का स्थान |
| ओधि | अवधि सीमा |
| बहुरनि | मिठाई |
| झालर | घंटी घंटा (ठाकुरजी के आगे बजाई जाने वाली) |
| सिवाण | सीमान्त |
| पैड़ी | सीढ़ी |
| सुमेर | मेरुदंड |
| रंध्र | ब्रह्म रंध्र |
| भजाण | भजाव |
| संतति | प्रेम |
| सागड़ी | रसी |
| मवसाण | दांव |
| याद | सुमिरण |
| पछि | पक्ष |
| तोबा | आगे पाप न करने को प्रण। |
| परतासि | प्रतिईर्ष्या |
| रैण | रैन |
| मिराठ | बड़ी |
| चिहुर | चहलपहल |
| चिमाम | माया बाजीगर का खेल |
| बाहिला | बहिर्मुखी |
| नाग | नहीं मिला |
| प्रक्ति सेन | माया मिश्र |
| रज घर | बालू का घर |
| गुदड़ी | बाजार जो लगा और समाप्त हो गया। |
| हलकारे | बाजारी |
| कौल | प्रतिज्ञा |
| केवांच | केवांच के जंगल में बन्दर केवांच को छू कर खुजली पैदा कर लेता है और खुजलाते-खुजलाते मर जाता है। |
| कोसि | कस कर |

पलाश का वृक्ष नदी की पोली भूमि में तीन पत्तों वाला होता है।

एक चूहा दीपक की बाती चुरा कर छप्पर में ले गया। छप्पर में आग लग गई और वह स्वयं भी जल गया।

| | |
|---|---|
| करंड | सर्प रखने की पेटी |
| बिरंद | मुख |
| चिरम | घुंघची |

जाड़े के दिनों में बन्दर घुघियों के ढेर के आसपास उसे आग समझ कर तापते हैं और एक-दूसरे के बीच घुसते हैं, आपस में लड़ते और मारते हैं।

| | |
|---|---|
| चिहुर | चीर, वस्त्र |
| खुलावे | कष्ट देना |

सरण का अंग

लाखों रुपये की तलवार म्यान में ही रहेगी।

दिव (तप्त गोला) हाथ में रखने के पहिले सूत और पान रखा जाता है।

| | |
|---|---|
| भुगति | भोजन |
| पर्यंग | आसन |

| | |
|---|---|
| बोले | बोर |
| खोसूरिया | वृक्ष में बांधे जानेवाले चोर। |

काम का अंग

| | |
|---|---|
| मजार | बिल्ली |
| बबाद | विवाद परोक्ष की बुराई। |
| आवल्या | आयु |
| भर मद | भर से |
| बचवि | चौकनी |
| बहेम | बहना |
| केसरि | सिंह |
| फाल | उछाल |
| पुस | घसक खरगोश |
| जाहिंयह यही | वही स्थान |

सजीवनी का अंग

| | |
|---|---|
| पवि थोम | पिण्ड और प्राण का पता। |
| सुर | सूर्य |
| बहमे | बया पक्षी |
| तमा | लालच |
| सौकनि | सौतिन |
| काठपा रह | काठ की मचानी |

विवेक समता का अंग

| | |
|---|---|
| एकतास | मैत्री |
| सुचौरी | क्षमता है |
| मावलनि | वाँवला |
| बैसी | बसी |
| सिल्या | मिस्त्या |

मेसग का अंग

| | |
|---|---|
| माजुपन | अद्वैत दो नहीं |
| बजरी | मल मूत्र |

दया निरबैरता का अंग

| | |
|---|---|
| सुहिरवी | सुहृद् |
| वल बाचि | बकरे की बाबत |
| बाकरि | बकरी |
| घोसफन्द | भेड़ बकरी |
| मेस | भेड़ |
| हुमशीरे | सगा भाई |
| तर्गोसी | मांस भोज्य |
| कोड़ि | कोप |
| कोम | क्रोम |
| तहनक | सामने |

श्री रामचन्द्र ने बालि के बाण मारा तो दूसरे जन्म में बालि ने बरा नामक व्याध बन कर कृष्ण के तलुवे में बाण मारा और कृष्ण का प्राणान्त हो गया।

| | |
|---|---|
| रामानन्द | कबीर के गुरु |

कहते हैं कि यह लछमन के अवतार थे। मेघनाद ने एक मुसलमान के यहाँ जन्म लेकर उनको मुसलमान बुद्धि से मारा।

| | |
|---|---|
| पसिया | विष्णु |
| कहुर | क्रोध |
| खैर | उदारता |
| राहु | राहु |
| नीब | नीम |

कंवला काढ़ का अंग

| | |
|---|---|
| अष्ट कुल | पर्वत तथा आठ कुल के नाम। |
| सारा | शक्ति |

सुकृति का अंग

| | |
|---|---|
| कारजी | कार्य करने के लिये |
| तम सुंगिनि | रात्रि |
| पुनर्हि | पत्नामन |

| | |
|---|---|
| मुकाती | अच्छी कुल्हाड़ी |
| तिपर | डाल |
| तिन रोमहु राजा मिलहि | उस पिण्ड के रोमों के बराबर राज्य मिलते हैं। |

धौर ( धौराल ) से सबहु गुन मिलते हैं, यह मुसलमानों का विश्वास है।

तिर्मंथल तिर्मयल नाम का एक बालक था। एक महात्मा को मार्ग में जाते हुए देख उस बालक ने सोचा कि महात्मा गाँव छोड़ आये हैं और आगे गाँव दूर है महात्मा भूखे रह जायेंगे। उसने आगे बढ़ कर महात्मा से कहा कि मेरी माँ रोटी लेकर आयेगी आप भी खाइयेगा। महात्मा ने कहा कि वह तो तेरे लिए लायेगी। इस पर उसने कहा कि कभी-कभी देर हो जाने से अपनी भी रोटी नहीं खाती है। यदि अपनी रोटी न लायी तो मेरी रोटी जब मान का अंग तो वह स्नेह वश मेरे लिए पुन ले आयगी। सन्त ने बालक की बात मान ली। महात्मा ने रोटी खायी। इसके बाद उठ कर लड़के के डण्डा मारने लगे। माता ने वर्जित किया पर वे न माने और सात डण्डे तक लगा दिये। बाद में वह बालक सात बार राजा हुआ।

| | |
|---|---|
| रब | भगवान् |
| जड़ना | जोतना |
| खूति | बहुत अच्छी |
| खाज | फसल |
| खठ | भस्म |
| बड़ना | क्षीण होना |

द्रौपदी ने दुर्वासा को स्नान करते समय कोपीन दिया था।

| | |
|---|---|
| द्रोपदी | दो चीरिया लंगोटी वाली |
| चोट | : सामग्री |
| दश बन्ध | दशवां हिस्सा |
| कर मुकतों | उन्मुक्त करों से |
| मलमल | बकरी के बच्चे के सम, अथवा कुछ। |
| पविक | मान सवारी |
| खाणे | खाना |
| मोरी | मार्ग |
| सीर | रक्त की नाड़ी चीर कर रक्त निकालना। |
| संगल गोता | नारियल |
| पारीख | जहाँ कुयें का पानी आकर पड़ता है। |
| | कुयें के पास का गड्ढा। |
| सर्व | सब |
| माल | अवसर |
| डोलच | चलाना |
| मजल | महान |

स्वारथि स्वारथि को खाना नहीं जाते किन्तु देने में यह विचार नहीं मानना चाहिये।

दाम निदान पुण्य प्रवीन का अंग

| | |
|---|---|
| सारे | साबित |
| चिद | चौड़ मानी हुस्ना |
| भवें | जमीन |

मिरबेरी मर मिलाप का अंग

| | |
|---|---|
| पौंचि | मीठी बात |
| बरोम | झूठ |

पात्र कुपात्र का अंग

| | |
|---|---|
| खाज | माया |
| अबर | आग |
| सारदा | ऊसर, सारदा |
| आसही | स्वर्ण |
| कोला | कोयला |
| लोला | चिनगारी |
| अरु न | और न |

| | |
|---|---|
| सईं | परमात्मा |
| भौसास | अथवा भक्ति |
| आसीन | आश्रम पाना |
| टांगरे | छोटा घोड़ा |
| झुरकी | कपड़ा चूर |
| नाई | हल के ऊपर की बोने वाली चिलम। |

सेवा सुमिरण का अंग

| | |
|---|---|
| आरंभ | कार्य |
| अघोतर | बढ़ती |
| गुलीबंद | मुठली |
| पै | पय |
| धी मंडल | सुर मंडल यानी सितार |

रस विकृत का अंग

| | |
|---|---|
| घूघू | उल्लू |
| मूंसरे | चूहे |
| मुझार | पानी में |
| संजम | संयम निग्रह |

सुमति कुमति का अंग

| | |
|---|---|
| बंदा | भेद (बट्टा) |
| लुंज | पंख कटा हुआ पक्षी |

साकि उभै गुणी का अंग

| | |
|---|---|
| बेड़ी | पैर की बेड़ी तथा नाव |
| बलियहि | नष्ट करने वाली |

बहनी और विभूति में दो-दो गुण रहते हैं—पोषक और नाशक।

| | |
|---|---|
| तस्तर | पत्थर |
| सनाह | कवच |

माया जड़ चेतन का अंग

| | |
|---|---|
| फूला | मैल रोग—फूली। |
| बिनु बाधी | अनिश्चित |
| चार | व्यवहार आचरण |

शक्ति शिव सोध का अंग

| | |
|---|---|
| छतीसनर | छत्तीस भाषाओं का जानने वाला अथवा छत्तीस व्यंजनों का ज्ञाता। |
| उनमाना | भूत |
| सायर | समुद्र |
| मुधाव | व्यर्थ |
| बावनहार | बजाने वाला |
| कंवला | कमला (माया) |
| निरबाधि | असंपृक्त |

स्वार्थ का अंग

| | |
|---|---|
| धूं | धुआं |
| कालर | ऊसर |
| ललक | मोह (सांसारिक) |

अविश्वास तृष्णा का अंग

| | |
|---|---|
| धापनहार | तृप्त होना |
| पाहिका | भाषा का |
| बंदई | बाजी |
| चिन्त | चिन्ता |
| कल | शान्ति |
| भासा | एक भाषा |
| गैबि | गैब में (गर्भ में) |
| मच्छ | मगर |

विश्वास संतोष का अंग

| | |
|---|---|
| बुढ़पा | जरा बुढ़ापा |
| भूके | दौड़ना |
| बरा | बरदान |
| अचिन्त | अडिग |
| पीरी | कमाई अथवा कर्म पथ |
| मनि अर्थ | मन में चिंता न हो |
| तवक्कुल | संतोष अथवा ईश्वर पर भरोसा। |
| दुरस्त | दुरुस्त |
| रोझ | मूर्ख (पशु) |

### निरिहाई निर्वाण का अंग

| | |
|---|---|
| ताकड़ी | तुला |

### बमेक वेसास मधुकरी का अंग

| | |
|---|---|
| सिलक | मुल्क |
| वांमै | ठेल देना |

### संयम कसौटी का अंग

| | |
|---|---|
| नीलों | हरे नीले |
| तोल्मत | कसौटी |
| जंतर | जन्त्री वह जंत्री जिसमें तार सीधे किये जाते है। |
| कंमाहि | कंचा |
| साहीं | बड़े लोग |
| नाज | मडुनार |
| खुम्या | भूख |
| मैमंत | हाथी |
| कूंकिल | केतकी |

शेख फ़रीद की माँ ने उस भजन का उपदेश दिया था। वह पत्त बा कर रहा।

| | |
|---|---|
| चूला | बरों में |
| माल | हड़ताल |
| सिलावट | राज कारीगर |
| बंदि | कसौटी |
| तापड़ | कूड़ा कचरा |
| झाल | आग |
| मिष्ठी | पीठ |
| पर्वय | घोड़ा |

घोड़े के ऊपर की काठी रखने से काले बाल भी सफेद हो जाते हैं।

### साच निरमय का अंग

| | |
|---|---|
| कतेल | कौल बाहा |
| अभिनै | अभिनय |
| जाड़े का कोट | शीत कोट बरफ का महल |
| तोरा | शक्ति |
| कतवार | सूतकार काटने वाला |
| कालिकूट | कबड़ा |
| खांडे धरा | तलवार के समान धार मोटा बालों का मारता है |
| पांवों में | पांव से |
| पाई | दोष या खोट |
| कोड | पसवा |
| चढ़ावें | चढ़वावें |
| मामवनी | सवाई आमन |

### परम साध का अंग

| | |
|---|---|
| ठेल | त्याग दिया हटा दिया |

### कृपण का अंग

| | |
|---|---|
| मोनचि | पिटारी |
| सितमुज | राजा |
| करया | क्षमा |
| मारी | जल पात्र |
| मार्वे मारि | दूर करे |
| सुम | मसूल |
| बिगठी | नष्ट हुई बिगाड़ देना |

सूम का धन व्यभिचारी के पुत्र के समान होता है।

| | |
|---|---|
| संचक | सूम |
| रवि सुत | यमराज |
| सुमाई | एक प्रकार की भेड़ |
| सिड़ | सड़े |

### सांच चापक का अंग

| | |
|---|---|
| तोपची | तोपची तोप चलाने वाला |
| मयथ | अष्ट मैथुन |
| बिल्ल | पुत्र |
| जल मुकर | शीशे का पानी (आब) |
| कड़वी | करवी ज्वार का पेड़ |
| मत बाचि | खोटी आवत |
| सेह | स्याही नामक जन्तु |
| सीप मांई | विवाद कर |
| बोकल | कुशोल |

| | |
|---|---|
| कदल | कर्दुली |
| मुसि | मूसना |
| सुनहै | कुत्त |
| बिस्वासघाती | बेश्या मत |
| कारज | विवाह |
| खारी लूण | खारा हुआ सांभर का नमक। |
| पंचम | पांचवी जाति यानी मुस्लेम |
| दसराहे | दसहरे के दिन |
| बावड़ो | पागल |
| नरपी | नरपति |
| त्रिसित | भयभीत होकर |
| नागे पगि | नंगे पैर |
| गिरही | गृहस्थ |
| दलणि | पोली जमीन |
| क्रोध | क्रोध |
| बाड़ि | लकड़ी या बाड़ी |
| जल मंडली | कुमुदिनी |
| चूकन | चुकौती चुकाना |
| बुड़कै | जरा सी चूक से |
| सार | सारिका मैना |
| सूने बोर | तत्वहीन स्वर |
| डूम | गाने बजाने का काम करने वाली एक जाति। |
| धुम्रता | उठता हुआ धुआं |
| भार | भरई |
| मौरी | : हांकने वाला |
| पूठ | पिछला हिस्सा |
| पछमनी | पीछे करके |
| सगपन | सम्बन्ध |

बसत ब्योरे का अंग

| | |
|---|---|
| कांस तिण | एक प्रकार की घास जो कासड़ा कहलाती है। |
| किरास | एक वृक्ष जिसमें फूल नहीं लगता। |
| बाथ | एक बेल जिसमें फल नहीं लगता। |
| ताप | अग्नि |
| असनि | बिजली वज्र |
| बीसरै | गिरती है |
| महुर | पद्म सरोवर |
| बोझै | बोझना |
| कलकल | कष्ट से |

निन्दा का अंग

| | |
|---|---|
| अछूतो | छुट्टी नहीं लेता |
| नास | नासिका |

कृतघ्नी निर्गुण का अंग

एक नट ने गांव में खेल किया। भाला आकाश में फेंका और दांत पर ले लिया। एक ग्वाल के लड़के ने इस कार्य को बहुत आसान बताया और नट के हुज्जत करने पर उसने उसी प्रकार से किया। नट ने उसके गुरु को पूछा। उसने कहा—कोई गुरु नहीं है। नट ने दुबारा करने को कहा किन्तु गुरु-आस्था न होने से दूसरी बार भाला लड़के के सिर मे प्रविष्ट होकर हृदय में घुस गया।

लड़के का गुरु एक बगुला था जो तालाब की मछलियों को ऊपर से अपने मुंह में ले लेता था। उसी से यह कला उसने सीखी थी।

| | |
|---|---|
| महन्त | महान |
| मुकर | शीशा |

एक सेवड़ा (यति) जैनी था। उसके पास एक चूहा था जो खेलता रहता था। एक बार बिल्ली झपटी। साधु को दया आयी। उसने चूहे को मार्जार बना दिया। फिर कुत्ता बनाया सिंह बनाया। जब वह सिंह सेवड़े पर ही झपटने लगा तो उसने

उसको पुन: मूषक बना दिया। (पुनमूं षको भव की ऐसी ही कथा है)

चंपल — घोड़ा

चाँदी — घोड़े की पीठ का घाव जिसे बन्दर कभी-कभी कुरेदते है और जो चन्द्रमा की किरणों से भर जाता है

राची — रोड़

वर्षांवर्ष — प्रति वर्ष

बेचड़ा — शमी वृक्ष पीपल पर उग कर यह वृक्ष उसीसे रस लेता है, पर अपनेको शमी मानता है। इसलिए इसमें शाम पत्त कम होते हैं।

कातरे — एक कीड़ा जो खेती खा जाता है।

गंवार — तोता

## कलियुगी का अंग

बावरे — थके

## रज्जब जी के कवित्त

## गुरुदेव का अंग

बैरागर — हीरा

बिमी — पृथ्वी

मध्यकुल — अष्टकुल पर्वत

संच — समय

न्यारे — रेत छानने वाले न्यारिये

तउमल — पाप

मरजीवे — गोताखोर, डुबकी लगाने वाले।

विहंग — पक्षी पत्रवाहक कबूतर

पारकिंड धारि — दूसरे के शरीर मे प्रवेश करना।

मलु — मस्त

काव्यमुक्ता — पूर्णत मुक्त भाव से

भार — गाड़ी

## मिलाप माहात्म्य का अंग

पारस — एक पत्थर है, जो तीन प्रकार का होता है। उत्तम पारस को छूते ही लोहा सोना बन जाता है और फिर वह लोहा कभी नही बनता। मध्यम पारस के छूनेसे लोहा दस सहस्र वर्ष पर्यन्त सोना रहता है, बाद में पुन: लोहा हो जाता है। कनिष्ठ पारस के छूने से लोहा एक सहस्र वर्ष पर्यन्त सोना रहता है बाद मे पुन लोहा हो जाता है।

## माया मध्य मुक्ति का अंग

लोई रंगै न सूत — कभी वस्त्र को रंगते समय सूत के तागों पर रंग का प्रभाव नही होता।

## विवेक समिता का अंग

तबी — नाम

## भजन प्रताप का अंग

मणि हार — मणि हार नामक मोर के पखों से निकला हुआ तोता जिससे सर्प का विष दूर हो जाता है। इसे मोहरा भी कहते हैं।

मांडव — मांडव ऋषि भेड़नी से उत्पन्न हुए थे।

सीसें सुत — चांदी क्योंकि इसकी उत्पत्ति एक सीसे से होती है।

सूली — एक बार अर्जुन जी को चोर समझ कर लोगों ने सूली पर चढ़ाया तो सूली मोम बन गयी और काष्ठ वाला भाग हरा हो गया।

दोहा–हरिजन हिरदा हरकमी
सती सूरमा होय।
इनके जाति न ऊपजै
सब जातिन में होय ॥

## पारख का अंग

भड्डल बैद — बहुत जानने वाला ज्योतिषी।

सहदेव न समझी ज्ञान सम — सहदेव ज्योतिषी होकर वर्षा नहीं जान सके जबकि एक ग्वालिन ने मूंज की रस्सी में नमी देखकर जान लिया कि आज पानी बरसेगा।

माता जाणुं — माता अपने स्तनों के दर्द से पुत्र के संकट का अनुमान कर लेती है।

नाल — तोप

तूंबा — एक सुगन्धित वस्तु जो एक प्रकार की बिल्ली के फोड़े का मवाद है।

## भयभीत भयानक का अंग

बरत — रस्सा

## मधुता का अंग

चेरी — चेली माया केरा.

## जीवत मृतक का अंग

मृतक जहाज — सूखे काष्ठ का जहाज

## तृष्णा का अंग

तृष्णा नग — एक विशेष जाति का हीरा।

अंबार — गम्भीर

## काम का अंग

सुन्नत — कहते हैं हजरत मुहम्मद के दो बीबियाँ थीं। एक बीबी ने मुहम्मद साहब से इकरार करा लिया था कि यदि वे दूसरी बीबी के पास गये तो वह उनको दण्ड देगी। मुहम्मद साहब एक बार यह सुनकर कि उनकी दूसरी बीबी ने एक महान् प्रतापी बालक को जन्म दिया है, तो उसके पास गये और उसके साथ समागम किया लौटने पर पहली बीबी ने उनको दण्ड दिया। मुंह से मुंह मिलाने के लिए बीच की मूंछों को कटवाने का तथा गुप्तांगों के मिलाने के लिए जननेन्द्रिय के कटवाने का दण्ड दिया। मुसलमानों में तभी से सुन्नत चली।

षट् दर्शन — ६ प्रकार के साधु

दोहा–व्योम सन्यासी बाबु सेव
ऋषि सेवड़े जान।
सूरज जंगम जोग जत
जोगी षू पहचान ॥

इनसे जनमे पाखण्ड उत्पन्न हुए —

दोहा–अठारा जोध अठारा संगम
चौबिस जैन बखान।
दश सन्यासी बारह जोगी
चौदह सेवड़ प्रमान ॥

## स्वांग साधु निर्णय का अंग

भवन — भवनसिंह नाम का कोई व्यक्ति जिसकी कथा भक्तमाल में दी है। काठ का खांडा लोहे का बन गया था।

नामभक्त — नामदेव भक्त जिन्होंने मरी गाय को जिला दिया था।

भवैये — स्वांग बनाने वाला

अज्ञान कसौटी का अंग

| | |
|---|---|
| कूंडी कराना | मढ़ई में बैठ कर बसना |
| काष्ठ मवासि | पीपल के खोह में बैठ कर बसना । |
| डाल | बांस |
| हजरत अंत | मुहम्मद साहब ने पत्थर का गरम करके फोड़ा सेंका था । इस पर पत्थर ने बदला लिया । मुहम्मद साहब के दांत उसी पत्थर से टूटे । |

कुसंगति का अंग

| | |
|---|---|
| खै | विनाश |
| बेली बन | जड़ियाल घास खाने वाला है तो मारा जाता है । |
| करगस | तरकस |

सब बाणों में काग पंख लगे हों ऐसे तरकस में रखे हुए बाणों के बीच यदि एक बाण घूघू के पंखों वाला रख दिया जाय तो सब बाण बेकार हो जाते हैं, क्योंकि उसके पंखों से दूसरे बाणों के काक पक्ष छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

| | |
|---|---|
| काचे | अज्ञानी |
| पावंर | पादुका |
| बाइला | दूषित वायु |
| कम कस | अल्प बुद्धि |

कुसंग सुसंग का अंग

रजस्वला नारी की छाया पड़ने से सभी अन्धे हो जाते हैं ।

| | |
|---|---|
| उपकंठ | समुद्र के पास का वह भाग जहां नदी गिरती है । |
| विसालवा | पंछी की वह नसिका जिससे नाप कर वह दम न लेत देता है । |

अपलक्षिन अपराध का अंग

| | |
|---|---|
| पटसाल | पत्तों से ढका हुआ गड्ढा जिसके पास एक बकरा बांध दिया जाता है । सिंह बकरे के खाने के लालच में आकर उसी गड्ढे में गिर जाता है । |
| नलनी | तोता पकड़नेवाली नलिका |
| कूप | गहरी |

घोड़े के पास अग्नि लग जाने पर वह उसी ओर दौड़ता है ।

| | |
|---|---|
| अवारै | सोते समय छाती में हाथ आ जाना । |

मानी का अंग

| | |
|---|---|
| सामि | विष का मिश्रण |

मूढ़कर्मी असाध्य रोग का अंग

| | |
|---|---|
| बेचरी | तमाचे |
| करड | दाल का न पकने वाला दाना । |
| सींवरी | रस्सी |
| सील | शरीर |
| विगूचे | खाये या भोगे |
| बाधुलि | बड़ा चिमगादड़ |
| न्हारवा | एक लम्बा स्नायु जो द्वारा शरीर से निकलता है । |
| कीट पटवटी | कीड़े से रेशम |

स्वांग का अंग

| | |
|---|---|
| टीकायत | राजा से टीका प्राप्त रईस |
| तुंमिलो | रात्रि |
| विडम्बै | विडम्बना करना |

नमों में छाप नहीं है फिर भी नाम (पानी) है और उनका सम्मान कम नहीं है ।

| | |
|---|---|
| दुहाग | परित्यक्त |

| | |
|---|---|
| थोकि | समूह |
| साथा | अनेक |
| थंप्या | समाया |
| मलमंडे | चित्र छापा लगाये हुए पहलवान। |
| बिरख | बैल |
| मठर | पीसा |
| खूमी | सफेद बरसाती साक |
| बहसिमे | बहकना |
| बोली | सफेद |
| कली | वेग |
| मुख | सीधी |
| ढोकरी | गटखट चमों के गले का संभर। |
| गोधे | जवान बैल |
| पुंगी | पुष्ट |
| मालसी | कैद |
| थोड़ी | थामा |
| चंम | एक यती। कहते हैं कि |

उसने राजा से पूर्ण अमावस्या की रात्रि को पूर्णमासी बता दी। उसे मत्रिणी सिद्ध थी किन्तु पता यह चला कि बारह कोस के भीतर ही कृत्रिम चन्द्रमा का प्रकाश है। उस यती ने भाग के नशे में ऐसा कह दिया था।

साड़ बिलाई बबूल के कांटों के बेरे
पग पड़ि जाय बक्ति क्षीण हो जाय

ऊंट रेत पत्ता राखी और हाथी धूल अपने ऊपर उड़ेलता है। परन्तु इसमें कुछ खाने को नहीं है।

गृहस्थियों के गुदड़ी ओढ़ने से पसीना निकल कर ताप उतर जाता है, परन्तु यती लोग गुदड़ी ओढ़ कर अभिमानी हो जाते हैं।

| | |
|---|---|
| पछले | बास्तुरा |
| मांवली | मृग जल |
| सेंच | आदत |
| पठंचे | जिनके |
| बेचर | दुष्ट |

सितार की मलिका का रंग अच्छा हो या न अच्छा हो स्वर निकलता है।

पशु के दांत एक ही तरफ होते हैं।

## स्वांग सांच निरनै का अंग

| | |
|---|---|
| बालदि | बैलों की सम्पत्ति |

साभर में काजियों ने दादू जी पर पगला हाथी छोड़ा। हाथी आया उन्होंने उसके मस्तक पर हाथ रख दिया। वह पीछे चला गया।

शाहपुरा का त्रिलोकचन्द्र नाम का वैश्य दादू जी को लाया। दादू जी अपना साफा वहां छोड़ गये। त्रिलोकचन्द्र जब लौट कर साफा लेने गया तो दादू जी वहां भी बैठे थे। इसके बाद दादू जी ने उससे कहा कि मेरे कमर में साफा बांध दो किन्तु वह कमर में साफा नहीं बांध सका।

गुजरात के एक घाट में एक साहूकार का जहाज डूबने लगा। उसमें हिंगोल और कपिलगिरि दो सन्यासी थे। इनके कहने पर दादू जी का नाम स्मरण किया गया। दादू जी ने अपने स्थान पर बैठे-बैठे योंही एक हाथ से धक्का दिया। बाद में उनके हाथ से पानी गिरा। यह देख कर शिष्य चकित रह गये।

डोरी फिरी साभर के लोगों ने एक पत्र लिखा और यह तय किया कि जो दादू के पास जायगा से पांच सौ रुपया दण्ड देना पड़ेगा या सौ रुपये की आमदनी वाला पांच रुपया देगा। डुग्गी पिटवा दी गयी किन्तु फिर भी एक शिष्य दादू जी के पास चला ही गया। दादू जी ने कहा—तुम क्यों आ गये? वहां पर जब वह पत्र पढ़ा गया तब पत्र के अक्षर पलट गये।

पागल हाथी को दादू के पुरटेराव ने छोड़ा था।

| | |
|---|---|
| बीमे | दो |
| बहैना | बहिन |

अज्ञान कसौटी का अंग

धूनी करावना — गड्ढे में बैठ कर जलना
काष्ठ मसानहि — पीपल के खोह में बैठ कर जलना।

अस्त — बांस
हजरत अंत — मुहम्मद साहब ने पत्थर को गरम करके फोड़ा फेंका था। इस पर पत्थर ने बदला लिया। मुहम्मद साहब के दांत उसी पत्थर से टूटे।

कुसंगति का अंग

बै — विनाश
केली बन — कदलियास घास खाने वाला है तो मारा जाता है।

करगस — तरकस

सब बाणों में काग पंख लगे हों ऐसे तरकस में रखे हुए बाणों के बीच यदि एक बाण घूघू के पंखों वाला रख दिया जाय तो सब बाण बेकार हो जाते हैं क्योंकि उसके पंखों से दूसरे बाणों के काग पंख छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

काचे — अज्ञानी
पांवर — पादुका
बाइस — दूषित वायु
कम कल — अल्प बुद्धि

कुसंग सुसंग का अंग

रजस्वला नारी की छाया पड़ने से सभी अन्धे हो जाते हैं।

सयकंठ — समुद्र के पास का वह भाग जहाँ नदी मिलती है।
विष्ठालया — गंधी की वह मक्खिका जिससे भाव कर वह इत्र व तेल देता है।

अपसम्भिन्न अपराध का अंग

पटसाल — घासों से ढका हुआ गड्ढा जिसके पास एक बकरा बांध दिया जाता है। सिंह बकरे के खाने के लालच में आकर उसी गड्ढे में गिर जाता है।
नलनी — तोता पकड़नेवाली नलिका
घुर — गहरी

घोड़े के पास अग्नि लग जाने पर वह उसी ओर दौड़ता है।

अचारै — सोते समय छाती में हाथ आ जाना।

मानी का अंग

सानि — विष का मिश्रण

मूढ़कर्मी असाध्य रोग का अंग

बेबरी — उमासे
करड — दाल का न पकने वाला दाना।

डोवरी — रस्सी
डील — शरीर
बिगूचे — खाये या भोगे
बागुलि — बड़ा चिमगादड़
न्हारुवा — एक लम्बा स्नायु जैसा तार शरीर से निकलता है।

कीट पटम्बरी — कीड़े से रेशम

स्वांग का अंग

टीकायत — राजा से टीका प्राप्त रईस
तुंबिनी — रात्रि
बिडम्बै — बिडम्बना करना

नगों में छाप नहीं है फिर भी आब (पानी) है और उनका सम्मान कम नहीं है।

सुहाग — परित्यक्ता

तीरथ संस्कार का अंग

| | |
|---|---|
| औंडे | गहरे, नीचे |
| उचली | एक पति को छोड़ कर दूसरे के पास जाने वाली। |

आधार उपेल का अंग

| | |
|---|---|
| पांधि | चीर कर |
| बाधि | बच्चापन |

भेद भिकार का अंग

| | |
|---|---|
| नव | व्याकरणकर्त्ता |
| उगूम | पूर्व दिशा |
| आथूम | पश्चिम दिशा |
| भारत | युद्ध |
| चुरस | विष और अमृत |

नीतिग का अंग

| | |
|---|---|
| बापधिमा | झंडे |
| उनज | मनुज |

मंसूर को पत्थरों से मारा गया। इसकी बहिन ने गुलाब के फल की चोट से आह की।

| | |
|---|---|
| मोच | प्रणाम |
| पुलयर | जला कर रोग को ठीक करना। |
| पूगा | पुर मित्र |

गुरु गति मति सति का अंग

| | |
|---|---|
| हल माल | पृथ्वी की सन्तानें |
| किराड़ | महाजन |
| परबिहीन | हवा हाना |

सारग्राही का अंग

| | |
|---|---|
| दुंधि | द्विर हाथी |
| दुरि | कुमाई की मरणी जिस पर वह व न बुखता है। |
| सगाजरि | महा की मसाक |
| ताड़ | मुर्ग |
| घ पन | जाड़ |
| मंत्र | समाना |

शब्द उद असम्य का अंग

| | |
|---|---|
| पत्री | सरिया |
| बाज | बिना छोड़ कर |

शब्द का अंग

| | |
|---|---|
| मुनारे | लाट मीनार |
| पैथाम | गणक या ज्योतिषी |
| पारपदि | परम पद |

सर्व ठौर सावधान का अंग

| | |
|---|---|
| पर पसंत | परा और पश्यन्ती वाणी |

मन का अंग

| | |
|---|---|
| मिरति | वृत्ति |
| मुर्क | रसायना |
| मोस्या | कुत्ता |
| कोसि | कोरि या चन्दन |
| कोय | स्त्री |
| मकोड़ कोड़ | मकड़म गाँठें |
| मूलि | किश्किमाम |
| किरकांट | गिरगिट |
| पलपल | क्षण भर में नष्ट |
| बंदा | पशुओं के लिए बनाई गई चूनी या वापड़। |
| युसुफ | अरब का एक सुन्दर व्यक्ति |
| पाडे | गढ़ा हुआ |
| ताफ | सैराफ |

विषय का अंग

| | |
|---|---|
| राबि | पीब या मवाद |
| मारोगहि | खाते हैं |
| कामरूप | आराम |

मीड़ मयामा ब्रह्माण्ड रूपी माला एक सर्प ऐसा होता है जो डसता या काटता नहीं है केवल सोते हुए व्यक्ति के श्वास को पान करता है। श्वास के साथ विष आदमी के शरीर में चला जाता है। यह सर्प मारवाड़ के रेगिस्तान में होता है।

| | |
|---|---|
| गुहल | काम |
| नर माया मन | हीरा हीरी |
| माती | प्रमत्त |
| मिरजी | फांसी |

| | |
|---|---|
| चौड़ | चौपट कर दिया |

मनमुखी का अंग

| | |
|---|---|
| झामि | मैला |

मैवासी का अंग

| | |
|---|---|
| मैवासा | चोर डाकू |
| बयसन्द बन | विग्रह का बन |

क्रोध का अंग

| | |
|---|---|
| महूनारम्भ | मध्याह्न |
| चमक | कोप |
| सुरमक्षि | सुभिक्ष |

इन्द्र भगवान को न पूजने से अति वृष्टि या अनावृष्टि होती है।

गुरुपूनो के दिन वायु की परीक्षा के आधार पर सुकाल और दुकाल का अनुमान करते हैं।

| | |
|---|---|
| कुडाला | चन्द्रमा के चारों ओर का मण्डल। |
| गलायल | एक-दूसरे को खाना |

सात्विक तामस निदान का अंग

समुद्र में जरा-सा हलचल हो जाने से खारे पानी के कारण सीप का मोती नष्ट होजाता है।

| | |
|---|---|
| दुन्दिम | सूर्य |
| विषधक | विष व्याप्त |

करणा का अंग

| | |
|---|---|
| करणा कोप | क्षमा रूपी योद्धा |

नरनारायण के ऊपर कामसेना आयी थी। जब वह हार गयी तो दुखी हुई। फिर उर्वशी नाम की अप्सरा कामसेना को दी। उस कामसेना ने वामाओं को क्षमा कर दिया।

| | |
|---|---|
| विप्र | मानी भृगु |
| व्याध | जरा नामक व्याध जिसने बाण मारा था किन्तु उसको क्षमा कर दिया गया। |

परम करणा दुष्ट दातार का अंग

| | |
|---|---|
| रई | मथानी |
| करहुर | तोड़ कर खाना मधानी मेंहदी के लिए काम है क्योंकि वह पीसी जाती है। |
| चौड़ | एक जाति जो तालाब खोदने का काम करती है |

सर्व गुण अरथी का अंग

| | |
|---|---|
| सनि सनि | सामने-सामने |
| गीद | गेंद |
| बाजी | बाजीगर |

प्रस्ताविक का अंग

| | |
|---|---|
| तिमाले | शीघ्रता |
| पुकले | समय |

चतुर जवाबी का अंग

| | |
|---|---|
| चार दाघ | चार अंत्येष्टि की विधियाँ |
| सप्त सती | सीता कुन्ती द्रौपदी अहल्या तारा सुलोचना मन्दोदरी। |

मोले भाव का अंग

| | |
|---|---|
| टोटी | 'रोटी' शब्द का तुतला कर उच्चारण। |

शत्रु और मित्र की बीच की अवस्था यानी तटस्थता मोला भाव है।

| | |
|---|---|
| राखा | उपालम्भ उलाहना |
| ग्रहै | समझदार |
| ढबलों | मिट्टी के ढेले |

सांधी का अंग

| | |
|---|---|
| मझूक | इच्छा |
| माक | मतलब |

साखसे का अंग

रामानन्दी लोग बाहर से अकड़ते हैं, पास आ जाने पर किंचित् नहीं बोलते।

मथुरा में एक बार मुसलमानों ने माला तिलक को गैरकानूनी करार दिया था। उस समय माला-तिलक उतारने से ही हिन्दुओं का छुटकारा हुआ। यही दादू जी का पंथ है।